प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में कथानक और कथ्य का पारस्परिक सम्बन्ध-निरूपण

Relationship between Plot and Theme in Post-Premchand Novels

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय को डी० फिल् उपाधि हेतु प्रस्तुत)

शोध-प्रबन्ध-

शोध-निर्देशक

डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्त्ता

देवी प्रसाद तिवारी

एम० ए०

हिन्दी-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

सितम्बर, १९७८

प्राक्कथन

अभीष्ट विषय पर शोध करना सुखकर होता ही है साथ ही एकोन्मुखी बनना भी । कथा-साहित्य के चरित्र हमारे जीवन से इतने सम्पृक्त होते हैं कि वे सहज ही हमारे आत्मीय बन जाते हैं । सम्भवतः इसीलिए कथा-साहित्य शोधार्थी के सम्वेदनशील हृदय को जाने-अनजाने आकर्षित करता रहा है । इस अभिरुचि के अनुसार शोधार्थी ने दिसम्बर उन्नीस सौ तिहत्तर में प्रस्तुत शोध-विषय पर कार्य करना प्रारम्भ तो कर दिया, किन्तु शनैः शनैः परिस्थितियों के तन्तु ऐसे विकीर्ण होने लगे कि न जाने कितनी बार हताश, निराश और पराजित सा अनुभव करता रहा । अध्ययन की अपेक्षा पेट की भूख अधिक तीव्रतर होती है, इस सदा रिक्त रहने वाले पेट के लिए आवारों की तरह दर-दर भटकता रहा । गेटे ने कहीं कहा था — 'अनवरत असफलता के सिवा इस दुनिया में सब चीज सहन की जा सकती है ।' सच तो यह है कि अनवरत असफलता मनुष्य को सजीव-शव बना देती है । निरन्तर बेकारी की पीड़ा को झेलते हुए कच्छप गति से शोध-कार्य में लगा रहा । शोध की अवधि में षड्यन्त्रों के सिलसिले, फिर खिन्न, हताश, असफल हो उपन्यासों की ओर ललचायी आँखों से देखता, तनाव की स्थिति में उठा कर पटक देता । कतिपय स्वजनों से दिलासा मिलती, फिर तो लेखनी सरपट दौड़ने लगती । ऐसे अद्भुत अस्त-व्यस्तता पूर्ण वातावरण में शोध-प्रबन्ध पूर्ण हुआ और अब ऐसा सोचता हूँ कि एक किला फतह कर लिया है । इन सब के बीच किसको, किस चीज को प्रेरक समझूं अब तक समझ में नहीं आया ।

प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यासों में कथानक अधिक महत्वपूर्ण था। उसके आदि, मध्य और अन्त — आद्यन्त की सम्बद्धता पर उपन्यासकार

ध्यान देता था। साहित्य के नये सन्दर्भ में कथ्य प्रमुख होता गया और कथानक गौण। आज का उपन्यासकार कथानक के अस्तित्व को नकारने लगा है, उसकी अनावश्यकता और अनुपादेयता को रेखांकित करने लगा है जबकि भारतीय और पाश्चात्य सभी आचार्यों एवं रचनाकारों ने वस्तु की महत्ता को स्वीकार किया है। अस्तु यह अनिवार्य हो गया है कि रचनात्मकता के जिस बिन्दु पर आज का साहित्यकार पहुंच गया है उसका मूल्यांकन हिन्दी उपन्यासों के सन्दर्भ में इस प्रकार की समस्या को उठा कर प्रस्तुत प्रबन्ध के माध्यम से समझने - समझाने का उपक्रम किया गया है। यह विषय अभी तक शोध के स्तर पर अछूता रहा है।

कथ्य अधिक महत्वपूर्ण है या कथानक यह एक विवाद का विषय है और हो सकता है। इसलिए वस्तु सम्बन्धी प्राचीन परम्परागत स्थापनाओं के परिप्रेक्ष्य में कथ्य को सामने रख कर वस्तु और कथ्य की सापेक्षिक प्रासंगिकता का तुलनात्मक विवेचन - विश्लेषण किया गया है। प्रबन्ध - लेखक के निष्कर्ष पूर्वाग्रह से ग्रस्त अथवा आरोपित नहीं है। रचनाकारों की कृतियों के अन्तरंग साक्षात्कार के माध्यम से ही उन्हें उभारने का प्रयत्न किया गया है। यह प्रयत्न निश्चय ही वस्तुपरक और निगमन प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध किया गया है।

अपने शोध – काल में प्रबन्ध लेखक ने हिन्दी - उपन्यासों से सम्बन्धित अनेकानेक शोधपरक एवं आलोचनात्मक ग्रन्थों का अध्ययन किया किन्तु उनमें से किसी भी ग्रन्थ में कथ्य और कथानक के

सामाजिक सम्बन्ध पर विचार प्राप्त नहीं होते । प्रताप नारायण टंडन ने 'हिन्दी उपन्यास में कथा - शिल्प का विकास' तथा रणवीर रांग्रा ने 'हिन्दी उपन्यास में चरित्र - चित्रण' शीर्षक शोध - प्रबन्ध प्रस्तुत किये हैं । किन्तु इन दोनों ही शोध - प्रबन्धों में प्रसिद्ध उपन्यासकारों के आधार पर क्रमशः कथा- शिल्प तथा चरित्र - चित्रण पर विचार हुआ है । हिन्दी उपन्यासों के शिल्पगत अध्ययन से सम्बद्ध अनेक शोध - प्रबन्ध भी प्रकाश में आए हैं जिनमें उषा सक्सेना का 'हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास' श्रीमती ओम शुक्ल का 'हिन्दी उपन्यासों की शिल्प- विधि का विकास' कृष्णानाग का 'हिन्दी उपन्यास की शिल्प- विधि का विकास' त्रिभुवन सिंह का 'हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग' सुरेश सिन्हा का 'उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ' आदि प्रमुख हैं । इन सभी शोध - प्रबन्धों में कथ्य की अपेक्षा कथानक-शिल्प पर अधिक प्रकाश डाला गया है । इन प्रबन्ध - लेखकों ने कथ्य और कथानक के सानुपातिक सम्बन्ध पर विचार नहीं किया है । इनके अतिरिक्त दे ने 'आधुनिक कथा - साहित्य और मनोविज्ञान' में कहानी और उपन्यास में व्यक्त होने वाले सरल तथा जटिल मनोविज्ञान पर प्रकाश डाला है । एस0 एन0 गणेशन ने 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' में हिन्दी उपन्यासों एवं पाश्चात्यों उपन्यासों की तुलना की है । भारतभूषण अग्रवाल ने 'हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव' में हिन्दी उपन्यासों पर पड़ने वाले पाश्चात्य प्रभावों का उल्लेख किया है । इन शोध- प्रबन्धों में अपने-अपने विषय पर गम्भीरता से विचार हुआ है किन्तु कथ्य और कथानक के सम्बन्ध

की दृष्टि से इनमें विचार नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त उपन्यासों से सम्बन्ध कुछ अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें शिवनारायण श्रीवास्तव का ' हिन्दी उपन्यास ' नरेन्द्र मोहन का ' आधुनिक उपन्यास ' डॉ० चन्द्रनाथ मदान का ' आज का हिन्दी उपन्यास ; ' हिन्दी उपन्यास पहचान और परख ' तथा ' हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि ' उल्लेखनीय है। किन्तु इन समस्त प्रबन्धों में लेखकों का ध्यान विषय वस्तु (कथ्य) पर अधिक केन्द्रित है। कथ्य और कथानक के सम्बन्ध की दृष्टि से उपन्यासों का विवेचन अभी तक नहीं हो सका है। डॉ० सत्यपाल चुघ के ' प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प - विधि ' में इस विषय पर किंचित प्रकाश अवश्य पड़ता है किन्तु उपन्यास - शिल्प के विभिन्न तत्वों पर एक ही साथ विचार - विमर्श होने के कारण यह अकिंचित प्रयास ही नगण्य है। अतः इसकी आवश्यकता प्रतीत होती है कि कथ्य और कथानक के सम्बन्ध का सम्यक् विवेचन हो।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध नौ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में कथानक सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों तथा रचनाकारों की परिभाषाओं का उल्लेख करते हुए उसके आशय को स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय अध्याय में कथ्य की व्युत्पत्ति , अर्थ एवं आशय को समझाया गया है।

तृतीय अध्याय में कथानक की रचना- प्रक्रिया एवं विकास पर विस्तार से विचार किया गया है। समय एवं परिस्थितियों के प्रभाव के

परिणाम- स्वरूप कथानक निरन्तर विकासोन्मुख होता हुआ आज अत्यन्त सूक्ष्म हो गया है। कथानक की नवीन अवधारणाओं के कारण उसकी रचना-प्रक्रिया में भी परिवर्तन हुआ है।

चतुर्थ अध्याय में युग- चेतना के अनुसार विकासशील कथ्य को स्पष्ट करते हुए उसकी रचना - प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है।

पंचम अध्याय में कथानक के भेदोपभेदों पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत प्राचीन आचार्यों एवं लेखकों द्वारा किए गए कथानक के वर्गीकरण पर दृष्टिपात् करते हुए प्रबन्ध - लेखक ने उसे दो स्थूल वर्गों — समाज सापेक्ष कथानक एवं व्यक्ति सापेक्ष कथानक के अन्तर्गत विवेचित किया है।

षष्ठम् अध्याय के अन्तर्गत उपन्यासकारों की जीवन- दृष्टि के अनुसार कथ्य को समाज - सापेक्ष कथ्य एवं व्यक्ति- सापेक्ष कथ्य नामक दो वर्गों में विभाजित किया गया है। ये दोनों - समाज - सापेक्ष और व्यक्ति- सापेक्ष प्रवृत्तियाँ भी अलग - अलग धाराओं में प्रवाहित हुई हैं। इसलिए इन दोनों भेदों के भी चार- चार उपभेद किए गए हैं। समाज-सापेक्ष कथ्य के चार भेद सामाजिक कथ्य, समाजवादी कथ्य, समाजपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य एवं समाजपरक ऐतिहासिक कथ्य किये गये हैं। इसी प्रकार व्यक्ति - सापेक्ष कथ्य के भी चार भेद व्यक्तिपरक कथ्य, व्यक्तिवादी कथ्य, व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य एवं व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य किए गए हैं।

सप्तम् अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में कथानक के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए उसके ह्रास के कारणों पर विचार किया गया है ।

अष्टम् अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में कथ्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है । इसमें यह बताने का प्रयास किया गया है कि विवेच्ययुगीन उपन्यासों का कथ्य किस प्रकार आदर्श से यथार्थ की ओर , स्थूल से सूक्ष्म की ओर संक्रमित हुआ है ।

नवम् अध्याय में कथ्य और कथानक के प्रयोग - महत्व पर प्रकाश डालते हुए विवेच्ययुग की कतिपय प्रमुख औपन्यासिक कृतियों के आधार पर उनके पारस्परिक सम्बन्धों के विवेचन का प्रयास किया गया है ।

प्रबन्ध लिखने और प्रस्तुत करने में आदरणीय गुरुवर डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव की अनुकम्पा की कमी नहीं हो सकता , क्योंकि जिस कुशलता और सहज भाव से उन्होंने निर्देशन दिया , समय-समय पर अपनी ममता और स्नेह के स्फुरण से कठिनाइयों को दूर किया — यह सब न मिलता तो सम्भवतः अभी तक प्रबन्ध न पूर्ण हो पाता । यह सब उन्हीं के चरणों की कृपा का प्रसाद है ।

श्रद्धेय दादा जी श्री शिवशंकर तिवारी एवं पिता जी श्री जानकी प्रसाद तिवारी के प्रति आभार ज्ञापित करना तो औपचारिकता का निर्वाह करना होगा , क्योंकि मेरा जो कुछ भी है , सब उन्हीं लोगों का दिया हुआ है । प्रतिपल साथ रहने वाली तथा मेरी सारी वेदनाओं को सहज ढंग

कर पा जाने वाली पत्नी प्रमिला के प्रति आभार व्यक्त करना, उसके व्यक्ति-त्व को बौना कर देना है। विचारों की कुण्ठाओं को जिस निश्छल एवं निष्कपट स्नेह से कम किया और परितोष दिया, वह सब विस्मृत कर देने की चीज नहीं है।

आदरणीय जीजा श्री देवी प्रसाद त्रिपाठी जूनियर इंजीनियर (सिविल) एवं बड़े भाई श्री शम्भूनाथ पाण्डेय का अत्यन्त कृतज्ञ और उपकृत हूँ। इन सभी लोगों ने शोध-कार्य में लगने से ले कर उसके टंकित करा लेने में आर्थिक सहायता देकर संकट का बहुत बड़ा हिस्सा हल्का कर दिया है। इनके अतिरिक्त श्री नरेन्द्र देव बनकटा के उपकारों को भुलाना कृतघ्नता ही होगी। उन्होंने जिस आत्मीयता से शोध-कार्य की अवधि में अपना सहारा देकर बहुत बड़े बोझ को वहन किया उसके प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त श्रीयुत डॉ० रघुवंश, डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० पारसनाथ तिवारी, डॉ० माताबदल जायसवाल, डॉ० राम स्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा एवं डॉ० राजकुमार शर्मा का आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर आवश्यक निर्देश देकर शोध-प्रबन्ध की पूर्णता में अपना योगदान दिया है। अपने मित्र-सहयोगी श्रीयुत डॉ० मनहर गोपाल भार्गव, डॉ० रुद्रदेव तिवारी, डॉ० कृष्ण मोहन सक्सेना, श्रीमती शशि शर्मा एवं कु० किरण मिश्र की शुभ चिंताओं और सहायता के प्रति अनुगृहीत हूँ। श्रीयुत भाईराम यादव ने मेरी भावनाओं को ध्यान में रख कर शोध-प्रबन्ध टंकित करने में जो परिश्रम और विनम्र व्यवहार से आकर्षित किया, उसके प्रति अत्यन्त उपकृत हूँ।

शोधावधि में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग-संग्रहालय , विश्वविद्यालय - पुस्तकालय तथा राजकीय पुस्तकालय के कर्मचारियों ने ग्रन्थों को देखने और पढ़ने में जो सहायता दी है , उनके भी प्रति आभारी हूँ और उन सभी विद्वानों के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिनसे प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध में सहायता लेने का प्रयास किया गया है ।

सामान्यतः शोध - प्रबन्ध एक बौद्धिक प्रयास है , प्रयास में त्रुटियाँ भी सम्भावित हैं , टंकण - कार्य में भी अशुद्धियाँ अपेक्षित हैं । कहीं - कहीं विचार असंगत भी हो सकते हैं । अतः विभिन्न विद्वानों द्वारा प्राप्त होने वाले परामर्शों एवं विचारों का सदैव स्वागत है । तथापि मुझ अकिंचन द्वारा यत्किंचित प्रयास किया गया है वह तद्वत् विवेकी - विदग्ध - सहृदय मनीषियों के समक्ष सविनय प्रस्तुत है ।

विनयावनत -

देवीप्रसाद तिवारी

एम० ए०

विषयानुक्रमणिका

कथात्मक शैली, पत्र-शैली, डायरी-शैली, विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि, मनोविज्ञान-प्रधान, दर्शन-प्रधान, चेतना-प्रवाह, पूर्व दीप्ति, प्रतीकात्मक, नाटकीय और समन्वित आदि पर विचार-विमर्श किया गया है।

इस अध्याय के अन्तर्गत कथ्य को प्रभावित करने वाली युगीन परिस्थितियाँ — राजनीतिक परिस्थितियाँ - स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिस्थितियाँ, राजनीतिक परिस्थितियाँ और आधुनिक उपन्यासों का कथ्य — सामाजिक परिस्थितियाँ - वर्ण-व्यवस्था, संयुक्त परिवार-प्रथा, आधुनिक समाज में व्यक्ति की स्थिति, पूँजीपति वर्ग, मध्यवर्ग, कृषक वर्ग, श्रमिक वर्ग, सामाजिक क्रान्तियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ और विवेच्यकालीन उपन्यासों का कथ्य — आर्थिक परिस्थितियाँ — आर्थिक क्रान्तियाँ, आर्थिक परिस्थितियों का विवेच्ययुगीन औपन्यासिक कथ्य पर प्रभाव आदि पर विचार हुआ है एवं कथ्य को प्रभावित करने वाली परिस्थिति जन्य विभिन्न विचारधाराएँ - विचार दर्शन — मानवतावादी जीवन-दर्शन, व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन तथा समाजवादी जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला गया है।

कथ्य की रचना-प्रक्रिया के अन्तर्गत विवेच्ययुगीन नवीन औपन्यासिक कथ्य के अनुकूल रचना-प्रक्रिया में परिवर्तन- रचना-प्रक्रिया के अनिवार्य तत्व — अनुभव अथवा अनुभूति, कल्पना, प्रतिभा, रचना-प्रक्रिया की मनोवैज्ञानिक अवधारणा, रचना-प्रक्रिया के स्वतंत्र आधार — दर्शन एवं मनोविज्ञान, अचेतन-बोध, साम्यवादी - समाजवादी

विचारधारा, अनुभव की प्रामाणिकता, रचनाकार की तटस्थता, यथार्थ-बोध, मनोवैज्ञानिक प्रेरणा, संकेत-सृजन, प्रतीक सृजन, बिम्ब-सृजन, मूल्य दृष्टियों की योजना, पूर्वदीप्ति-पद्धति का प्रयोग, चेतना-प्रवाह-पद्धति, औपन्यासिक कथ्य की रचना-प्रक्रिया पर विचार प्रस्तुत किया गया है।

इसके अन्तर्गत कथानक के वर्गीकरण पर विचार किया गया है। इसमें कथानक - अन्तर्कथानक - उपकथानक, कथा-सूत्र (थीम), प्रासंगिक कथा (एपिसोड), उपकथा, वस्तु-वृत-दन्तकथा-मूलक, कल्पना-मूलक, इतिहास-मूलक एवं भारतीय काव्य-शास्त्र में वर्णित कथावस्तु के भेदों — प्रसिद्ध, उत्पाद्य तथा सरलता एवं भिन्नता के आधार पर कथानक के भेद — सरल कथानक, जटिल या गूढ़ कथानक तथा उसके दो भेदों -- स्थिति - विपर्यय या परिवर्तन, अभिज्ञान (रिकग्निशन या डिस्कवरी), कार्यावस्थाओं — प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्ति-आशा, नियताप्ति, फलागम — पाँच अर्थ-प्रकृतियों — बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य — पंच-संधियों —— मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श(अवमर्श) तथा उपसंहृति — पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों ——

विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार एवं प्रवेशक आदि पर प्रकाश डाला गया है। आवश्यक दृष्टि से कथानक विभाजन के तीन भेदों — आदि, मध्य एवं अन्त पर भी विचार किया गया है। अन्त में आधुनिक उपन्यासों की प्रवृत्तियों के आधार पर कथानक के दो भेद —— समाज-सापेक्ष कथानक एवं व्यक्ति-सापेक्ष कथानक किए गए हैं।

षष्ठम् अध्याय - १३४-१६६

यह अध्याय कथ्य के वर्गीकरण को स्पष्ट करता है। इसमें डॉ० डी० डब्ल्यू० ओरस्लाम द्वारा किए गए थीम (कथ्य) के पाँच भेदों —— भौतिक - अर्थात् अणु (भावोद्भव), आंगिक (आरंभिक) अर्थात् प्रस्तापिण्ड (प्रोटोप्लाज्म) के रूप में मानव, सामाजिक अर्थात् सामाजिक-प्राणी के रूप में मानव, अहंकृत अर्थात् व्यक्ति के रूप में मानव तथा दैवी, अर्थात् आत्मा के रूप में मानव- पर विचार करते हुए सुविधा की दृष्टि से विवेच्ययुगीन उपन्यासों के कथ्य को दो वर्गों में विभाजित किया गया है —— पहला - समाज-सापेक्ष कथ्य - दूसरा - व्यक्ति-सापेक्ष कथ्य। इन दोनों भेदों के भी —— चार-चार उपभेद——

पृष्ठ

१६६-२३४

षष्ठम अध्याय —

इस अध्याय के अन्तर्गत प्रेमचन्द - परवर्ती उपन्यासों के कथ्य की कतिपय विशेषताओं — यथार्थवाद के प्रति आग्रह, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर सृजित कथ्य के स्वरूप, विवेच्य युग के समाज - सापेक्ष कथ्य के स्वरूप, मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्राणित कथ्य के स्वरूप, मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा से प्रभावित कथ्य के अन्तर्गत सामाजिकता के स्वरूप, इतिहास पर आधारित कथ्य में सामाजिकता के स्वरूप, व्यक्ति- सापेक्ष कथ्य के स्वरूप एवं उपन्यासकारों की संवेदना का आधार- व्यक्ति, पर विचार किया गया है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य की अवधारणा के विभिन्न औद्योगिक- स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों से प्रभावित कथ्य, अस्तित्व- वाद से प्रभावित कथ्य, अनुभूति की प्रामाणिकता पर बल, कथ्य- चयन में यथार्थ के प्रति रचना- कारों के विशेष आग्रह, कथ्य के प्रस्तुतीकरण में देश - काल तथा परिवेश - चित्रण के महत्व, विवेच्ययुगीन औपन्यासिक कथ्य और समय-सापेक्ष मानव - मूल्य, पारिवारिक विघटन, नगर-बोध, स्वार्थ मनोवृत्ति, पति- पत्नी के सम्बन्ध, अजनबीपन- अकेलापन, औद्योगीकरण के महत्व, आम-जनों के चित्रण, मृत्यु- बोध, मोह-भंग आदि पर प्रकाश डाला गया है।

सप्तम् अध्याय :-

इस अध्याय के अन्तर्गत कथ्य और कथानक के प्रयोग, महत्व तथा पारस्परिक सम्बन्ध - निरूपण पर प्रकाश डाला गया है एवं कथ्य और कथानक के सम्बन्ध की दृष्टि से विवेच्य-युग की कुछ विशिष्ट औपन्यासिक कृतियों —— जैनेन्द्रकृत - ' सुनीता ', 'त्यागपत्र', भगवतीचरण वर्मा कृत- ' चित्रलेखा', उपेन्द्रनाथ अश्क कृत – 'गिरती दिवारें ', अज्ञेय कृत — ' शेखर: एक जीवनी', वृन्दावन लाल वर्मा कृत ' मृगनयनी', देवराज कृत- ' पथ की खोज ', धर्मवीर भारती कृत ' सूरज का सातवां घोड़ा ', लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'बया का घोंसला और साँप ', फणीश्वरनाथ रेणु कृत - ' मैला आंचल ', नागार्जुन कृत ' बाबा बटेसरनाथ', गिरधर गोपाल कृत - ' चांदनी के खंडहर ', इलाचन्द्र जोशी कृत ' जहाज का पंछी ', अमृत लाल नागर कृत ' बूंद और समुद्र ', आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र कृत ' सीमा के पार ', राजेन्द्र यादव कृत' उखड़े हुए लोग ', उदयशंकर भट्ट कृत - ' सागर लहरें और मनुष्य ', मोहन राकेश कृत — ' अंधेरे बन्द कमरे ', नरेश मेहता कृत —'यह पथ बन्धु था ',

रांगेय राघव कृत - ' पतझर ', स्वाति प्रसाद

द्विवेदी कृत ' चारु चन्द्र लेख ', ममता कालिया

कृत - ' बेघर ', मणि मधुकर कृत ' सफेद

मेमने ', कृष्णा सोबती कृत ' सूरजमुखी अँधेरे के ', --

की विवेचना की गयी है ।

परिशिष्ट

(१) शोध- प्रबन्ध में प्रयुक्त उपन्यासों की सूची -- ४८८-४९९

(२) सहायतार्थ गृहीत पुस्तकों की सूची हिन्दी ५००-५१३
    व अंग्रेजी ।

(३) पत्र - पत्रिकायें ।

:: कथानक ::

अर्थ, व्युत्पत्ति एवं आशय :

कथावस्तु या कथानक उपन्यास का महत्वपूर्ण तत्व है । उपन्यास के गठन पर दृष्टिपात करते समय सर्वप्रथम जिस तथ्य पर हमारा ध्यान केन्द्रित होता है वह है उसका विषय । स्पष्टतया हम यह देखना चाहते हैं कि उपन्यासकार अपने उपन्यास में प्रतिपाद्य विषय के प्रयोग में किस सीमा तक सफल हो सका है ।

किसी उपन्यास में वर्णित मूल कथा को कथानक की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । जिन घटनाओं या व्यापारों से उपन्यास का सम्बन्ध होता है, वे सब कथानक के अन्तर्गत समाविष्ट किये जाते हैं । यह उपन्यास के अन्य तत्वों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक तत्व है । कथानक वह आधार है जिस पर उपन्यास का महल खड़ा होता है । उपन्यास का सम्पूर्ण कलेवर मूलतः कथानक से ही निर्मित होता है । व्यापक अर्थ में उपन्यास के विविध उपकरण उसके अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते हैं । उपन्यास में वर्णित घटनाओं के साथ ही साथ दृश्य, पात्र-चित्रण, संवादादि सभी कथानक के सहकारी अंग होते हैं ।

उपन्यास में कथानक होता है जिसके गठन में एक योजना रहती है, जिसका आदि अन्त होता है और जिसमें कलात्मक एकता होती है । उपन्यास का एक निश्चित स्थापत्य है । उपन्यासकार अपने विषय का प्रस्तुतीकरण किसी न किसी योजना के अनुसार करता है । उसकी यही प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी योजना ही कथानक है ।

कथानक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की " कथ " धातु से हुई है । इसका साधारण अर्थ है " जो कुछ कहा जाय " । कथानक का शाब्दिक अर्थ कथा का छोटा रूप " या "सारांश " होता है । कथा को साहित्य में इतिवृत्त की संज्ञा दी गई है । कथा (इतिवृत्त) तथा कथावस्तु या कथानक (संविधानक) भिन्न-भिन्न अर्थों के द्योतक हैं । इतिवृत्त या कथा उस घटना क्रम को कहते हैं जिसमें किसी नायक के जीवन का पूर्ण और वास्तविक चरित्र आ जाय । जिन कथाओं के आधार पर उपन्यास लिखा जाता है उसे इतिवृत्त या कथा कहते हैं और वह सत्य पर आधारित होता है । जब उसे बदल कर नई घटनाएं जोड़ कर कथा का निमार्ण

कर लिया जाता है तो इसे कथावस्तु की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । इस लिए कथानक के आशय को समझने के लिए हमें पहले " कथा " का तात्पर्य समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है । कथानक की ही भांति " कथा " शब्द भी " कथ् " धातु से " चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च "[१] सूत्र से अङ्० प्रत्यय तथा स्त्री की विवक्षा में टाप् प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है । कथ् धातु का अर्थ है -" काव्य-प्रबन्ध "। " अमरकोश "[२] में कथा का अभिप्राय है -" प्रबन्ध कल्पना " । " प्रबन्ध " से अभिप्राय है - अभिधेय और कल्पना से अभिप्राय है स्वयं रचना । इस प्रकार प्रबन्ध (अभिधेय) की रचना को कथा कहते हैं ।

"शब्दकल्पद्रुम "[३] में कथा का अर्थ - वार्ता, वाक्य और विवरण बताया गया है । प्राचीन काल में कथा के लिए आख्यान शब्द व्यवहृत होता रहा है । "आख्यान " शब्द " ख्या " धातु से ल्युट् प्रत्यय लग कर बना है, जिसका अर्थ है - कथन या निवेदन करना । पतंजलि[४] ने कथा के अर्थ में " आख्यान " शब्द का ही प्रयोग किया है और आख्यान के यावक्रीतिक, प्रैयंगविक, यायातिक तीन उदाहरण दिये हैं । कथानक के मूल में यही कथा निहित होती है । धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है - वस्तु, नेता और रस । वस्तुनेता रसस्तेषां भेदकः[५] । इसमें वस्तु का वर्णन विशेष महत्व रखता है । वस्तु को कथा, कथावस्तु (Plot), इतिवृत्त आदि नामों से अभिहित किया जाता है । वस्तु के[६] तत्वों के रूप में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य आदि पांच अर्थ प्रकृतियों , आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम आदि पंचावस्थाओं[७], एवं मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा उपसंहृति या निर्वहण आदि पंचसंधियों[८] का उल्लेख किया गया है जिनका विस्तार-वर्णन यहां अपेक्षित नहीं है । इन्हें सरलता पूर्वक समझने के लिए निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है । प्रथम से प्रथम का, द्वितीय से द्वितीय का, इस प्रकार इनका सम्बन्ध है ।

	अर्थ प्रकृतियां	अवस्थायें	संधियां
१-	बीज	आरम्भ	मुख
२-	बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
३-	पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ

४- प्रकरी नियताप्ति विमर्श

५- कार्य . फलागम उपसंहृति

यह शब्द जहां अनेकार्थी है, वहीं इसका एक अर्थ साहित्य का कथात्मक रूप है । यह कथात्मक रूप महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, प्रेमाख्यान, लोक कथा आदि में सर्वत्र प्राप्त होता है । साहित्य की इन समस्त विधाओं में जो तत्व रीढ़ की हड्डी के तुल्य सभी घटनाओं को आधारित करता है, उसे कथानक कहा जाता है । इसके चतुर्दिक घटनायें लता-तुल्य बढ़ती, फैलती और विस्तार पाती हैं । साहित्य में कार्य- व्यापार की योजना को कथानक कहा जाता है । प्रत्येक कलाकार अपनी कलाकृति के निर्माण के पूर्व जो प्रक्रिया-क्रम बनाता है वह योजना कहलाती है । साहित्य में रचनाकार द्वारा घटनाओं का क्रमिक संयोजन किया जाता है जिसे हम कथानक की संज्ञा देते हैं । प्रत्येक कथा कथानक नहीं हो सकती । कथा और कथानक के अन्तर पर दृष्टिपात करते हुए यह कहा जा सकता है कि कथा में तो घटना कीप्रधानता होती है जब कि कथानकमें कार्य - कारण - सम्बन्ध होता है । कथा के पाठक या श्रोता की यह जिज्ञासा अनवरत बनी रहती है कि " हां, फिर आगे क्या हुआ ?" जब कि कथानक का पाठक या श्रोता यह जिज्ञासा करता है -" यह कैसे और क्यों हुआ ?" ऐसा इस लिए होता है कि कथानक में अग्रिम घटनाओं का कोई न कोई उचित कारण दे दिया जाता है । पाश्चात्य विद्वान ई० एम० फार्स्टर कथानक पर विचार करते हुए लिखा है कि कथा (कहानी) घटनाओं का वर्णन मात्र होती है । कथानक में यद्यपि घटनाओं का वर्णन तो होता है किन्तु जोर उनके कारण पर दिया वाला है । " राजा मर गया और तब रानी भी मर गई -" यह एक कहानी है । राजा मर गया और तब उसके वियोग में रानी मर गई, यह एक कथानक है । कथानक में कालानुक्रमिक वर्णन रहता है किन्तु कार्य-कारण सम्बन्ध उसके ऊपर हावी रहते हैं । " रानी मर गई " किन्तु कोईजान न सका क्यों, जब तक कि यह खोज न हो गईकि उसका कारण राजा की मृत्यु का शोक था । यह एक ऐसा कथानक है जिसमें अधिकाधिक विस्तृत होने का रहस्य छिपा हुआ है । यह कालानुक्रम को भी स्थगित करता है ।[1]

कथानक का आधार कथा होती है और उसमें घटनाओं का संग्रह होता है। यही कथा उपन्यास की रीढ़ है जिसके अभाव में किसी भी उपन्यास की रचना नहीं हो सकती है[१०]। उपन्यासकार का प्रथम उद्देश्य सुन्दर कथा कहना है और उस कथा के माध्यम से पाठक को उपन्यास के अन्त तक असमंजस में डाल रखना है, जब तक कि पाठक सम्पूर्ण उपन्यास का अन्तत: अध्ययन न कर ले तब तक उसकी जिज्ञासा बनी रहे, इसी में उपन्यासकार की सफलता निहित है। सुन्दर कथा के अभाव में किसी भी उपन्यास की उत्कृष्टता संदिग्ध होती है। यही उपन्यासकार की औपन्यासिक कला का आदि और अन्त है। कथा-कथन की कला ही एक उपन्यासकार को दूसरे उपन्यासकार से श्रेष्ठ सिद्ध करती है। दूसरे पाश्चात्य विचारक पी० एडगर ने तो कथानक को ऐसे कार्य की कृत्रिम योजना बतलाया है जो कुतूहल को जागृत करता है[११]। एडगर की इस परिभाषा से कथानक का उद्देश्य प्रकाशित हो उठता है। कथानक केवल कार्य की ही योजना नहीं है बल्कि यह सम्पूर्ण प्रतिपाद्य की योजना मात्र है, उपन्यासकार अपने उद्देश्य को इस प्रकार प्रतिपादित करने का सर्वथा प्रयत्न करता है कि उसके उपन्यास में आद्यन्त कुतूहल तत्व अक्षुण्ण रहे। प्रसिद्ध विद्वान एच०जी० थैरॉप ने उपन्यास के विभिन्न उपकरणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि प्रत्येक कहानी के तीन अनिवार्य तत्व होते हैं : विशेष परिस्थिति में कुछ लोगों के द्वारा कुछ घटित होता है। कार्यों का होना, कार्यविधान कथा ही है, अथवा जब (वह) निश्चित रूप से सुगठित होता यह कथानक है[१२]।

प्रत्येक उपन्यास में घटनाएं और कार्य होते हैं। कुछ घटनाएं तो परिस्थितिवश स्वत: घटित होती है और कुछ कार्य देश-काल विशेष में किन्हीं व्यक्तियों द्वारा किये जाते हैं। इन्हीं घटनाओं और कार्यों के संगठित और सुव्यवस्थित रूप को कथानक की संज्ञा दी जाती है। कथानक घटनाओं का सामान्य या जटिल ढांचा है जिसके अभाव में उपन्यास की सर्जना नहीं हो सकती। कथानक में वर्णित घटनाओं में परस्पर सम्बद्धता अनिवार्य है। अन्य तत्वों के अभाव में तो उपन्यास की रचना संभव हो सकती है किन्तु कथानक का किसी न किसी मात्रा में या रूप में उपस्थित रहना अनिवार्य है। कथानक की इसी अनिवार्य स्थिति पर दृष्टिपात करते हुए विद्वानों ने उसे उपन्यास की रचना का मूल आधार माना है। एडविन म्योर उपन्यास-कला में प्रयुक्त होने वाले शब्दों में कथानक को

को ही सर्वमान्य और अधिक स्पष्ट मानता है[१३]। यह स्वाभाविक भी प्रतीत होता है, क्योंकि उपन्यास या कथा का सम्पूर्ण ढांचा कथानक के आधार पर ही खड़ा होता है। श्रृंखलाबद्ध घटनाएं और वह आधार जिसके माध्यम से वे सम्मिलित की जाती हैं, कथानक है।

इस प्रकार कथानककी उपरोक्त परिभाषाओं को देखते हुए उपन्यास के लिए उसकी अनिवार्यता निर्विवाद रूप से आवश्यक सिद्ध हो जाती है। कथा-वस्तु की प्रधानता को लेकर प्राय: सभी आलोचक एक मत हैं। फारस्टर उपन्यास में कथानक का होना आवश्यक मानता है[१४]। रिचार्ड स्टैंग ने भी यह स्वीकार किया है कि उपन्यास या गल्प का प्रमुख अंग कहानी कहने की कला से संबंधित है[१५]। कथानक उपन्यास का प्राणतत्व है। जिस प्रकार यह जान सकना कठिन है कि प्राण शरीर के किस अवयव विशेष में अवस्थित है, उसी प्रकार उपन्यास के कथानक की ओर संकेत करना दुष्कर है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि कथानक सम्पूर्ण उपन्यास में व्याप्त रहता है। हीगराथ कथानक को एक कल्पना के रूप में स्वीकार करता है। उसके अनुसार उपन्यास का कथानक एक कल्पना, घटनाओं की एक ऐसी कृत्रिम व्यवस्था है जो पाठक की अभिरुचि अन्त तक बनाये रखती है, जब कि कहानी केवल तथ्य पर आधारित घटनाओं के युक्तियुक्त क्रम से पूर्ण गद्यात्मक कथन मात्र है[१६]। अरस्तू ने त्रासदी में कथानक की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि त्रासदी किसी क्रिया का अनुकरण है और क्रिया का अनुकरण पात्र अपने व्यवहारों और भावों से प्रस्तुत करते हैं। क्रिया का अनुकरण कहानी है: कहानी से आशय है घटनाओं का संघटन या कथानक।

कथानक की परिभाषाओं पर विचार करने पर यह स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि इनमें कथानक को किसी विशिष्ट कहानी या घटनाओं के संगठन रूप में ही स्वीकार किया गया है, किन्तु जैसे - जैसे आज उपन्यास-कला विकसित हो गई है वैसे - वैसे उपन्यास सम्बन्धी सभी अवधारणाओं में विशिष्टता आती गई है। लेखक के विचार से आज कथानक कहानी या घटना-संगठन मात्र नहीं रह गया है, अपितु सूक्ष्म विवेचन के कारण एक विशिष्ट पारिभाषिक शब्द

बन गया है। जिसकी बहुविध रूपों में व्याख्या की गई है। अब कथानक घटनाओं का संगठन - मात्र न हो कर घटनाओं के मध्य वह सूत्र-विशेष है जो घटनाओं को सुव्यवस्थित रूप में संयोजित कर के उपन्यास - रचना का मूल आधार बनता है। अतएव हम कह सकते हैं कि उपन्यास के विविध तत्वों में सर्वप्रमुख कथानक वह है, जो उपन्यास की रचना का मूल आधार होता है। इसके अन्तर्गत् वे समस्त घटनायें और सूत्र आ जाते हैं, जिनसे उपन्यास की रचना होती है। कथानक की घटनायें यथार्थ घटनाओं की प्रतिकृति नहीं होती, उनकी संयोजना कला के स्वनिर्मित विधान के अनुसार होती है, कथानक के दैवदानव और अतिप्राकृत तथा अप्राकृत घटनाओं से भी निर्मित होते हैं। शर्त केवल यह है कि उनका निर्माण परम्परा द्वारा स्वीकृत विधान के अनुसार हो।

विश्वसनीयता - कथा में विश्वसनीयता ही सत्य की कसौटी है। उस सत्य घटना से जिसकी संभावना का विश्वास नहीं जमाया जा सका, वह असंभव अथवा असत्य कहीं अधिक उपयोगी है जिसे विश्वसनीय बना कर कहा गया है। कथानक में विश्वास जमाने का गुण होना चाहिए, कथाकार एक सिद्ध मिथ्यावादी होता है। एक विद्वान का अभिमत है कि घटनाओं के अभाव में भी कथानक का अस्तित्व बना रह सकता है। स्थूल रूप से कथानक के लिए घटनाओं का अस्तित्व आवश्यक प्रतीत होता है, किन्तु यदि सूक्ष्मता पूर्वक विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि कथानक के अस्तित्व के लिए भाव, विचार या एक स्थिति विशेष भी यथेष्ट समझी जाती है। अर्थात् कथानक वह तन्तु विशेष है जो उपन्यास में घटना, स्थिति, चरित्र, वातावरण, भाव या विचार में स्थूल या सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है और अन्य तत्वों के समानुपातिक योगदान में सन्तुलन एवं सामंजस्य बनाये रखता है। "कथानक में शाख या पात्रों की कोई कैद नहीं है। पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस कथानक का सीधा संबंध केन्द्रीय भाव से हो। किसी शाख का विस्तार या अनावश्यक (केन्द्रीय भाव की दृष्टि से) घटना-वर्णन कहानी को कमजोर बनाता है[१७]।" कथानक में केवल उन्हीं घटनाओं को नियोजित करना चाहिए जो उपन्यास के कथ्य के विकास की दृष्टि से आवश्यक हों। निरर्थक

घटनाओं से कथानक की कलात्मकता नष्ट हो जाती है तथा विश्वसनीयता को भी आघात पहुंचता है। कथानक का कार्य की श्रृंखला है जो उस कार्य के करने वाले पात्रों से सम्बद्ध होती है - " द प्लाट इज द चैन आव ऐक्शन, लिंक्ड बाई टिपिकल ह्यूमन बीइंग्स हू परफार्म द ऐक्शन्स "[८]। डा० परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार " कथानक घटनाओं का व्यर्थ संग्रह नहीं है, न ही वह घटनाओं का कालक्रमानुसार किया हुआ निर्वाह है, बल्कि वह घटनाओं के बीच का एक सूक्ष्म आभ्यन्तर संबंध है जो प्रत्येक श्रेष्ठ कलाकृति के रचनात्मक उद्देश्य का आधार तत्व होता है "[९]।

१ - पाणिनि :- अष्टाध्यायी ३.३.१०५

2 - अमरकोष , प्रथम काण्ड, शब्दादि वर्ग पृ० १८

३ - शब्दकल्पद्रुम , द्वितीय भाग पृ० १७

४ - आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्चवार्तिक अष्टाध्यायी , ४.२.६०

५ - दशरूपकम् १-११

६ - वही १-१८

७ - वही १-१६

८ - वही १-२४

९

" We have defined a story as a narrative of events arranged in their time sequence . A plot is also narrative of events, the emphasis falling on casuality. ' The King died and then the queen died, is a story, ' The King died , and then the queen died of grief,' is a plot, the time sequence is presserved, but the sense of casuality overshadows it. Or again: 'The queen died, no one knew why, util it was discovered ~~it~~ was through grief at the death of the king.' This is a plot with a mystery in it, a form capble of high development. It suspends the time-sequence ".

~~XXX~~ E.M. Forster - Aspects of the the Novel Page 93-94.

10. " That is universal and that is why the backbone of a novel has to be a story. "

Ibid - Page 35

" And

No novel could be written without it."

Ibid - 37

11. " Plotting we might, threfore, define as a dexterous

ting curiosity."

Pelham Edgar- The Art of the Novel

12. Every story of course, has three necessary elements: something done, by somebody under some conditions. The things done the transaction is the fable, or when difinitely organised, the , the plot."

H.B. Lathrop- The Art of the Novelest p.66

13. " The most simple form of prose fiction is the story which records a succession of events, generally marvellous. "

Edwin Muir- The structure of the Novel p.17

14. " We shall all agre that the fundamental aspect of the novel is iits story- telling assepct."

E.M. Forster-Aspects of the Novel P. 33

15. " I have always held to the odl fashioned opinion that the primary object of a work of a fiction should be to tell a story."

Richard Sang.- The story of the Novel in England Page. 127

16." A plot for a novel is a contrivance, an artificial arrangement of incidents so contrived as to keep up the reader's interest until the very end, where as a story is, of course, merely the bold statement of p rosaic incidents of facts in their logical sequence."

Basil Hograth- The Technique of Novel Writing P. 49

१७ - कहानी जनवरी १९५६ वर्ष ३ अंक १ में प्रकाशित 'हिन्दी कथा साहित्य की समस्यायें' लेख से उद्धृत पृ० १४ - चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ।

१८ - Phyllis Benetley - The English Regional Novel P.14

१९ - हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - डॉ० परमानंद श्रीवास्तव पृ० ४३-४४

:: कथ्य ::

अर्थ, व्युत्पत्ति एवं आशय :

कथ्य शब्द भी कथानक की ही भाँति संस्कृत की कथ् धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है कहना । कथ् + त्यय = कथ्य अर्थात् जो कहा गया है वही कथ्य है । यह अंग्रेजी के Theme शब्द का पर्यायवाची है जिसका तात्पर्य है विषय-वस्तु । कथ्य शब्द के लिए पहले विषय, संवेद्य, सम्प्रेष्य आदि शब्द प्रचलित थे । कथ्य का अभिप्राय है कि लेखक किस संवेदना से प्रेरित हो कर रचना कर रहा है । अर्थात् रचनाकार की रचना में अन्तर्निहित मूलसंवेदना, जिसको आधार बना कर रचनाकार कथा का विशाल भवन निर्मित करता है । कथ्य ही वह आधार है, जिसके माध्यम से रचनाकार अपने मनोभावों को विभिन्न पात्रों, अनेक घटनाओं और अनेकानेक प्रकार के कथोपकथन के द्वारा कथानक का ताना-बाना बुन कर उपन्यास या कहानी या काव्य का मनोहर प्रसाद खड़ा करता है । दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि कथ्य, कथा और कथानक अथवा कथावस्तु के धरातल के नीचे जल की भाँति निरन्तर प्रवहमान है, जो ऊपर से देखने पर तो धरातल मात्र दृष्टिगत होता है और भीतर भीतर ही अपने वास्तविक रूप में निरन्तर प्रवाहित होता रहता है । इसी तथ्य को इस प्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है कि कथ्य रचना का प्राण है और कथावस्तु अथवा कथानक उसका शरीर । कथ्य में विषय का महत्व होता है और कथानक में पात्रों का । शरीर में जो स्थिति प्राण की होती है वही स्थिति कथानक में कथ्य की होती है । कथानक में कथ्य निहित होता है । जिस प्रकार दूध में मक्खन निहित होता है और मथने पर ही वह प्राप्त होता है उसी प्रकार कथानक के सम्यक् विवेचन के उपरान्त कथ्य का स्वरूप सामने आ जाता है ।

कथ्य या कथनीय (स्टेटमेन्ट) या अभिव्यंजनीय अर्थात् जो कुछ कहा जाने वाला है । वस्तुत: कथ्य वह है जो रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से कहना चाहता है । कथ्य यानि रचना की मूल संवेदना । मूल संवेदना वही होती है जो रचनाकार रचना विशेष के माध्यम से कहना चाहता है । रचनाकार द्वारा कही गई इसी बात को कथ्य कहते हैं, जो कथावस्तु अथवा कथानक का

आवरण अपने चारों ओर इस प्रकार फैलाये हुए रहता है कि उसका सम्पूर्ण शरीर ही उसमें अदृश्य हो जाता है और जो कुछ दृश्यमान रहता है, वही कथानक या कथावस्तु है । कथ्य की अपेक्षा कथानक में विस्तार अधिक होता है । एक हजार पृष्ठ की रचना में जहां कथानक या कथावस्तु सारा का सारा आकार अपने में समेट लेती है, वहां कथ्य मात्र पांच अथवा दस पंक्तियां भी बहुत अधिक कठिनता से अपने लिए उपयोग कर पाता है । वैसे यह अपने आप में बहुत ही मनोरंजक तथा आश्चर्यजनक भी लगता है कि पांच-दस पंक्तियों के अपने कथ्य को प्रभाव शाली ढंग से कहने के लिए रचनाकार को एक हजार पृष्ठ या कभी कभी उससे भी कहीं अधिक लिखने पड़ते हैं, परन्तु रचना की यह प्रक्रिया पृष्ठों में निश्चित नहीं की जा सकती है, क्यों कि कभी कभी कथ्य कुछ इस प्रकार का होता है कि रचनाकार के लिए यह संभव ही नहीं हो पाता कि वह कितने पृष्ठों में उसे कथानक का स्वरूप प्रदान करे कि कथ्य स्पष्ट रूप से प्रभावशाली हो जाये । " साहब बीबी गुलाम ," " इकाई दहाई सैकड़ा " में विमल मित्र और " झूठा सच " में यशपाल तथा " सोना और खून " में चतुरसेन शास्त्री को अपने कथ्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान करने के निमित्त पृष्ठों की वृहद् संख्या का आश्रय ग्रहण करना पड़ा है, जब कि " सूरज का सातवां घोड़ा " में धर्मवीर भारती और " आदमी का बच्चा " में कृष्ण चन्द्र शर्मा "भिक्खु "," अपने अपने अजनबी " में अज्ञेय " अपने खिलौने " में भगवती चरण वर्मा तथा " सीमा के पार " में आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र को अधिक पृष्ठों का उपयोग करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई । आर्नाल्ड बैनेट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक " दी मैकिंग आफ लिटरेचर " में उपन्यास के लिए कथ्य की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि कथ्य वही है जो दस शब्दों में व्यक्त किया जा सके[1] ।

कथ्य को content भी कहते हैं जिसका तात्पर्य जीवन की अनुभूतियों से होता है । जीवन के प्रति लेखकीय दृष्टिकोण का नाम कथ्य है और जब ऐसी जीवनी दृष्टि को लेखक अभिव्यक्ति देने के लिए योग्य मानता है तभी वह कथ्य बनती है । ऐसी कथ्यात्मक जीवनी दृष्टि के शारीरिक अवयव का नाम ही कथानक है । जो सम्बन्ध शरीर व आत्मा का है वही कथानक और कथ्य का है । बिना कथानक के कथ्य की अभिव्यक्ति संभव नहीं है और बिना कथ्यात्मक जीवनी दृष्टि के

कथानक का कोई अर्थ नहीं । वस्तुत: साहित्य जीवन से सीख कर जीवन को सिखाने के लिए ही होता है । जिस लेखक के पास जीवन दृष्टि जितनी प्रकार की होगी वह जीवन के नाना रंगों को उतनी ही तीव्रगति से ग्रहण करेगा और यथार्थ के रूप में प्रकट करेगा । जैसे फोटोग्राफर कैमरे में सीधे आदमी को ग्रहण करता है और वह जो सीधा अनुभव है वह फोटोग्राफर की प्लेट पर उलट जाता है फिर भी चित्र सीधा देता है क्यों कि वह एक प्रक्रिया है जिसमें चीजों को उलट-पुलट कर ही प्रस्तुतीकरण होता है । जिसके पास प्रक्रिया नहीं होती उसके कथानक, पात्र चरित्र निकम्मे होंगे । प्रक्रिया की आवश्यकता इस लिए है कि वह प्रक्रिया जो मनुष्य के भीतरी व्यक्तित्व को सामने लाने के लिए वह अपनी प्रक्रिया में से उस मनुष्य के बाहरी स्वरूप को तोड़ देता है तब देवत्व, पशुत्व सामने आता है । यही कथानक है । वह अपने पात्र चरित्र को विभिन्न परिस्थितियों से गुजारता है । कथानक साहित्य का प्रक्रिया स्वरूप है । साहित्य या रचना का प्रभाव उस रचना की समाप्ति पर हम पर होता है, क्यों कि पात्र हम तक तब पहुंचता है जब रचना की समाप्ति होती है, तभी पात्र हममें पूर्ण रूप में प्रस्तुत होता है । साधारण कोटि की रचना के पात्र, पुस्तक की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाते हैं जब कि महान रचना के पात्र पुस्तक की समाप्ति के बाद आरंभ होते हैं । इससे भी साहित्य की एक उच्च कोटि है कि हम बार बार उन चरित्रों के सम्पर्क में आना चाहते हैं । महान रचनायें जिज्ञासा को पूरी कर देती हैं फिर भी हम उसे पढ़ना चाहते हैं जैसे रामायण । इसका कारण यह है कि जिस जीवनी दृष्टि पर रामायण की रचना हुई है वह उच्च कोटि का धरातल है साहित्य का धरातल निम्नकोटि का है । रामायण जैसी पुस्तकों की समाप्ति पर हमें उदान्त दृष्टि आरंभ होती है । जिस लेखक में उदान्त दृष्टि की जितनी झलक होती है वह उतना ही महान होता है । उदाहरणार्थ " गोदान " में प्रेम चन्द की उदान्त दृष्टि होरी के चरित्र निर्धारण में बहुत ही उच्च कोटि की है । जिस साहित्य में जितनी अधिक जीवनी दृष्टि, भाव-बोध या प्रधान चेतना होगी वह उतनी ही दूरी तक देश-काल का भेदन करेगी ।

मनुष्य, शरीर व आत्मन उसी प्रकार रचना में कथानक और कथ्य होता है। कथानक देशकाल में सीमित होगा कथ्यात्मकता देशकालातीत होगी। कथानक की परिसमाप्ति अवश्यंभावी है। हीरो का घटनात्मक पक्ष बीत जाने पर भी उसकी जीवनी दृष्टि नहीं बीती, वह हमें बार-बार सालती है। कथानक अभिव्यक्ति का निमित्त मात्र है। कथ्य को वहन करने वाला कथानक ही है फिर भी कथानक को ही समाप्त होना पड़ता है। कथ्य को नहीं। यही जीवनी दृष्टि कथ्य है। रचनाकार जीवन में जो कुछ देखता है व अनुभव करता है वही उसकी रचना में कथ्य बनती है। रचनाकार की यह अनुभूति जितनी तीव्र होगी उसकी रचना भी उतनी ही आकर्षक होगी [२]।

अत: उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि किसी रचना में चाहे वह उपन्यास हो या कहानी अथवा कविता रचनाकार का उसमें अभिव्यक्त अनुभव ही उसका कथ्य है [३]। जिस अनुभव-खण्ड से प्रेरित हो कर उपन्यासकार अथवा कोई भी रचनाकार रचना-कर्म में प्रवृत्त होता है वही उसका कथ्य है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों अथवा कहानियों में कथ्य ही अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है [४]। उसकी महत्ता आनुपातिक रूप में सब से ऊपर है [५]। कथ्य ही किसी भी रचना का प्राण होता है, वही सब कुछ है। यह कथ्य ही कला का सार है, शेष सब कुछ उसका बाह्य आवरण मात्र है। कथ्य रचना में निहित रहता है। रचनाकार ने अपनी कलाकृति में जो कुछ भी कहा है उसके अतिरिक्त कुछ भी उसका कथ्य नहीं है [६]।

हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार अज्ञेय ने कवि की आत्मा के सत्य को ही उसका कथ्य माना है। यह सत्य व्यापक होना चाहिए क्योंकि सत्य जितना ही अधिक व्यापक होगा रचना उतनी ही उच्चकोटि की होगी [७]।

यदि पारिभाषिक शब्दावली में कथ्य का विवेचन करें तो हम कह सकते हैं कि जो सिद्धान्त या विचार उपन्यासकार के दिमाग में आया जिसे वह अपने पाठकों को समझाना चाहता है वही कथ्य है [८]। अथवा हम इस प्रकार कह सकते हैं कि जो कुछ कथाकार अपने सन्देश या निष्कर्ष रूप में कहना चाहे वही कथ्य है। प्रत्येक श्रेष्ठ उपन्यासकार अपने उपन्यासों में अपनी अनुभूत भावनाओं,

क्रियाकलापों, विचारों तथा अध्ययन अर्जित दृष्टिकोण को किसी न किसी रूप में उड़ेलने का प्रयास करता है, वही उसका कथ्य है। श्री अमृत राय ने कथ्य को रचनाकार का अन्तर्बाह्य जीवन के सन्दर्भ में अनुभूत निजी सत्य स्वीकार किया है जिसे वह पाठकों से कहना चाहता है - " लेखक अपने जीवन - अनुभव और अपने मनन- चिन्तन के माध्यम से अन्तर्बाह्य जीवन के सन्दर्भ में अपने निजी सत्य के रूप में जो कुछ उपलब्ध करता है वह उसे दूसरे से कहना भी चाहता है और यथाशक्ति कहता भी है वही उसका कथ्य या वक्तव्य है[९]। "

हिन्दी साहित्य कोश में " थीम " को संवाद, सम्भाषण, प्रवचन का विषय, आधारभूत कार्य या चेष्टा कहा गया है - " संवाद, संभाषण, प्रवचन का विषय, आधारभूत कार्य या चेष्टा अथवा वह सामान्य प्रकरण या विषय, जिसे कथा-विशेष के द्वारा उदाहृत किया गया हो। हिन्दी में थीम को कथा-सूत्र कहते हैं "[१०]।

हिन्दी साहित्य कोश भाग-१ में ही एक अन्य स्थान पर थीम (कथ्य) को इस प्रकार परिभाषित किया गया है - " उपन्यास जिस मुख्य विचार, दृष्टिकोण, आधारभूत कार्य या विषय विशेष पर अवलम्बित होता है, उसी को उसका कथा-सूत्र या थीम कहते हैं "[११]।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक समीक्षा-शास्त्र में डा० सीताराम चतुर्वेदी ने थीम की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत किया है - " कथासूत्र उस मुख्य विचार या किसी क्रिया का आधार भूत कार्य या कोई विशेष विषय होता है जिसका कथा में कोई विशेष वर्णन हो "[१२]।

थीम या कथासूत्र अथवा कथ्य को विषय, विचार या दृष्टिकोण का समानार्थी स्वीकार करते हुए प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक आर०ए० स्काट जेम्स ने इसे उत्कृष्ट साहित्य का सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण तत्व माना है[१३]। पर्सी लुब्बक उपन्यास-शिल्प को गौण तथा कथ्य या दृष्टिकोण को मुख्य मानते हुए लिखा

है -" उपन्यास। कथा की शिल्पविधि अथवा कारीगरी की जटिलता का निर्धारण मूलतः कथाकार के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। कथाकार का कथा के साथ जो दृष्टिकोणात्मक संबंध होता है, वही उपन्यास का शिल्प निर्धारित करता है।[१८] तात्पर्य यह है कि कथा ही वह प्रमुख तत्व है जो किसी भी उपन्यास, कहानी अथवा अन्य साहित्य-रूपों को आकार प्रदान करता है।

हेनरी जेम्स ने भी कथ्य को विषय, विचार या उपन्यास का आधारभूत कार्य ही स्वीकार किया है जिसे कहानी अभिव्यक्त करती है।[१९]

सी०र्ड० डब्लू०एच० डाल्सट्राम ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "द एनालिसिस आव लिटरेरी सिचुएशन" में थीम यानी कथ्य को पाँच भागों (१) भौतिक, अर्थात् ब्यूलाणु (मालीक्यूल) के रूप में मानव, (२) अंगीय (आर्गेनिक) अर्थात् पुरलपिंड (प्रोटोप्लाज्म) के रूप में मानव, (३) सामाजिक, अर्थात् सामाजिक प्राणी के रूप में मानव, (४) अकंमूल, अर्थात् व्यक्ति विरूप में मानव तथा (५) दैवी, अर्थात् आत्मा के रूप में मानव, में विभाजित करते हुए उसे विशा निर्देशक विचार, अभिप्राय या तात्पर्य, उपदेश या शिक्षा और निश्चली झलकता है।[२०]

जोसेफ टी० शिप्ले ने अपनी प्रसिद्ध शब्दकोश" डिक्शनरी आव वर्ल्ड लिटरेचर" में थीम को भाषण का विषय, आधारभूत कार्य, या वह सामान्य विषय कहा है कथा जिसका दृश्य प्रस्तुत करती है।[२१] एक अन्य आलोचक का कहना है कि कथ्य (थीम) जीवन का वह अंश है जिसे लेखक पृथक रूप से अभिव्यक्त करना चाहता है -" द थीम इज द पैसेज आव द लाइफ द राइटर विशेज टु इल्यूमिनेट।"

अस्तु निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कथ्य रचना का प्राण है। कथानक तो उसका शरीर है, उसकी आत्मा तो सत्य और अनुभूति का वह कण है जो उसके मूल में है। यह किसी भी कथात्मक कृति का केन्द्रीय भाव है, जो कहानी का प्राण है। "यह आवश्यक है कि एक कहानी में केवल एक ही केन्द्रीय भाव हो, एक से अधिक नहीं। और इसी भाव को केन्द्र बना कर उसके इर्द-गिर्द कहानी की इमारत खड़ी की जाय"।[२२] कथ्य ही वह मूलाधार है जिस पर उपन्यास का महल खड़ा होता है।

१- Every Novel should have a main theme that can be stated in ten words.

Arnold Bennet- The making of literature p.244

२- '' हम जीवन में जो कुछ देखते हैं, या जो कुछ हम पर गुजरती है, वही अनुभव और वही चोटें कल्पना में पहुँच कर साहित्य - सृजन की प्रेरणा करती है। कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दर्जे की होती है।'' (साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचंद पृ०५)

३- '' समवेत स्वर में नई कहानी कुछ नहीं कहती, ... वह जिस अनुभव - खण्ड को उठाती है, वह अनुभव ही उसका कथ्य है........ और जितनी कहानियाँ है, उतने ही कथ्य है।''

(नई कहानी की भूमिका- कमलेश्वर पृ०१३३)

४ - '' अब कथ्य ही प्रमुख है, क्योंकि कथ्य का संकेत ही आनुपातिक रूप में अर्थ की सृष्टि करता है।'' (वही पृ०३०)

५ - '' और कथ्य वही है, जिसकी अधिक या कम (यानी आनुपातिक) महत्ता सब के लिए है......... वह सबसे कमोबेश रूप में जुड़ा हुआ है।''

(वही पृ०१७)

६ - '' कवि ने कविता में जो कुछ कहा है, उसके बाहर उसका कुछ कथ्य न है, न होना चाहिए, अगर वह अधिक कुछ कहना आवश्यक पाता है तो अपनी असफलता ही घोषित करता है।''

(आत्मने पद- 'प्रतीकों का महत्व' लेख - अज्ञेय पृ० ४०)

७ - '' कवि का कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है। (यह एक गीता- सी बात है, अतः इसके सत्य होने की संभावना काफी है) यह भी कहना ठीक होगा कि वह सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं है, व्यापक है, और जितना ही

व्यापक है उतना ही आत्यंतिककारी है। किन्तु यदि हम यह मान लेते हैं, तब हम 'व्यक्ति सत्य' और 'व्यापक सत्य' की दो पराकाष्ठाओं के बीच में उसके कई स्तरों की उद्भावना करते हैं, और कवि इन स्तरों में से किसी पर भी हो सकता है ''

(आत्मनेपद -' प्रयोग और प्रेषणीयता' लेखक अज्ञेय पृ०३

८ — इलाचन्द्र जोशी (मौखिक साक्षात्कार में व्यक्त किए इलाचन्द्र जोशी के विचार)

९ — अमृतराय (व्यक्तिगत साक्षात्कार)

१० — हिन्दी साहित्य कोश भाग १ प्रधान सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा पृ०३६४)

११ — '' '' '' '' .... पृ० १५६)

१२ — समीक्षा - शास्त्र - डा० सीताराम चतुर्वेदी पृ० ६८०

१३ — 'Subject- theme-thought-that is the first element in the higher kind of Literature which he (Dante) calls "tragic,' To characterise tit he uses the excelent Latin word. a word most expressive , as some have thought, of the essential quality which appears again and again in the typical achievements of the ancient Rmans- the word gravitas. Gravitas sententice weight of meaning or thought-that is the first condition of a poem that is to be written in the tragic style.'

R.A. Scott James- The Making of Literature P. 106

14. 'The whole intricate question of method in the craft of fiction, I taken to be governed by the question of pint of view, the question of the relation in which the narrator stemds to story.'
Percy Lubbock- The Craft of Fiction. P.251

15. "The story' it represents anything, represents the subject, the idea, the donee of the Novel."

Henary James- The future of the Novel , Essays on the Art of Fiction P.21

16. 'Seeking to distinguish theme from subject, situation, plot, limits it to "guiding idea, moral, lesson, pronouncement."

Joseph T. Shiple- Dictionary of World Literature p.584

17. " The subject of discourse, the underlying action or movem nt; or the general topic, of which the particular story is illustration. "

Ibid-

18. The Englih Regional Novel - Phyllis Bentley -P.14

१९– कहानी जनवरी १९५९ वर्ष ३ अंक १ में प्रकाशित चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के 'हिन्दी कथा साहित्य की समस्यायें' नामक लेख पृ० १४ से उद्धृत

अध्याय - ३

:: कथानक का विकास ::

हिन्दी उपन्यास-जगत में प्रेम चन्द्र-युग तथा प्रेमचन्दोत्तर युग के कथानकों में बहुत व्यापक परिवर्तन दृष्टि गोचर होते हैं। इसके प्रारंभिक और आधुनिक रूप में आकाश - पाताल का अन्तर दिखाई पड़ता है। कथानक के परिवर्तित आधार और गठन सम्बन्धी नवीन प्रयोगों ने इसके विकास की नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। अस्तु कथानक के वैविध्य की आज सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। संभवत: कुछ कथानकों के निर्माण में ऐसे नियमों का पालन किया जाता है जिसके अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि कथानक की रचना अमुक पद्धति पर हुई है।

कथानक की रचना-पद्धति पर विचार करने से पूर्व हमें उसकी उन कतिपय विशेषताओं का अध्ययन कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है जिनका कि कथा-निर्माण में उपन्यासकार को ध्यान देना पड़ता है। ये विशेषतायें निम्न हैं :-

१- <u>कुतूहल</u> : उपन्यास के कथानक में कुतूहल का बहुत महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। कुतूहल से ही रोचकता का सम्बन्ध रहता है। पाठकों में घटना के प्रति जिज्ञासा या कुतूहलवृत्ति का बना रहना सफल तथा पूर्ण कथानक का एक आवश्यक गुण है। उपन्यासकार कथानक को इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि उपन्यास में आद्यन्त कुतूहल तत्व अक्षुण्ण रहे। प्रारंभिक उपन्यासों में कुतूहल उत्पन्न करने के लिए विलक्षण तथा रहस्यमय दृश्यों की योजना की जाती थी। रहस्य कथानक के लिए महत्वपूर्ण है परन्तु वह बुद्धिग्राह्यता से हीन नहीं होना चाहिए। कथानक में आकस्मिकता और अप्रत्याशित को स्थान देने से रोचकता और कौतूहल की सृष्टि होती है। अत: रहस्यात्मकता तथा आकस्मिकता का होना कुतूहल सृष्टि के लिए आवश्यक है[१]। आकस्मिकता से ही नाटकीयता आती है। इस कुतूहल भाव को जागृत करने के लिए उपन्यासकारों ने विविध तर्क सम्मत उपायों का आश्रय लिया है। कभी-कभी उपन्यासकार ने किसी रोचक घटना द्वारा अथवा भविष्य संकेत द्वारा अथवा प्रमुख पात्र को आपत्तिग्रस्त चित्रित कर के पाठकों की जिज्ञासा को उद्भूत करने का प्रयत्न किया है। कभी-कभी वह किसी घटना अथवा पात्र के सम्बन्ध में अर्द्ध सूचना प्रदान कर उपन्यास के किसी अन्य सूत्र को उठा कर कुतूहल की सृष्टि करता

हुआ परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त उपकथानकों के समावेश से भी कथानक में कुतूहल की सृष्टि होती है। उपन्यास में मानव तथा प्रकृति का संघर्ष, मानव तथा नियति का संघर्ष, महान लक्ष्य अथवा किसी लड़की की प्राप्ति के लिए हो रहा दो से अधिक व्यक्तियों के संघर्ष का चित्रण कर के भी कौतूहल उत्पन्न किया जाता है। यह कौतूहल यथार्थ पर आधारित होता है जिससे पाठक इस संघर्ष में अपनी आत्मा का प्रतिबिम्ब पा कर आनन्दानुभूति करता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में उपन्यासकार पात्रों के अंतर व्यवहार के चित्रण में कुतूहल-भाव जागृत करता है।

२- मौलिकता :- मौलिकता कथानक की दूसरी मुख्य विशेषता है। इसका अभिप्राय अनुभूतियों के अभिव्यक्ति का विस्तार और सूक्ष्मता है। प्रत्येक प्रश्न और समस्याओं जिनका कि उपन्यास में समावेश रहता है उनके प्रस्तुतीकरण में उपन्यासकार की मौलिकता दिखाई पड़ती है। उपन्यासकार अपनी मौलिकता द्वारा ही उपन्यास के प्रवाह को सुन्दर गति प्रदान कर पाठकों को उपन्यास की समाप्ति तक उत्सुक एवं आतुर बनाए रख सकता है। कथानक की विषय-वस्तु भी मौलिक होनी चाहिए। अब तक जितने भी उपन्यास पाठकों के समक्ष आए हैं विषय की दृष्टि से उनका सिंहावलोकन कर के हम उन्हें दस-बीस मौलिक समस्याओं के रूप में विभाजित कर सकते हैं। इन्हीं समस्याओं को केन्द्र बनाकर प्रत्येक उपन्यासकार ने अपने - अपने ढंग से अपनी रचनायें प्रस्तुत की है। प्रश्न और समस्याये तो वही रहती हैं किन्तु उनके प्रस्तुतीकरण में उपन्यासकार की मौलिकता दृष्टिगत् होती है। इस दृष्टि से प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन उपन्यास लेखकों ने मनोविज्ञान की सहायता से नवीन विषयों को कथानक का आधार बना कर उनकी अभिव्यक्ति हेतु नवीन शैलियों का जो आविष्कार किया है वह उनके मौलिक चिन्तन शक्ति की परिचायक है।

३- स्वाभाविकता तथा मनोवैज्ञानिकता : कथानक में स्वाभाविकता, सजीवता और मनोवैज्ञानिकता का होना शिल्प की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। स्वाभाविकता का तात्पर्य उपन्यास में वर्णित कथा की विश्वसनीयता से है। उपन्यासमें लेखक जीवन की घटनाओं का अनुकरण कर के सत्य की खोज करता है।

सत्य के अभाव में उपन्यास अस्वाभाविक और भौंड़ा प्रतीत होता है। मानव-चरित्र अलग - अलग परिवेश में किस प्रकार स्वयं परिवर्तित हो जाता है, यही उपन्यास में प्रदर्शित किया जाता है। आधुनिक उपन्यासकार वर्तमान और भूत दोनों परिवेशों का आश्रय लेता है। कुछ काल्पनिक परिवेश में लिखे गए उपन्यास भी हैं और हो सकते हैं। इस प्रकार के उपन्यासों के लिए भी सत्य या स्वाभाविकता आवश्यक है। कथानक-शिल्प की विशेषता इस तथ्य में निहित होती है कि उपन्यास में व्यक्ति के जीवन की कथा इस रूप में प्रस्तुत हो कि वह काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ प्रतीत हो। इसके अतिरिक्त कथानक सहज तथा स्वाभाविक रूप से विकसित हो। उसमें आकस्मिक संयोग के लिए अल्प स्थान होना चाहिए। उपन्यास में वर्णित घटनाएं तथा कथाएं मनोवैज्ञानिक एवं तर्कयुक्त होनी चाहिये। कथानक को स्वतः विकसित तथा गतिशील होना चाहिए। एक घटना से दूसरी घटना का विकास इस प्रकार हो जैसे कली से उसमें अन्तर्निहित पुष्प का स्वतः विकास होता है। इस सम्बंध में रॉबर्ट लिडिल का कहना उपयुक्त है कि कथानक विकास का परिणाम होना चाहिए, हस्तक्षेप का नहीं[2]। उपन्यास का क्षेत्र अनन्त एवं असीमित है। उसमें एक पागल, झक्की, सनकी की कथा भी प्रस्तुत की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में ऐसे ही पात्रों की कुण्ठा अथवा मनःस्थिति का चित्रण होता है। किन्तु यह चित्रण इतना सहज, स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी होना चाहिए कि पाठक विचित्रता के सम्बन्ध में शंकित न हो सके। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि उपन्यास के क्षेत्र से कल्पना बहिष्कृत कर दी गई। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में कल्पना यथार्थ की सहगामिनी हो कर प्रस्तुत होती है। इन उपन्यासों के प्रतीकात्मक स्वप्नों या प्रतीकात्मक कथाओं में कल्पना का प्रसार दिखाई देता है। कल्पना के माध्यम से उपन्यासकार यथार्थ का बोध देता है जिससे उपन्यास सजीव और सशक्त हो उठते हैं।

<u>एकान्वित अथवा सम्बद्धता</u> :- कलात्मक एकत्व की भावना का प्रतिपादन सर्वप्रथम प्लेटो और अरस्तू ने किया था। वे मानते थे कि किसी भी रचना में कार्य और चरित्र (पात्र) एक ही होना चाहिए। विभिन्न प्रकार की रचनाओं को इस सिद्धान्त के साथ समन्वित करने के लिए कई प्रकार के एकत्व का

वर्णन किया गया है जैसे क्रिया का, रूप का और उद्देश्य का एक होना। भारतवर्ष में उद्देश्य की एकान्विति को ही प्रधानता दी गई है। उपन्यास में एक नायक, एक कथा और एक ही कार्य या व्यापार (उद्देश्य) होना चाहिए। जब हम कथानक के ऐक्य की बात करते हैं तो उसका अर्थ होता है कार्य का ऐक्य। अर्थात् कथानक में किसी एक ही कार्य का पूर्ण अनुकरण होना चाहिए। जो कार्य वास्तव में एक ही उसी पर कथानक को आधारित होना चाहिए। किन्तु आधुनिक फ्रायडीय मनोविश्लेषण -वादी उपन्यासकारों ने इस एकान्विति का ध्यान नहीं रखा है। एकान्वित के अतिरिक्त कथानक की प्रत्येक घटना, कथा, दृश्य और प्रसंग आदि को परस्पर सम्बद्ध होना चाहिए। उपन्यासों में मुख्य कथानक के अतिरिक्त उपकथानक तथा प्रासंगिक कथायें भी होती हैं जिनसे विविध प्रयोजनों की सिद्धि होती है। इन उपकथानकों का शिल्प की दृष्टि से तभी महत्व होगा जब वे मुख्य कथानक से सुगठित हों। सुसंगठन के अभाव में कथानक अभीप्सित प्रभाव उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है और रचना विशृंखल हो कर प्रभाव-हीन हो जाती है। सुसंगठन अथवा सम्बद्धता बनाए रखने के लिए उपन्यासकार को कथ्य के आधार पर कहानी की रचना करना चाहिए, जिसमें मानवजीवन की समस्याओं की व्याख्या, मानव-जीवन के विविध पक्षों का मूल्यांकन तथा अनुभूतियों की पूर्ण सफल अभिव्यक्ति समाहित करना आवश्यक है।

<u>मानव-जीवन की समस्याओं का समावेश</u> : उपन्यास के कथानक में मानव-जीवन की समस्याओं का समावेश होना उसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। मानव-जीवन की किसी भी समस्या को कथानक का आधार बनाया जा सकता है। उसमें उसका निदान प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसे कथानकों का सुनियोजन बहुत अच्छे ढंग से किया जाना चाहिए। इस प्रकार के कथानकों के सिंहावलोकन मात्र से पाठक उपन्यासकार का जीवन-दृष्टि का आभास प्राप्त कर लेता है। प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों में कतिपय काल्पनिक कथाओं को चमत्कारिक ढंग से प्रस्तुत किया

जाता था और पाठक उससे मनोरंजन करता था । किन्तु सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनशीलता के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास-पाठक भी पूर्व पाठकों की अपेक्षा अधिक प्रतिभा-सम्पन्न और विचारशील हो गया है । अब वह उपन्यासकारों से मानव-जीवन की किसी समस्या का निदान पाना चाहता है । यदि किसी उपन्यास में सामाजिक समस्याओं को उठाकर उनका निदान नहीं प्रस्तुत किया गया है तो वह महत्वपूर्ण नहीं हो सकता । क्यों कि ज्यों-ज्यों सामाजिक चेतना परिष्कृत होती जाती है और मनुष्य में उसका जागरण होता है, त्यों-त्यों ऐसे सभी माध्यमों का दायित्व भी बढ़ता जाता है, जो मानव-जीवन की समस्याओं की व्याख्या करते हैं । जिनसे उनकी आशा की जाती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के कथानकों में भी मानव-जीवन की समस्याओं का पर्याप्त चित्रण मिलता है । इस कोटि के उपन्यासों में उन कारणों की भी खोज होती है जो इन समस्याओं को उत्पन्न करते हैं और जिनकी जड़ें मनुष्य के अन्तर्मन में निहित होती हैं । यदि उपन्यास के कथानक में अपने युग एवं समाज का प्रतिबिम्ब नहीं होता तो वह सफल उपन्यास नहीं कहा जा सकता । प्रत्येक सफल एवं उत्कृष्ट उपन्यासमें उपन्यासकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि का आश्रय ग्रहण कर समकालीन युग तथा जीवन के सन्दर्भ में मानव-जीवन के विविध पक्षों का आपेक्षित महत्व निर्दिष्ट करता है और उनका सम्पूर्णता के साथ मूल्यांकन करता है । उपन्यास में जीवन के महत्वपूर्ण तथा पतित दोनों ही पक्षों का चित्रण किया जाता है । सफल उपन्यासकार अन्त में जीवन के स्वस्थ मूल्यों का पोषण करता है ।

<u>कथानक की रचना प्रक्रिया :</u> कथानक या घटना-निर्माण करने में ही उपन्यासकार की सब से बड़ी परीक्षा है । यही उसकी निपुणता और श्रेष्ठता की कसौटी है । प्रत्येक उपन्यासकार अपनी कृतियों में नवीनता लाने के लिए नए-नए पात्रों और नई घटनाओं का प्रयोग करना चाहते हैं । यह स्वाभाविक भी है क्यों कि यही एक ऐसी विशेषता है जो उन्हें अपने समकालीन अन्य रचनाकारों से पृथक् कर श्रेष्ठ सिद्ध करती है । कभी कभी इस प्रयोग में कतिपय रचनाकार अपनी कृतियों

अनावश्यक पात्रों और अविश्वसनीय घटनाओं का समावेश कर देते हैं जिनके फलस्वरूप कथानक जटिल हो जाता है। साथ ही पाठकों की उसके प्रति कुतूहल न हो कर अविश्वास होने लगता है। इस लिए प्रत्येक उपन्यासकार को कथानक की रचना करते समय निम्न सिद्धान्त स्मरण रखना चाहिए :-

आवश्यक पात्रों की योजना :- कथानक के रचना-तत्वों में पात्रों का अथवा चरित्र-चित्रण का सर्वाधिक महत्व है। उपन्यास की मुख्य प्रवृत्ति कथा कहने की है[3]। यह कथा किसी व्यक्ति की, समाज सापेक्ष तथा समाज-निरपेक्ष स्थिति से सम्बन्धित हो सकती है। यह उन कुछ घटनाओं का सुनियोजित रूप है जो व्यक्तियों अर्थात् पात्रों से प्रेरित होती है और क्रमश: क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप से पात्रों को पुन: परिचालित करती हैं। पात्र कथात्मक साहित्य का अन्यतम तत्व है। चरित्र वे व्यक्ति है जिनके द्वारा कथा की घटनायें घटती हैं अथवा जो उन घटनाओं से प्रभावित होते हैं। इन्हीं व्यक्तियों के क्रिया-कलाप से कथानक और कथावस्तु का निर्माण होता है। कथा की कल्पना में ही पात्रों की स्थिति निश्चित है[4]। इस प्रकार उपन्यास में व्यक्ति और चरित्र दोनों का अपना-अपना महत्व होता है। उपन्यासकार मानव-जीवन की प्रक्रियाओं का वर्णन करता है जिसके लिए उसे कुछ पात्रों का निर्माण करना पड़ता है। पात्रों की संख्या, सीमा, परिधि, उपन्यास के कथानक और उपन्यासकार के दृष्टिकोण एवं कला पर निर्भर है। कथाकार को यथासंभव अपने उपन्यासों में पात्रों की संख्या कम रखनी चाहिए जिनके कार्य और चरित्र समझने में सुविधा हो तथा निश्चित रूप से कथा को प्रभावित करने में सहायक हों। अनावश्यक पात्रों की योजना से कथानक उलझ जाता है। कथानक के आकार का प्रभाव पात्रोंपर पड़ता है। सीमित तथा अल्पावधि वाले कथानकों में पात्रों की संख्या सीमित होती है किन्तु व्यापक क्षेत्र वाले कथानकों में पात्रों की संख्या अधिक होती है[5]। आधुनिक उपन्यासों में कम पात्रों से जीवन के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है[6]। उनमें केवल आवश्यक चरित्रों की ही योजना की जाती है जिससे कथानक में सौष्ठव एवं प्रभविष्णुता आई है।

<u>कथानक की रचना में घटनाओं का महत्व</u> : कथानक की रचना में घटनाओं का महत्व सर्वमान्य है । प्रत्येक उपन्यास में लेखक कोई न कोई उद्देश्य ले कर चलता है । इसकी पूर्ति के लिए कुछ घटनाओं का निर्माण किया जाता है । घटना क्या है ? चरित्र की व्याख्या । इन घटनाओं के घटित होने में पात्रों की अनिवार्य स्थिति है । उपन्यासकार को कथानक में उन्हीं घटनाओं का नियोजन करना चाहिए जो कथानक और पात्र के चारित्रिक विकास की दृष्टि से आवश्यक हों । अनावश्यक घटनाओं के समावेश से कथानक जटिल हो जाता है तथा पात्रों के चारित्रिक विकास में भी गतिरोध उत्पन्न हो जाता है और इस प्रकार उस रचना-विशेष की विश्वसनीयता पाठक को खटकने लगती है । घटनाओं और पात्रों की विश्वसनीयता, यथार्थता, सजीवता और प्रभावोत्पादकता के लिए देश-काल का यथातथ्य चित्रण आवश्यक होता है । यह तत्व मूलत: कथानक और चरित्र दोनों को एक मात्र प्रभावोत्पादक, सजीव और यथार्थ ढंग से एक साथ, एक रस और एक रूप में प्रकट करने में सहायक होता है । कथानक में घटनाओं का नियोजन-क्रम भी इस प्रकार सुसंगत होना चाहिए कि पाठक को यह प्रतीत हो कि घटनायें निश्चित रूप से इसी क्रम से ही घटित हो सकती हैं । एक घटना से दूसरी घटना उत्पन्न होती है और इस तरह घटनायें शृंखलाबद्ध होकर कथानक का निर्माण करती हैं ।

<u>घटना-नियोजन में उलझाव</u> : कथानक की इस रचना-प्रक्रिया में कुछ रचनाकार एक घटना को क्रम से प्रस्तुत करते हैं, उन्हें धीरे धीरे उलझाते हैं और धीरे-धीरे खोलते या समझाते हैं । कुछ रचनाकार प्रथमत: सम्पूर्ण घटनाओं को उलझाकर प्रस्तुत कर देते हैं फिर धीरे-धीरे खोलते हैं। और तीसरे प्रकार के रचनाकार कुछ ऐसे हैं जो घटनाओं को अलग-अलग धाराओं में ले चलते हैं और सहसा उन्हें अत्यन्त आकस्मिक रूप में उलझाकर या तो छोड़ देते हैं कि पाठक अपना परिणाम निकालें और अपने ढंग से उनका मानसिक समाधान करें या उसे स्वयं सुलझा देते हैं । कुछ लोग घटनाओं कोआद्यन्त उलझाते चलते हैं और एकाएक कोई आश्चर्यजनक घटना लाकर उसे सुलझा देते हैं । पांचवीं विधि में रचनाकार कथा को तो सरलतापूर्वक चलाता रहता है किन्तु उसका परिणाम इतना उलझाते हुए धीरे-धीरे खोलता है कि पाठक उसके परिणाम की प्रतीक्षा व्याकुल हो कर करता है ।

तात्पर्य यह है कि सुन्दर कथानक के लिए स्वाभाविक कहानी और उसमें उलझाव का होना अत्यावश्यक है। कथानक - रचना के इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त दो सिद्धान्त ऐसे हैं जो सर्वाधिक सफल और सुन्दर माने गए हैं -

१- कथा की धारा में ऐसे मिलों एवं बाधाओं का समावेश करना चाहिए जिससे प्रभावित हो कर कथा बार-बार लौटकर वहीं पहुंच जाय जहां से प्रारंभ हुई हो और अन्त में किसी विशेष घटना के माध्यम से उसका निर्वहण किया जाय।

२- कथा में पात्रों की मनोवृत्तियों के कारण ऐसी अनिश्चितता उत्पन्न कर देनी चाहिए कि पाठक के मन में परिणाम के प्रति व्यग्रता उत्पन्न हो जाय। वह निरन्तर यह जानने के लिए उत्कण्ठित रहे कि आगे क्या होने वाला है।

इन्हीं रचना-शिल्पों में इधर कुछ नवीन प्रयोग भी दृष्टिगत होते हैं -

१- एक ही स्थान पर सम्पूर्ण उपन्यास की घटनायें दिखाई जायं।

२- कतिपय उपन्यासकारों ने भौतिक या प्रत्यक्ष घटना तो एक ही रखी है किन्तु मानसिक द्वन्द्वों में इतनी विभिन्नता उत्पन्न कर दी है कि इन्हीं के कारण परिणाम अनिश्चित हो जाता है।

३- कुछ सशक्त कथाकार अपने बौद्धिक-चातुर्य से अत्यन्त असंगत, असंभव तथा अस्वाभाविक घटना को भी संगत,संभव और स्वाभाविक कर देते हैं और पाठकों को विस्मय उत्पन्न हो जाता है।

<u>घटनाओं का क्रमिक गुम्फन</u> : कथानक में घटनाक्रम के गुम्फन का भी महत्व आवश्यक है। कुछ रचनाकार साधारण तिथि-क्रम से या घटना के अस्तित्व-क्रम से कथानक की रचना करते हैं, किन्तु यह शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं होता। इसी लिए शिल्प-शास्त्रियों ने यह कहा कि कथा कहीं बीच से आरंभ की जानी चाहिए और फिर उससे पूर्व की घटना विशेष प्रसंग के द्वारा उपस्थित कर देनी चाहिए। कथानक की इसी रचना-पद्धति को फ्लैश बैक पद्धति की संज्ञा दी गई है जिसका विवेचन प्रस्तुतीकरण-शिल्प में प्रस्तुत किया जायेगा। इसी प्रकार कुछ उपन्यासकार अन्त से कथा को उठा कर प्रारंभ तक लाते हैं। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में इस विधि का पर्याप्त

प्रयोग हुआ है । कथानक में घटनाओं के गुम्फन में निम्न सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिए -

१- कथानक के निर्माण में अनावश्यक, असंगत एवं असम्बद्ध घटनाओं का बहिष्कार करना चाहिए ।

२- कथा-वस्तु को अनावश्यक रूप से जटिल नहीं बनानी चाहिए ।

३- आकस्मिक घटनाओं को इस ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए कि कथा की प्रकृति के अनुसार वे अविश्वसनीय न प्रतीत हों ।

४- कम घटनायें ही इस क्रम से चलानी चाहिए कि अन्त तक कुतूहल बना रहे ।

५- कौतूहल - निर्वाह ही घटना-गुम्फन-शिल्प की कसौटी है ।

<u>यथार्थवादी उपन्यासों में घटना-नियोजन -</u>

६- यथार्थवादी उपन्यासकार जो जीवन का यथातथ्य चित्रण करना चाहता है उसे अपने उपन्यास के कथानक में ऐसी घटनायें नहीं उपस्थित करनी चाहिए जो असाधारण स्वरूप या विचित्र जान पड़ें । क्योंकि उसका लक्ष्य मनोरंजन अथवा हृदयस्पर्शी कथा कहना नहीं है, बल्कि घटनाओं के गंभीर और गुप्त रहस्यों को खोजने और समझने के लिए बाध्य करना होता है । साहसिक घटनाओं के सृजन द्वारा रोचकतापूर्ण ढंग से पाठक की उत्सुकता को अन्त तक बनाए रखने की अपेक्षा वह पात्रों को उनके जीवन के विशिष्ट क्षणों पर लेकर स्वाभाविक संक्रमण द्वारा आगे आने वाली कालावधि की ओर ले चलता है । इस प्रकार वह हमें यह दिखा सकेगा कि किस प्रकार चरित्र अपने चतुर्दिक के वातावरण से प्रभावित, परिवर्तित होता है, किस प्रकार भावनायें, आकांक्षायें विकसित होती हैं, कैसे लोग प्रेम और घृणा करते हैं तथा सामाजिक दशाओं में क्या संघर्ष हो रहे हैं[७] ।

पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने विश्व के सम्पूर्ण कथासाहित्य को निम्न पांच रचना-पद्धतियों पर आधारित माना है[८] । जिससे कथानक की रचना-पद्धति पर प्रकाश पड़ता है -

१- नायक-केन्द्र-रीति २- घटना-चक्र-रीति ३- मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति-रीति ४- कुतूहल-निर्मिति-रीति ५- दृश्यानुकूल-रीति ।

१- <u>नायक केन्द्र-रीति</u> : इस रीति में कथा का केन्द्र नायक होता है। उसी पर सम्पूर्ण कथा अवलम्बित होती है। इसमें घटनायें इस क्रम से सम्मिलित की जाती हैं कि प्रत्येक अगली घटना नायक या नायिका के किसी कार्य, विचार या कथन के माध्यम से व्यक्त होती चले और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नायक या नायिका का महत्व उस घटना में पाठकों को विदित होता रहे। इस प्रकार के कथानकों का आधार पौराणिक और ऐतिहासिक होता है। किन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग में अब यह सीमा टूट चुकी है। अतः अब इस रीति पर कथानक की रचना नहीं होती।

२- <u>घटनाचक्र-रीति</u> : कथानक निर्माण की इस प्रणाली के अन्तर्गत घटनाओं के क्रम और प्रकार इस ढंग से जोड़े जाते हैं कि उन घटनाओं के चक्र में पड़ा हुआ व्यक्ति घटना-प्रवाह में उलझ जाता है, उसमें बह जाता है और उसके विरुद्ध तैर कर अपने व्यक्तित्व और चरित्र की अभिव्यक्ति करता है। शिल्प की दृष्टि से ऐसी कथायें श्रेष्ठ मानी जाती हैं। इस रीति में रचित कथानक में चरित्रों की गुणात्मक अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त अवसर रहता है और कौतूहल-वृष्टि के लिए पर्याप्त क्षेत्र भी मिल जाता है। ऐसी कथा-वस्तु में घटनाओं का क्रम इस प्रकार रखना चाहिए कि कथा-प्रवाह में ऐसी स्वाभाविक तथा अनिवार्य बाधायें उत्पन्न हो जायं जिनसे कथानक का प्रवाह फिर कहाँ का कहाँ पहुंच जाय और निर्वहण या फलागम इस अद्भुत ढंग से हो कि पाठक उसकी कल्पना भी न कर सके हों। बाधा उत्पन्न करने वाले ये तत्व अनेक हो सकते हैं जैसे विरोधी व्यक्तियों का समावेश, पात्रों की वर्तमान परिस्थितियां, असमान स्थितियाँ एवं वातावरण का समावेश। चरित्रों की अपनी व्यक्तिगत सीमा भी बाधा उत्पन्न कर सकती है। जैसे आलसी स्वभाव समय का पाबन्द न होना, तथा कार्य को टाल जाने का स्वभाव, भावनाओं अथवा मनोवृत्तियों के संघर्ष का कारण बनता है। कभी कभी नियति की प्रतिकूलता के कारण आंधी का आना, कार का उलट जाना, पुल टूट जाना या दुर्घटना-ग्रस्त हो जाना आदि दैवयोग भी बाधक बन जाता है।

३- मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति-रीति : प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के सर्वाधिक कथानकों की रचना इसी प्रणाली पर की गई है। मनोवैज्ञानिक-अभिव्यक्ति-रीति से केवल उन्हीं कथानकों की रचना की जाती है जो व्यक्तियों की मानसिक भावनाओं, द्वन्द्वों एवं घात-प्रतिघात पर आधारित होते हैं। इस रीति से कथानक की रचना करने में उपन्यासकार को तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है -(क) पात्रों के गुण, शील, पद मर्यादा और रूढ़ि से प्रतिकूल कोई कार्य न हो (ख) सब का व्यवहार और कथोपकथन अत्यन्त स्वाभाविक परिस्थिति के अनुकूल हों (ग) प्रत्येक घटना का पूर्वापर सम्बन्ध अत्यन्त क्रमिक, संगत और पूर्व की घटना का स्वाभाविक तथा अनिवार्य परिणाम हो।

४- कुतूहल-निर्वाह-रीति : कथानक निर्माणकर्त्ताओं ने इस विधि का प्रयोग प्रायः सभी कथाकारों ने किया है, विशेषतः कहानियों में यह अधिक दिखाई पड़ती है। ऐसी कथानकों में संभव, असंभव, अद्भुत तथा अप्रत्याशित घटनाओं का एक ढांचा खड़ा कर के ऐसा क्रम बांधा जाता है कि आद्यन्त कुतूहल बना रहता है। उदाहरणार्थ एक नायिका को कोई खलनायक आ कर नायक के कमरे से उठा ले जाता है, उसे वश में करने के लिए अनेक प्रयत्न करता है, असफल होने पर अनेक यातनायें देता है। इसी बीच वह किसी चातुर्य से निकल भागती है किन्तु किसी और दुष्ट व्यक्ति के हाथ पड़ जाती है। वहां से भी बचकर निकलती है तो वनस्थली या मरुस्थल में पहुंच जाती है, जहां वह पुनः खलनायक के फन्दे में फंस जाती है किन्तु सहसा एक नदी पार करते हुए पुल पर नायक से भेंट हो जाती है। नायक-प्रतिनायक में संघर्ष होता है और दोनों लड़ते-लड़ते नदी में गिरने तक की अवस्था में पहुंच जाते हैं। इस प्रकार पाठकों या दर्शकों का कुतूहल और उनकी उत्सुकता चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाती है। नायिका की चीत्कार से यह कुतूहल और भी आवेगमय बन जाता है और फिर खलनायक एकाएक नदी में गिर पड़ता है, नायक-नायिका का मिलन होता है, दर्शक सन्तोष की सांस लेते हैं। किन्तु इस प्रकार की कथावस्तु का कलात्मक दृष्टि से कोई महत्व नहीं रह गया है। यह कथानक निर्माण की सब से सरल या निम्न कोटि की विधि है[६]। अब इस विधि का प्रयोग नहीं होता।

५- <u>दृश्यानुकूल-रीति</u> : इस रीति में उपन्यासकार दृश्य के अनुसार घटनाओं का क्रम बांधता है। इसका प्रयोग ऐसे कथानक की रचना में किया जाता है जहां एक ही दृश्य में पूरी कथा प्रदर्शित करने की योजना हो। आज तक विश्व में ऐसे बहुत से उपन्यासों की रचना हुई है जो समूचे एक ही दृश्य पर आधारित है। इस प्रकार के कथानक में विभिन्न प्रकार की घटनाओं का समायोजन एक ही स्थल पर करना होता है। इस लिए यह बहुत ही कष्टसाध्य विधि है। ऐसे कथानक की रचना में बहुत बड़ी कुशलता अपेक्षित होती है।

आधुनिक उपन्यासों का शिल्प अपने पूर्ववर्ती शिल्प से आधार और गठन सम्बन्धी नए-नए प्रयोगों के कारण पर्याप्त भिन्न हो गया है। इन नवीन शिल्पगत प्रयोगों के परिणाम से कथानक के स्वरूप-विकास की नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ है जिनके विवेचन से इन उपन्यासों के कथानक-निर्माण सम्बन्धी विशेषताओं पर प्रकाश पड़ेगा। आधुनिक उपन्यासकारों ने विषय एवं परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही साथ कथा को अभिव्यक्त करने का ढंग भी बदल दिया है। यह परिवर्तन एवं विकास प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मनोविज्ञान के प्रवेश के परिणाम स्वरूप हुआ है। कथानक के इस प्रस्तुतीकरण का नवीन विधियों पर विचार करने से पूर्व उसके विकास पर दृष्टिपात क करना आवश्यक है जिनकी प्रेरणा के फलस्वरूप प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासों का कथानक अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों के कथानकों से भिन्न, सुगठित एवं सुव्यवस्थित कलेवर प्राप्त कर सका है।

<u>कथानक का विकास</u> :- हिन्दी उपन्यासकार जहां उपन्यास के प्रणयन की ओर प्रखर गति से अग्रसरित हुआ, वहां उसने उपन्यास-शिल्प की ओर भी ध्यान दिया है। हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में जिस कथानक-शिल्प के निर्माण का प्रयत्न हुआ था आज वह विकास की ओर उन्मुख हुआ है। इस विकास-क्रम में सर्वप्रथम कथानक के आधार, गठन एवं महत्व से सम्बन्धित प्रवृत्तियों का अध्ययन आवश्यक है। इन तीनों ही दृष्टियों से कथानक का महत्वपूर्ण विकास हुआ है। कथानक का आधार, आधार की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास असंभव से संभव और पुन: संभव से वास्तविक आधार की ओर बढ़ा है। हिन्दी के प्रारंभिक तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों में कथा का (एक मात्र) आधार कौतूहल-सृष्टि और मनोरंजन था जिसके

लिए कथानकों में असंभव, आश्चर्य जनक और कुतूहलपूर्ण घटनाओं का वर्णन बहुत विस्तार
से किया जाता था । कुतूहल-पूर्ण, विस्मयकारक और नाटकीय घटनाओं के माध्यम
से इन उपन्यासों के कथानक रोचक तो प्रतीत होते हैं किन्तु वे किसी जीवन-सत्य का
उद्घाटन और विश्लेषण नहीं करते । पाठक इन असंभव और काल्पनिक घटनाओं के
इन्द्रजाल में फंसा रहता है, उसमें से निकलने के बजाय स्वयं को इन अन्धेरे तहखानों
और चक्करदार गलियों में खुला देने में सन्तोष का अनुभव करता है, कथानक की
असंभाव्यता उसे खटकती तक नहीं, इस काल के उपन्यासकारों का ध्यान कथानक में
विश्वसनीयता लाने की अपेक्षा उसे रोमांचकारी बनाने की ओर अधिक है, इस
लिए उसने असंभव और काल्पनिक घटनाओं का निर्बाध रूप से उपयोग किया है ।

<u>विश्वसनीयता</u> :- कथानक विकास के इस क्रम में दूसरी स्थिति तब
आती है जब कथानक असंभव से संभव की ओर अग्रसरित होता है । इसमें उपन्यासकार
कुतूहल तथा मनोरंजन के स्थान पर समसामयिक समाज की समस्याओं और जटिलताओं
के चित्रण में प्रवृत्त हुआ । इस लिए कथानक को संभव आधार की आवश्यकता पड़ी ।
उसने उपन्यास-रचना के लिए जिन समस्याओं को आधार स्वरूप ग्रहण किया वे
काल्पनिक न हो कर वास्तविक थीं जिसके कारण विश्वसनीय कथानकों की सृष्टि हुई
ऐतिहासिक और आंचलिक उपन्यासों की प्रवृत्ति इसी आधार को लेकर बढ़ी है ।
उपन्यास रचना के क्षेत्र में विवेचना एवं व्याख्या की प्रधानता हुई जिससे कथानक में
अद्भुत परिवर्तन आ गया । कथानक-विकास की इस प्रवृत्ति का स्पष्ट दर्शन प्रेमचन्द और
प्रसाद की औपन्यासिक कृतियों में होता है । दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, विधवा
विवाह, छुआछूत, जमींदारी प्रथा, कुलीनता के अभिमान, धार्मिक पाखण्ड अथवा राष्ट्रीय
और सामाजिक आन्दोलनों को आधार बनाकर जिन कथानकों को इन उपन्यासकारों
ने सर्जना किया वे पूर्ववर्ती तिलस्मी और जासूसी कथानकों की तुलना में अधिक संभाव्य
और विश्वसनीय हैं ।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों की राजनीतिक सामाजिक
तथा सांस्कृतिक हलचलों ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नवीन मोड़ दिया जिससे
कथावस्तु का रूप बहुत कुछ बदल गया । सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर

कथानकों की सृष्टि की गई, फिर भी इनमें नाटकीय, संयोग-प्रधान और मनचाही घटनाओं का आधिक्य होने के कारण इन्हें संभव कथानकों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इन उपन्यासों के कथानकों के अन्त में उपन्यासकारों ने किसी न किसी आदर्श की प्रतिष्ठा: पूर्वनिर्धारित लक्ष्य की साधना अथवा किसी आश्रम की स्थापना के कारण कथानक का भी अस्वाभाविक विकास किया है, उससे कथानक अधिक विश्वसनीय नहीं बन सका है। फिर भी हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि तत्कालीन सामाजिक समस्याओं अथवा जटिलताओं को आधार बना कर निर्मित किये गये कथानक ने असंभव से संभव की ओर प्रयाण किया। यदि उपन्यासकार पूर्वनिर्धारित अन्त को प्रतिपादित न करता तो ये कथानक संभव बन सकते थे।

<u>वास्तविकता</u> : हिन्दी उपन्यास साहित्य में असंभव से संभव की ओर विकसित होने के बाद कथानक ने वास्तविकता की ओर कदम बढ़ाया। इस काल के उपन्यासकारों ने कथा को अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत कर वास्तविक एवं दैनिक जीवन का चित्र खींचा है। कथानक को वास्तविक बनाने के लिए इन लेखकों ने दैनिक जीवन की वास्तविक घटनाओं को आधार-स्वरूप ग्रहण कर उनकी अपने-अपने ढंग से व्याख्या प्रस्तुत किया है। वास्तविक कथानक की दृष्टि से आचार्य चतुर सेन कृत "गोली", यशपाल कृत "झूठा-सच" शिव प्रसाद मिश्र "रुद्र" कृत "बहती गंगा" आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र कृत "दुर्ग के पाँव" आदि उपन्यासों का अवलोकन किया जा सकता है।

<u>कथानक का मनोवैज्ञानिक आधार</u> : वास्तव में हिन्दी साहित्य में प्रेम चन्द के पदार्पण से उपन्यासों के सतहीपन एवं स्थूलता का निवास हो गया और हिन्दी-उपन्यास-लेखन में साहित्यिकता एवं कलात्मकता आ गई। सुनिश्चित गति से विकसित तथा अत्यन्त व्यापक परिवेश वाले कथानक, कथा की स्वाभाविकता के अनुरूप घटनाओं का चयन, कथानक की सादगी, कथा-सूत्रों एवं सामग्री का वैज्ञानिक चरित्रों का गहन विवेचन तथा उनके कार्यों के माध्यम से अग्रिम कथा का आभास तथा तारतम्यपूर्ण कथानक की सृष्टि आदि प्राचीन उपन्यासों की विशेषताओं के स्थान पर आदर्श-मिश्रित यथार्थवादी परम्परा का सूत्र-पात हुआ। यही नहीं प्रेमचन्द ने

उपन्यासों को मानव-जीवन के चित्र-रूप में ग्रहण कर मानव-चरित्रों पर प्रकाश डालने और उसमें अन्तर्निहित रहस्यों को प्रकट करने की ओर उपन्यासकारों का ध्यान आकर्षित किया [१०]। प्रेमचन्द की इस विचार धारा में दो तत्व मानव-चरित्र का चित्रण एवं उसके अन्तर्निहित रहस्यों का उद्घाटन सर्वप्रमुख है। प्रथम तत्व दृष्टिकोण के यथार्थ परक रूप एवं द्वितीय इसके अन्त: प्रवेशकारी अर्थात् मनोविज्ञान-परक रूप की व्यंजना करते हैं। वास्तव में इसी यथार्थ से मनोविज्ञान की उत्पत्ति हुई। प्रेमचन्द ने स्वयं मनोविज्ञान को कथानक का उत्कृष्ट आधार स्वीकार करने की ओर परवर्ती उपन्यासकारों को प्रेरित किया [११]। जैसे-जैसे प्रेमचन्दकी उपन्यास कला का उत्तरोत्तर विकास हुआ वैसे-ही-वैसे प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में मनोविज्ञान के प्रति आग्रह बढ़ता गया।

इस प्रकार कथानक में वास्तविकता लाने के प्रयास में जहां एक ओर वास्तविक घटनाओं को कथानक का आधार स्वीकार किया गया, वहीं दूसरी ओर मनोविज्ञान की सहायता से पात्रों के मानसिक घात-प्रतिघातों अथवा स्वभावगत् प्रवृत्तियों की अनूठी कहानी कही गई है जिससे कल्पना के स्थान पर वास्तविकता ही अधिक दिखाई पड़ती है। अब उपन्यासकार जीवन की सच्चाई को ही कार्य-कारण की शृंखला में आबद्ध करना चाहता है।

वास्तव में हिन्दी-उपन्यास का कथानक परिकल्पनात्मक फिर यथार्थवादी और तत्पश्चात् मनोवैज्ञानिक इसी क्रम में विकसित हुआ है। यथार्थ वातावरण में वास्तविक जीवन का चित्रण प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासों की अपनी विशेषताएं हैं। व्यक्ति के अन्तर्मन का विश्लेषण करने के कारण इन उपन्यासों में जीवन का एक अंश ही कथानक का आधार बना। दैनिक जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के आधार पर व्यक्ति के अन्तर्मन का अध्ययन किया जाने लगा। अन्तर्मन के अध्ययन से ही व्यक्ति के वातावरण का विश्लेषण किया गया। व्यक्ति अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभरा और उपन्यास की कथा जीवन के अधिक निकट आ गई [१२]। प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यासों में निहित परिकल्पनात्मकता प्रेमचन्द-युग में यथार्थ का बाना धारण कर परवर्ती युग में मनोविज्ञान के माध्यम से मानव-मन के अन्तराल में प्रविष्ट हो गई। "इस साहित्य में अधिक से अधिक जीवन की सच्चाई और अनुरूपता

देखना चाहते हैं । उसे कार्य - कारण की श्रृंखला में ग्रथित देखना चाहते हैं और चाहते हैं कि उसमें कोई भी ऐसी चीज न आने पाये जो हमारी बौद्धिक प्रतीति को खटके । मनोवैज्ञानिकता की प्रवृत्ति यथार्थवाद के प्रति अनुराग या भक्ति का ही एक रूप है यह भक्ति अन्तर्मुखी भले ही हो [२३]। प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकार जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, भगवती चरण वर्मा आदि ने मनोविज्ञान को ही अपनी रचना-दृष्टि का केन्द्र बनाया है ।

<u>कथानक का ह्रास</u> :- मनोविज्ञान को कथानक का आधार बनाए जाने के परिणाम-स्वरूप प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का कथानक परिसीमित हो गया और इसी लिए इस युग में कथानक में ह्रास की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगी । इन कथानकों में घटनाओं की अपेक्षा परिस्थिति और मानसिक संघर्ष को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है क्यों कि ये आधुनिक उपन्यासकार यह मान कर चलते हैं कि अधिकांश घटनायें व्यक्ति-मानस पर ही आधारित हैं और उन्हीं के कारण घटित भी होती है । अतः घटनाओं की इतिवृत्तात्मकता के निरूपण के बजाय अब उपन्यासों में कतिपय घटनाओं के द्वारा पात्रों का आन्तरिक विश्लेषण ही किया जाता है । पात्रों की अन्तर्यात्रा ही इन उपन्यासों के कथानकों का स्वरूप निर्मित करती है जिसके परिणाम-स्वरूप कथानक विशृंखल और क्रम-हीन हो उठा है । अब कथा काल-विपर्यय पद्धति से मध्य, अन्त जहां कहीं से आरंभ की जाती है । इस दृष्टि से " शेखर : एक जीवनी, " " नदी के द्वीप " और गिरती दीवारें " आदि अनेकों उपन्यासों का नाम उदाहरण - स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त कथानक-ह्रास की प्रवृत्ति का इतना अधिक प्राबल्य होता गया कि " रोड़े और पत्थर ," " सोया हुआ जल " तथा " मैला आंचल " आदि उपन्यासों में कथानक की अवस्थिति पर ही सन्देह व्यक्त किया जाने लगा है और आलोचकों ने तो इन्हें कहीं कथा-हीन उपन्यास तक की संज्ञा से अभिहित किया है [२४]। कथानक का यह ह्रास भी उसके विकास का ही द्योतक है । इस युग का दर्शन मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, फ्रायड के यौनवाद, युंग के मनोविश्लेषणवाद तथा सार्त्र आदि द्वारा विकसित अस्तित्ववाद से प्रभावित है । समाज-निरपेक्ष व्यक्तिवादी दर्शन से प्रभावित होने के कारण आधुनिक उपन्यासकारों ने व्यक्ति को प्रधानता दे दी जिससे इन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण

तथा उसके माध्यम से नानाविध उद्देश्यों की सिद्धि का प्रयत्न किया गया है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग में कथानक के आधार, स्वरूप और गठन में परिवर्तन के साथ ही साथ कथानक के प्रस्तुतीकरण शिल्प में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है । व्यक्ति- स्वातंत्र्य की भावना तथा व्यक्तियों की परस्पर विच्छिन्नता ने परम्परित प्रस्तुतीकरण शिल्प में परिवर्तन कर नई - नई प्रविधियों को प्रश्रय दिया है । अन्तर्लोक के अंकन - प्रयत्न तथा आत्माभिव्यक्ति के कारण भी कथानक-शिल्प में परिवर्तन उपस्थित हुआ है । इन उपन्यासकारों ने अपने नवीन विषयों के अनुरूप ही कथानक को प्रस्तुत करने की नवीन शिल्प विधियों का विकास किया है जिन पर विचार करने से आधुनिक उपन्यासों के कथानकों के स्वरूप तथा रचनात्मक-शिल्प पर और भी स्पष्ट प्रकाश पड़ सकेगा ।

<u>प्रस्तुतीकरण - शिल्प</u> :- आज केवल आधार की ही दृष्टि से कथानक का विकास नहीं हुआ है प्रत्युत उनके प्रस्तुतीकरण - शिल्प सम्बन्धी अनेक मौलिक प्रयोग भी दृष्टिगत हो रहे हैं । उपन्यासकार अपने उपन्यासों के कथानकों के अभिव्यक्ती - करण में नवीनता, मौलिकता तथा विशिष्टता लाने का प्रयत्न करता है । वह उपन्यासों के प्रचलित शिल्प में कुछ परिवर्तन - परिवर्धन और संशोधन करने का उपक्रम करता है,। इसी कारण शिल्प का निरन्तर विकास होता है । उपन्यास - शिल्प की दृष्टि से कथानक के प्रस्तुतीकरण की निम्न शिल्प- विधियां ही अधिक समीचीन प्रतीत होती है :-

<u>१- वर्णनात्मक (Descriptive)</u>:- वर्णनात्मक शिल्प-विधि में जीवन के विस्तृत क्षेत्र की छटा - छटा का विवरणात्मक ढंग से व्याख्या सहित प्रस्तुत किया जाता है । इसमें शिल्पगत सौन्दर्य का अभाव होता है क्योंकि यह चित्रात्मकता - विहीन, नीरस, विवरण मात्र होती है । इस विधि में जीवन का कोई भी क्षेत्र कथा का आधार बनाया जा सकता है । इसमें घटना की अधिकता, पात्रों की अधिकता, लम्बे संवाद तथा भाषण की योजना की जाती है जिसके माध्यम से अनेक समस्याओं का सरलतापूर्वक चित्रण हो सकता है । ऐसे उपन्यासों में कथानक

दूसरा या तीसरा होता है। इस विधि में प्रखरता, गहनता, दृढ़ता तथा सूक्ष्मता का अभाव होता है और व्यापकता अधिक होती है जिससे अस्वाभाविक घटनाओं के समावेश को भी अवसर प्राप्त होता है।

वर्णनात्मक शिल्प - विधि में लिखे गए उपन्यासों को चार कोटियों में विभक्त किया जा सकता है :-

(क) अन्य-पुरुष शैली :- इस विधि में उपन्यासकार कथा का सूत्र अपने हाथ में पकड़ कर इतिहासकार की भाँति कथा कहता है। इस शैली में उपन्यासकार को उपदेश देने का अवसर अधिक मिलता है।

(ख) आत्मकथात्मक शैली :- इस शैली के उपन्यासों में कथा सूत्र नायक के हाथ में रहता है और वह स्वयं अपनी कथा कहता है। आत्मकथात्मक शैली के उपन्यास विभिन्न प्रकार के हैं। रांगेय राघव का उपन्यास " हुजूर " जैनेन्द्र कुमार का " व्यतीत " ऐसे ही उपन्यास हैं जिनमें " मैं " विभिन्न कोणों से अपनी कहता है। इसमें " मैं " को अपनी सम्पूर्ण कार्यों का औचित्य सिद्ध करने का अवसर प्राप्त है यहाँ तक कि अन्य पात्रों का मूल्यांकन " मैं " की ही दृष्टि से होता है। अतएव अन्य पात्रों से उसके सम्बन्ध की धारणा अस्पष्ट रहती है। इस त्रुटि को दूर करने के लिए उपन्यासकारों ने अन्य प्रयोग भी किए हैं जिनमें दो या तीन पात्र अपनी कथा स्वतः प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों के पात्रों में परिचय व सम्बन्ध दृष्टिगत होता है जो समय-समय पर मिलते भी हैं। ऐसे उपन्यासों में इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास " पर्दे की रानी " का नाम लिया जा सकता है। आत्मकथात्मक उपन्यासों का एक दूसरा रूप भी मिलता है जिसमें " मैं " स्वयं की कहानी सुनाकर अन्य की कहानी सुनाता है। जैनेन्द्र के " त्याग पत्र ", " कल्याणी ", इलाचन्द्र जोशी का " जिप्सी " हजारी प्रसाद द्विवेदी का " बाणभट्ट की आत्मकथा " आदि इसी प्रकार के उपन्यास हैं। नागार्जुन के " बाबा बटेसरनाथ " में बटवृक्ष अपनी कथा सुनाता है।

(ग) पत्र-शैली :- इस शैली के उपन्यासों का प्रणयन विद्यार्थियों की प्रणय-लीला की अभिव्यक्ति करने के लिए हुआ था। अब इस शैली का बहिष्कार हो चुका है।

(घ) डायरी - शैली :- डायरी शैली के भी माध्यम से कथानक विकसित हुआ है। जैनेन्द्र कृत "जयवर्धन" उपन्यास का कथानक इसी शैली में रचित है। इसकी कथा डायरी के पृष्ठों में मिलती है जिसमें दार्शनिकता निहित है। इस उपन्यास के पात्र डायरी के अनेक पृष्ठों में तर्क-वितर्क करते हुए स्वयं उठाये प्रश्नों का उत्तर भी प्रस्तुत कर देते हैं। पाठक इसे डायरी कहें या उपन्यास कहे या फिर दोनों का समन्वय।

कथानक के प्रस्तुतीकरण की उपरोक्त पद्धतियां अब प्रयोग में नहीं लाई जाती। प्रथम, मध्यम या अन्य पुरुष की समस्या अब रह ही नहीं गई है क्योंकि आज का रचनाकार "भोगे हुए यथार्थ" का अभिव्यक्ति देने के पक्ष में हैं। इन शैलियों में आत्म-कथा शैली का उदाहरण प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में सर्वप्रथम जैनेन्द्र के उपन्यासों में मिलता है तथा कुछ अन्य उपन्यासकारों की कृतियां भी इस शैली में रचित हैं। किन्तु शेष तीन में से अन्य पुरुष तथा पत्रात्मक शैली तो पूर्णतया लुप्त हो चुकी हैं। डायरी शैली का प्रचलन भी समाप्त प्राय सा हो चुका है। प्रेमचन्दोत्तर युग में इने-गिने दो-चार उपन्यासों में ही यह शैली दिखाई पड़ती है।

२- विश्लेषणात्मक - शिल्प विधि :- विश्लेषणात्मक शिल्प विधि का विकास उपन्यास की अन्तर्मुखी-वृत्ति एवं मनोविज्ञान -शास्त्र की उन्नति के परिणाम-स्वरूप हुआ। दर्शन -शास्त्र को भी इसका उत्स माना जा सकता है क्योंकि इस विधि के उपन्यासों के कथानकों में मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों की प्राप्ति के साथ ही साथ दार्शनिक ऊहा-पोह भी मिलते हैं। विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि के उपन्यासों में कथानक का आधार अखण्ड जीवन का विस्तृत क्षेत्र न हो कर उसका कोई एक पहलू विशेष होता है। विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि के उपन्यासों की कथा में बाह्य क्रिया-कलापों की कमी होती है और कथा का सम्बन्ध अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों और आन्तरिक कारणों से जुड़ा हुआ है। इस शिल्प-विधि द्वारा उपन्यासों की घटनाएं बाह्य संसार से हटकर मनस्तत्व में प्रविष्ट हुई जिससे उनमें सूक्ष्मता का समावेश हुआ। ऐसे उपन्यासों में कथानक गौण होता है और जो होता भी है वह संगठित नहीं होता। घटनाओं के तारतम्य को भी इन उपन्यासकारों ने स्वीकार नहीं किया

जब मनोविज्ञान को कथानक का आधार बनाया गया तो प्रथमत: कथा में से इतिवृत्त तत्व का निष्क्रमण हो गया और उसके स्थान में मनोविज्ञान पर आधारित घटनाएं समाविष्ट हो गईं। फिर ये घटनाएँ भी सूक्ष्म होती गईं तथा आन्तरिक प्रवृत्तियों को प्रमुखस्थान मिलता चला गया। यही कारण है कि इस विधि के उपन्यासों में कथानक अन्तर्मुखी हो गया। अब अनुभूतियां आत्मनिष्ठ रूप में स्थान पाने लगीं। विश्ले-षणात्मक शिल्प-विधि के उपन्यासों में कथानक का सुसंगठन भी उपेक्षित हो गया। कथा की अवधि और सामग्री में भी अन्तर आ गया। वैयक्तिक कुण्ठाओं, दुर्बल-चरित्र वाले व्यक्तियों की विविध मनोग्रन्थियों, दमित वासनाओं, उन्मादों आदि को कथा के रूप में स्वीकार किया गया। अवधि परिवर्तन की दृष्टि से " चांदनी के खण्डहर " " और एक जीवनी " आदि उपन्यास द्रष्टव्य है। प्रथम उपन्यास में एक दिन और एक रात की कथा है तथा दूसरे मेंकेवल एक रात को देखे गये विजन का प्रक्षेपण है।

विश्लेषणात्मक कथा-विधान में घटना-संयोजन में कार्य-कारण परम्परा तथा आदि, मध्य और अन्त का प्रतिबंध नहीं होता। इसमें पूर्ववर्ती उपन्यासों के विस्तार का स्थान गहनता तथा वर्णन का स्थान विश्लेषण ने ग्रहण कर लिया है।

विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि को चार कोटियों में निर्दिष्ट किया जा सकता है :-

(क) <u>मनोविज्ञान प्रधान</u> :- इसमें मनस्तत्व की प्रधानता होती है। मन के तीनों रूप- चेतन, अचेतन तथा अर्ध-चेतन मनोविज्ञान के ही माध्यम से प्रकाश में आये इस लिए इस विधि में वैयक्तिक चेतना और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का सरलतापूर्वक विश्लेषण प्राप्त होता है। मनोविज्ञान प्रधान विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि में उपन्यासकार असाधारण और असाधारण व्यक्ति को कथा का नायक बना कर उसके आन्तरिक जीवन के द्वन्द्वों का वैश्लेषिक चित्रण करता है। इस शिल्प-विधि की औपन्यासिक कृतियों में काम-ग्रन्थियों व, हीनता की ग्रन्थियों के चित्रण का आधिक्य होता है। काम-ग्रन्थि के चित्रण की दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी का उपन्यास " प्रेत और छाया " द्रष्टव्य है। सम्पूर्ण कथा के मूलमें काम-ग्रन्थि है।

फ्रायड के दो शिष्य एडलर और युंग ने फ्रायड के कतिपय सैक्स सम्बन्धी सिद्धान्तों का तीव्र विरोध किया और अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किये । एडलर ने यह सिद्धान्त प्रचलित किया कि विशिष्ट सामाजिक या पारिवारिक परिस्थितियां ही व्यक्ति की मानसिक स्थिति के लिए उत्तरदायी होती हैं । और यही विशिष्ट परिस्थितियां ही उसमें हीनता अथवा उच्चता की ग्रन्थि को उत्पन्न करती है । हीनता की ग्रन्थि का चित्रण करने वाले उपन्यासों के उदाहरण स्वरूप इलाचन्द्र जोशी के " जहाज का पंछी ",जैनेन्द्र कृत "त्याग -पत्र ", अज्ञेय कृत "शेखर: एक जीवनी " आदि अनेकों उपन्यासों के नाम लिए जा सकते हैं ।

।ख। दर्शन - प्रधान : इस विधि के उपन्यासों के कथानक और पात्र मौलिक प्रश्नों से आवृत्त करके विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं । जैनेन्द्र कृत "परख "" त्याग-पत्र " और कल्याणी "उपन्यासों में दार्शनिक प्रश्नों को उठाया गया है । यही कारण है कि इन उपन्यासों में कथानक गौण हो गया है । जैनेन्द्र और अज्ञेय इस शिल्प विधि के प्रधान रचनाकार हैं । इस विधि के उपन्यासों में दार्शनिकता का समावेश होने के कारण कहानी की कड़ियां तोड़ी-मरोड़ी हुई दृष्टिगत होती हैं । इस सम्बन्ध में जैनेन्द्र जी के विचार ज्ञातव्य हैं[११] ।

।ग। चेतना-प्रवाहवादी : (Stream of Consciousness) यह वह नवीन विधि है, जिसके द्वारा एक क्षण से दूसरे क्षण की ओर गतिशील चेतना को अभिव्यक्त किया जा सके । अंग्रेजी उपन्यासकार श्रीमती वर्जीनिया वुल्फ,जैम्स ज्वायस और डोरोथी रिचर्डसन की औपन्यासिक कृतियों में चेतना-प्रवाह पद्धति का प्रयोग हुआ है । हिन्दी में इस पद्धति के उपन्यासों का प्रचलन कम है । प्रभाकर माचवे का प्रसिद्ध उपन्यास " परन्तु " चेतना प्रवाह पद्धति की प्रधान रचना है । इस पद्धति में उपन्यासकार अपनी ओर से कहीं भी टीका-टिप्पणी अथवा विश्लेषण नहीं करता है । पाठक चरित्रों की मौलिक - चेतना में प्रविष्ट हो कर उन्हें भीतर से देखता है । इस विधि में भावनाओं का स्वच्छन्दता पूर्वक मिलान होता है और चरित्र के मस्तिष्क में गृहीत चित्र अतीत जीवनगत स्मृतियों से जुटते हैं । सम्पूर्ण घटनाएं बाह्य संसार से हट कर मानसिक संसार में अवतरित हो जाती हैं । इसमें

मानवीय चेतना की निवृत्ति, आन्तरिक भाव प्रवणता के आधार पर होती है। जगत की बाह्य रूप रेखाएं आन्तरिक भावानुभूति में विलीन हो जाती है। अन्तःकरण का स्फुरण, भाव, कल्पनाओं ने उपन्यास में स्थान पाया है। इस शैली में स्वग - तोक्तियों की समायोजना की जाती है। आधुनिक व्यक्ति की सूक्ष्म मानसिकता तथा व्यक्ति - मानस में एक साथ उत्पन्न होने वाली अनेक विचार तरंगों को उसी रूप में व्यक्त करने के लिए यह शैली सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्हें किसी दूसरे शिल्प द्वारा अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती। इसके साथ ही सिनेमा-शिल्प से सम्बन्धित " फ्लैश बैक," " फेड इन ", " फेड आउट " तथा " क्लोज़ अप " का भी प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में इस शैली की रचना प्रक्रिया में दृष्टिगत होता है।

।घ। पूर्वदीप्ति (Flash back) :- इस प्रक्रिया में कथा आत्म - विश्लेषणात्मक पद्धति में प्रस्तुत होती है। उपन्यासकार वर्तमान से सम्बन्धित जीवन - स्थिति को पात्रों के स्मृति -तरंगों के रूप में विकीर्ण करता चलता है [१६]। कथा कहते - कहते पात्र सहसा प्रसंग के सूत्र को किसी विगत् घटना-सूत्र से सम्बद्ध कर देता है, जिससे कथा की गति बनी रहती है। पिछली गड़ी हुई बातें अंगड़ाई लेती सी प्रतीत होने लगती हैं। कभी - कभी जब कोई पात्र अपनी पिछली घटना सुनाना चाहता है या स्मरण करने लगता है तब भी पूर्वदीप्ति का प्रयोग होता है। अज्ञेय कृत " शेखर: एक जीवनी," इलाचन्द्र जोशी कृत " सन्यासी ", अमृत लाल नागर कृत " महाकाल ", और जैनेन्द्र कृत " सुखदा " तथा " व्यतीत " आदि उपन्यास स्मृति-तरंग के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इस पद्धति में मनोविज्ञान का पर्याप्त आश्रय ग्रहण किया जाता है। कथानक किसी मानसिक स्थिति को आधार बना कर अन्तर्जगत् की ओर उन्मुख होता है और कथानक का आरंभ असाधारण स्थितियों के माध्यम से विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के साथ-साथ होता है। पूर्वदीप्ति पद्धति में कथा का सूत्र प्रधान पात्र के हाथ में होता है जिसके द्वारा वह अपने विगत् जीवन का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें अतीत का महत्व अधिक होता है। यह प्रस्तुतीकरण-शिल्प अधिकांशतः वैयक्तिक तत्वों से भरा हुआ, कल्पनातीत मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों से

उत्पन्न हो कर, पात्रों द्वारा स्वयं कही हुई आत्म-कथा के रूप में उपस्थित होता है ।

<u>३- प्रतीकात्मक :</u> (Symb olical) प्रतीकात्मकता से भावाभि-व्यंजन में कलात्मकता का संचार हुआ है । जिन भावों को प्रकट करने में उपन्यासकार को कठिनाई होती है वे प्रतीकों के माध्यम से सहज स्वाभाविक ढंग से प्रकट हो जाते हैं । इस विधि में कोई बात सीधे न कहकर संकेतों के माध्यम से कही जाती है [१७]। " प्रतीक वादियों ने साहित्य या कला में प्रकृतवाद और रूपगत रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह कर के प्रतीकों के माध्यम से भावों, विचारों और मन: स्थितियों की अभिव्यक्ति देने पर जोर दिया और इसके लिए बात सीधे न कह कर सांकेतिक भाषा में व्यक्त करने की प्रणाली अपनाई । " संकेतात्मकता का आधिक्य होने से यह सामान्य पाठकों के लिए अस्पष्ट हो जाती है ।[१८] " प्रतीकों के सूक्ष्म निर्देशन की जो शक्ति होती है उसकी कोई सीमा नहीं । किसी निर्देश से उसका कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है , अत: प्रतीकात्मक कथन में संकेतात्मकता के बाहुल्य के साथ-साथ सामान्य जनों के लिए अस्पष्टता की प्रतीति भी स्वाभाविक है " । प्रतीक-वादी रचनाकार भावों और विचारों की व्याख्या न कर के भिन्न संकेतों के माध्यम से एकाग्रचित हो कर अपने अनुभवों को प्रस्तुत करते हैं । रांगेय राघव कृत " घरौंदे " उपन्यास प्रतीकात्मक शिल्प-विधि की सफल उत्कृष्टतम् रचना है । इसके अतिरिक्त अमृतलाल नागर ने " बूंद और समुद्र " में प्रतीक के माध्यम से मनुष्य और समाज की रूप रेखा खींची है । बूंद मनुष्य का तथा समुद्र समाज का प्रतीक है । इसी प्रकार अज्ञेय कृत " नदी के द्वीप " उपन्यास में व्यक्ति की विवशता और समाजगत जड़ता प्रतीक विधान से व्यक्त हुई है ।

<u>४- नाटकीय :-</u> (Dramatic) नाटकीय शिल्प विधि के उपन्यासों में कथावस्तु और कार्य-व्यापार का अद्भुत समन्वय होता है । इसके सभी पात्र उपन्यास-व्यापार से आबद्ध रहते हैं । इनमें जीवन का एक ही खण्ड दिखाया जा सकता है क्यों कि इस विधि में आकस्मिकता अधिक होती है । परिस्थिति, घटना और चरित्र जिन उपन्यासों में एक दूसरे के संघात में उद्घाटित किये जाते हैं उनका कथानक नाटकीय होता है । नाटकीय उपन्यासों की संख्या बहुत कम है । भगवती चरण वर्मा कृत " चित्र लेखा " और वृन्दावन लाल वर्मा कृत " मृगनयनी " उपन्यास नाटकीय है ।

५- समन्वित : (Mixed) इस शिल्प-विधि के अन्तर्गत ऊपर वर्णित समस्त विधियों के रूप रहते हैं। यथार्थ जीवन चित्रण को समग्र रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से समन्वित शिल्प-विधि व्यवहार में लाई जाती है। इसमें कथानक वर्णनात्मक विधि द्वारा गठित किया जाता है। जब कथाकार पात्रों के बारे में कुछ कहता है तब वह वर्णनात्मक प्रणाली अपनाता है। इसमें आत्मकेन्द्रित, अन्तर्मुखी तथा आत्म-विश्लेषक पात्रों का चित्रण विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि द्वारा किया जाता है। समन्वित शिल्प-विधि के उपन्यासों में समाज का फोटोग्राफिक चित्रण भी मिलता है। कुछ प्रतीकों के माध्यम से सामाजिक चेतना की गहराइयां और वैयक्तिक अचेतन मन की ग्रन्थियां सम्बद्ध और असम्बद्ध मूर्ति विधानों, रेखाचित्रों एवं संकेतों तथा रूपकों के माध्यम से अभिव्यक्त की गई हैं। ऐसे उपन्यासों में बाह्य घटनाओं के वर्णन में तीव्र प्रवाह तथा आन्तरिक स्थितियों के चित्रण में सूक्ष्मता होती है। समन्वित विधि में टाइप, वैयक्तिक और प्रतीक तीन प्रकार के चरित्रों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ "बूंद और समुद्र"[१] तथा "बहते बहते"[२] उपन्यास द्रष्टव्य हैं। इन रचनाओं में व्यापकता गहनता तथा सूक्ष्मता व सांकेतिकता का एक साथ समावेश हुआ है।

निष्कर्ष :

वस्तु कथानक के गठन एवं विकास की दृष्टि से किये गये उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी उपन्यास का कथानक विषय, रचना-पद्धति एवं प्रस्तुतीकरण के क्षेत्र में बड़ी तीव्रता से विकसित हुआ है। कथानक का यह विकास समय एवं परिस्थितियों के अनुकूल सहज एवं स्वाभाविक ढंग से हुआ है। प्रारंभ के हिन्दी उपन्यासों का कथानक परिकल्पनिक, कौतूहलपूर्ण, विस्मयकारक था। उस काल के उपन्यासकारों का उद्देश्य मात्र पाठकों का मनोरंजन करना था इस लिए कथानक में असंभव एवं अप्रत्याशित घटनाओं का समावेश होता था। रचना की दृष्टि से इन उपन्यासों के कथानक कल्पनात्मक स्तर पर बहुत साधारण एवं सामान्य घटनाओं के लाउ ढांचे के आधार पर रचे जाते थे, पर कुछ ऐसे भी उपन्यास थे, जिनकी कथावस्तु

ऊपर से जटिल एवं पेंचदार लगती हैं, किन्तु वास्तव में इनका ढांचा सरल ही है, क्यों कि विश्लेषण के द्वारा वे किन्हीं अभिप्रायों या फार्मूलों में बांधे जाते हैं। कार्य-कारण के क्रम से इन उपन्यासों में घटना का विकास होता चलता है, पात्र इनके माध्यम मात्र होकर आकस्मिक तथा रोचक परिस्थितियों का निर्माण करते थे। "परीक्षा गुरु" के रचना-काल तक पहुंचते - पहुंचते उपन्यासकार अपने को कथाकार न समझ कर कृतिकार समझने लगता है। अब वह उपन्यास को मात्र घटनाओं के रूप में न लेकर उसे सामाजिक परिवेश में रख कर देखने का प्रयास करता है। वह समस्याओं के माध्यम से कथा को कल्पित करता है, किन्तु प्रारंभमें समस्याएं उसके मन में इतने स्थूल रूप में रहती है कि वह इनके लिए निर्जीव कथा का ढांचा मात्र खड़ा कर पाता है। यहीं से उपन्यासकार को यथार्थ के प्रति अपनी अलगात्मक और सर्जनात्मक कल्पना के प्रयोग का पहली बार दायित्व अनुभव हुआ। प्रेमचन्द के उपन्यास-जगत में पदार्पण के साथ ही साथ हिन्दी उपन्यासों में यथार्थ समाज की समस्याओं का चित्रण आरंभ हुआ। उपन्यासकार वैचित्र्य-पूर्ण, अस्वाभाविक घटनाओं का मोह त्याग कर मानव-जीवन और उसकी समस्याओं को अपना आधार बनाने लगा। किन्तु यहां उपन्यासकार सुधारक एवं उपदेशक का रूप ग्रहण किये हुए है। जिससे कथानक व्यापक तथा विस्तृत हैं। उपन्यास का प्रथम एवं अनिवार्य तत्व होने के कारण कथानक प्रेमचन्द युग के उपन्यासों की रीढ़ था। उसमें गृहीत घटनाओं का नियोजन क्रमानुसार होता था। कथानक में आदि, मध्य एवं अन्त पर ध्यान दिया जाता था। प्रेमचन्द ने यथार्थ-आधारित उपन्यासों के सृजन की ओर लेखकों का ध्यान आकर्षित किया था जिन में चरित्र की प्रधानता पर बल दिया गया और पात्रों के चरित्रों का विकास दिखाया गया। यहीं से हिन्दी उपन्यास साहित्य में मनोविज्ञान का प्रवेश हुआ।

मनोविज्ञान के प्रवेश से कथानक में युगान्तरकारी मोड़ उपस्थित हुआ। प्रेमचन्दोत्तर युग में तो उपन्यासकारों ने मनोविज्ञान को कथानक का आधार ही बना लिया जिससे उसमें परिसीमितता, अस्पष्टता तथा सांकेतिकता और बिखराहट आ गई। कथानक ह्रासोन्मुख हो गया। कथानक का महत्व धीरे-धीरे घटने लगा। ऐसे भी उपन्यास लिखे गए हैं जिनमें कथानक की स्थिति पर सन्देह भी प्रकट किया

गया है । मनोविज्ञान को कथानक का आधार बनाए जाने के कारण कथानक अन्तर्मुखी हो कर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तथा अब सूक्ष्मतम रूप में प्रकट किया जाने लगा है । उसमें केवल आवश्यक घटनाएं एवं चरित्र ही समाविष्ट होते हैं । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि के चित्रण की प्रधानता है । प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों में मुख्य कथा के साथ-साथ प्रासंगिक कथा या कथाएँ अवश्य नियोजित होती थीं किन्तु प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने इसका अपवाद प्रस्तुत किया तथा इकहरी कथा की रचना किया और वह भी अब संक्षिप्त हो गई है । इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों के कथानक ने काल्पनिकता से यथार्थ की भूमि पर होते हुए पात्रों के अन्तर्लोक में प्रविष्ट हो कर सूक्ष्मतम रूप धारण कर लिया है तथा अदृश्य सा होता जा रहा है । यह भी कथानक के विकास का ही द्योतक है । प्रेमचन्द-परवर्ती युग में कथानक के विकास के साथ ही साथ कथा के प्रस्तुतीकरण के ढंग में आवश्यक प्रयोग हुए हैं । परम्परागत उपन्यासों में कथा उत्तम और अन्य पुरुषों में कही जाती थी । लेखक सर्वज्ञ की भाँति कथा के बीच-बीच में आ कर कथा को विकसित करता था । कथा-विकास का यही रूप आधुनिकतम उपन्यासों में भी दिखाई पड़ता है । कथा कहीं लेखक कहता है[21], कहीं पात्र और वह भी एक नहीं, कई[22] । कहीं मानवेतर प्राणी कथा कहते हैं[23], कहीं वह सुनी-सुनाई कथा सुनाता है[24] । आत्म कथात्मक[25], डायरी[26], पत्र[27], उद्धरण[28], विवरण[29] तथा दृश्य-विधान शैलियाँ[30] अपने परम्परागत रूप में आधुनिक उपन्यासों में प्रयुक्त हुई हैं ।

आधुनिक उपन्यासकारों ने कथा-विकास के लिए कुछ नवीन पद्धतियों का भी प्रयोग किया है । मुक्त-आसंग, वाचालता-विश्लेषण, आत्म-विश्लेषण, स्वप्न-विश्लेषण, पूर्वावलोकन, चेतना-प्रवाह, शब्द सह-स्मृति परीक्षण आदि के माध्यम से चरित्र विकास होता है और चरित्र विकास से कथानक का । इन सभी पद्धतियों में सर्वाधिक स्मृत्यवलोकन[31], स्वप्न-विश्लेषण[32], तथा आत्मविश्लेषण[33] प्रणाली का प्रयोग हुआ है । चेतना-प्रवाह पद्धति का मिलता जुलता रूप भी आधुनिक उपन्यासों में मिलता है[34] । इन उपन्यासकारों ने अनेक विधियों का

प्रयोग किया है [३५]। प्रयोग के रूप में कथा के विकास में अनेक कला- प्रविधियों का प्रयोग किया जाने लगा है [३६]।

प्रारंभिक उपन्यासों में कथा निर्धारित लक्ष्य को लेकर लिखी जाती थी। कथा के बीच बीच में लेखक अपना उद्देश्य बताता चलता था। उपन्यास का लक्ष्य कथा के प्रारंभ में ही मिल जाता था [३७]। आज इसके ठीक विपरीत उपन्यासकार अपने लक्ष्य को अंत तक छिपाये रहता है और उपन्यास के अंत में पाठक पर छोड़ देता है कि वह उसके लक्ष्य को स्वयं सोचे [३८]। उसका लक्ष्य वर्णित होने के स्थान पर ध्वनित होता है।

कथा की उपरोक्त प्रस्तुतीकरण विधियों की प्रयोगात्मकता पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का कथानक रचना-विधान की दृष्टि से किसी सीमा तक अपने परम्परागत शिल्प-विधान को छोड़ चुका है फिर भी कुछ उपन्यासों में कथा-शैली का पुराना रूप मिल जाता है। अब उपन्यासकार चाहे परम्परागत-शिल्प विधान को लेकर कथानक की रचना करे या नये प्रयोगों का आश्रय लेकर उसके सामने अपना कथ्य स्पष्ट होना चाहिए। कथ्य की प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति ही उसका लक्ष्य होना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि प्राचीन कथा-विधान के द्वारा अपने कथ्य की अभिव्यक्ति करने में वह रोचकता, और औत्सुक्य को समाप्त कर दे और नवीकथा-शिल्प के आग्रह के कारण अपने कथ्य को पीछे छोड़ कर शिल्प को प्रधानता दे दे। एक सशक्त और सफल उपन्यासकार वह है जो शैली घटनाओं, पात्र, चरित्र-चित्रण, वातावरण, देश-काल एवं भाषा शैली का सामंजस्यपूर्ण विनियोग करते हुए कथानक की रचना करे जिससे कि उसका कथ्य सहज एवं स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हो सके।

०००००

1- " This element of surprise or mystery ...is of great importanc in a plot...... Mystery is essential to a plot, and cannot be appreciated without inteligence.'

E. M. Forster- Aspects of the Novel

P. 95

2. " The plot should result from growth, not manipulation."

Robbert Liddle-A Treatisse on the Novel

P. 85

3. Richard Church - The growth of Englaish Novel P.8

4. Edith wharton- Permanent Values in Fiction-P 52

4. Webster - New International Dictionary of English Language

P. 16-17

४ - हिन्दी साहित्य कोश - पृ० ४४८

५ - भगवती चरण वर्मा - भूलि बिसरे चित्र

- गिरीश अस्थाना - धूप छाँही रंग

६- गिरिराज किशोर - जुगलबंदी ।

- नरेश मेहता - दो एकांत

- सुदर्शन नारंग - उस पार का अंधेरा

7. " The novelist who professes to give us an exact representation of life ought to avoid with care any linking together of events which might appear exceptional. His aim is not to tell a story to entertain or touch our hearts, but to force us to think and understand the deep and hidden significance of events.........Instead of contraving an adventure and unfolding it in such a way as to keep up the interest to the end, he will take his character or characters at a certain period of their lives and conduct them by natural transitions to the following period. In this way he will show us ti may be , how character is influenced and altered by surrounding circumstances; it may be, how the sentiments and passions develop, how people love, how they hate, what struggles are going on in all social conditions.

Beach J.W. - Twenteenth Century Novel P.123.

८- सीताराम चतुर्वेदी - समीक्षा शास्त्र पृ० ५२८

प्रकाशक अखिल भारतीय विक्रम-परिषद ,

काशी सम्वत २०१० विक्रमाब्द)

९ -- '' सबसे सरल अथवा निम्नकोटि की कथावस्तु वह है जो कुछ आश्चर्यजनक घटनाओं का ताता बांध कर पाठकों के कौतूहल को आरंभ से अन्त जगाती रहे ।''

(साहित्यालोचन - श्यामसुन्दर दास, पंचम आवृत्ति सं०१९९५पृ०१५०

इण्डियन प्रेस लिमिटेड , प्रयाग)

१० - प्रेमचन्द --- कुछ विचार , वु० सं० पृ०४१

११ - वही , पृ०३२

- अज्ञेय -- शेखर : एक जीवनी , नरेश मेहता - यह पथ बंधु था ,

रमेश बक्षी - किस्से ऊपर किस्सा , कमलेश्वर - डाक बंगला ।

१३ - '' हम साहित्य में अधिक से अधिक ही जीवन की सच्चाई और अनुरूपता देखना चाहते हैं । उसे कार्य - कारण की श्रृंखला में ग्रथित देखना चाहते हैं और चाहते हैं कि उसमें कोई भी ऐसी चीज न आने पाये जो हमारी बौद्धिक प्रतीति को खटके । मनोवैज्ञानिकता की प्रवृत्ति यथार्थवाद के प्रति अनुराग या भक्ति का ही एक रूप है - यह भक्ति अन्तर्मुखी भले ही हो ।''

(डॉ० देवराज उपाध्याय -- आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान , पृ०५३३)

१४ - '' प्रेमचन्दोत्तर युग में कथा का ह्रास हुआ है । यही नहीं ' कथा - रहित , उपन्यास भी लिखे गये हैं , जैसे- ' सोया हुआ जल ', ' मैला आँचल ', ' रोड़ि और पत्थर ।''

१५ - '' उपन्यास में जैसी दुनियाँ है , वैसी ही चित्रित नहीं होती। दुनियाँ का कुछ उठा हुआ , उन्नत , कल्पित रूप , चित्रित किया जाता है। वह उपन्यास किसी काम का नहीं जो इतिहास की तरह घटनाओं का बखान कर जाता है । .... उपन्यास का काम है , कुछ आगे की , भविष्य की संभावनाओं को जरा झाँकी दिखाना और जो कुछ अब है , उसको तह हमारे सामने खोल कर रख देना । उपन्यास के एक नये , अजीब ही ढंग से रंगे और उपादेय जीवन का चित्र हमारे सामने रखता है । जीवन के साधारण कृत्य और उसकी गुत्थियों को सुलझा कर और खोल- खोल कर रख देता है ।''

(जैनेन्द्र कुमार -- परख की भूमिका से उद्धृत)

१६ – अश्क – शहर में घूमता आइना , रमेश बक्षी - अठारह सूरज के पौधे , सुदर्शन नारंग – उस पार का अँधेरा , अमृत लाल नागर – मानस का हंस, ओंकार 'राही ' – शव- यात्रा ।

१७ - शिवदान सिंह चौहान – आलोचना के सिद्धान्त , पृ०१४७-१४८

१८ - राम अवध द्विवेदी – आलोचना संख्या में प्रकाशित लेख , पृ०२६

१६ - अमृत लाल नागर –

२० - भगवती प्रसाद बाजपेयी ।

२१ - केशवचन्द्र वर्मा – मोहब्बत मनोविज्ञान और दाढ़ी मूँछ , आनन्द प्रकाश जैन - कठपुतली के धागे , राजेन्द्र यादव – प्रेत बोलते हैं ।

२२ - अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी , जैनेन्द्र – सुखदा , अमृत लाल नागर– मानस का हंस , शरद देवड़ा – टूटती इकाइयाँ ।

२३ - केशव चन्द्र वर्मा - काठ का उल्लू और कबूतर , नागार्जुन – बाबा बटेसरनाथ, रांगेय राघव – हुजूर , लक्ष्मीकान्त वर्मा – खाली कुर्सी की आत्मा ।

२४ - धर्मवीर भारती – सूरज का सातवाँ घोड़ा , अमृतलाल नागर - सेठ बांकेमल , विवेकीराय - बबूल ।

२५ - शेखर : एक जीवनी , डूबते मस्तूल , जहाज का पंछी , उस पार का अँधेरा ।

२६ - जयवर्द्धन – सुजाता की डायरी , अजय की डायरी तथा अन्तराल ।

२७ - नदी के द्वीप , परन्तु , आँसू की मशीन और न आने वाला कल ।

२८ - शेखर : एक जीवनी , नदी के द्वीप , परन्तु , चलते - चलते , बूंद और समुद्र तथा शहर में घूमता आइना ।

२६ - चलते - चलते , वयं रक्षामः , बाबा बटेसरनाथ , बबूल व बया का घोंसला और साँप ।

३० - मैला आँचल , परती : परिकथा , धूमकेतुः एक श्रुति , यह पथ बन्धु था, प्रथम फाल्गुन , बबूल और अन्तराल ।

३१ - शहर में घूमता आइना , अठारह सूरज के पौधे , चलता हुआ लावा , उस पार का अँधेरा , मानस का हँस , शव- यात्रा ।

३२- कल्याणी , शेखर : एक जीवनी , धूमकेतु : एक श्रुति , चाँदनी के खण्डहर , आँसू की मशीन ।

३३- प्रेत और छाया , उस पार का अँधेरा , अन्तराल ।

३४- नदी के द्वीप , चलते - चलते , अन्तराल , उस पार का अँधेरा , साँचा और परन्तु ।

३५- आत्मकथात्मक - संन्यासी , जहाज का पंछी , चलते - चलते , बलचनमा, उस पार का अँधेरा , सुबह अँधेरे पथ पर , दूसरी बार , वे दिन ।

कहानीमूलक - सेठ बाँकेमल , बहती गंगा , सूरज का सातवाँ घोड़ा , सफेद मेमने । ।

लोककथात्मक - काठ का उल्लू और कबूतर , काली कुर्सी की आत्मा , बाबा बटेसरनाथ ।

जीवनीपरक - यशोधरा जीत गई , मानस का हँस । ब

आत्मसंस्मरणात्मक - शेखर : एक जीवनी , धूमकेतु : एक श्रुति , नदी यशस्वी है , अन्तराल ।

डायरीपरक - शह और मात , अजय की डायरी , जयवर्धन , मैलाआँचल।

यात्रात्मक - अठारह सूरज के पौधे, जो , मधुर स्वप्न ।

संलापात्मक - ये कोठे वालियाँ ।

प्रतीकात्मक - सोया हुआ जल ।

रिपोर्ताज - सबहिं नचावत राम गोसाईं , आखिरी आवाज , परतोः परिकथा, आँसू की मशीन ।

३६ – रूपक – व्दाभा । नोटबुक के पन्ने + एक नन्ही किन्दील , व्दाभा , शह और मात । गीत – गजल – बूंद और समुद्र , व्दाभा , शहर में घूमता आइना तथा डाक बंगला । निबन्ध – व्दाभा । भाषा – जहाज का पंछी । रेखा - चित्र – शहर में घूमता आइना । लोककथाएँ तथा कथा का प्रयोग – मैला आँचल , अन्तराल और व्दाभा । समाचार पत्र की कतरने – परन्तु , आखिरी सपना और बूंद और समुद्र। रेडियो के समाचार – बूंद और समुद्र ।

३७ – भैरव प्रसाद गुप्त – गंगा मैया , मशाल , जंजीरें और आदमी । राहुल सांकृत्यायन – जीने के लिए । रांगेय राघव – आखिरी आवाज़ । नागार्जुन – रतिनाथ की चाची , नई पौध तथा बलचनमा । यशपाल – मनुष्य के रूप । ममता कालिया – बेघर । राही मासूम रजा – टोपी शुक्ला । सुरेश सिन्हा – सुबह अंधेरे पथ पर ।

३८ – रमेश बक्षी – किस्से ऊपर किस्सा । लक्ष्मीकान्त वर्मा – खाली कुर्सी की आत्मा । ओंकार ' राही ' – शव - यात्रा । मणि मधुकर – सफेद मेमने।

: अध्याय - ४ :

-:: कथ्य: विकास एवं रचना प्रक्रिया ::-

उपन्यास का कथ्य समाज और व्यक्ति से सम्बन्धित होता है। समाज और व्यक्ति समय के साथ बदलता रहता है और उपन्यासकार युग-चेतना के अनुसार बदलते व्यक्ति और समाज को कथ्य चुनकर अभिव्यक्त करता है। समाज में सतत् परिवर्तन होता रहता है। इससे युग-सत्य शाश्वत् सत्य नहीं है क्यों कि वह युगानुरूप परिवर्तित होता रहता है। युग-सत्य का निर्णय स्वयं युग की मांग पर निर्भर होता है। प्रत्येक युग का साहित्य अपने समय के युग-सत्य की अभिव्यक्ति देने के कारण तत्कालीन युग की सारभूत चेतना का प्रतीक होता है। उपन्यास, साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा युग और समाज सापेक्ष अधिक होता है यही कारण है कि युग की आवश्यकता के अनुरूप उसका कथ्य परिवर्तित होता चलता है। इस तरह वह युग-धर्म और युग -सत्य का प्रतीक बन जाता है।

उपन्यास का कथ्य आज पूर्ण विकास को प्राप्त हो रहा है किन्तु विकास की यह स्थिति एक दिन में संभव नहीं हुई है, वह तो विकास की सतत् प्रक्रिया का सहज परिणाम है। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों द्वारा निर्मित पृष्ठभूमि में ही औपन्यासिक कथ्य विकसित हुआ है। प्रत्येक परिस्थिति अपने पूर्ववर्ती परिस्थिति का परिणाम होती है। इस लिए आधुनिक औपन्यासिक कथ्य के विकास को स्पष्ट करने के लिए आलोच्य-कालीन परिस्थितियों के चित्रण के साथ-साथ पूर्ववर्ती स्थिति के प्रसंग पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

राजनीतिक परिस्थितियां :- किसी भी देश या युग की राजनीति वहां के समाज से पृथक् रह कर स्वयं में पूर्ण सत्ता का रूप नहीं धारण कर सकती क्यों कि राजनीति सामाजिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व ही नहीं करती अपितु उसका पुणयन भी करती है। इसी कारण उपन्यासकार युग की राजनीति से प्रभावित होता है और ऐसी रचनाएं भी करता है जो समाज का मार्ग-दर्शन भी करती है।

युग की सामयिक राजनीति किसी न किसी रूप में तत्कालीन औपन्यासिक कथ्य को अवश्य ही प्रभावित करती है । भारत में ब्रिटिश राज्य तथा उसके उन्मूलन के पश्चात् स्वतंत्र भारत का इतिहास आलोच्यकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का लेखा जोखा है । एक प्रकार से ब्रिटिश शासन सामन्तकालीन व्यवस्था के विघटन के बाद उस साम्राज्यवादी व्यवस्था का श्रीगणेश था जो उससे कहीं अधिक विकास शील प्रतीत होती थी। आधुनिक युग-चेतना के परिणाम स्वरूप भारतीयों में ब्रिटिश शासन के शोषण के प्रति विद्रोह की भावना स्फुरित होने लगी । इस व्यवस्था के प्रति राजनीतिक संघर्ष के तीन मुद्दे थे । एक ओर साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था के प्रति राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे थे और दूसरी ओर कृषक वर्ग जमींदारों के शोषण के विरुद्ध तीव्र अभियान चला रहा था । तीसरी ओर पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध मजदूर वर्ग उठ खड़ा हुआ था । इन तीनों विरोधी शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष ने युग की राजनीति को जटिल बना दिया ।

तत्कालीन युग में कांग्रेस ही एक मात्र राष्ट्रीय संस्था थी जो स्वतंत्रता-न्दोलन का नेतृत्व कर रही थी । गांधी जी ने तत्कालीन राजनीतिक संघर्ष को नया मोड़ दिया तथा राष्ट्रीय संघर्ष और राष्ट्रीय सेवा-धर्म को सक्रिय आन्दोलन का रूप प्रदान किया । विवेच्यकालीन परिस्थितियों को जन्म देने वाली घटनाओं में चम्पारन किसान आन्दोलन (सन् १९१७), जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड (सन् १९१९), कांग्रेस के दोनों दलों की एकता (सन् १९१६) हिन्दू-मुस्लिम समझौता, रूसी क्रान्ति (२५ अक्टूबर १९१७), गांधी जी का असहयोग आन्दोलन (सन् १९२१), उत्तर प्रदेश किसान आन्दोलन (१९२३-२४), साम्यवादी दल की स्थापना, अखिल भारतीय मजदूर संघ उसका आधिपत्य (सन् १९२०), गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया एक्ट (१९३५) आदि प्रमुख घटनाएं घटीं ।

सन् १९३७ में स्वायत्त शासन की स्थापना हुई । किन्तु भारतीय इससे सन्तुष्ट नहीं हो सके । सन् १९४२ में क्रिप्स योजना प्रस्तुत हुई जो किसी भी दल को मान्य नहीं हुई । सन् १९४२ का भारतीय राष्ट्रीय इतिहास में सर्वाधिक महत्व है । क्रिप्स योजना के विफल हो जाने के कारण देश में असन्तोष व्याप्त हो गया

८ अगस्त, १९४२ को बम्बई में अंग्रेजों के लिए भारत छोड़ो प्रस्ताव पास हुआ था। गांधी जी ने " करो या मरो " का मूल मंत्र जनता को प्रदान किया था। यह स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये जनता का प्रथम प्रयास था। इसने यह स्पष्ट कर दिया कि जनता बहुत आगे बढ़ गई है, कार्यकर्ता-गण पीछे रह गये हैं। क्रिप्स - योजना की विफलता के उपरान्त संघर्ष आगे बढ़ता गया। सन् १९४६ में कैबिनेट मिशन भारत -विभाजन की रूपरेखा साथ लाया और १५ अगस्त को भारत की एकता खण्डित हो गई और फूट के तत्वों को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। अहिंसा के स्थान पर हिंसा का बोल बाला हो गया। भारत, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच बंट कर रह गया।

स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिस्थितियां :- स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय इतिहास का नव-युग आरंभ हुआ जब राजनीतिक चेतना का स्वरूप विदेशी सरकार के प्रति घृणा और विद्रोह प्रदर्शन करना न हो कर राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास करना बन गया। राष्ट्र को सुदृढ़ एवं उन्नतिशील बनाने के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन प्रारंभ हो गया। स्थान-स्थान पर नये स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय आदि स्थापित किये गये। आज यहां की जनता की सामाजिक चेतना सजग हो चुकी है। सरकार तथा अन्य अनेक सामाजिक संस्थाएं प्रत्येक वर्ग के सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान के लिए प्रयत्नशील हैं। सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित कर देश की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति की है।

राष्ट्रीय उन्नति के लिए अनेक प्रयास किये जाने पर भी अभी तक देश की सामाजिक-आर्थिक स्थिति सन्तोषप्रद नहीं कही जा सकती। आज शोषण का रूप परिवर्तित हो गया है पर उसका क्रम सतत् क्रियाशील है। आन्तरिक दलबन्दियों और शक्तियों के कारण देश की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो रहा है। स्वतंत्र भारत में शोषण की पुरानी पद्धतियां नये रूप में, नये नाम से कार्यरत हैं। नेतागण,पुलिस-पदाधिकारी, शासन के अन्य कार्यकर्तागण अपने-अपने स्वार्थ-साधन में लिप्त हैं। मुनाफाखोरी, घूसखोरी और कालाबाजार आदि प्रवृत्तियां चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी हैं।

राजनीतिक परिस्थितियां और आधुनिक उपन्यासों का कथ्य :

राजनीतिक संघर्षों का प्रभाव उपन्यासकार पर भी पड़ता है। राजनीतिज्ञ जो कार्य राजनीति के क्षेत्र में करता है, वही कार्य उपन्यासकार साहित्य के क्षेत्र में करता है। यही कारण है कि उसके उपन्यासों का कथ्य तत्कालीन राजनीति से प्रभावित होता है। महात्मागांधी राजनीति के क्षेत्र में राजनीति और समाज की समस्याओं को एक रूप कर, उनके निवारणार्थ संघर्ष कर रहे थे और प्रेमचन्द इन्हीं संघर्षों को अपनी औपन्यासिक कृतियों के लिए कथ्य चुनकर अभिव्यक्त कर रहे थे। विदेशी शासन को समाप्त करने के लिए सर्वप्रथम देश की आन्तरिक शोषक-शक्तियों का समापन आवश्यक था क्योंकि विदेशी शासन इन पर ही आधारित था। इसीकारण आर्थिक कष्टों से संत्रस्त अपार जन-समूह की सम्पूर्ण यातनाएं उनकी रचनाओं के कथ्य-रूप मेंअभिव्यक्त हुई हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास " प्रेमाश्रम " के कथ्य में कृषक-वर्ग की समस्याओं के साथ तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं को भी स्थान दिया गया है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या भी स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती है (" रंगभूमि " में देश की विभिन्न राजनीतिक घटनाओं का चित्रण करते हुए अहिंसक क्रान्ति का समर्थन किया गया है। इसी प्रकार प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों " कर्म भूमि ", कायाकल्प ", गबन", " गोदान" और मंगल सूत्र " आदि के कथ्य में भी राजनीतिक परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में राष्ट्रीय आन्दोलन, किसान आन्दोलन और मजदूर आन्दोलन अपनी सीमा पर पहुंच गये थे। भारत स्वतंत्र भी हुआ पर कुछ गिने-चुने उपन्यासों के कथ्य में ही इन राजनीतिक गतिविधियों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द परवर्ती युग में यशपाल के उपन्यास "दादा कामरेड","देश-द्रोही " "पार्टी कामरेड ;" मनुष्य के रूप " तथा" झूठा सच" (दो भाग) आदि के कथ्य में राजनीतिक दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित हुआ है। " झूठा सच " यशपाल का एक प्रसिद्ध बृहत्काय उपन्यास है। इसके प्रथम भाग में विभाजन के पूर्व पंजाब का चित्रण

है और द्वितीय भाग में विभाजन के उपरान्त हिन्दू-मुस्लिम भावना से पीड़ित जनता का। सन् १९४६ से १९५६ तक की अवधि की समस्याओं और गतिविधियों का वर्णन ही " झूठा सच " का कथ्य है। इसमें साम्प्रदायिक संघर्ष, राजनीति और शासन-व्यवस्था में फैली भ्रष्टाचार की भावना, आम चुनाव, काश्मीर पर आक्रमण, गांधी हत्याकांड योजना आयोग के अतिरिक्त काकोरी कान्सपिरेसी केस के क्रान्तिकारियों के अनशन तथा नाविक क्रान्ति का उल्लेख है।

राजनीतिक दृष्टिकोण से प्रभावित कथ्य को लेकर लिखे गये उपन्यासों में रामेश्वर शुक्ल " अंचल " कृत " चढ़ती धूप ", नई इमारत " और " उल्का " को भी नामोल्लिखित किया जा सकता है। " चढ़ती धूप " में सन् १९३२ के आन्दोलन के बाद और विभिन्न प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रिमण्डल की स्थापना के बीच की कालावधि को कथ्य बनाया गया है। इसमें समाजवादी चेतना के विकास के साथ-साथ गांधीवाद की असफलता का भी चित्रण किया गया है। " नई इमारत " में सन् १९४२ की क्रान्ति का चित्रण करते हुए सांप्रदायिक एकता और समाजवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है। " उल्का " उपन्यास का कथ्य मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर नारी समस्याओं का विवेचन है।

रांगेय राघव कृत " घरौंदे ;" विषाद मठ ;" हुजूर " और " सीधा सादा रास्ता " प्रभृति उपन्यासों का कथ्य राजनीतिक दृष्टिकोण से प्रेरित है। " घरौंदे " में द्वितीय महायुद्ध के प्रारंभिक वर्षों की राजनीतिक निष्क्रियता का चित्रण हुआ है। " विषाद मठ " में बंगाल के दुर्भिक्ष और पूंजीपतियों के शोषण का यथार्थ चित्रण किया गया है। " हुजूर " उपन्यास के कथ्य के अन्तर्गत सन् १९३९-५१ तक की राजनीतिक गतिविधियों - असहयोग आन्दोलन, स्वतंत्रता प्राप्ति, प्रथम आम चुनाव तथा कांग्रेस का कार्यविधियों के चित्रण को अभिव्यक्ति मिली है। इसमें लेखक की मार्क्सवादी विचारधारा प्रस्फुरित हुई है। " सीधा सादा रास्ता " के कथ्य समाजवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय आन्दोलनों का चित्रण है।

भगवती चरण वर्मा कृत " टेढ़े मेढ़े रास्ते " और अमृतलाल नागर कृत " महाकाल " उपन्यासों का कथ्य भी स्वतंत्रता-पूर्व की राजनीति से सम्बद्ध है। " टेढ़े मेढ़े रास्ते " में १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन की कथा है जिसमें गांधीवादी, समाजवादी तथा आतंकवादी आदि विचारधाराओं को विभिन्न पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है।

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर रचे गये उपन्यासों में यद्यपि राजनीति गौण है फिर भी वह इनमें प्रसंगवश उभर आई है। जैनेन्द्र कृत " सुनीता " " सुखदा " और "विवर्त " आदि उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं जिनमें क्रांतिकारियों की गतिविधियों का निरूपण किया गया है। "कल्याणी की कथा में राजनीति का हल्का सा संकेत है। इस उपन्यास का कथ्य सन् १९३५-३६ की " कांग्रेस-मिनिस्ट्री " की पृष्ठभूमि पर आधारित है। " जय वर्धन " में संभवत: " नेहरू जी के मंत्रित्वकाल " की राजनीति का संकेत है । जैनेन्द्र के उपन्यासों में चित्रित त्रिकोण प्रेम की समस्या में क्रांतिकारियों की विभिन्न भाव भूमियों का चित्रण प्राप्त होता है। इसी प्रकार इलाचंद जोशी के " संन्यासी "; निर्वासित ", " मुक्ति पथ " तथा जिप्सी आदि उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत गांधीवाद का विरोध, महायुद्ध का देश पर प्रभाव, बंगाल दुर्भिक्ष का प्रभाव, महायुद्ध की समाप्ति, अणुबम के आविष्कार से तृतीय महायुद्ध का संकेत, सर्वोदय की भावना, जनकल्याण की भावना से प्रेरित "जन संस्कृति समन्वय केन्द्र " की स्थापना का प्रयत्न आदि के चित्रण को स्थान दिया गया है।

अज्ञेय कृत " शेखर: एक जीवनी " उपन्यास का कथ्य शेखर का अपने विगत जीवन का प्रत्यवलोकन ही है जिसके अन्तर्गत प्रथम विश्वयुद्ध, जलियांवाला बाग का हत्याकांड, प्रथम असहयोग आन्दोलन, लाहौर कांग्रेस का अधिवेशन, चटगांव शस्त्रागार कांड और सन् १९३१ के आन्दोलन का संकेत मिलता है। इस उपन्यास में राजनीति गौण है, शेखर का मनोवैज्ञानिक चित्रण ही प्रधान है।

स्वातंत्र्योत्तर कालीन उपन्यासों के कथ्य अपेक्षा कृत राजनीतिक

परिस्थितियों से अधिक प्रभावित हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत की परिस्थितियाँ अत्यन्त विषम, विकट, निर्मम तथा आत्म-प्रवंचना से पूर्ण हैं जिनसे आधुनिक औपन्यासिक कथ्य प्रभावित हुआ है । आत्म-प्रवंचना का यह युग मानवमूल्यों के निर्मम विघटन और जीवन-व्यापी कटुता-कुण्ठा को लिए अपनी सम्पूर्ण प्रकृति-विकृति के साथ हिन्दी-उपन्यास में प्रतिफलित तो हुआ ही, उसे नया रंग, रूप और आकार भी देता रहा । इस प्रकार स्वतंत्रता ने भारतीय साहित्य के लिए सर्वथा नये सन्दर्भों के नये दरवाजे उद्घाटित किये । पूर्ववर्ती उपन्यासकार स्वयं को इस नयी सोच से नहीं जोड़ पाये और वे पीछे रह गए । प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धों के मध्यवर्ती समय में मानव चेतना में जो वर्तमान परिवर्तन आये थे उनके कारण आस्थाओं के स्वरूप टूटे, संस्कारों की विवशता सामने आयी, सम्बन्धों का मुंह छंट गया, विश्वास की जड़ें उखड़ गईं । इन बातों के प्रभाव से भारतीय जनमानस बाहर से तो अवश्य प्रभावित हुआ, किन्तु उसका आन्तरिक रूप पूर्णतया प्रभावित नहीं हो सका था । यही कारण था कि इन दो युद्धों की दाहक स्थिति में संतप्त विश्व के अन्य देशों में तो सशक्त रचनायें प्रस्तुत की जा रहीं थीं, लेकिन भारतीय लेखक की लेखनी प्रायः अवरुद्ध थी । भारतीय अन्तरात्मा १९४७ की आजादी और विभाजन के अभिशाप की पीड़ाओं से झंकृत हो उठी । लाखों लोग बे घर हो गए, मार-काट हुई, मानव-सम्बन्धों में एक अभूतपूर्व विकृति आई । शरीर बेचकर पैसा कमाने वाली वेश्या कहलाई, जानबूझ कर पापवृत्ति की ओर ले जाने वाली कलंकिनी कहलाई, पत्नी और प्रेमिकाएं विवश हो कर शरीर-हत्या के लिए अभिशप्त हुईं । उनके प्रति गहन सहानुभूति और परिणाम में कुछ न कर पा सकने की असमर्थता ने सामूहिक शक्ति-हीनता का वातावरण बना दिया और इस युग के सामने एक टूटता हुआ पुराना " मिथक " स्पष्टतया दृष्टिगोचर होने लगा । तभी जैनेन्द्र की दार्शनिक सोच, अज्ञेय के प्रयोग, यशपाल की प्रगतिशीलता और जोशी का आत्म मंथन बेकार और बेमानी लगने लगा । सम्पूर्ण संदर्भ बदले, परम्परायें बदलीं और नये उपन्यास के लिए एक नई मैदान भूमि दृष्टिगत होने लगी । इस प्रकार

युग के बदलते हुए स्वरूप ने प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य को पूर्णतया प्रभावित किया। उनमें अब " वर्ग " पात्रों " के स्थान पर " व्यक्ति " पात्रों " को महत्व दिया जाने लगा क्यों कि युगीन चेतना के वर्गगत् मूल्य टूट चुके थे और उनके स्थान पर वैयक्तिक मूल्यों का धीरे-धीरे प्रसार बढ़ रहा था। इन स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिस्थितियों को अपने कथ्य के अन्तर्गत् आत्मसात् कर रचित उपन्यासों में भगवतीचरण वर्मा कृत " भूले बिसरे चित्र ;" प्रताप नारायण श्रीवास्तव कृत " बयालिस " देवेन्द्र सत्यार्थी कृत " कठपुतली " और लक्ष्मी नारायण लाल कृत " रूपाजीवा " आदि के अतिरिक्त मन्मथ नाथ गुप्त कृत " जागरण "" रैन अंधेरी " "रंग मंच," अपराजिता," "प्रतिक्रिया" और "सागर-संगम" आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

देश में फैली अराजकता, भ्रष्टाचार और अनैतिकता का छिद्रान्वेषण करते हुये तत्कालीन शासन-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था के चित्रण को कथ्य रूप में अभिव्यक्त करने वाले उपन्यासों में अमृत राय कृत " बीज ," राजेन्द्र यादव कृत "उखड़े हुये लोग ", भगवतीचरण वर्मा कृत "सामर्थ्य और सीमा " तथा उपेन्द्रनाथ अश्क कृत" बड़ी-बड़ी आँखें " दृष्टव्य हैं। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों के कथ्य में भी राजनीति का स्वर मुखरित हुआ है। नागार्जुन रचित" रतिनाथ की चाची", "बलचनमा" ," नयी पौध"," बाबा बटेसर नाथ,"" दुखमोचन ;" वरुण के बेटे ; "हीरक जयन्ती" तथा" उग्रतारा " आदि उपन्यासों के कथ्य में उनकी राजनीतिक विचारधारा का प्रतिफलन हुआ है। इन उपन्यासों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों के आधार पर नवीन समाजवादी चेतना की सफल अभिव्यक्ति हुई है। इनमें लोक-जीवन, समाज और राजनीति समन्वित रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। भैरव प्रसाद गुप्त कृत"मशाल,"गंगा मैया" तथा" सती मैया का चौरा " भी इसी परम्परा के अन्तर्गत् हैं। अमृतलाल नागर के उपन्यास " बूंद और समुद्र" तथा नागार्जुन के " दुखमोचन " के कथ्य सर्वोदयी भावना से अनुप्राणित हैं। फणीश्वर नाथ रेणु कृत" मैला आंचल ;" परती : परिकथा" के कथ्य में राजनीतिक आन्दोलनों के अन्तर्गत् लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित हुआ है।

सामाजिक परिस्थितियां :- उपन्यास समाज का चित्र है । समाज की आवश्यकताएं उसके कथ्य को प्रभावित करती हैं । युग की आवश्यकताएं समयानुकूल परिवर्तित होती हैं । समाज परिवर्तित होता है । विचार धारायें बदलती हैं । समाज की आधार भूत संस्थाओं की मूल चेतना नवीन रूप स्वीकार नहीं करती क्योंकि उसकी जड़े जीवन में बहुत गहराई तक जम चुकी होती हैं । आधुनिक समाज का संगठन मध्य-युगीन सामाजिक- व्यवस्था का विकसित रूप है । मध्य-कालीन समाज संगठन के आधार -वर्ण-व्यवस्था तथा संयुक्त परिवार-प्रथा से सम्बद्ध संस्थायें अब विघटित हो चली हैं । आधुनिक सामाजिक-संगठन के स्वरूप को जानने के लिए पूर्ववर्ती समाज-व्यवस्था का ज्ञान होना आवश्यक है ।

वर्ण-व्यवस्था :- मध्य-युग में भारतीय - समाज ऊँच-नीच की श्रेणी में विभक्त था । उच्चवर्ग निम्नवर्ग के साथ दुर्व्यवहार एवं पाशविक अत्याचार करता था । निम्नवर्ग निरन्तर उच्चवर्ग के द्वारा शोषित होता रहा । आधुनिक - युग में वर्णव्यवस्था और उससे सम्बद्ध अन्य बहुत सी वस्तुओं के आधार भूत स्तम्भों पर प्रहार किया गया तथा उनके टूटते ही वर्ण-व्यवस्था भी टूट चली । अब सामाजिक- संगठन को लेकर दो दृष्टिकोणों में संघर्ष प्रारंभ हो गया है । एक ओर वर्ग-संगठन को आधारभूत इकाई प्राचीन हिन्दू विचार हैं और दूसरी ओर पाश्चात्य विचार धारा से प्रभाव-ग्रहण करने वाले वे लोग हैं जो व्यक्तिवाद पर बल देते हैं, 'व्यक्ति' को वर्ग से ऊपर प्रतिष्ठित करते हैं । अब प्रश्न और संघर्ष, वर्ग और व्यक्ति के अधिकारों के बीच समझौते का है । आज शिक्षा के प्रसार, बौद्धिक दृष्टिकोण वह एवं पारस्परिक सम्पर्कों के कारण पारस्परिक वर्ग-वैमनस्य की दीवारें टूट चली हैं । ग्रामीण जीवन में अंधविश्वास और आस्था की जड़ें अधिक गहरी तक जमी होने से वहाँ आज भी वर्ण-व्यवस्था विद्यमान हैं । सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तन के लिए आर्थिक प्रणाली में परिवर्तन आवश्यक है । सामाजिक संगठन की दृष्टि से भारतीय समाज आज भी संक्रमण की स्थिति में है ।

संयुक्त परिवार-प्रथा :- संयुक्त परिवार -प्रथा के अन्तर्गत एक परिवार के सभी व्यक्ति,पीढ़ियों तक एक ही कुटुम्ब में रहते थे । उनके सभी कार्य संयुक्त रूप में होते थे । इसमें पारिवारिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व परिवार के वयोवृद्ध

पुरुष पर होता था । वह व्यक्ति परिवार की सम्पूर्ण आय का उपयोग सभी सदस्यों के लिए करता था । इसमें आर्थिक ढांचा परम्परापैदी होता था । संयुक्त परिवार में प्रत्येक सदस्य की सुरक्षा और सुविधा का ध्यान रखा जाता था । इन समस्त अच्छाइयों के रहते हुए भी संयुक्त परिवार प्रथा में व्यक्ति का व्यक्तिगत विकास अवरुद्ध था । इसे आश्रय, जीवन की सुविधाएं एवं सुरक्षा स्वयं प्राप्त हो जाती थी इस लिए उसमें कर्मण्यता, आत्मनिर्भरता तथा उत्तरदायित्व अनुभव करने की शक्ति का अभाव रहता था । परिवार के प्रत्येक सदस्य में समानता की प्रवृत्ति रखी जाने के कारण उनमें पारस्परिक ईर्ष्या-कलह और वैमनस्य की भावना भीतर-ही भीतर पनपती रहती थी ।

विवेच्य युग में नवीन चेतना के आलोक में परम्परागत भारतीय संयुक्त परिवार का स्वरूप छिन्न-भिन्न हो गया । आर्थिक एवं पारस्परिक व्यवहार के सम्बन्ध में नयी-नयी समस्याएं उद्भूत हो गईं । पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित आधुनिक शिक्षित व्यक्ति संयुक्त परिवार के प्रतिबंधों, मर्यादाओं एवं अन्य आस्थाओं से मुक्ति पाने के लिए छटपटाने लगा और पारिवारिक गठन में उसकी व्यक्तिगत रुचियों का प्राधान्य होने लगा । पारिवारिक विघटन के परिणाम-स्वरूप उसके दो मूल स्तंभों पुरुष और स्त्रियों में भी मानसिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा । व्यक्ति - स्वातंत्र्य की समस्याओं का बोल बाला हो गया । सुधारवादी दृष्टिकोण के परिणाम-स्वरूप पर्दा-प्रथा का विरोध, स्त्री-शिक्षा का समर्थन और विधवा -विवाह को मान्यता मिली और नारी-स्वातंत्र्य का प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ । नगरों में संयुक्त परिवार की प्रथा बहुत कुछ टूट चुकी है । किसी विशेष समारोह में ही परिवार के सभी व्यक्ति इकट्ठे हो पाते हैं ।

<u>आधुनिक समाज में व्यक्ति की स्थिति</u> :- आधुनिक युग में व्यक्ति का स्थान समाज की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गया है । एक दिन व्यक्ति समाज के प्रति पूर्ण समर्पित था । समाज से अलग उसका कोई मूल्य नहीं था । किन्तु जैसे ही जैसे मनुष्य का सामाजिक जीवन परिवर्तित होता गया वैसे ही वैसे समाज की मर्यादायें टूटती गईं, मूल्य विघटित होते गये । विघटन की इस स्थिति में

अर्थ-व्यवस्था, राज्य, व्यक्ति का आचरण, पारिवारिक धार्मिक भावना, नैतिकता के मानदण्ड तथा शिक्षा-व्यवस्था सभी को प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर युग में समाज का स्वरूप तेजी से विघटित हो रहा है। व्यक्ति उसकी परम्पराओं एवं रूढ़ियों को ठुकरा रहा है। भविष्य की आकांक्षाओं तथा संभावनाओं के प्रति सचेष्ट आधुनिक व्यक्ति के समक्ष भारतीय संस्कृति, धर्म और नैतिकता है जिसमें जीवन की प्रत्येक समस्या, प्रत्येक प्रश्न और मूल्यांकन की कसौटी है। दूसरी ओर तेजी से फैलती पाश्चात्य सभ्यता है जहां प्रत्येक वस्तु का महत्व उसकी उपयोगिता में है। भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण अर्थ की प्रधानता है। इस प्रकार वह नई और पुरानी दो संस्कृतियों के बीच संघर्षरत है। प्राचीन जीवन-मूल्य समय के साथ निरर्थक सिद्ध हो रहे हैं किन्तु नये मूल्यों की स्थापना वह कर नहीं पा रहा है। प्राचीन आदर्श तो खण्डित हो गये हैं किन्तु नये आदर्शों का निर्माण नहीं किया जा सका है। संघर्ष और अनिश्चितता की स्थिति में फंसा व्यक्ति कोई भी ठोस कदम नहीं उठा पा रहा है।

समाज की विघटनशील प्राचीन एवं नवनिर्मित व्यवस्थाओं में भी संघर्ष की स्थिति है। नवनिर्मित व्यवस्था में नये वर्गों का उदय हो रहा है। प्राचीन सत्ताधारी वर्ग परिस्थितियों के साथ शक्तिहीन हो रहे हैं तथा नयी उभरने वाली शक्तियां नये वर्गों को जन्म दे रही हैं। इस लिए विवेच्यकालीन समाज के विभिन्न वर्गों का संक्षिप्त परिचय देना भी आवश्यक हो जाता है।

<u>पूंजीपति वर्ग</u> :- पूंजीपति वर्ग का जन्म आधुनिक आर्थिक व्यवस्था का परिणाम है। द्वितीय महायुद्ध के बाद औद्योगिक व्यवस्था के फलस्वरूप इस वर्ग का महत्व तथा प्रभाव और भी बढ़ गया। आर्थिक दृष्टि से यह वर्ग सर्वाधिक शक्तिशाली है। एक ओर यह देश की शासन व्यवस्था में सहयोग देता है दूसरी ओर आर्थिक साधनों पर नियंत्रण रख कर यहां की सामाजिक व्यवस्था पर भी अधिकार जमाने का प्रयास करता है। यह वर्ग देश के हित के लिए नहीं, अपितु अपने आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए ही औद्योगिक विकास में प्रयत्नशील होता है। इस प्रकार इसकी राष्ट्रीयता औद्योगिक सीमा तक ही सीमित रहती है।

मध्यवर्ग :- मध्यवर्ग की स्थिति पूंजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग के बीच की स्थिति है। इसका विकास एक ऐसे बुद्धिजीवी वर्ग के रूप में हुआ जो परिश्रम नहीं करता और उत्पादन शक्ति से भी वंचित रहता है।

मध्यवर्ग नये और पुराने " के संघर्ष के बीच सांस ले रहा है। प्राचीन परम्परागत रिवाजों, मान्यताओं एवं मर्यादाओं में जकड़ा यह वर्ग प्राचीन संस्कृति से जुड़ा है। आधुनिक विचारों से आकर्षित हो कर भी, उनको स्वीकारने वाली आधुनिक सामाजिक और वैज्ञानिक चेतना का उसमें अभाव है। आत्म-निर्भरता के अभाव में वह अपने संकल्पों को पूर्ण नहीं कर पाता। इस वर्ग में अपने परिवेश के प्रति तीव्र विद्रोह की भावना निहित है। एक ओर वह चाहते हुये भी अभिजात वर्ग से मिल नहीं पा रहा है तथा दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग के निकट होकर भी उससे घृणा करता है। इसी कारण इस वर्ग में अधिक असन्तोष व्याप्त है। वह अपनी असफलताओं और विवशताओं से क्षुब्ध, समाज के ध्वंस में अपनी मुक्ति और शांति खोजता है। वह समाज से विद्रोह करता है, संघर्ष में टूटता है और फिर टूट कर अपनी सीमाओं में लौटता है। वह समाज की समस्याओं तथा विचारधाराओं का प्रतीक और प्रवर्तक होता है।

मध्यवर्ग में नारी की स्थिति अधिक संघर्षपूर्ण होने के कारण दयनीय अधिक है। समय के साथ युग-सत्य एवं युग-धर्म बदलता है किन्तु सब कुछ बदलने के बाद भी नारी के प्रति धर्म का, समाज का, तथा पुरुष का दृष्टिकोण नहीं बदला। परिस्थिति वश वह घर से बाहर निकलती है। बाहर का संघर्ष उसे तोड़ता है, वह टूट कर फिर घर की ओर लौटती है और इस प्रकार टूट-टूट कर, जुड़ने में वह कहीं की नहीं रह जाती।

कृषक-वर्ग :- भारत कृषकों का देश है। किसान गांवों में बसता है तथा खेती कर अपना जीवन-यापन करता है। अंग्रेजी शासन व्यवस्था में उसकी दशा अधिक शोचनीय थी। उसे भारी लगान के साथ ही जमींदारों के यहां बेगार भी करनी पड़ती थी। धर्म, बिरादरी और समाज से वह भयभीत था। ईश्वर और भाग्य के सहारे वह प्रत्येक अत्याचार को मौन रह कर सहन कर रहा था। जीवन-यापन के लिए ऊंची दरों पर ऋण लेता और न अदा कर पाने की स्थिति

में भूमि से अपदस्थ हो कर मजदूर बन जाने पर विवश हो जाता। गांधी जी ने कृषकों के उद्धार का प्रयास किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी उन्मूलन के साथ उनकी स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत गांवों के पुनर्निमार्ण की व्यवस्था है।

श्रमिक वर्ग :- अंग्रेजी शासन की आर्थिक व्यवस्था तथा जमींदारी व्यवस्थाने श्रमिक वर्ग को जन्म दिया। भूमि से अपदस्थ कृषक वर्ग मजदूरों की श्रेणी में आने लगा। औद्योगिक विकास के इस युग में व्यक्ति जीविकोपार्जन हेतु मजदूर बनने लगा। स्वातंत्र्योत्तर युग का मजदूर वर्ग पूंजी पतियों की दासता और शोषण से पूर्णतया मुक्त व अपने अधिकारों के प्रति सजग है। यह समाज का सर्वाधिक संगठन वर्ग है। मजदूर - संघ इस वर्ग के हितार्थ कार्य करता है। भारतीय विधान के अन्तर्गत भी इस वर्ग को विशेष सुविधायें प्रदान की गई हैं। सामाजिक स्तर पर आज भी यह वर्ग उन्नति नहीं कर सका है। आज भी इसमें रूढ़ियां, अंध-विश्वास तथा कुरीतियां हैं। इस वर्ग की नारी भी स्वावलंबिनी है तथा उसे पुरूष के समान अधिकार प्राप्त हैं।

इन वर्गों के अतिरिक्त आज कल नेता-गण, सरकारी पदाधिकारी तथा अन्य सत्ताधिकारियों का अपना - अपना महत्व स्थापित हो गया है।

सामाजिक क्रान्तियां :- भारत एक लोकतंत्रात्मक देश है। लोकतंत्र लोकतंत्र की सफलता के लिए भारतीय संविधान के द्वारा अछूत, दलित, पिछड़े हुये वर्ग तथा नारी वर्ग को विशेषाधिकार तथा सुविधाएं दी जा रही हैं। समाज के सभी वर्ग के लोगों को अपनी योग्यतानुसार उच्च पद प्राप्त करने की सुविधा है। जन-सामान्य में व्याप्त संकीर्णता तथा स्वार्थपरता को दूर करने के लिए शिक्षा का प्रचार तथा अन्य रचनात्मक कार्य किये जा रहे हैं।

यद्यपि देश के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं किन्तु फिर भी लोगों की आर्थिक स्थिति असन्तोषजनक ही है। इसी लिए सामाजिक विकास में भी गतिरोध की स्थिति दृष्टिगत होती है। आज मनुष्य में स्वार्थ की भावना

पृथक हो गई है। देश की शासन-व्यवस्था में भी स्वार्थी प्रतिनिधियों का प्रवेश हो गया है। व्यक्तिगत स्वार्थ ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार को स्थान दिया है। इसी लिए व्यक्ति युग-परिस्थितियों के बीच, समाज और राष्ट्रीय समस्याओं से संघर्ष करता हुआ, अपनी चेतना का संस्कार करता जा रहा है। वह नये युगानुरूप जीवन-मूल्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा है।

सामाजिक परिस्थितियाँ और विवेच्य कालीन उपन्यासों का कथ्य :

उपन्यास समाज का चित्र है। समाज की आवश्यकताएं उसके कथ्य का स्वरूप-निर्धारण करती है। हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में युग की सुधारवादी प्रवृत्ति अंकित होती हैं। इन उपन्यासकारों ने समाज के दुर्गुणों की आलोचना एवं नैतिकता का आश्रय लेकर सुधारों की बात की है। यह परम्परा प्रेमचन्द के "सेवासदन" और "गबन" से होती हुई "प्रेत बोलते हैं" तक में चली आई हैं। इन उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत असत् पर सत् की विजय प्रदर्शित करते हुए आदर्शवाद की स्थापना की गई है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत कृषक जीवन की विभिन्न समस्याओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। "गोदान" तो कृषक जीवन का महाकाव्य ही माना जाता है। विवेच्य युग में वृन्दावनलाल वर्मा कृत "अचल मेरा कोई"; "अमर बेल", लक्ष्मीनारायण लाल कृत "बया का घोंसला और सांप", नागार्जुन कृत "रतिनाथ की चाची"; "बलचनमा"; "दुखमोचन", "बाबा बटेसरनाथ" तथा फणीश्वरनाथ रेणु कृत "मैला आंचल" तथा "परती : परिकथा" आदि उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की विभिन्न समस्याओं को कथ्य चुन कर अभिव्यक्त की गई है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में अधिकांश उपन्यासों का कथ्य नारी-समस्या को अभिव्यक्त करता है। यह युग वास्तविक अर्थों में मुक्ति-आन्दोलनों का युग कहा जा सकता है। प्राचीन नारी आदर्श आज टूट रहे हैं। सदियों से पुरुष की दासता में पददलित नारी आज प्रायः स्वतंत्र हो गई है। अब स्त्रियों ने आर्थिक स्तर पर भी स्वयं उत्तरदायित्व संभाल लिया है। जीविकोपार्जन हेतु स्वयं साधन-संचय

करने वाली स्त्रियों की मानसिकता में शनैः शनैः विशाल परिवर्तन हुआ जिसके परिणाम स्वरूप इन्होंने स्वतंत्र अधिकारों की मांग की तथा जीवन और चिंतन के स्तर पर पुरुषों के समान ही स्वयं को प्रस्तुत करने की चेष्टा की । निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी, राजेन्द्र यादव, उषा प्रियंवदा, शिवानी एवं कृष्णा सोबती आदि आधुनिक उपन्यासकारों के उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत आधुनिक अस्तित्व बोध के प्रति सचेष्ट नारियों एवं उनकी इस नवीन चेतना के परिणाम स्वरूप विघटित परिवारों की स्थिति के चित्रण को स्थान दिया गया है ।

प्रेमचन्द ने नारी की विभिन्न समस्याओं को समाज के व्यापक धरातल पर देखा है किन्तु परवर्ती लेखकों ने सामाजिक समस्या के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया है । इनके उपन्यासों में नारी के अन्तर्मन में व्याप्त संघर्षों को कथ्य चुन कर अभिव्यक्त किया गया है । इनमें यौन पक्ष प्रधान हो गया है और समस्याएं गौण । जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, उपेन्द्रनाथ अश्क, नरेश मेहता, मोहन राकेश, रमेश बक्षी, तथा राजकमल चौधरी के उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत सेक्स की समस्याएं विवेचित हुई हैं । इस स्थिति में नैतिक मूल्यों का खण्डन है और नई स्थापनाएं हैं [2] । सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप स्वच्छन्द प्रेम, व्यभिचार तथा मानसिक कुण्ठाओं का विकास होता है । आधुनिक उपन्यासों में जीवन का इतना ही रूप मिलता है । व्यक्ति असामाजिक हो कर अपने लिए स्वयं एक समस्या बन गया है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का कथ्य अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों के कथ्य से नितान्त भिन्न है । नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं आधुनिक संसार के साथ संबंध जुड़ जाने के कारण भारतीय नवयुवकों ने पाश्चात्य-दर्शन, संस्कृति तथा रहन-सहन को अंगीकार किया जिससे परम्परागत भारतीय मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ । व्यक्ति का सामाजिक मूल्य अब समाप्त हो चुका है । व्यक्ति केवल अपने लिए ही मूल्यवान है । इनमें समाज, धर्म और ईश्वर के प्रति आस्था नहीं रह गई है ।

इन नये भारतीय नवयुवकों ने परम्परागत भारतीय मूल्यों के आगे प्रश्न चिन्ह लगा दिया और उनमें व्यापक परिवर्तन की मांगे की । परिणाम स्वरूप प्रेमचन्दोत्तर लेखकों के भी दो वर्ग हो गये । " एक वर्ग उन लेखकों का है जो अपने क्षेत्र में स्थापित हो चुके हैं और जिनका दृष्टिकोण स्थिर हो गया है - ऐसे लेखक कवि, कथाकार, आलोचक प्रायः आस्तिक मूल्यों में विश्वास करते हैं। उनके जीवन - दर्शन में भेद हो सकता है । ----- ये लेखक और विचारक वर्तमान जीवन के प्रति उदासीन नहीं हैं, पंत, बच्चन, दिनकर आदि कवि और यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृत लाल नागर, अश्क आदि कथाकार वर्तमान युग की विषमताओं के प्रति अत्यन्त जागरूक हैं पर ये न तो इन विषमताओं को आज के जीवन का सम्यक्-रूप मानते हैं और न उन्हें जीवन का सत्य । ये विघटन का चित्रण और विश्लेषण पूर्ण मनोयोग से करते हैं ,परन्तु उसे जीवन की विकृति ही मानते हैं, प्रकृति नहीं । इनके द्वारा विघटन के विश्लेषण में जीवन के संघटन की व्यंजना निश्चित रूप से निहित रहती है - अर्थात् यह व्यंजना कि विघटन आज की दुर्घटना अवश्य है, पर यह जीवन का स्थायी रूप नहीं है[२]। लेखकों का यह प्रथम वर्ग प्राचीन आदर्शों मूल्यों और रूढ़ियों के साथ पूर्ण सत्यता के साथ जुड़ा हुआ था और उससे न मुक्त होना चाहता था न मुक्त होने की बात ही सोचता था ।

दूसरा वर्ग सभ्यता के नवीन उपकरणों को स्वीकार करने के साथ-साथ सम्पूर्ण प्राचीन रूढ़ियों एवं अंध विश्वासों को समाप्त कर जीवन को अपनाने की बात करता था । " उसका तर्क है कि परम्परा-बद्ध होने के कारण इनके (पूर्ववर्ती लेखकों के साहित्य में वर्तमान जीवन का यथार्थ-बोध नहीं है । नये कलाकारों में सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन का तीखा चित्रण करने के लिए प्रबल आग्रह है , मूल्यों पर तीखे व्यंग्य हैं। परन्तु जैसे - जैसे ये कवि-कथाकार स्थापित होते जाते हैं, इनके लेखन में भी सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सद्भाव व्याप्त होता जाता है । नव-लेखन की पहली पीढ़ी के कवि और कथाकार अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर,शमशेर मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, और उधर मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल,राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी

आदि की विघटन की तीव्र वेदना है । ----- परन्तु ये कलाकार भी विघटन का अनुभव चाहे कितनी ही तीव्ररूप में क्यों न करें, उसे जीवन का स्थिर सत्य नहीं मानते । इनकी प्रौढ़ रचनाओं में विघटन की पीड़ा में निहित संघटन की कामना कम-से-कम परोक्ष रूप में अवश्य ही विद्यमान है । जैसे-जैसे इनकी दृष्टि विशद होती जाती है, वैसे-वैसे जीवन-मूल्य भी इनके स्थिर होते जाते हैं : परम्परा का विरोध कम और विकृति को यथावत् स्वीकार करने का आग्रह मन्द होता जाता है । इस प्रकार विकृति अथवा विघटन की यथावत् स्वीकृति वास्तव में कुछ अति आधुनिक लेखकों में ही मिलती है, जो जीवन के विसंवाद का व्यर्थता के दर्शन को - अतिरिक्त आग्रह के साथ ग्रहण करने के लिए व्यग्र हैं [4] । इन उपन्यासकारों के औपन्यासिक-पात्रों ने समाज और धर्म की सभी सीमा रेखाएं पोंछ डाली हैं । इनका अपना एक स्वनिर्मित संसार है जहां ये अपनी असाधारण अस्वाभाविक सी लगने वाली कुछ अशोभनीय हरकतों में लीन, एक नए जीवन दर्शन का अस्पष्ट-भ्रामक रूप निर्धारित करने की असफल चेष्टाएं करते हैं । मनोविज्ञान के नाम पर असंभव, अकथनीय और गोपनीय चित्रों का निर्माण कर उन्हें अभिव्यक्ति दे देते हैं [5] । यद्यपि कि जीवन में असंभव कुछ भी नहीं है फिर भी जीवन के सत्यं, शिवं, सुन्दरम् को लेकर जो सीमाएं हैं उनको अकारण ही बिना किसी प्रयोजन के तोड़ कर घिनौने संसार की रचना कर, पाठकों को देना अवश्य खलता है ।

पाप, पुण्य, सत्-असत् और ग्राह्य-अग्राह्य अवश्य युग-परिस्थिति के संदर्भ में अवश्य विचारणीय हैं परन्तु " सेक्स " को सत्य में ही अनावृत कर उसे "समूह" में रख देना निश्चय ही अनुपयुक्त है । " चित्रलेखा " के कथ्य में पाप-पुण्य की मीमांसा उदार स्तर पर अभिव्यक्त हुई है । " शेखर : एक जीवनी " की शशि अपनी यातना में अमर है किन्तु " डूबते मस्तूल " की रंजना क्या सचमुच " अनुपम है । " डाक बंगला " की इरा " मछली मरी हुई " की " कल्याणी और प्रिया" तथा "बैसाखियों वाली इमारत " की मिस जायस अपने अस्तित्व को लेकर जिस जीवन दर्शन का प्रचार कर रही हैं वह किसी प्रकार भी ग्राह्य नहीं है ।

आज व्यक्ति का व्यक्तित्व इतना अधिक उभर आया है जिसके सामने समाज का प्रश्न बहुत ही हास्यास्पद प्रतीत होता है। "शेखर : एक जीवनी" का "शेखर" व्यक्ति है, समाज नहीं। फिर बायस "बैसाखियों वाली इमारत" में नारी-भाव है। व्यक्ति इतना सजीव है कि कथानक उसी के चारों ओर घूमता है। वह समाज की प्रत्येक मर्यादा और सीमा का अतिक्रमण करने के लिये कटिबद्ध है।

आर्थिक परिस्थितियाँ :- किसी भी देश की आर्थिक परिस्थितियाँ वहाँ के निवासियों की कार्यक्षमता, स्वभाव, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों एवं संस्थाओं पर निर्भर करती हैं। आर्थिक-सम्पन्नता की दृष्टि से भारत आर्थिक साधनों से सम्पन्न होते हुये भी सुदृढ़ नहीं है क्योंकि उनका आर्थिक दृष्टि से विदोहन नहीं किया गया। इस देश का किसान-वर्ग कुछ कठिन परिस्थितियों के कारण उचित दर पर उत्पादन नहीं कर पाता है। इन परिस्थितियों में कुछ तो दैवी हैं जैसे सूखा, ओला, पानी और अग्नि आदि। इसके अतिरिक्त खाद, सिंचाई के साधनों की उचित व्यवस्था का अभाव, वित्त सम्बन्धी असुविधायें, विक्रय की अव्यवस्था तथा मूल्यों के उतार-चढ़ाव से उसे अपने उत्पादन का उचित लाभ नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार ग्रामीण कृषक जनता कृषि जैसे दलित उद्योग से अपना जीवन-निर्वाह सरलता से नहीं कर पाती है।

देश की आर्थिक स्थिति पर वहाँ की धार्मिक संस्थाओं तथा विधि-विधान, सामाजिक संगठन, विचारधाराओं और रिवाजों का भी प्रभाव पड़ता है। भारतीय समाज धर्म-भीरु है। धार्मिक आडम्बरों के पीछे नैतिक और आर्थिक शोषण का चक्र इस देश में अनवरत् गतिशील रहा है। धार्मिक संकीर्णता-जन्य रूढ़िवादिता एवं संकुचित दृष्टिकोण के परिणाम स्वरूप दूसरे उन्नत लोगों से दूर, उन्नति के साधनों से अपरिचित, अपने जीवन की सीमाओं में जकड़े भारतीय जीवन के किसी क्षेत्र में उन्नति नहीं कर सके। भारतीय सामाजिक संगठन की जातिप्रथा एवं संयुक्त परिवार-प्रथा ने भी पूंजी और श्रम, स्वातंत्र्य एवं स्वावलम्बन की भावना को प्रभावित किया।

देश की आर्थिक परिस्थितियों के निर्माण में वहां की राजनीतिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है। भारत एक लम्बी अवधि तक परतंत्र रहा है। परतंत्र देश की स्थिति अधिक भयावह होती है क्यों कि विदेशी शासक वर्ग देश के शोषण में क्रियाशील रहता है। यही कारण है कि भारत के वे भू-खण्ड जो ब्रिटिश शासन में अंग्रेजों के अधीन सबसे अधिक समय तक रहे आज सब से अधिक निर्धन हैं। अंग्रेजों ने देश के उद्योग धंधों को नष्ट कर दिया। पूंजीवादी अंग्रेजी सत्ता के अधीन भारत केवल कृषि उपनिवेश बन कर रह गया। कृषि और उद्योग का संतुलन बिगड़ गया तथा श्रम का परम्परा से चला आया विभाजन टूट गया।

ब्रिटिश-शासन काल में भूमि-व्यवस्था का नया रूप जमींदारी-व्यवस्था में देखने को मिला। इस वर्ग ने शोषण में सरकार की सहायता दी। जमींदारी कृषकों से लगान वसूल कर सरकार को देता और स्वयं उनसे बेगार और नजराना लेता रहता। किसान ऋण लेकर जमींदार की प्रत्येक मांग को पूरा करता। इस प्रकार दोनों के बीच एक तीसरी श्रेणी महाजनों की उद्भूत हो गई जो किसानों को ऋण देती थी और उन्हें चूसती थी। अंग्रेजों ने यहां की पूंजी का अपहरण करने के साथ ही आय के समस्त साधनों को या तो नष्ट-भ्रष्ट कर दिया या अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार परतंत्र देश की स्थिति और भी दयनीय हो गयी।

भारत की आर्थिक स्थिति अन्य कारणों से भी प्रभावित रही है। जिसमें सर्वप्रमुख अनिश्चित और असयन्त्रित उत्पादन है। देश में श्रम की अधिकता है फिर भी पूंजी का अभाव है। इस लिए श्रमिक वर्ग का जीवन-निर्वाह अत्यन्त कठिनाई से होता है। देश में जो कुछ भी उत्पादन होता है उसका वितरण न्यायोचित ढंग से नहीं हो पाता। पूंजी कुछ इने गिने लोगों के हाथों में केन्द्रित हो गई जिससे समाज में वर्ग-वैषम्य की भावना प्रबल होने लगी। आधुनिक भारतीय समाज में आर्थिक स्तर पर आर्थिक वर्गों का निर्माण हुआ। स्वतंत्रतापूर्व अभिजात्य वर्ग में अधिकांश अंग्रेज होता था और भारतीय या तो मध्यमवर्गीय था या निम्नवर्गीय। किन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल में जब मध्यमवर्गीय भारतीय ने अभिजात्यवर्गीय सुविधाओं को प्राप्त किया तो इस वर्ग के माध्यम से

एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई जो संस्कारों के स्तर पर तो भारतीय थी किन्तु महत्वकांक्षाओं के स्तर पर उच्चवर्गीय । इस प्रकार भारत अनेक आर्थिक कुचक्रों के प्रभाव से उस स्थिति में पहुंच गया है जिसमें निर्धनता स्वयं निर्धनता का कारण बन जाती है ।

आर्थिक क्रान्तियां :- स्वातंत्र्योत्तर भारत में देश की आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक आर्थिक योजनाएं निर्मित होने लगी हैं । सन् १९४७ में श्री के०सी० नियोगी की अध्यक्षता में गठित सलाहकार योजना मण्डल के द्वारा जनसाधारण के जीवन-स्तर को ऊंचा करने, सभी के लिए लाभप्रद नियोजन का प्रबन्ध करने एवं राष्ट्र की रक्षा का समुचित प्रबंध करने के लिए आवश्यक पूंजी, यंत्रों और औद्योगिक कुशलता पर बल दिया गया । खाद्य एवं अन्य आवश्यक सामग्रियों की उत्पादन-वृद्धि पर बल दिया गया और सब सर्वतोन्मुखी योजना के गठन एवं उसके संचालन के लिए एक स्थायी योजना आयोग बनाये जाने का सुझाव दिया गया । इस सलाहकार योजना मण्डल की संस्तुतियों के अनुसार देश के सर्वांगीण विकास के लिए संगठित योजनाओं का निर्माण एवं उसका संचालन करने के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकार के प्रस्ताव द्वारा मार्च सन् १९५० में स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में योजना आयोग गठित हुआ । सन् १९५१ में देश के आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं प्रारंभ हुई ।

देश की प्राकृतिक सम्पत्तियों और जन शक्ति के उचित उपयोग द्वारा सम्पन्नता में वृद्धि करने और प्रत्येक व्यक्ति को सुखी बनाने के लिए विस्तृत पैमाने पर आर्थिक क्रान्तियां प्रारंभ हुई । कृषि, परिवहन, शिक्षा, समाज-सेवा, उद्योग तथा लघु उद्योगों को विकसित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाएं, सेवा-योजनाएं एवं सामुदायिक विकास योजनायें प्रारम्भ की गई हैं । इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था के परम्परागत दोषों को मिटा कर वैज्ञानिक आधार पर प्रगति करने का उन्मुक्त क्षेत्र जनता को दिया जा रहा है । इससे भारतीयों के आर्थिक स्तर की विषमता बहुत कुछ मिट जायेगी । वे लोकतंत्र-शासन में अपनी चेष्टा और योग्यता के अनुसार आर्थिक समृद्धि को उपलब्ध कर सुखी और संतुष्ट जीवन व्यतीत कर सकें ।

आर्थिक परिस्थितियों का विवेच्य युगीन औपन्यासिक कथ्य पर प्रभाव :

स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक परिस्थितियों ने अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया। मध्यवर्ग का उदय इन्ही परिस्थितियों का परिणाम है। यह वर्ग आर्थिक दृष्टि से विपन्न है क्यों कि यह न तो उच्चवर्ग से सामंजस्य स्थापित कर पा रहा है और न सर्वहारा वर्ग से। वह अपने जीवन की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की आर्थिक कठिनाइयों के कारण पूर्ण नहीं कर पाता। इसी लिए उसके जीवन में कुण्ठाएं जन्म लेती हैं जो समाज के प्रति उसके मन में विद्रोह उत्पन्न करती हैं, इन्हीं कुण्ठाओं के कारण वह अन्तर्मुखी बन गया है। " भूख और कामजनित सुख " मानव की दो प्राथमिक आवश्यकताएं हैं। प्रथम आवश्यकता ने आर्थिक व्यवस्था तथा दूसरी ने समाज-संचार के लिए प्रेरणा दी। अर्थाभाव से ग्रस्त मध्यमवर्ग दूसरी आवश्यकता की पूर्ति में अधिक संलग्न है। यही कारण है कि वह प्रत्येक सामाजिक मान्यता के विरुद्ध विद्रोह करता हुआ दृष्टिगत होता है। इसी के परिणाम स्वरूप अवैध सम्बन्ध, आफ लभ्रम, स्वच्छंद प्रेम तथा उससे सम्बद्ध अन्य समस्यायें उत्पन्न होती हैं। इलाचंद जोशी के उपन्यास " घृणामयी " और " संन्यासी " तथा उपेन्द्रनाथ अश्क के "गिरती दीवारें " का कथ्य इन्ही स्थितियों की अभिव्यक्ति करता है।

इन आर्थिक स्थितियों का सब से भयंकर परिणाम नारी समाज पर पड़ा है। उसमें आर्थिक स्वावलंबन की भावना विकसित हुई है जिससे परिणाम स्वरूप उसके सम्मुख घर-बाहर की समस्या भी उत्पन्न हो गई है। जैनेन्द्र कृत " कल्याणी " उपन्यास का कथ्य इसी द्वन्द्व से ग्रस्त नारी के घर-बाहर की समस्या है। स्वावलम्बिनी बनने के लिए नारी को अनैतिक कार्य भी करने पड़ते हैं। आधुनिक नारी-समाज में एक ऐसा नारी-वर्ग दृष्टिगोचर होता है जो आर्थिक रूप से आत्म निर्भर हो कर केवल परिवार के भरण-पोषण के निमित्त अविवाहित, कुण्ठित जीवन व्यतीत करने पर विवश है। " मनुष्य के रूप ", "पचपन खंभे लाल दीवारें," " मोम के मोती " तथा ग्यारह सपनों का देश की नायिकाएं एक पैटर्न की हैं। नारी-समाज का एक ऐसा वर्ग भी है जो आर्थिक दृष्टि से परावलंबी है। लड़कियों का धनाभाव में या तो

विवाह नहीं हो पाता और यदि होता भी है तो वह दहेज के कारण सुखी जीवन नहीं व्यतीत कर पाती। कभी उसे अनमेल विवाह का शिकार होना पड़ता है। "प्रेत बोलते हैं", यह पथ बंधु था" तथा "ज्वाला मुखी"[७] आदि में ऐसी नारियों के चित्रण प्राप्त होते हैं। आर्थिक कठिनाइयों से जीवन-यापन की अन्य विषमताएं भी परिवार में दृष्टिगत होती हैं। "चांदनी के खण्डहर," "गिरती दीवारें" तथा "प्रेत बोलते हैं"[८] के कथ्य के अन्तर्गत आर्थिक विषमता से उद्भूत पारिवारिक कलह-द्वेष तथा विवशताओं के चित्रण को स्थान दिया गया है। आर्थिक जटिलताओं ने व्यक्ति के व्यक्तित्व को भी जटिल, दुर्बोध तथा अन्तर्मुखी बना दिया है यही कारण है कि अधिकांश आधुनिक उपन्यासों में मध्यवर्गीय पुरुष और स्त्री-समाज की कुण्ठाओं को कथ्य के रूप में चुन कर अभिव्यक्ति दी गई है।

<u>परिस्थिति-जन्य विचार धाराएं</u> :- हिन्दी उपन्यासों के कथ्य की अवधारणा में परिस्थितिजन्य विचारधाराओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रत्येक नया युग नयी विचारधाराओं को ले कर आविर्भूत होता है। प्रत्येक विचारधारा युग की मांग की पूर्ति का उद्देश्य लेकर गतिशील होती है। वस्तुतः विभिन्न विचार-धाराएं एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के विभिन्न साधन हैं। आलोच्यकालीन युग प्रमुखरूप से गांधीवादी विचारधारा, क्रान्तिकारी विचारधारा और समाजवादी विचार-धारा से अनुप्राणित है।

स्वातंत्र्योत्तर -कालीन समाज में व्यक्ति की विचारधारा ने एक नवीन मोड़ लिया। उसने जीवन के प्रत्येक मूल्य तथा विश्वास को बुद्धि की कसौटी पर परखना प्रारंभ कर दिया और जो तर्क सम्मत प्रतीत हुआ उसी को ग्रहण किया। बौद्धिकता के कारण आध्यात्मिक, रहस्योन्मुखी, धार्मिक तथा अन्तःप्रेरणा पर आधारित विचार पद्धतियों में भी प्रतिक्रियाएं हुई। सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्य समाज-सापेक्ष होते हैं किन्तु बौद्धिकता के प्रति आग्रह बढ़ जाने के कारण सामाजिक संदर्भ के बिना उनका विश्लेषण और मूल्यांकन किया जाने लगा और आधारहीन मूल्य स्वयं ह्रासोन्मुख होने लगे। मध्यवर्ग इस स्थिति से विशेष रूप से प्रभावित हुआ।

अस्तित्ववाद और क्षणिकवाद इस वर्ग की उपज हैं जिनके आधार पर वह प्राचीन जीवन-मूल्यों का निषेध कर नवीन मूल्यों की स्थापना करना चाहता है ।

भौतिक-विकास के इस युग में व्यक्ति और समाज दोनों का अध्ययन वैज्ञानिक चिंतन-पद्धति से प्रारम्भ हुआ । भौतिकवादी दृष्टिकोण को प्रधानता देने के कारण विवेच्य काल में मार्क्स की समाजवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार हुआ । अब जीवन-मूल्यों को भौतिक दृष्टिकोण से देखा जाने लगा । भौतिक मूल्यों का निर्धारण भी अर्थ की कसौटी पर होने लगा । अन्तर्जगत बाह्य जगत से प्रभावित होता है । अतएव अन्तर्जगत् के विश्लेषण के लिए फ्रायड के सिद्धान्तों को प्रश्रय प्राप्त हुआ । फ्रायड ने यह सिद्ध किया कि व्यक्ति और समाज की मूलसमस्या का कारण अतृप्त कामवासना है । उनके विचार में जीवन बाह्य जगत की क्रान्ति पर निर्भर है । मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी इस विचारधारा से सर्वाधिक प्रभावित हुआ । फ्रायड ने जिस अचेतन मन में सहजवृत्तियों की अराजकता दिखाई थी उसमें इस वर्ग को अपनी स्थिति से साम्य प्रतीत हुआ । इस दर्शन से प्रभावित मध्यवर्गीय जीवन आधुनिक उपन्यासों के कथ्य के रूप में अभिव्यक्त हुआ ।

<u>विभिन्न विचार दर्शन तथा औपन्यासिक कथ्य</u> :- प्रत्येक युग में व्यक्ति की विचारधारा का नियंत्रक व प्रेरक युग-धर्म को आत्मसात् करने वाला कोई न कोई विचार दर्शन होता है । युग, समाज तथा व्यक्ति के पारस्परिक संघर्षों के परिणाम - स्वरूप विभिन्न विचारधाराओं का उदय होता है । आधुनिक युग में इन संघर्षों के फलस्वरूप उद्भूत जीवन-दर्शनों में, मानवतावादी जीवन दर्शन युगसापेक्ष है और समाजवादी जीवन-दर्शन समाजसापेक्ष जीवन दर्शन है । व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन व्यक्ति के संघर्षों से उत्पन्न है । आज का उपन्यासकार इन्हीं तीनों दर्शनों से प्रेरित हो अपने उपन्यासों के कथ्य की अवधारणा एवं अभिव्यक्ति कर रहा है ।

<u>मानवतावादी जीवन दर्शन</u> :- भारतीय चिंतन के सभी क्षेत्रों में मानवतावादी जीवन-दर्शन को स्वीकृति प्रदान की गई है । इसकी अन्तिम परिणति गांधीवादी जीवन-दर्शन में है । सत्य, अहिंसा तथा सत्याग्रह से व्यक्ति का हृदय परिवर्तन हो जाता है । यह इसका मूलभूत आधार है । विवेच्य युग के प्रायः सभी कथाकारों

ने इस दर्शन की असफलता घोषित कर दी है। जैनेन्द्र कल्याणी के माध्यम से "कल्याणी" में गांधीवादी दर्शन की स्थापना का असफल प्रयास करते हैं।" अब मेरा कोई" में वृन्दावनलाल वर्मा ने स्पष्ट रूप से गांधीवाद को असफल सिद्ध कर दिया है। जैनेन्द्र ने गांधी के आत्म पीड़न से प्रेरणा ग्रहण की है। इलाचन्द्र जोशी भी गांधीवाद की चर्चा करते हैं किन्तु इस विचार से कि वे विभिन्न जीवन दर्शनों के मेल से एक नितान्त सर्वग्राह्य जीवन-दर्शन की खोज कर रहे हैं। मानवतावादी विचारदर्शन का ही एक रूप है किन्तु आज गांधीदर्शन के स्थान पर इसको अधिक व्यापक रूप में देखा गया है। इससे साहित्य जगत में नये प्रतिमान स्थापित हुये हैं, जीवन के प्रति नवीन धारणाओं ने जन्म लिया है, सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन हुआ है और कला जगत में सृजन की संभावनायें बढ़ी हैं। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में "अश्क जी" "गिरती दीवारें" में मानवतावाद की निष्क्रियता सिद्ध करते हैं किन्तु "विषाद मठ", "महाकाल" तथा "यह पथ बंधु था" में मृत्यु के अंधकार में जीवन का प्रकाश देखा गया है। फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आंचल" में मानवतावाद की स्थापना हुई है जहां जीवन का प्रभात है और जहां जीवन कीचड़ में कमलवत् खिल रहा है। इन उपन्यासकारों की दृष्टि में जीवन की विवशताओं, जटिलताओं तथा कटुता में ही जीवन की आशा का पावन संदेश मिलता है।

व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन :- प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासकारों ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व दिया है। आज व्यक्ति समाज के सम्मुख अपने अस्तित्व का बोध कराता हुआ खड़ा है। व्यक्ति की व्यक्तिगत चेतना के मूल में अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन क्रियाशील है। अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन के आधुनिक जीवन-बोध के संकट से उत्पन्न जीवन-दृष्टि है। इस शब्द का प्रारंभिक प्रयोग इस तथ्य की ओर संकेत के रूप में हुआ कि प्रत्येक अद्वितीय है तथा एक ऐसा प्राणी है जो सोचता है कि मैं स्वतंत्र हूं। चूंकि वह स्वतंत्र है इसी लिए वह भोगता भी है। उसके भविष्य के बारे में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। समय अत्यन्त स्वल्प है और इसमें ही उसे अनेकानेक निर्णय लेने पड़ते हैं तथा ऐसा करने के लिए वह स्वतंत्र भी है।

यही स्वतंत्रता आदमी को उस समय अत्यन्त विक्षुब्ध कर दिया करती है जब कि उसे मालूम होता है कि भविष्य का निर्धारण उसकी इच्छानुकूल नहीं हो पा रहा है। अस्तित्ववाद की प्रमुख मान्यताओं के रूप में हमें व्यक्ति की स्वतंत्रता का उद्घोष, निराशा, अनास्तिकता, अविश्वसनीयता, मूल्य-हीनता, संत्रास, भय, अर्थ-हीनता, शून्यता, निस्संगता, परायापन, अजनबीपन, विराग और अकेलापन आदि दृष्टिगत होती हैं जिन्हें प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में कथ्य के रूप में अभिव्यक्ति मिली है।

विवेच्यकालीन उपन्यासों में व्यक्ति के चरित्र का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर विश्लेषण प्राप्त होता है। इस युग के उपन्यासकारों ने फ्रायड, एडलर और युंग के दार्शनिक विचारों से प्रेरणा ग्रहण कर अपनी रचनाओं के कथ्य की अवधारणा की है। इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेन्द्र का जीवन-दर्शन फ्रायड की काम-पीड़ा, गांधी की की आत्मपीड़ा तथा दर्शन की रहस्यवादिता का सम्मिलित स्वरूप है। उनके कामकुण्ठित पात्र आत्मपीड़ा स्वीकार कर सामाजिक अनाचार का निषेध करते हुये ऐसे रहस्यमय लोक की सृष्टि करते हैं जहां स्वयं उनका व्यक्तित्व अस्पष्ट हो जाता है। वे सामाजिक परिवेश में व्यक्तिवादी चिंतक हैं। अज्ञेय, फ्रायड की काम, भय और अहं इन तीन प्रवृत्तियों पर आधारित जीवन दर्शन को ग्रहण करते हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास " शेखर : एक जीवनी " में फ्रायड की इसी विचारधारा का प्रतिफलन हुआ है। मनुष्य की इन्हीं तीनों शाश्वत प्रवृत्तियों काम, भय और अहं से परिचालित शेखर के रूप में एक व्यक्ति का मनोविश्लेषण ही इस उपन्यास का कथ्य है। शेखर में अहं की भावना है जो पाश्चात्य दर्शन के अनुरूप है। उसका जीवन-दर्शन अहं के साथ ही स्वपीड़ा को भी आत्मसात् किये हुए है इस लिए वह व्यक्ति-वादी है।

भगवती चरण वर्मा भी व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन की प्रेरणा से कथ्य का निर्धारण करने वाले उपन्यासकार हैं। मानवीय मूल्यों की स्थापना में उनका व्यक्तिवादी दृष्टिकोण प्रत्यक्ष हो उठा है। इलाचन्द्र जोशी, फ्रायड की विचार-धारा के साथ बौद्धिक अराजकता का मेल बिठाकर और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत फ्रायड के

काम दर्शन तथा शरत् की भावुकता अभिव्यक्त हुई है ।

कतिपय आधुनिक उपन्यासों में अतृप्त काम-वासना, भटकन, नैतिकता प्रति असफल विद्रोह के माध्यम से स्त्री-पुरुष और पति-पत्नी के सम्बन्धों और प्रेम-वासना को कथ्य बनाया गया है और उस पर नये दृष्टिकोण से विचार किया गया है ।

समाजवादी जीवन-दर्शन :- समाजवादी जीवन-दर्शन के मूल में मार्क्स की विचारधारायें है । मार्क्सवाद नवीन समाज-व्यवस्था का प्रतीक है । यह दर्शन अपने क्रियात्मक गुणों के कारण महत्वपूर्ण है । यह समाज-व्यवस्था का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर वर्ग-संघर्ष की आवश्यकता पर बल देता है । यशपाल मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित हैं किन्तु फ्रायड की कामभावना से दूर नहीं रह पाते । इसी लिए उनके उपन्यासों में साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का विरोध इतना अधिक स्पष्ट नहीं हुआ है जितना काम-सम्बन्धी नैतिक मान्यताओं का । राहुल सांकृत्यायन " सिंह " में भी आदिम युग से " साम्यवाद " की भलक दिखलाते हैं । साम्यवाद के प्रति उनका प्रबल आग्रह दिखायी पड़ता है और इसी कारण वे आदिम सभ्यता में उसकी स्थिति दिखाने का प्रयास करते हैं ।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों का कथ्य सामयिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं विभिन्न वैचारिक तथा दार्शनिक प्रभावों को आत्मसात् करते हुए निरन्तर विकास की ओर गतिशील हुआ है । हिन्दी उपन्यासकारों में प्रेमचन्द शीर्षस्थ हैं क्यों कि उन्होंने उपन्यासों को एक निश्चित दिशा प्रदान की थी और उसे विकास के चरमोत्कर्ष की ओर ले जाने का अथक प्रयास किया था । किन्तु युग प्रत्येक क्षण परिवर्तनशील है । विश्व हर क्षण एक नई करवट ले रहा है । प्रेमचन्दोत्तर युग क्रान्ति का युग है । प्राचीनता का विरोध और नवीनता का आह्वान इस युग की विशेषता है । विज्ञान ने लोगों को अधिक तार्किक शक्ति से सम्पन्न बना दिया है । अस्तु अब प्राचीन रूढ़िवादी परम्पराओं, समाज की संकुचित सीमाओं तथा जीवन में स्थिरताओं के प्रति लोगों की प्रवृत्ति नहीं रही । अब वे जीवन में विविधता की आकांक्षा करने लगे । यह नवीन भावना अब लोगों को अत्यधिक प्रभावित करने

करने लगी । हिन्दी उपन्यासकारों ने इस नवीन चेतना को आत्मसात् कर लिया । जैसे - जैसे जीवन में प्रयोग होते गए वैसे ही वैसे उपन्यासों का कथ्य भी विकसित होता गया । विचारधारा में जैसे- जैसे परिवर्तन होता गया उसी के अनुरूप जीवन-पद्धति में भी अन्तर पड़ता गया, समाज के मान-मूल्य बदलते गये और समस्याओं को नया रूप प्राप्त होता गया । बदलती परिस्थितियों में मानवीय जीवन-मूल्यों को लेकर जो अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित हुए, उन्हें औपन्यासिक कथ्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया । अब उपन्यासों का कथ्य मनोरंजन, रोमांस, आदर्शवादिता, उपदेशात्मकता एवं सामयिक यथार्थवादिता की मंजिल पार कर जीवन के साथ कदम मिला कर गतिशील होने लगा । उसमें जीवन का बदलता हुआ दर्शन है । विवेच्य काल के उपन्यासकारों में युगीन समस्याओं को अधिक पैनी दृष्टि से देखने का प्रयास दृष्टिगत होता है । वे उसे तर्क की कसौटी पर कस कर उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर रहे हैं । अब उनकी दृष्टि मात्र आदर्शवाद तक ही सीमित नहीं रही प्रत्युत् उन्होंने मानव मन के अन्तर्मन में प्रविष्ट हो कर उसके अन्तर्द्वन्द्वों और आन्तरिक प्रवृत्तियों को समझने का प्रयास किया । इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यासों की दिशा ही पूर्णतया परिवर्तित हो गई । जिन प्रवृत्तियों को पिछले उपन्यासकार या तो समझ नहीं सके, या समझते हुये भी वे उनके प्रति उपेक्षा रहे और हठात् समस्याओं पर आदर्शवादी आवरण डालने का प्रयत्न किया, इस युग में रचनाकारों ने उन्हीं प्रवृत्तियों को महत्ता प्रदान की । मानव-मन में अनेक प्रकार के भाव ज्वार - भाँटे की भाँति उठते -गिरते, बनते-बिगड़ते रहते हैं । उन्हीं भावों एवं मूल प्रवृत्तियों को कथ्य-रूप में अभिव्यक्त करने में ही नवीन उपन्यासकारों ने अपनी सार्थकता समझी है । आधुनिक उपन्यासकारों ने कथ्य को अधिक महत्व प्रदान किया है । वे यथार्थ के प्रति प्रतिश्रुत हैं । वे भोगे हुये यथार्थ को कथ्य चुनकर अभिव्यक्त कर रहे हैं । बल्कि अब तो उनके उपन्यासों का कथ्य एक मन:स्थिति, अनुभूति का क्षण अथवा कोई विचार-बिन्दु मात्र ही रह गया है । इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों का कथ्य निरन्तर विकास की ओर उन्मुख है जो उसके उज्ज्वल भविष्य का सूचक है ।

:: कथ्य की रचना-प्रक्रिया ::

नवीन कथ्य के अनुकूल रचना-प्रक्रिया में परिवर्तन :- विगत पृष्ठों में कथ्य के विकास की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचन्द-युगीन औपन्यासिक कथ्य एवं उत्तर-प्रेमचन्द युगीन औपन्यासिक कथ्य में एक युगान्तरकारी अन्तर दृष्टिगत होता है । यह अन्तर इन प्रेमचन्दोत्तर लेखकों की नवीन परिस्थितियों से उद्भूत नवीन जीवन-दृष्टि, नये-मूल्यों की अवधारणा, नवीन मर्यादाओं की खोज तथा नवीन दार्शनिक विचारों की स्वीकृति के धरातल पर है, जिसने कथ्य की रचना-प्रक्रिया को भी एक नवीन रूप प्रदान किया । रचनागत यह परिवर्तन इस इस लिए भी स्वाभाविक प्रतीत होता है कि पूर्वयुगीन सत्यों और मानव-मूल्यों या कथ्य को अभिव्यक्ति देने में जो रचना-विधान पूर्णतया सफल हुये हैं, संभव है वे ही नई परिस्थिति से आविर्भूत नये सत्यों और नये जीवन-मूल्यों को प्रेषित कर पाने में असमर्थ सिद्ध हों । इतिहास को नई दिशा देने वाली साहित्यिक चेतना केवल साहित्यिक-प्रतिभा के बल पर स्वरूप नहीं पाती, उसके लिए कुछ प्रेरक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है जो प्रेमचन्दोत्तर युग में बड़ी तीव्रता से प्रकट हुईं । इन परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप प्राचीन रचनात्मक आदर्शों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था । दूसरे कलाकार तो सौन्दर्य-प्रिय प्राणी हैं । वह सत्य को यथातथ्य ग्रहण कर सन्तोष का अनुभव नहीं करता वरन् उसकी पृष्ठभूमि में सौन्दर्य-सरिता प्रवाहित करने में व्यस्त रहता है । यही कारण है कि वह जीवन में अनवरत् मौलिक प्रयोग करता है । उपन्यास तो आधुनिक साहित्यिक-विधाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा है । उसमें आज जहाँ कथ्यगत नवीन मौलिक प्रयोग किये गये हैं वहीं रचना-दृष्टि में भी मौलिकता का समावेश हुआ है । उपन्यासकार अपने प्रस्तुतीकरण में नवीनता, मौलिकता तथा विशिष्टता उत्पन्न करने में प्रयत्नशील होता है क्यों कि रचनाकार जहाँ प्रचलित आदर्शों के अनुसार रचना-प्रक्रिया में संलग्न होता है वहीं उसमें कृत्रिमता आ जाती है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास-साहित्य गतिशील है । वह मानव-जीवन के विविध स्तरों के यथार्थ को कथ्य-रूप में ग्रहण करते हुये अपनी टैकनीक में भी प्रगति

की ओर उन्मुख है। कथ्य के परिवर्तन के साथ उसकी रचना-प्रक्रिया भी बदलती जा रही है। नये-नये प्रयोग रचना-प्रक्रिया में स्थान पा रहे हैं क्यों कि नयी जीवन-वस्तु को अपनी अभिव्यक्ति के लिए नये रूप की अवतारणा करनी ही पड़ती है। जहाँ पुरानी दृष्टिभंगी नवत्व को देख न पा रही हो, प्राचीन लेखन-परिपाटी अभिव्यक्ति को बाधित कर रही हो वहाँ साहसपूर्ण अभिनव प्रयोगों के द्वारा ही साहित्य के अवरुद्ध रथ को आगे बढ़ाया जा सकता है। इस दृष्टि से देखने पर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकार अपने कथ्य के अनुरूप नवीन रचना-प्रक्रिया के प्रति सचेष्ट दिखाई पड़ते हैं जो उनकी अपूर्व रचनात्मक-क्षमता का परिचायक है।

<u>रचना-प्रक्रिया के अनिवार्य तत्व अनुभव अथवा अनुभूति :-</u>

कथ्य की रचना-प्रक्रिया पर विचार करते समय सर्वप्रथम अनुभव अथवा अनुभूति के प्रश्न को उठाया जा सकता है जिसे प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उनके औपन्यासिक कथ्यों के मूल में यही अनुभव या अनुभूति ही है। व्यक्ति की रचना से उसके विचारों का गहन सम्बन्ध होता है यह बताते हुये विलियम जेम्स ने प्रथम बार कुछ महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन किया था कि व्यक्ति की चेतना के भीतर विचार परिवर्तनशील होते हैं। जेम्स के अनुसार अनुभव हमें प्रत्येक क्षण आन्दोलित करते हैं तथा प्रत्येक परिस्थिति में अभिव्यक्ति और हमारी मानसिक प्रतिक्रिया हमारे भीतर अनवरत सृजन-शील अनुभवों का सम्यक् परिणाम होती है[10]। हैनरी जेम्स का कथन है कि वह समस्त जीवनानुभव जिसे रचनाकार अपनी रचना में अभिव्यक्त करता है, उसकी सहज अनुभूति का अंग होता है। जेम्स के अनुसार यह सहजानुभूति एक प्रकार की बौद्धिक सहानुभूति है[11]।

एक लेखक का रचनात्मक अनुभव दूसरे लेखक के रचनात्मक अनुभव से पृथक् होता है, क्यों कि, समकालीन होने पर भी उन लेखकों की जीवन-प्रक्रिया एवं उनकी चेतना पृथक्-पृथक् होती है, उदाहरणार्थ यद्यपि प्रेमचन्द कृत 'गोदान' तथा जैनेन्द्र कृत 'सुनीता' का रचनाकाल एक ही है (सन् १९३५ ई०) समकालीन होते हुये भी इन दोनों कृतियों में दोनों लेखकों के अनुभव अलग-अलग दृष्टिगोचर होते

हैं। एक (प्रेमचन्द) में सामाजिक चेतना और यथार्थ का बोध है तो दूसरे (जैनेन्द्र) में व्यक्ति-मन के आन्तरिक कुरकुरेपन का अनुभव है। प्रत्येक रचना अनुभव के इन्हीं अनेकों स्तरों में अपना समग्र रूप ग्रहण करती है।

कल्पना :- कथ्य की रचना-प्रक्रिया से रचनाकार की कल्पना और प्रतिभा का अनिवार्य सम्बन्ध है। कल्पना मन की वह स्वतंत्र वृत्ति है जो रचनाकार को नई सामग्री, नई संभावनाएं, नये अलंकरण, नये अप्रस्तुत विधान, विषय और भाव प्रदान करती है। कल्पना के माध्यम से ही वह अपने विचारों की योजना करता है। उसके अभाव में वह कोई धारणा निश्चित नहीं कर पाता। कल्पना-शक्ति के द्वारा ही साहित्यकार मानसिक व भावात्मक विचारों की अभिव्यक्ति करने के लिये प्रतीक की सृष्टि करता है। इस प्रकार कल्पना कलाकार की रचनात्मिका शक्ति की सहायता देती है। हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों का कथ्य मनोरंजन एवं रोमांस था जिसकी अभिव्यक्ति में तद्युगीन उपन्यासकारों ने कल्पना-शक्ति का प्रचुर प्रयोग किया। पाठकों को मनोरंजन प्रदान करने के उद्देश्य से उन्होंने कल्पना की लम्बी-लम्बी उड़ाने भरी हैं जिससे उनकी कृतियों में अविश्वसनीयता एवं अस्वाभाविकता के दोष आ गये हैं। प्रेमचन्द युगीन आदर्शवादी एवं आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कृतियों के कथ्य की रचना में भी कल्पना का सहारा लिया गया है। इस युग के उपन्यासकारों ने अपने कथ्य के अनुरूप घटनाओं एवं परिस्थितियों के चयन, उनके नियोजन तथा उपन्यास के अंत में उस पर आदर्शवाद का आवरण डालने में कल्पना-शक्ति का प्रचुर प्रयोग किया है।

प्रेम चन्दोत्तर उपन्यासों का कथ्य यथार्थ-जीवन से गृहीत है। यथार्थ-आधारित कथ्य ऐसे मार्ग के अनुगमन पर बल देता है, जो विकास-शील सृजन-प्रक्रिया से सम्बन्धित है। इस विकासशील सृजन-प्रक्रिया के मार्ग में जो भी शक्तियां अवरोधक होती हैं, यथार्थवाद उन्हें तिरस्कृत कर उनके प्रति अनास्था का भाव प्रकट करता है। इस प्रकार यथार्थवाद से प्रेरित कथाकार मानव और समाज के पूर्ण रूपको कथ्य चुनता है।

उनके सण्डित एवं असत्य रूप उसे सहन एवं स्वीकार्य नहीं हैं। फिर भी यथार्थाधारित कथ्य की रचना में कल्पना पूर्ण रूप से तिरस्कृत नहीं होती, पर कल्पना से उसका सम्बन्ध वहीं तक रहता है जहाँतक उसकी अनिवार्यता रहती है। कला-संबंधी कोई सृजनात्मक-प्रक्रिया अपने श्रेष्ठ रूप में तभी संभव होती है, जब कल्पना और यथार्थ समन्वित रूप से नव-निर्माण कार्य में संलग्न होते हैं। यथार्थवादी कथ्य को लेकर लिखे गए उपन्यासों में यथार्थ तत्वों का यथातथ्य चित्रण करना न तो वांछनीय है, न संभव ही है। इस लिए थोड़ी बहुत कल्पना का आश्रय साहित्य-सृजन में यथार्थवाद के रंग को गाढ़ा करने के लिए ग्रहण किया ही जाता है। इसके परिणाम स्वरूप वे चीजें जो यथार्थ हैं और प्रस्तुत करने के लिए वांछनीय हैं, एक विशिष्ट दृष्टिकोण से एक विशेष परिवेश में उपस्थित हो सकें, यथार्थवाद में इसी लिए सामयिक परिस्थितियों पर अधिक बल दिया जाता है और कल्पना की अनिवार्य आवश्यकता के माध्यम से उन्हें सत्य ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

<u>प्रतिभा</u> :- कोई भी रचनाकार अपनी प्रतिभा से ही प्रेरित हो कर अपनी रचनाओं के लिए नवीन कथ्य एवं तदनुकूल नवीन रचना-विधान की ओर उन्मुख होता है। लेखक का स्वभाव, व्यक्तिगत रुचि, संस्कार, अध्ययन तथा प्रतिभा उसे समसामयिक परिस्थितियों को कथ्य स्वीकार करने, नए अन्वेषणों (अभिव्यक्ति -शिल्प सम्बन्धी) के लिए बाध्य और प्रेरित करती हैं। युग-परिवर्तन से उत्पन्न नवीन परिवर्तनों की पहचान प्रतिभावान लेखक को सहज में ही हो जाती है। वह युग की आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी कृति का कथ्य निर्धारित करता है तथा उसे प्रभाव-शील, सहज एवं स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त करता है। आधुनिक उपन्यासकारों का यथार्थ के प्रति विशेष आग्रह है। ये यथार्थवादी कथाकार परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा वैचारिक दृष्टिकोणों से प्रेरणा ग्रहण करके कला को नवीन वातावरण में गतिशील करते हैं। प्रतिभा के अभाव में यथार्थवादी चित्रण एक विद्रूप बन जाता है और कलात्मकता का अभाव उसकी विशेषताओं पर आघात पहुँचाता है।

<u>रचना-प्रक्रिया की मनोवैज्ञानिक अवधारणा</u> :- मनोविश्लेषणवाद के जनक फ्रायड ने रचना-प्रक्रिया को समझाते हुए एक विलक्षण तथ्य प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार सभी रचनात्मक क्रियाओं के मूल में वे यौन-प्रेरणायें होती हैं जो किसी सामाजिक मर्यादा एवं व्यवधान के कारण तृप्त नहीं हो पाती और इस प्रकार अपने उदात्तीकरण की प्रक्रिया में किसी रचनात्मक कृति के रूप में प्रतिफलित होती हैं[१२]। फ्रायड का यह सिद्धान्त इच्छापूर्ति (विशफुलफिलमेंट) का सिद्धान्त है। इस आधार पर रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण करने के लिए उन यौन प्रेरणाओं का अनुमान करना होगा जिनसे किसी विशेष रचनात्मक कृति या कृतिकार के रचनात्मक मानस का निर्माण होता है। निस्सन्देह फ्रायड का यह सिद्धान्त अतिवादितग्रस्त है। यही कारण है कि एडलर और युंग ने कालान्तर में एक अलग आधार प्रस्तुत किये। एडलर ने किसी भी रचनात्मक कृति के मूल में स्वत्वाग्रह (सेल्फ एसर्शन) को माना है तथा युंग के अनुसार रचनाकार मानव-बोध के क्षेत्र में प्राप्त अनेक प्रकार की सामग्री का प्रयोग करता है जिनमें भावात्मक आघातों से लेकर प्रेम की अनुभूति तक, सभी प्रकार के अनुभव होते हैं, जिनसे मानव का चेतन-जीवन निर्मित होता है। युंग रचनाकार के व्यक्तित्व में अनेकानेक विरोधी उपादानों की स्थिति स्वीकारता है। एक ओर वह निजी जीवन के भोक्ता साधारण व्यक्ति के रूप में होता है, दूसरी ओर वह एक निर्वैयक्तिक प्रक्रिया मात्र होता है[१३]।

उपर्युक्त विश्लेषण का सम्बन्ध रचना-प्रक्रिया के मनोवैज्ञानिक आधार को स्पष्ट करने से है जिस पर आधुनिक औपन्यासिक-वर्ग अपने रचनात्मक-वैशिष्ट्य की दृष्टि से बहुत कुछ निर्भर है। इन मनोविश्लेषणवादियों के प्रभाव के परिणाम स्वरूप इन उपन्यासकारों की रचना-प्रक्रिया प्रेमचन्द युगीन बाह्यधरातल को छोड़ कर आभ्यन्तर मोड़ (इनवर्ड टर्निंग) की ओर अग्रसरित हुई।

साहित्यिक आधार पर रचना-प्रक्रिया को विश्लेषित करने वाले विचारकों में सर्वप्रथम हर्बर्ट रीड का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने व्यक्तित्व के आत्मनिष्ठ स्वभाव (सब्जेक्टिव नेचर) के क्षेत्र को रचना-की प्रक्रिया के अध्ययन का मौलिक आधार स्वीकार किया है। उनके अनुसार कलाकृति का सम्बन्ध मानस के

प्रत्येक प्रदेशों से होता है तथा वह विशेष स्फूर्ति, अपरिसीमितता, एवं रहस्यपूर्ण शक्ति उस मूल प्रवृत्यात्मक सुवेग (इड) से ग्रहण करती है। जिसे हम रचनात्मक प्रेरणा का मूल स्त्रोत मानते हैं।

रचना-प्रक्रिया में अनुभूति का महत्व सर्वमान्य है जो सामान्यबोध या ज्ञान से आगे की अनुभूति है। बाम्हयूर्ड ने अनुभूतियों एक सौन्दर्यानुभूति माना है जिसे वहन करने वाली कलाकृतियों की रचना और अनुभाव्यता दोनों ही स्थितियों में बोध का रूपान्तर हो जाता है और वह अलौकिक-तत्वों में घुल मिल जाता है[२४]।

आधुनिक विचारक सर रसेल ब्रेन ने भी अनुभूति प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए बताया है कि किस प्रकार अनुभूतियों के प्रत्यय विचारों से सम्पृक्त होते हैं तथा किस प्रकार से वैचारिक अनुभूति किसी रचनात्मक कृति के पूर्णतया रूपाश्रित होने से पहले रचनाकार की मानसिक चेतना का अंग होती है[२५]।

आधुनिक पाश्चात्य आलोचक लियोन इडेल ने यह संकेत करते हुये कि किस प्रकार लेखक अपनी आन्तरिक समस्याओं का साक्षात्कार करते हुए अपने रचनात्मक अनुभवों की रचना करते हैं, यह स्पष्ट किया है कि रचनाकार रचना की प्रक्रिया में वाह्य यथार्थ से विमुख हो कर आभ्यन्तर (इनवर्ड) यथार्थ में प्रवेश करने के लिए किसी अर्थ में आत्म निष्ठ हो जाते हैं[२६]। जार्जल्यूकाक्स ने भी स्वीकार किया है कि किसी साहित्यिक कृति की विशेष कलात्मक उपलब्धि रचनाकार के आभ्यन्तर अनुभवों द्वारा भावित सामाजिक प्रक्रिया की सम्पूर्ण परिकल्पना पर निर्भर करती है[२७]।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासकार अज्ञेय ने रचना-प्रक्रिया के प्रति उत्सुकता एवं सजगता का कारण वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता को बताया है[२८]। जो पूर्णतया समीचीन नहीं है। वास्तव में यह कारण वैज्ञानिक अध्ययन की तात्कालिक आवश्यकता न हो कर आन्तरिक चेतना के रहस्य-सत्यों के साक्षात्कार की ऐतिहासिक आवश्यकता है। अनुकाग्रीसन ने वस्तु का रचना से वही सम्बन्ध माना है जो सूर्य-किरण का बहते पानी के साथ होता है[२९]।

विवेच्य युगीन औपन्यासिक कथ्य की रचना-प्रक्रिया के स्वतंत्र आधार :-

प्रेमचन्द - परवर्ती उपन्यासकारों की रचना-प्रक्रिया की अवधारणा में इन्हीं विचारधाराओं का योगदान रहा है जो आधुनिक भावबोध के उदय का परिणाम है। प्रायः प्रत्येक उपन्यासकारों ने अपनी रचना-प्रक्रिया के लिए स्वतंत्र आधारों की खोज की है। उनकी रचनात्मक- चेतना समकालीन आदर्शों का समानतः निर्वाह करती हुई भी परस्पर एक दूसरे से भिन्न है। रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से जैनेन्द्र की रचना-प्रक्रिया अज्ञेय से तथा अज्ञेय की यशपाल से भिन्न है।

उत्तर - प्रेमचन्द युग में उपन्यासकारों ने यथार्थ-बोध से कथ्य की अवधारणा की है तथा उसके विविध स्तरों को अभिव्यक्ति दी है। उपन्यासकारों का एक वर्ग यथार्थ की अनुभूति को अविकल रूप से प्रस्तुत करना चाहता है, तो दूसरा उसे कल्पना के धरातल पर अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार इस काल के यथार्थ-बोध के विविध स्तर प्रतिभासित होते हैं। इन्द्रिय-बोधों की सूक्ष्म चेतना को रूपायित करने वाले उपन्यासकारों का रचनात्मक महत्व निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है। मनो-विश्लेषण-परक कथ्य तथा सामाजिक यथार्थवादी कथ्य को आधार बना कर औपन्यासिकों ने रचनात्मक विविध प्रणालियों का उपयोग किया है जो सफल तथा महत्वपूर्ण है। इन आधुनिक उपन्यासकारों ने अपने नवीन कथ्य के अनुरूप रचना-प्रक्रिया में कई नये सन्दर्भ समाविष्ट किये हैं जो उन्हें अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से विशिष्ट बनाती है। यद्यपि इन उपन्यासकारों द्वारा गृहीत रचना-प्रक्रिया में अपेक्षाकृत जटिलता आ गई है किन्तु यह दोष नहीं मानी जा सकती। युग तथा वातावरण के परिप्रेक्ष्य परिवर्तित हो जाने के कारण हमारी संवेदनाओं तथा हमारे रचनात्मक सम्बन्धों में जो परिवर्तन आता है वही रचनात्मक सृजन की स्वाभाविक प्रक्रिया में जटिलता की पुष्टि करता है। रचना-प्रक्रिया की यह जटिलता प्रेमचन्दोत्तर औपन्यासिक कथ्यों की जटिलता के कारण है। जैसे किसी सीधे-सादे कथ्य को जटिल रचना-प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती उसी प्रकार जटिल कथ्य को भी सरल रचना-प्रक्रिया द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

<u>दर्शन एवं मनोविज्ञान</u> :- जैनेन्द्र के उपन्यासों के अध्ययन एवं आलोड़न से स्पष्टतया प्रकट होता है कि आधुनिक रचनात्मक संवेदना के स्वरूप-निर्माण में दर्शन एवं मनोविज्ञान की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विधियों का भी उपयोग है। व्यावहारिक जीवन - दर्शन को ग्रहण कर उपन्यासकार अपने अनुभव की सनातनता को पुष्ट करता है, दार्शनिक बोध अनुभव की प्रक्रिया-गहनता का संचार तो करती ही है। इस दार्शनिक बोध के प्रति किसी रचनाकार का जब विशेष आकर्षण होता है तो वह अन्य श्रेणी के कथाकारों से पृथक् हो उठता है[20]। मनोविज्ञान ने भी आलोच्यकालीन रचनात्मक संवेदनाओं को प्रभावित किया है तथा किसी सीमा तक आक्रांत भी किया है।

<u>अचेतन-बोध</u> :- मनोविश्लेषणवादी दार्शनिकों द्वारा अन्वेषित अचेतना-बोध ने भी इन उपन्यासकारों के बोध को तो प्रभावित ही किया साथ ही साथ विधि को भी प्रभावित किया है। इन दर्शन से प्रभावित हो कर रचना करने वाले उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अश्क तथा इलाचन्द्र जोशी हैं। इलाचन्द्र जोशी की यह मान्यता है कि अन्तर्जीवन पर आधारित होने पर ही बाह्य जीवन-चित्रण सफल हो सकता है, जो इस वर्ग के प्रायः सभी लेखकों की रचनात्मक धारणाओं को स्पष्ट करती है[21]।

<u>साम्यवादी, समाजवादी विचारधारा</u> :- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य में साम्यवादी समाजवादी विचारधाराओं की प्रविष्टि के परिणाम स्वरूप भी इनमें एक विचारात्मक संवेदना का उत्स प्रवाहित हुआ और सामाजिक शोषण, दरिद्रता, नग्नता, परवशता आदि समस्याओं के चित्रण की संभावना को एक निश्चित आधार मिला, जिससे औपन्यासिक-सृजन में लोकरसयुक्त संवेदना प्रतिष्ठित हुई। किन्तु वस्तु (मैटर) के प्रति इनमें अतिशय आग्रह तथा विशिष्ट पदाधारता दृष्टिगोचर होती है जिससे चरित्र-चित्रण की संभावनायें प्रतिबाधित हुई हैं। इस वर्ग के लेखकों में यशपाल, रांगेय राघव, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त आदि उपन्यासकारों के नाम उल्लेख्य हैं।

<u>अनुभव की प्रमाणिकता</u> :- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने कथ्य के कथन एवं प्रस्तुतीकरण में अनुभव की प्रमाणिकता पर विशेष ध्यान दिया है।

उनका कथ्य भोगा हुआ, अनुभव किया हुआ जीवन है । इस प्रामाणिकता को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए उन्होंने कथ्य की रचना प्रक्रिया में " वह " के स्थान पर " मैं " का प्रयोग किया जो लेखकीय व्यक्तित्व की इकाई होता है । इन्होंने आत्मकथात्मक शैली की प्रतिष्ठा की । रांगेय राघव कृत " कुबूर ", जैनेन्द्रकुमार कृत " व्यतीत "," त्यागपत्र," " कल्याणी", इलाचन्द्र जोशी कृत "पर्दे की रानी", विष्णो" हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत " बाणभट्ट " की आत्मकथा " तथा नागार्जुन कृत " बाबा बटेसरनाथ " आदि औपन्यासिक कृतियों में कथ्य की विविध प्रवृत्ति के अनुकूल रचनाकारों ने " मैं " अर्थात् आत्मकथात्मक शैली के विविध रूपों का प्रयोग किया है ।

<u>रचनाकार की तटस्थता</u> :- विवेच्यकालीन उपन्यासों के कथ्य की रचना-प्रक्रिया के साथ तटस्थता का सम्बन्ध भी विचारणीय है । यह तटस्थता आज के जीवन की सब से बड़ी विशेषता है । आज का रचनाकार यथार्थ के कुशल बोध को स्वीकार कर सामाजिक जीवन में नित्य बनने तथा बदलने वाले सम्बन्धों को स्मृति तथा कल्पना द्वारा रचना में रूपान्तरित करता है एवं फिर उसे समुचित तीव्रता के साथ अध्येताओं तक सम्प्रेषित करने की स्वाभाविक कामना से स्वयं रचना से तटस्थ हो जाता है । इस युग में ऐसे अनेकानेक उपन्यासों की सर्जना हुई है जिनमें लेखक मात्र प्रस्तुत कर्ता है । " बाणभट्ट की आत्मकथा " का लेखक विदेशी महिला से प्राप्त पाण्डुलिपि को मात्र उपन्यास का स्वरूप दे देता है । " सेठ बांकेमल " का रचनाकार सेठ बांकेमल की आत्म-चर्चा को जो उसी से सुना है उसे उसी के शब्दों में प्रस्तुत कर देता है । " सूरज का सातवां घोड़ा " का रचयिता माणिक मुल्ला द्वारा सुनी हुई कहानियों को अविकल रूप में प्रस्तुत कर देता है । अर्थात् लेखक, पाठक और चरित्र के मध्य उपस्थित-रह कर कृति की सफलता-असफलता से बचे रहने का अभिनय करता है । बीच-बीच में वह अध्येता को स्मृति दिलाता रहता है कि कथा कहने वाला वह नहीं है ।

<u>यथार्थ-बोध</u> :- उत्तर प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों के कथ्य में यथार्थ-बोध है जिसके अभिव्यक्तिकरण की सीमाओं के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं । प्रथम पक्ष वहां दृष्टिगोचर होता है जहां यथार्थ भावना का सम्पूर्ण अस्तित्व वर्ग-वैषम्य के ऊपरी आधारों के निरूपण में सीमित है [२२]। यहां कतिपय उपन्यासकार अस्तित्व को

सामाजिकता की उपेक्षा कर अतिशय सूक्ष्म अतिरंजक कल्पना (फैन्टेसी) का उपयोग करना चाहते हैं। " पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की शक्ति " कल्पना की शक्ति मानी जाती है। इसी का आत्यंतिक उपयोग रचना में " फैन्टेसी " या " विलक्षण कल्पना " का उपयोग माना जाता है।

यथार्थबोध से प्रभावित होनेके कारण प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों का कथ्य व्यक्ति पर आधारित हो गया। व्यक्ति एक सामाजिक सन्दर्भ में चित्रित होने लगा। यथार्थ-चेतना को स्वीकार कर लेखक कृति में अपने अनुभव के संश्लिष्ट चित्रण, और इस अनुभव की ऐतिहासिक चेतना के पाठक के मन में रूपान्तरण आदि प्रश्नों के प्रति सचेष्ट दिखाई देता है। यथार्थ-बोध से सम्पन्न उपन्यासकारों की औपन्यासिक कृतियों में जीवन दृष्टि का निश्चित आभास मिलता है। इसी कारण इन उपन्यासों में चरित्रों के व्यक्तित्व की सम्पूर्ण चेतना की निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति भी दृष्टिगत होती है। ये चरित्र अपने अनुभवों का विश्लेषण स्वयं बड़े तटस्थ भाव से करते हैं। वातावरण की अनुभूति का विषय बनाकर अभिव्यक्त करना यथार्थ की प्रतिष्ठा के प्रश्न को रचना-प्रक्रिया का प्रश्न मानने की रचनात्मक भावना के साथ समागत हुआ है।

मनोवैज्ञानिक प्रेरणा :- प्रेमचन्दोत्तर युग के कथ्य में गहरी मनोवैज्ञानिक प्रेरणा है। इन मनोवैज्ञानिक प्रेरणा को कतिपय लेखक सामाजिक स्तर पर तथा कुछ अधिक वैयक्तिक स्तर पर अभिव्यक्त करते हैं। प्रथम प्रकार की रचनाओं में जटिलता है और दूसरे में अधिक सूक्ष्मता तथा यत्र-तत्र अस्पष्टता है।

संकेत - सृजन :- इस युग की रचना प्रक्रिया के साथ सांकेतिकता का प्रश्न अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। इस युग के कथ्य संवेदनशील अनुभवों पर आधारित हैं जिनसे कथा-सन्दर्भ असम्बद्ध और अनिश्चित से हैं फिर भी उपन्यासकार इनके द्वारा जीवन के प्रति अधिक सर्वतोमुखी या परिग्राही दृष्टिकोण की रचना करने में समर्थ होता है। इनमें कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए कथानक को माध्यम रूप में ग्रहण किया गया है। वह " माध्यम " पर निर्भर है जो रचनाकार के अनुभूति का प्रतीक धारण देता है। जीवन की इन्हीं प्रतिक्रिया की अनुभूति देता है।

आधुनिक रचनाकार के भीतर एक प्रकार के मानसिक प्रत्यावर्तन की समस्या बराबर निहित रहती है। सांकेतिक अर्थवत्ता द्वारा ही वह अपनी रचनात्मक-प्रक्रिया में इस समस्या का समाधान प्राप्त करता है। रचना-प्रक्रिया में सांकेतिकता उचित उद्देश्य में ही तो उपन्यासकार अनावश्यक वर्णनात्मकता अथवा विस्तार से बच जाता है। तथा उसका कथ्य भी अनायास ही दीप्त हो सकता है। सांकेतिक अर्थवत्ता से सम्पन्न होने के कारण ही प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का कथ्य सीधी चेतना तथा अनुभूति के गहरे स्तरों को छूने में समर्थ हो सका है। जैनेन्द्र तथा अज्ञेय के कथ्य की रचना-प्रक्रिया में सांकेतिकता दृष्टिगोचर होती है जिसमें व्यंजनात्मकता है। वे ब्यौरे न दे कर ऐसा चित्र प्रस्तुत करते हैं जो सांकेतिक होते हैं। अज्ञेय कृत " नदी के द्वीप " में रेखा और हेमेन्द्र के विवाह की व्यंजना संकेत द्वारा ही होती है। सांकेतिकता के समावेश से रचना-प्रक्रिया में विस्तार के दोष का परिहार हो जाता है और औपन्यासिक कृति में कलात्मक सौन्दर्य आ जाता है। निश्चय ही आधुनिक कथ्य-रचना में सांकेतिकता का अधिक सूक्ष्म उपयोग किया जा रहा है जो उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

<u>प्रतीक - सृजन</u> :- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने भावात्मक कथ्य की रचना करने में प्रतीकात्मक पद्धति की सृष्टि की है क्यों कि यह भावों को अभिव्यक्त करने का एक सहज माध्यम है। जिस कथ्य की अभिव्यक्ति अभिधा द्वारा सहज-रूप से नहीं हो सकती उसको पाठक तक संप्रेषित करने के लिए इन उपन्यास लेखकों ने प्रतीकात्मक शैली, तथा प्रतीकात्मक दृश्यों को ग्रहण किया है जिनके माध्यम से कथ्य की व्यंजना होती है। पात्रों की अचेतनता के उद्घाटन के लिए स्वप्न-दृश्यों का आयोजन किया गया है। प्रतीकात्मकता से भावाभिव्यंजन में कलात्मकता आई है। अज्ञेय ने प्रतीक को सत्यान्वेषण के एक माध्यम के रूप में स्वीकार किया है [23]।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य की रचना-प्रक्रिया में अर्थगांभीर्य लाने वाले ये प्रतीक अतीव सूक्ष्म होते गये हैं। आज का सम्पूर्ण मानव-जीवन ही इतना संकेत-पूर्ण हो गया है कि अब हम उसे एक प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं।

प्रतीकात्मक सार्थकता का प्रसार न केवल मानव के चेतन क्रिया-कलाप से होता है, अपितु उसके अचेतन पर भी उसका प्रभाव लक्षित किया जाता है [२४]।

भाव, प्रभाव और परिणतियों को प्रतीकात्मक शब्दों के द्वारा ही व्यंजित करके उपन्यासकार कथ्य की विराटता को अक्षुण्ण रख सकता है। अत्याधुनिक उपन्यासों का कथ्य जो कि एक मनःस्थिति, मूड या विचार-बिन्दु मात्र रह गया है उसे पूर्णता के साथ प्रतीकों द्वारा ही पाठकों के संमुख उपस्थित किया जा सकता है।

प्रतीकवादी उपन्यासकार अपने विचारों की अभिव्यक्ति नहीं चाहता है। इसी लिए वह सोद्देश्य संकेतों का समायोजन करता है, स्पष्ट कथन की प्रक्रिया साहित्य एवं कला के बहुत से आनंद को नष्ट कर देती है, इसलिए उन्हें स्पष्ट कथन-शैली अभीष्ट नहीं होती। जन-साधारण की बौद्धिक क्षमता को उद्बुद्ध कर उसे जागरूक करने के लिए प्रतिवादी उपन्यासों में संकेतों एवं प्रतीकों का प्रयोग हुआ किन्तु अपने शुद्ध रूप में नहीं। यही कारण है कि उनमें जटिलता एवं दुरूहता आ गई। कथाकार के लक्ष्य की पूर्ति उपन्यास के उस रूप के चरित्र-चित्रण द्वारा हो गई जो उनके उपन्यास का नायक है।

सामाजिक समस्याओं, कतिपय मनोवृत्तियों, व्यष्टि की उलझनों आदि को अपने अनुभवों के आधार पर सांकेतिक रूप से चित्रण करने में प्रतीक-विधान का ही प्रयोग हुआ है।

संकेत प्रधान रचनाओं में कथावस्तु का विकास न परिलक्षित होकर किसी विशिष्ट भावना की प्रधानता ही दृष्टिगत होती है, जिसमें उपन्यासकार सांकेतिक अर्थों की सृष्टि करता है।

आधुनिक उपन्यासकार की अभिव्यक्ति के दो आयाम व्यष्टि एवं समष्टि हैं। प्रतीकों का प्रयोग समष्टि सत्य को प्रधान रूप से अपने में निहित

किए हुए हैं। जीवन की समस्याओं को प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक अथवा संकेत प्रयुक्त होते हैं।

मनोवैज्ञानिक विचारकों के अनुसार दमित-भावना की सूक्ष्म अभिव्यक्ति प्रतीक और परिस्थिति के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध और संवेग-सन्दर्भ विशेष रूप से विचारणीय हैं। उनके अनुसार व्यक्ति मानस-प्रतीकों के द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। इस अभिव्यक्ति में अचेतना की दमित भावनाओं की प्रतीकात्मक व्यंजना अधिक महत्वपूर्ण है। दमित भावनाओं की प्रतिच्छाया साधारण क्रिया में अनवरत् प्रतिभासित होती रहती हैं। इनमें संवेदनशीलता पाई जाती है। इस लिए इनके द्वारा अचेतन परिवर्तित हो कर चेतन के स्तर पर पहुंच कर उसके अनुरूप परिवेश प्राप्त करता रहता है। अचेतन से चेतन तक आने का सम्पूर्ण क्रिया की अभिव्यंजना मात्र प्रतीकों के माध्यम से ही हो सकती है। अचेतन की अभिव्यक्ति सदैव प्रतीक अभिव्यक्ति होती है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों का कथ्य विशेष रूप से व्यक्ति-मानस और उसके दो स्तर-चेतन-अचेतन ही हैं। यही कारण है कि उनकी अभिव्यक्ति के लिए इन रचनाकारों ने कथ्य-रचना की प्रक्रिया में प्रतीक-विधान को महत्वपूर्ण स्थान दिया है तथा अपने कथ्य के अनुकूल नवीन प्रतीकों की सृष्टि की है। "सोया हुआ जल", "सागर लहरें और मनुष्य", खाली कुर्सी की आत्मा;" "दो एकान्त", "सन्यासी", गिरती दीवारें", तथा "सूरज का सातवां घोड़ा" आदि प्रमुख प्रतीकात्मक रचना-प्रक्रिया के उपन्यास है, वैसे तो इस काल के प्राय: अधिकांश उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया में प्रतीकों की सन्निहिति प्राप्त होती है। अज्ञेय कृत "शेखर एक जीवनी" उपन्यास में लेखक ने कथ्य की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उसे आठ खण्डों में विभक्त कर प्रत्येक खण्ड का नामकरण भी प्रतीकात्मक ढंग से किया है।

<u>बिम्ब-सृजन</u> :- विवेच्य युगीन कथ्य की रचना-प्रक्रिया में बिम्ब-विधान भी आलक्ष्य है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने अभिव्यक्ति के नये आयामों की उपलब्ध करने में नवीन बिम्ब-विधान को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। बिम्बों का प्रयोग किसी भी अमूर्त अनुभव या वस्तु को मूर्त और सजीव रूप देने में किया जाता है। जिन अनुभूतियों की गहनता में हम प्रविष्ट नहीं हो पाते उनकी अभिव्यक्ति

की गहनता में हम प्रविष्ट नहीं हो पाते उनकी अभिव्यक्ति में बिम्ब-विधान विशेष रूप से सहायक होता है [२५]। अवश्य मानसिक जगत,पुनर्मूल्यन, स्मृति, भूत की संवेदनशील और प्रातिबोधिक अनुभूति आदि मनोवैज्ञानिक सन्दर्भों से भी इसका गहन सम्बन्ध है। इसीलिए प्रेमचन्द - परवर्ती उपन्यासकारों ने मनोवैज्ञानिक स्थितियों की जटिलता के अभिव्यक्तीयकरण हेतु बिम्बों के अर्थपूर्ण उपयोग पर अधिक बल दिया है। इन औपन्यासिकों के कथ्य अब अन्त:स्थितियों, भावों तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म इन्द्रिय बोधों पर आधारित होने लगे हैं जिसके अभिव्यक्ति के लिए इनमें बिम्बों की सत्ता के प्रति विशेष जागरूकता दृष्टिगत् होती है जो पूर्वकाल में इस रूप में नहीं प्राप्त होती। आधुनिक उपन्यासकार नवीन यथार्थ के प्रति संवेदनशील है यही कारण है कि उसमें बिम्बों के प्रति सजग चेतना का प्रादुर्भाव दृष्टिगत् होता है। यह बिम्बवादी प्रवृत्ति " रचना " में वस्तु के प्रत्यक्ष ग्रहण के सिद्धान्त पर बल देती है जो आधुनिक विचार-दर्शन (पाजिटिविज्म) के अधिक समीप प्रतीत होती है। उपन्यासकार व्यक्ति की मानसिक चेतना में घटित होने वाली समस्त जीवन-प्रक्रिया को बिम्बों के माध्यम से ही व्यक्त कर सकता है। कोई भी रचना अनुभव के अनेक स्तरों में अपना समग्र रूप धारण करती है और यह सम्पूर्ण क्रिया इतनी सूक्ष्म तथा अनायास रूप में होती है, कि हम इन्हें (इन अनुभव -स्तरों को) अधिक से अधिक सार्थक सम्बन्ध देने वाले बिम्बों के उपयोग द्वारा ही अभिव्यक्त कर सकते हैं। यद्यपि हेनरी बर्गसाँ मानता था, कि भीतरी जीवन में समाविष्ट चेतना के विविध रूपों का अभिव्यक्ति बिम्बों के द्वारा नहीं की जा सकती [२६]। परन्तु उसका यह विचार किसी सीमा तक भ्रामक प्रतीत होता है क्योंकि आभ्यंतर चेतना की अभिव्यक्ति बिम्बों के द्वारा ही संभव है। यह और बात है कि उपन्यासकारों को इस दिशा में समान सफलता न मिले।

<u>मूर्तदृश्यों की योजना</u> :- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने कथ्य की रचना-प्रक्रिया में वर्णन विवरणों की कमी करके मूर्त दृश्यों की योजना किया है। जिस प्रकार नाटक में दर्शकों को समूर्त प्रत्यक्षीकरण का आनन्द प्राप्त होता है उसी प्रकार उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में एक-एक भाव विशेष पर बल देते हुये अमूर्त को मूर्त कर पाठक को प्रत्यक्षीकरण के आनन्द से लाभान्वित होने में योग दिया है।

भावों को समूर्त रूप में प्रत्यक्षीकरण की यह प्रक्रिया " दृश्य-विधान " की शैली के नाम से प्रसिद्ध है । प्रेमचन्द-युग में दृश्यों का विधान कम हुआ है । किन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग में अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी सभी उपन्यासकारों ने दृश्यों का आयोजन किया है । अज्ञेय कृत " शेखर एक जीवनी " उपन्यास में सर्वप्रथम इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है । इसके पश्चात् इसका विकास " मैला आंचल " और " परती परिकथा " में दृष्टिगत होता है । " झाँसी की रानी " "दिव्या", " नदी के द्वीप", " सुखदा" "तट के बंधन", " कठपुतली ," "यथार्थ से आगे ," " चित्रलेखा ;" नये मोड़ ; और " रोड़े और पत्थर " प्रभृति औपन्यासिक रचनाओं में दृश्यों और विवरणों का सन्तुलित समायोजन द्रष्टव्य है । " सोया हुआ जल " तो सम्पूर्ण दृश्यात्मक उपन्यास ही है । इस दृश्य-विधान ने कथ्य की परम्परागत् रचना-प्रक्रिया में आमूल परिवर्तन उपस्थित किया है ।

<u>पूर्व-दीप्ति पद्धति का प्रयोग</u> :- स्मृत्यवलोकन के लिये इन उपन्यासकारों ने रचना-प्रक्रिया के अन्तर्गत पूर्व-दीप्ति (Flash Back) पद्धति को स्थान दिया है । उपन्यास में आगे बढ़ता हुआ पात्र जहां-कहीं स्वयं स्फूर्त होता है, या कोई बाह्य उद्दीपन उसे उद्दीप्त करते हैं, वहीं "पिछली गड़ी बातें अंगड़ाई लेती उखड़ती सी" उसकी स्मृतियों के रूप में वर्तमान का बाना धारण कर समक्ष प्रकट होने लगती हैं, विगत् क्षणों को पुनरुज्जीवन मिल जाता है और पाठक लेखकीय वर्णन-व्याख्या के बिना उनका सीधा जीवन साक्षात्कार करता है । "शेखर एक जीवनी " ," नदी के द्वीप " तथा " गिरती दीवारें " आदि अनेक उपन्यासों के कथ्य की रचना-प्रक्रिया में पूर्वदीप्ति -पद्धति का विनियोग देखा जा सकता है । इस पद्धति से मनोवैज्ञानिकता के साथ ही साथ नाटकीय वर्तमानता की भी सिद्धि होती है [२०] । इलाचन्द्र जोशी का " संन्यासी ," अमृतलाल नागर का " महाकाल" जैनेन्द्र कुमार कृत " सुखदा " " व्यतीत " आदि उपन्यासों में भी स्मृति-तरंगों का उपयोग किया गया है ।

<u>चेतना-प्रवाह पद्धति</u> :- व्यक्ति मानस की जटिलताओं एवं चेतना के अबाध प्रवाह को अभिव्यक्त करने के लिए इन विवेच्यकालीन उपन्यास-लेखकों ने चेतना-प्रवाह पद्धति (Stream of conciousness) को प्रश्रय दिया है । आधुनिक व्यक्ति के जिस जटिल स्वरूप का अनवरत् विकास होता चला जा रहा है, वह किसी परम्परागत् रचना-प्रक्रिया द्वारा अभिव्यंजित नहीं हो सकता । प्रत्येक आधुनिक व्यक्ति ने समस्त प्राचीन सिद्धान्तों, मान्यताओं तथा आदर्शों के प्रति प्रश्न-चिन्ह लगा दिया है । वह अपने अस्तित्वगत् स्वरूप के प्रति इतना सचेष्ट हो चुका है कि किसी भी समस्या का समाधान वह अपने ही तर्क और विश्लेषण द्वारा करना चाहता है । पुनर्जागरण-युगों की भाँति अब अपने परिवेश अथवा समाज के प्रति उस प्रकार का सम्बन्ध भी नहीं रहा । समस्त सन्दर्भों में उसने एक अलगाव (एलिएशन) की स्थिति को प्राप्त कर लिया है । यही कारण है कि उसका मूल स्वरूप किसी परम्परागत विचार अथवा परम्परागत् मान्यता में खोजा नहीं जा सकता । आज व्यक्ति एक अलग इकाई बन गया है और उस इकाई को केवल उसी के माध्यम से समझा जा सकता है । चेतना-प्रवाह के मूल में व्यक्ति को, व्यक्ति द्वारा समझने का यही प्रयास सन्निहित है । " शेखर एक जीवनी " में चेतना प्रवाह पद्धति कुछ स्थलों पर दृष्टिगत होती है । प्रभाकर माचवे कृत " परन्तु " में इसका विफल प्रयोग दिखाई पड़ता है । " नदी के द्वीप " उपन्यास में अज्ञेय ने कुछ मानसिक दृश्यों के प्रभावपूर्ण चित्र को चेतना प्रवाह पद्धति में प्रस्तुत किया है । जिस प्रकार चलचित्र में एक के बाद एक दृश्य स्वत: उपस्थित होता है उसी प्रकार प्रत्यावलोकन पद्धति में चेतना के अबाध प्रवाहजन्य दृश्य भी सजीव रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं । व्यक्ति-चेतना से सम्बद्ध कथ्य की रचना-प्रक्रिया में प्रत्यावलोकन पद्धति का महत्वपूर्ण योगदान है । एक साथ उत्पन्न होने वाली अनेक विचार-तरंगों को उसी रूप में व्यक्त करने की यह क्रिया किसी अन्य रचना-प्रक्रिया द्वारा संभव नहीं है । इसी लिए यह चेतना-प्रवाह -शिल्प आधुनिक व्यक्ति की सूक्ष्म मानसिकता को अभिव्यक्त करने में अत्यधिक सहायक हुआ है ।

<u>आंचलिक कथ्य की रचना-प्रक्रिया</u> :- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य की रचना-प्रक्रिया के अन्तर्गत आंचलिकता का प्रश्न भी विचारणीय है, क्यों कि आधुनिक उपन्यास - लेखकों में यदि नारी के संक्रमणशील जीवन के मध्यवर्गीय रहस्यों का अध्ययन करने वाले उपन्यासकार हैं, तो ग्राम-कथानकों की पुन: प्रतिष्ठा करके आंचलिकता का नवीन रस प्रदान करने वाले उपन्यासकार भी हैं। यह साम्प्रतिक विविधता औपन्यासिक कथ्य की सम्पन्नता तथा उसकी रचनात्मक प्रक्रिया की चेतना का प्रमाण है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में अंचल-विशेष के जन-जीवन को कथ्य रूप में प्रस्तुत करने के नवीन शिल्प की प्रतिष्ठा हुई है जिसके अन्तर्गत आंचलिक जीवन में आये नवीन बोधों की ओर संकेत किये गये हैं। आंचलिक उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत वहां के उपेक्षित जीवन, आंचलिक विश्वासों, आंचलिक चरित्रों, वहां की आर्थिक विषमता, गांव की नवीन स्थितियों आदि की वास्तविक अभिव्यक्ति हुई है। आंचलिक कथ्य की रचना-प्रक्रिया को समर्थ बनाने के लिए आंचलिक शब्दों, मुहावरों, रीति-रिवाजों, धार्मिक स्थानों, प्रथाओं एवं अंधविश्वासों आदि का बहुलता से प्रयोग किया गया है जिससे इन आंचलिक उपन्यासों में जीवन्तता और विश्वसनीयता आ गई है। प्रेमचन्दोत्तर औपन्यासिक कृतियों में यह आंचलिकता भी कई दिशाओं में उभारी गई है और उनके कई रूप हैं। किन्हीं उपन्यासों में व्यंग्य के माध्यम से आंचलिकता उभरी है, किन्हीं में आर्थिक विपन्नता चित्रित करके आंचलिकता लाने का प्रयास किया गया है। कहीं-कहीं आंचलिकता और नगर-बोध में पारस्परिक संघर्ष को चित्रित किया गया है। आंचलिक कथ्य को लेकर उपन्यास-रचना करने वाले सर्वप्रथम रचनाकार फणीश्वर नाथ रेणु हैं। रेणु जी ने ही सर्वप्रथम व्यक्ति की कथा प्रस्तुत कर अंचल विशेष की कथा खंड-चित्र के रूप में प्रस्तुत की है। इसके पूर्व शिव प्रसाद मिश्र "रुद्र" ने "बहती गंगा" में १७ स्वतंत्र कहानियों के माध्यम से स्थान विशेष की प्रकृतिगत् विशेषताओं का सजीव चित्र अंकित किया है। इसमें राजवर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक का चित्रण हुआ है। इसमें काशीवासियों की वीरता साहस, देश-भक्ति आदि भावनाओं का सफल चित्रांकन हुआ है। किन्तु इसमें दृढ़ सम्बन्ध सूत्र का अभाव है। "बहती गंगा" शीर्षक के द्वारा इन विच्छिन्न कथाओं को सम्बद्ध करने का प्रयास हुआ है। किन्तु रेणु कृत "मैला आंचल" में ग्राम का

चित्र खण्ड-दृश्यों के द्वारा प्रस्तुत अवश्य हुआ है परन्तु इसमें उसकी अपेक्षा सम्बद्धता तथा पूर्णता अधिक है। खण्ड-चित्र के माध्यम से चरित्र की जो रूप रेखायें उभरी हैं वे पूर्ण स्पष्ट तथा विश्वसनीय हैं। अपने अभिनव शिल्प के कारण यह मील-स्तंभ स्वीकार किया गया है।

अस्तु प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्यगत अध्ययन एवं विश्लेषण के उपरान्त हम निश्चय ही यह कह सकते हैं कि इन उपन्यासों के कथ्य में अभूतपूर्व विकास हुआ है। प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासों का कथ्य जहां बाह्य-जीवन एवं स्थूल आदर्शों तथा नैतिक मान्यताओं पर आधारित होता था, जहां वह समष्टि विषयक होता था वहां प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का कथ्य जैनेन्द्र, अज्ञेय, जोशी आदि मनोविज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित औपन्यासिकों द्वारा व्यक्ति के अन्तर्जगत् में प्रविष्ट हो गया तथा व्यक्ति-मानस के चेतन-अचेतन दो स्तरों को अपना आधार बनाया। अब उपन्यासों का कथ्य समष्टि न होकर व्यष्टि हो गया, एवं व्यष्टि-मानस के सदासद् प्रवृत्तियों, मन:स्थितियों, भावों, मूडों, स्मृति-तरंगों, दिवास्वप्नों आदि के चित्रण को उसमें महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगा। तात्पर्य यह है कि विवेच्य युगीन उपन्यासों का कथ्य बाह्य धरातल को छोड़ कर अब अन्तर्मुखी हो गया तथा स्थूल को छोड़ कर सूक्ष्म रूप धारण कर लिया। अब वह प्रेमचन्दीय आदर्शोन्मुख यथार्थवादी धरातल को छोड़ कर वास्तविक यथार्थवादी धरातल पर प्रतिष्ठित हुआ। यथार्थ की वास्तविक अभिव्यक्ति जिया जाता हुआ वास्तविक जीवन, भोगा हुआ क्षण ही इन उपन्यासों के कथ्य-रूप में चुना गया है। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन अपनी समग्र प्रकृति एवं विकृति के साथ इन उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत व्याख्यायित एवं विश्लेषित हुआ है। जो कथ्य के विकास का द्योतक है।

यद्यपि अधिकांश प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का कथ्य व्यक्ति-जीवन से सम्बद्ध है फिर भी सामाजिक कथ्य के उपन्यासों की भी अभाव नहीं हैं। सर्वश्री यशपाल, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृत लाल नागर, आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव आदि अनेकों उपन्यासकारों ने सामाजिक कथ्य को चुन कर अपने कई उपन्यासों की सर्जना की है। इतना अवश्य है कि इन प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों की सामाजिक दृष्टि में पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की सामाजिक दृष्टि की

अपेक्षा परिवर्तन हुआ है जो सामयिक एवं आवश्यक भी है। अनेक आधुनिक उपन्यासकारों ने भी व्यष्टि एवं समष्टि के सम्बन्धों की ओर ध्यान दिया है एवं उनमें सामंजस्य उपस्थित करने का प्रयास किया है।

आधुनिक उपन्यासकार कल्पना-लोक में विचरण करने वाला एक असाधारण या असामान्य प्राणी नहीं है अपितु भौतिक जगत में रहने वाला हाड़-मांस युक्त एक व्यक्ति है, जो अपने जैसे हाड़-मांस-युक्त व्यक्तियों के साथ साधारण व्यक्तियों की भांति सुख से रहना चाहता है। वह अपमान से उत्तेजित हो उठता है। उसकी गतिविधियां मंहगाई से नियंत्रित होती हैं - आपात् कालीन स्थिति द्वारा उसके कार्य प्रतिबंधित होते हैं। वह अपने पूर्वजों के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध बनाये रखना चाहता है - भौगोलिक और जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियों से वह प्रभावित होता है - अध्यात्म में वह शान्ति की खोज करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक संरचना का विस्तृत ज्ञान प्रचुर मात्रा में प्राप्त करना चाहता है। ये सभी तथ्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उपन्यास का कथ्य एकांगी व्यक्ति न हो कर समग्र व्यक्ति है। इन उपन्यासकारों द्वारा व्यष्टि के माध्यम से समष्टि को जानने का प्रयास किया गया है। परिवर्तित होता हुआ जीवन ही इनकी कृतियों का कथ्य है।

जिस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य में परिवर्तन स्पष्टतया संकेतित होता है उसी के अनुरूप उनकी रचना-प्रक्रिया में भी बदलाव आया है। कथ्य की रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से आभ्यन्तरिक मोड़ (इन्वर्ड टर्निंग), अनुभव की प्रामाणिकता, संवेदनशीलता, तटस्थता, बिम्ब विधान, प्रतीक योजना, f सम्प्रेषणीयता, संकेतात्मकता, जटिलता, आंचलिकता, चेतना प्रवाह, पूर्वदीप्ति आदि विशेषतायें इस काल की अपनी उपलब्धि हैं जो इन औपन्यासिक कृतियों के सृजनात्मक-सौष्ठव को परिचायक हैं। प्रेमचन्द परवर्ती युग में कथ्य का जो विकास दृष्टिगत होता है एवं रचना-प्रक्रिया के प्रति उपन्यासकारों की जिस सजग चेतना का आभास मिलता है वह सन्तोष-प्रद एवं सुखद भविष्य की सूचना देने वाला है। आज भी भगवती चरण वर्मा, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती, गिरधर गोपाल,

नरेश मेहता, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मी नारायण लाल, उषा प्रियंवदा आदि उपन्यासकार रचनात्मक शिल्प की दृष्टि से मौलिक उपन्यासों की सर्जना कर रहे हैं जिन्हें देख कर यह विश्वास उत्पन्न होता है कि भविष्य में कथा की रचना प्रणाली में अनेक उत्कृष्ट प्रयोग होंगे जिनमें संभवत: आत्मीयता तथा हार्दिकता भी होगी ।

१ — डॉ० ब्रजभूषण सिंह आदर्श - हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन - पृ० २७४)

२ — सुनीता, प्रेत और छाया, नदी के द्वीप, सूरज का सातवाँ घोड़ा, गिरती दीवारें, डूबते मस्तूल, अँधेरे बन्द कमरे, किस्से ऊपर किस्सा, मछली मरी हुई।

३ — डॉ० नगेन्द्र - नई समीक्षा के नये सन्दर्भ - पृ० ७६-८०

४ — डॉ० नगेन्द्र - नई समीक्षा के नये सन्दर्भ - पृ० ८०

५ — किस्से ऊपर किस्सा तथा मछली मरी हुई।

६ — यशपाल, उषा प्रियंवदा, रजनी पनिकर, सम्पादक धर्मवीर भारती।

७ — राजेन्द्र यादव, नरेश मेहता, अनंत गोपाल शेवड़े।

८ — गिरधर गोपाल, अश्क, राजेन्द्र यादव।

९ — रांगेय राघव, अमृत लाल नागर, नरेश मेहता

१० — " Experience is remolding us every moment, and our mental reaction on every given thing is really a resultant of our experience of the wohole world upto the date ". William James:Principles of Psychology. Copy 1, Page 234

११ — '' बाई इन्द्यूशन इज मेन्ट द काइन्ड आफ इन्टेलेक्चुअल सिम्पेथी बाई व्हिच वन पैसेज विदिन एन आब्जेक्ट इन आर्डर टु क्वाइन्साइड विद ह्वाट इज यूनिक इन इट ऐण्ड कान्सिक्वेंटली इनएक्सप्रेसिबुल ''।

(ऐन इन्ट्रोडक्शन टु मेटाफिजिक्स—के हेनरी बर्गसाँ पृ० ६)

१२ - डॉ० ए० ए० ब्रिल - द बेसिक राइटिंग्स आफ सिग्मंड फ्रायड, की भूमिका पृ० १८-१६

१३ — एव्री क्रियेटिव पर्सन इज ए डुअलिटी आर ए सिन्थेसिस आफ कान्ट्राडिक्टरी एप्टीट्यूड्स आन द वन साइड ही इज ए ह्यूमन बीइंग विद ए पर्सनल लाइफ, ह्वाइल आन द अदर साइड ही इज ऐन इम्पर्सनल क्रिएटिव प्रासेस। ''

(लिट्रेचर ऐण्ड साइकोलोजी: द क्रियेटिव प्रासेस - सी० जे० युंग ए सिम्पोजियम (वेस्टरगिलिन) पृ० २२०)

१४ – '' ऐस्थेटिक एक्सपीरियन्स इज एक्सपीरियन्स इन इट्स इंटिग्रीटी........ आल द एलीमिन्टस आफ आवर बीइंग .... आर मर्जड इन ऐस्थेटिक एक्सपीरियन्स .... इन बीक प्रोडक्शन एण्ड इन्डवाएड पर्सन वर्क आफ आर्ट, नालिज इज ट्रांसफार्म्ड, इट बिकम्स समथिंग मोर देन नालिज - बिकाज इट इज मर्ज्ड विद नान इन्टेलेक्चुअल एलिमेन्ट्स ।''

(आर्ट ऐज एक्सपीरियन्स - जान ड्यूई : पृ० २८४-२९०)।

१५ – ए वर्क आफ आर्ट एक्जिस्ट्स प्राइमरिली इन द माइन्ड आफ द आर्टिस्ट, द सेन्स - आफ व्हिच इट इज कन्स्ट्रक्टेड एक्जिस्ट्स इन हिज माइन्ड, द फीलिंग्स विद व्हिच दे आर असोशिएटेड इन हिज माइन्ड आल्सो। इन सो फार ऐज दोज फीलिंग्स आर लिंक्ड विद आइडियाज, दोज आइडियाज अगेन आर इन हिज माइन्ड । द वर्क आफ आर्ट इन द माइन्ड आफ द आर्टिस्ट देयर फोर इज एप्रीहेंसन, टु यूज ए टर्म आफ व्वाइट हेड्स, आफ सेन्स, डाटा एण्ड फिलिंग्ज विद आर विदाउट आइडियाज, एण्ड इट मेक्स नो डिफरेन्स व्हेदर इट इज फुली इमैजिन्ड ऐज एक्जीक्यूशन बिफोर द आर्टिस्ट बिगिन्स वर्क आन द फिजिकल आब्जेक्ट इन व्हिच हिज क्रीएशन इज टु बी इम्बाडीड आर व्हेदर द क्रीएशन डेवलप्स ग्रेजुअली व्वाइल ही वर्क्स ।''

(द नेचर आफ एक्सपीरियन्स : आर रसेल ब्रेन)
पृ० ५०)

१६ -- द साइकोलोजिकल नाविल - लियोन इडेल पृ० ११

१७ – स्टडीज इन योरोपियन रियलिज्म - जार्ज ल्यूकाक्स पृ० १४७-४८

१८—'' वैज्ञानिक अन्वेषण बुद्धि जब भौतिक तत्वों से अधिक क्रियाओं की ओर मुड़ी तब उसका मानव मन की ओर उसके गुणों, शक्तियों की पड़ताल करने लगना स्वाभाविक ही था '' प्रतिभा '' से '' प्रक्रिया '' तक हमारी प्रगति विज्ञान की प्रगति के साथ बंधी हुई है। ''

(रचना प्रक्रिया: कुछ विचार - अज्ञेय: साप्ताहिक हिन्दुस्तान 2 जुलाई १९६१)

१९ - - '' किसी वस्तु का रचना के साथ उतना ही सम्बन्ध होता है जितना सूर्य की उस किरण का एक बहते पानी के साथ - जो क्षण भर के लिए पानी को स्वर्णमय बना जाय। ''

(भीतर की चिनगारी : अमृता प्रीतम: ज्ञानोदय फरवरी:- १९६० पृ० १२)

२० — '' इट इज ट्रू दैट नाविल - राइटिंग इज ए फिलसाफिक अकुपेशन द ग्रेट नाविल आफ द वर्ल्ड .... आर ग्रेट प्रिसाइजली बिकाज दे हैव दिस क्वालिटी आफ थाट बिहाइण्ड देम .... इट इज दिस क्वालिटी विच डिस्टिंग्विशेज द फर्स्ट रेट फ्राम द सेकेण्ड रेट इन फिक्शन। ''

(द नाविल एण्ड द पीपुल - राल्फ फाक्स) पृ० ६१-६२)

२१ — अपने बाह्य जीवन - चक्र का चित्रण सच्ची सफलता पा सकता है जो अन्तर्जीवन - चक्र पर आधारित हो। उसी प्रकार अन्तर्जीवन की वही प्रगति श्रेयोन्मुखी हो सकती है जो बाह्य जीवन की प्रगति से निश्चित सम्बन्ध स्थापित किये हो। ''

(विवेचना - इलाचंद जोशी : आधुनिक साहित्य में मनोविज्ञान पृ० ११८)

२२ -- ''द प्रोग्रेसिविस्ट्स रेन अवे विद द थीसिस दैट प्रेमचन्दस डेवलपमेन्ट फ्राम रिफार्मिस्ट रैशनलिज्म टू रियलिस्टिक अन्डर स्टैंडिंग आफ सोशल कनफ्लिक्ट वाज टोटल ऐक्सेप्टेन्स आफ द डाक्ट्रिन आफ क्लास वार, ऐण्ड कम्प्लीटली इग्नोर्ड जिज रियल कन्ट्रीब्यूशन टू द ग्रोथ आफ हिन्दी नाविल ।''

(द कोंटराडिजेशन आफ अथेन्टिक इन्डिविजुअल्ज - एस०एच० वात्स्यायन : कन्टेम्पोरेरी इण्डियन लिटरेचर पृ०८८)

२३ --''वैज्ञानिक सागर की गहराई नापने के लिए रस्सी डालता है या किरणों की प्रतिध्वनि का समय कूतता है । वह एक प्रकार का ज्ञान है। वह प्रतीक के द्वारा सत्य को जानता है । सत्य के अथाह सागर में वह प्रतीक रूपी कंकड़ फेंक कर उसकी थाह का अनुमान करता है । यदि हम सागर को हमारे सब कुछ न जाने हुए का प्रतीक मान लें तो मछली उस प्रतीक का प्रतीक हो जाती है जिसके द्वारा अज्ञात सत्य की अन्वेषणा करता है । अगर प्रतीकों द्वारा अन्वेषणा को बिना प्रतीक योजना के बताया जा सकता है तो फिर वैसे अन्वेषणा की भी आवश्यकता होती।''

(आत्मनेपद - अज्ञेय पृ०४५)

२४ -- '' आज का कहानीकार अवचेतना , अदर्धचेतन , दिवास्वप्नों , अदर्धचेतन प्रतीकों , वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक संकेतों के प्रतीकात्मक प्रयोगों द्वारा अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियाँ कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त कर रहा है । वह अपने मन की विकृतियों और कुण्ठाओं का विश्लेषण करते हुए भी तटस्थ रहता है । किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी उसकी यह भावभूमि अभी बहुत कुछ अस्पष्ट है जिसका कारण मुख्यतया दुरूह असफल प्रयोग एवं प्रतीक योजना है ।'' (आधुनिक कहानी का परिपार्श्व- डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय , प्र० सं०१९६६ , पृ०१२०-२१)

२५-''संच मिमरोज मैं हैव सिम्बोलिक वैल्यू बट आफ ह्वाट वीकैन नाट टैल फार दे कम टु रेप्रिजेन्ट द डेप्थ्स आफ फीलिंग इन्टू वी कैन नाट पियर ।''

(सेलेक्टेड प्रोज - टी० एस० इलियट पृ० ६५)

२६ — ''..... सच द इनर लाइफ आल दिस ऐट वन्स वैरायटी आफ क्वालिटीज , कन्टिन्युटि आफ प्राग्रेस , ऐण्ड यूनिटी आफ डाय-रेक्शन इट कैन नाट बी रिप्रेजेन्टेड बाइ इमेजेज ,''

(ऐन इन्ट्रोडक्शन टू मेटाफिजिक्स - हेनरी बर्गसाँ पृ० १३)

26- "In the mind past and present merge: we suddenly call up a memory of childhood that is chronologically of the distant past; but in it memory becomes instantly vivid and is relieved for the moment that is recalled....... the novelist is catching and recording the present moment - and no other."

(Leon Edel - The Psychological Novel P. 29)

:: अध्याय - ५ ::

५: अन्तर्कथानक, उपकथानक ::-

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में नाटक के सम्बन्ध में कथावस्तु का विचार किया गया है । संभवतः जितने प्रकार की कथावस्तु नाटक के लिए हो सकती है उतनी ही उपन्यास के लिए भी । सामान्यतया यह सर्वमान्य है कि उपन्यास में एक आधिकारिक कथा या मुख्य कथा होती है और शेष प्रासंगिक कथायें होती हैं । ये प्रासंगिक कथाये मुख्य कथा को पुष्ट बनाती हैं । इसी मुख्य कथा को ही कतिपय विद्वानों ने कथासूत्र (थीम) और प्रासंगिक कथा को " एपिसोड " या उपकथा ( ) माना है ।

कथासूत्र (थीम):- कथासूत्र उस मुख्य विचार या किसी क्रिया का आधार भूत कार्य या कोई विशेष विषय होता है जिसका कथा में कोई विशेष वर्णन हो ।

प्रासंगिक-कथा (एपिसोड): किसी लम्बी कथा के बीच में प्रसंगवश असम्बन्धित जो अन्य कथायें आ जाती हैं, वे अन्तर्कथा " एपिसोड " कहलाती हैं । कभी-कभी ये कथायें प्रसंग से कुछ बाहर भी चली जाती हैं अथवा शिथिल रूप से सम्बद्ध होती हैं ।

उप कथा : प्रासंगिक कथावस्तु को " उपकथा " कहा जा सकता है जो मुख्य कथावस्तु के साथ सहायक रूप में चलती हैं ।

कथा-वस्तु के मुख्य व्यापार (कार्य) को आधिकारिक और गौण व्यापार को प्रासंगिक कथा-वस्तु कहा जाता है । प्रासंगिक कथा-वस्तु मुख्य कथा के विकास में सहायता देती है । रूपक का फल प्राप्त करने की योग्यता ही अधिकार है और उस फल का स्वामी (प्राप्त करने वाला) ही अधिकारी कहलाता है । उसी अधिकारी की कथा को " आधिकारिक-वस्तु " कहते हैं । इस आधिकारिक वस्तु के साधक वर्णनों को प्रासंगिक वस्तु कहते हैं । प्रासंगिक वस्तु से किसी दूसरे को भी

अर्थ-सिद्धि होती है और प्रसंग से मूल-नायक का स्वार्थ भी सिद्ध होता है ।

प्रासंगिक कथा-वस्तु के दो भेद होते हैं - (१) पताका और (२) प्रकरी । जब कथा-वस्तु सानुबन्ध होती है अर्थात् बराबर चलती रहती है तब उसे " पताका " कहते हैं । जब कथा-वस्तु थोड़े काल तक चल कर रुक जाती है या समाप्त हो जाती है तब वह " प्रकरी " कहलाती है । " पताका " का प्रयोग प्रासंगिक वस्तु में चमत्कार-पूर्ण धारा प्रवाह लाने के लिए किया जाता है ।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक अरस्तू ने अपने ग्रंथ " पैरीपोइटिक्स " में प्राय: तीन प्रकार के कथानकों की ओर दृष्टि आकर्षित किया है ।

१- दन्तकथा-मूलक - २- कल्पना-मूलक - ३- इतिहास मूलक

अरस्तू ने कथानक का यह भेद त्रासदी के सन्दर्भ में किया था । प्रत्येक भेद का विवेचन उन्होंने निम्नवत् किया है -

१- दन्त कथा मूलक -" जैसे त्रासदी का आधार प्राय: ये (दंत कथायें) ही होती हैं[१] । " कारण यह है कि जो सम्भव है, वही विश्वसनीय है और जो हुआ नहीं उसकी सम्भवता में हम सहसा विश्वास नहीं कर पाते[२] ।

२- कल्पना-मूलक :-" परन्तु फिर भी यह आवश्यक नहीं कि हम जैसे बने वैसे परम्परागत दन्तकथाओं को ही ग्रहण करें । (पृ० २७) " कुछ त्रासदियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें एक भी प्रसिद्ध नाम नहीं है, जैसे - आगॉन की अन्थियुस, जिसमें घटनायें और नाम दोनों काल्पनिक हैं । फिर भी इन कृतियों से किसी प्रकार कम आनन्द नहीं मिलता ।" (पृ० २६-२७)

३- इतिहास-मूलक -" और यदि संयोग से वह ऐतिहासिक विषय भी ग्रहण कर ले तब भी उसका कवि-रूप अक्षुण्ण रहता है, क्यों कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि कुछ घटनायें जो वास्तव में घटी हैं सम्भव और सम्भाव्य के नियम के अनुकूल न हों और उनके इसी गुण के नाते वह उनका कवि या स्रष्टा होता है ।" (पृ० २७)

भारतीय काव्य-शास्त्र में दो प्रकार के कथा-वस्तु का वर्णन किया गया है -

१- प्रसिद्ध - इसमें पुराण, दन्तकथाओं और इतिहास का अन्तर्भाव है। इसका विधान प्रायः महाकाव्य, नाटक आदि गंभीर काव्यरूपों के लिए किया जाता है।

२- उत्पाद्य - इसका प्रयोग प्रकरण खण्डकाव्य आदि द्वितीय श्रेणी के काव्य-रूपों में किया जाता है। " उत्पाद्य " कथा काल्पनिक-सृष्टि होती है।

कार्य की सरलता और जटिलता पर विचार करते हुए कथानक के दो भेद होते हैं : (१) सरल कथानक (२) जटिल कथानक[३]। यदि कार्य सरल है तो कथानक भी सरल होगा और यदि कार्य जटिल है तो कथानक भी जटिल होगा। क्यों कि उनके अनुकार्य - वास्तविक जीवन के व्यापारों - में भी स्पष्टतः यही भेद होता है[४]। जीवन में जिस प्रकार कभी जटिलता आ जाती है और कभी सरलता की स्थिति हो जाती है उसी प्रकार कथानक में उसका अनुकरण होने के कारण यह जटिलता और सरलता स्वतः आ जाती है।

(१) सरल कथानक : सरलकथानक में आद्यन्त एक ही कार्य होता है। चरम घटना की ओर वह अकेला ही अग्रसरित होता जाता है उसे किसी अन्य आश्रय की अपेक्षा नहीं होती है। उसकी परिणति भी बिना स्थिति-विपर्यय और अभिज्ञान की सहायता के स्वतः ही हो जाती है[५] -" सरल कथानक वह है जिसका कार्य-व्यापार एक और अविच्छिन्न हो, जिसमें स्थिति-विपर्यय और अभिज्ञान के बिना ही भाग्य-परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् जो व्यापार पूर्व-कथित सिद्धान्त के अनुकूल पूर्ण, एक और सम्बद्ध हो, वह उस समय साधारण कहलाता है और जब उसमें परिवर्तन और अभिज्ञान के बिना ही निर्वहण या फलागम हो जाता है।

(२) जटिल या गूढ़ कथानक (Compound)- जटिल कथानक का आधार जटिल व्यापार होता है[६]। " जटिल व्यापार वह है जहाँ यह (भाग्य) परिवर्तन स्थिति-विपर्यय या अभिज्ञान अथवा दोनों के द्वारा घटित होता है "।

इसका विकास 'सीधा' नहीं होता, वह अकेला चरम स्तिथि की ओर अग्रसरित नहीं होता। इसमें परिवर्तन या अभिज्ञान अथवा दोनों के संयोग से निर्वहण होता है। परिवर्तन और अभिज्ञान अथवा दोनों ही इतिवृत्त के भीतरी ढांचे से इस प्रकार प्रकट हों कि जो कुछ आगे आने वाला है वह बीते हुए कार्य का आवश्यक अथवा सम्भाव्य परिणाम हो। इस प्रकार जटिल कथानक में मोड़-मोड़ होते हैं। इसमें दो या दो से अधिक कथायें होती हैं। जटिल या गुम्फित कथानक की यह विशेषता होनी चाहिए कि सभी कथायें एक दूसरी से इस प्रकार जुड़ जायं कि उनमें अन्तर न रहे सब कुछ मिला कर वह एक कथा प्रतीत होने लगे।

जटिल कथानक के दो अंग होते हैं :-

१- <u>स्थिति-विपर्यय या परिवर्तन :</u> व्यापार की परिस्थितियों से जिस परिणाम की आशा की जाती है वह यदि सम्भावना तथा आवश्यकता के नियम के अनुसार नितान्त विपरीत दिशा में चलने लगे तो उस दिशा को स्थिति-विपर्यय या परिवर्तन कहते हैं। अरस्तू के शब्दों में स्थिति-विपर्यय ऐसा परिवर्तन है जिसमें व्यापार का व्यत्यय हो जाता है, किन्तु यह व्यत्यय सदा आवश्यकता एवं सम्भाव्यता के नियम के अधीन ही होता है। इस स्थिति-विपर्यय को अरस्तू ने "पैरीपैतिआ" कहा है।

२- <u>अभिज्ञान - (रिकग्निशन या डिस्कवरी)</u> -"अभिज्ञान" जैसा कि शब्द से ही विदित है, अज्ञात से ज्ञात में परिवर्तन होने को कहते हैं [७] "अभिज्ञान शब्द से ही स्पष्ट है कि उसमें अज्ञान की ज्ञान में परिणति का भाव निहित है"। और वह उन पुरुषों के बीच प्रेम या घृणा उत्पन्न करता है, जिन्हें कवि सौभाग्य-शाली या दुर्भाग्यशाली बनाना चाहता है। स्थिति परिवर्तन के साथ ही सर्वोत्कृष्ट अभिज्ञान घटित होता है। इसके और भी रूप होते हैं। अत्यन्त निम्न श्रेणी की निर्जीव वस्तुयें भी इस प्रकार से अभिज्ञान का आधार हो सकती हैं।

यूनानी त्रासदी में वह क्षण अभिज्ञान (रिकग्निशन) कहलाता है जब नायक को यह ज्ञान हो जाता है कि अब मेरे ऊपर विपत्ति आ रही है अथवा वह स्थल, जहां नायकको अपनी प्रचण्ड भूल का पता चलता है।

अभिज्ञान के अनेक रूप हैं - (१) स्थिति-विपर्यय से संयुक्त अभिज्ञान, (२) चिन्हों द्वारा अभिज्ञान, (३) आयोजित अभिज्ञान, (४) स्मृति-जन्य अभिज्ञान, (५) वितर्क द्वारा अभिज्ञान, (६) मिश्र अभिज्ञान, (७) स्वाभाविक अभिज्ञान।

नाटक और उपन्यास दोनों के कथानकों की तुलना यदि की जाय तो स्थितियों की दृष्टि से उनमें कुछ समानता की संभावनायें दृष्टिगत हो सकती हैं।

नाट्य-कथा में कार्यों की पांच अवस्थाएं होती हैं -

(१) प्रारंभ
(२) प्रयत्न
(३) प्राप्त्याशा
(४) नियताप्ति
(५) फलागम

अरस्तू के "पोइटिक्स" में वर्णित निम्न अवस्थाओं से इनकी तुलना हम कर सकते हैं :-

१-	(एक्सपोज़ीशन)
२-	(इन्सीडेंट)
३-	(राइज़िंग ऐक्शन)
४-	(क्राइसिस)
५-	(डेन्यूमा)
६-	(कैटास्ट्राफी)

नाटक में तो पांच अर्थ-प्रकृतियां और इन अर्थ-प्रकृतियों और कार्यावस्थाओं को परस्पर सम्बद्ध करने वाली पंचसन्धियां होती हैं -

कथानक को प्रधान फल की प्राप्ति की ओर अग्रसर करने वाले चमत्कार युक्त अंशों को ही "अर्थ-प्रकृति" कहा जाता है। इन अर्थ-प्रकृतियों के पांच भेद (१) बीज, (२) बिन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी और (५) कार्य बताये गये हैं -

* बीज बिन्दु पताकाख्य प्रकरी कार्यलक्षणा: ।
अर्थप्रकृतय: पंच ता एता: परिकीर्तिता ।। *[८]

मुख्य फल के लिए क्रमश: विस्तार ग्रहण करने वाले कथाभाग को बीज कहते हैं । इसका पहले अत्यन्त सूक्ष्म कथन किया जाता है किन्तु जैसे-जैसे व्यापार शृंखला अग्रसरित होती जाती है वैसे ही वैसे इसका भी विस्तार होता जाता है । जो बात कारण बन कर बीच की कथा को अग्रसरित करती है तथा प्रधान कथा को भी बनाये रखती है, वह बिन्दु है । निरन्तर गतिशील कथा को पताका कहा जाता है । पताका नामक कथांश के नायक की समस्त चेष्टायें प्रधान नायक के फल को सिद्ध करने के लिए होती हैं । उसका निर्वाह गर्भ या विमर्श-संधि में कर दिया जाता है । प्रकरी का तात्पर्य प्रसंग में आये हुये एकदेशीय अर्थात् छोटे-छोटे वृत्तों से है । प्रकरी के नायक का भी कोई स्वतंत्र उद्देश्य नहीं होता । जिस परिणाम के लिए समस्त उपायों का आरंभ किया जाय और जिसकी सिद्धि के लिए समस्त उपकरणों का संचय किया जाय उसे कार्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है ।

बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य ये पांच अर्थप्रकृतियां जब क्रम से अवस्था, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम इन पांचों अवस्थाओं से मिलती हैं तब क्रमश: मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श (अवमर्श) तथा उपसंहृति (उपसंहार) इन पांच संधियों की रचना होती है -

* समग्र फलसंपत्ति: फलयोगो यथोदित: । [९]
अर्थप्रकृतय: पंचपंचावस्थासमन्विता: ।।२२।।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या: पंचसंधय :
अन्तरैकार्थसंबन्ध: संधिरेकान्वये सति ।।२३।।
मुखप्रतिमुखे गर्भ: सावमर्शोपसंहृति: ।
मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरस संभवा ।।२४ ।।

किसी एक प्रयोजन से परस्पर सम्बद्ध (अन्वित) कथांशों को जब किसी दूसरे एक प्रयोजन से सम्बद्ध किया जाय, तो वह सम्बन्धसंधि कहलाता है । संधि के इन पांचों भेदों के भी अनेक उपभेद बताये गये हैं जिनका सम्पूर्ण विवेचन यहां अभीष्ट नहीं है ।

इस प्रकार अर्थ-प्रकृति, अवस्था और संधि तीनों के पांच-पांच भेद होते हैं जो एक दूसरे के सहायक या अनुकूल हो कर आते हैं। वस्तु के तत्वों से अर्थ-प्रकृतियाँ, कार्य- व्यापार से अवस्थाओं और रूपक-रचना के विभागों से संधियों का सम्बन्ध है।

नीरस तथा अनुचित वस्त्वंशों की सूचना देने के लिए शास्त्रकारों ने पांच प्रकार के " अर्थोपक्षेपक " (अर्थ-कथावस्तु के उपक्षेपक (सूचक)) का वर्णन किया है। वे अर्थोपक्षेपक हैं - (१) विष्कंभ, (२) चूलिका, (३) अंकास्य, (४) अंकावतार, तथा (५) प्रवेशक -

" नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभाव निरन्तर : ।।५७।।
अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकांकास्यांकावतार प्रवेशकैः ।।५८।। [१०]

विष्कम्भक घटित घटनाओं या भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं (कथांशों) का वह सूचक है, जिसमें मध्य पात्रों के द्वारा संक्षिप्त रूप से इन कथांशों की सूचना दी जाय। प्रवेशक में भी अतीत या भावी बातों की सूचना नीच-पात्रों द्वारा दी जाती है। यह दो अंकों के बीच में आता है, अतः प्रथम अंक में नहीं हो सकता। जो बातें छूट जाती हैं या छोड़ दी जाती हैं। जहां कथावस्तु की सूचना यवनिका के उस ओर अन्दर बैठे पात्रों द्वारा दी जाय, या जहां नेपथ्य से किसी रहस्य की सूचना दी जाय वहां चूलिका होती है। जहां एक अंक की समाप्ति के समय उस अंक में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा किसी छूटे हुये अर्थ की सूचना दी जाय वहां अंकास्य होता है। अंकावतार में एक अंक की कथा दूसरे अंक में बराबर चलती रहती है, केवल अंक के अंत में पात्र बाहर जाकर अगले अंक के आरम्भ में पुनः आ जाते हैं।

भारतीय नाट्याचार्यों ने कथानक या वस्तु के विन्यास का विवरण इसी प्रकार दिया है। उपन्यास के कथानक में इन तत्वों का अभाव रहता है। इसमें केवल कार्यावस्थायें प्राप्त होती हैं।

कथानक के वर्गीकरण से सम्बन्धित उपर्युक्त सभी भेद नाटकों के सम्बन्ध में हैं। उन भेदों को उसी रूप में उपन्यास के कथानकों के वर्गीकरण में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उपन्यास के कथानक के वर्गीकरण पर कुछ शोध-प्रबन्धों में विचार किया गया है और उन्हें व्यावहारिक दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया गया है -

१- आदि

२- मध्य

३- अन्त

उपन्यास का आदि महत्वपूर्ण होता है और बहुत कुछ अंशों में उपन्यास का भविष्य इसी पर आधारित होता है। उपन्यास का आदि प्रभावशाली होना चाहिए और उपन्यास में उसका महत्वपूर्ण योग होना चाहिए।

जिस समस्या को उद्देश्य बना कर उपन्यास की सर्जना की जाती है, मध्य में उसी को विकसित करने का उपन्यासकार प्रयत्न करता है। इसमें एक घटना दूसरे को और शीघ्रता से अग्रसरित होती हैं तथा इसमें स्वतः सहज स्वाभाविक गति और प्रवाह होता है। कथानक की समस्त विशेषतायें प्रायः मध्य में ही दृष्टिगोचर होती हैं।

उपन्यास का अन्त ही वह चरम उद्देश्य है जिसके लिए उपन्यास के विधान की सृष्टि होती है। इस लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अन्त का प्रभाव स्थायी होता है इस लिए उपन्यास की सफलता अन्त की प्रभावपूर्णता पर आधारित होती है। पाश्चात्य विद्वान बैलिठ हीगराथ का कथन है कि, वास्तविक अन्त प्रायः एक दार्शनिक भार (तनाव) होता है। इसके लिए केवल एक वाक्य अपेक्षित है, किन्तु प्रायः यह विचार विषय-वस्तु अथवा उपन्यास की नैतिकता का सारांश होता है [११]। आदि और अन्त के समुचित सम्बन्ध पर ही उपन्यास की सफलता एवं श्रेष्ठता निर्भर होती है और यही उपन्यासकार के कथा-कथन की कुशलता का भी द्योतक होती है।

कथानक का यह वर्गीकरण एक सामान्य वर्गीकरण है । हम यहां पर अपने विषयानुकूल कथ्य पर दृष्टि रखते हुए प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथानकों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न करें गें । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के अध्ययन एवं अनुशीलन के पश्चात् हमें उपन्यासकारों एवं उनके उपन्यासों में तीन प्रकार के कथानक दृष्टिगत् होते हैं । प्रथम वर्ग के उपन्यासकार वे हैं जो सामाजिक उपन्यासों की सर्जना करते हैं । दूसरे आज का उपन्यासकार व्यक्तिवादी होता जा रहा है । सामान्यतया वह व्यक्ति-निष्ठ उपन्यासों की संरचना में रुचि और रस ले रहा है । ऐसे उपन्यासकारों का सामान्यतया यह दावा है कि वे भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति कर रहे हैं । जीवन को जिस विशिष्ट दृष्टिकोण से वे देखते, समझते और अनुभव करते हैं उसे उजागर करना व्यक्तिवादी उपन्यासकारों का मन्तव्य माना जा सकता है । ऐसे उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, शिवानी और निर्मल वर्मा आदि का नाम लिया जा सकता है ।

प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यासकारों का धरातल प्राय: सामाजिक व राजनैतिक हैं । भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, फणीश्वर नाथ 'रेणु' और शिव प्रसाद सिंह आदि के उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त कुछ उपन्यास ऐसे भी हैं जिनमें व्यक्ति और समाज में सामंजस्य स्थापित करने वाले व्यापक- दृष्टिकोण का दर्शन होता है । ऐसे उपन्यासकार भी दृष्टिगत् होते हैं, जिन्होंने व्यक्ति और देश की समस्याओं का विश्लेषण करने वाले उपन्यासों की रचना करने के अतिरिक्त धर्म, समाज, राजनीति, भ्रष्टाचार, व्यापक मूल्य-हीनता आदि पर दृष्टिपात् कर संकुचित वृत्त से बाहर निकलने का प्रयत्न किया है । किन्तु ऐसी औपन्यासिक कृतियों को भी हम उनकी भुकाव की प्रवृत्ति के अनुसार सामाजिक या व्यक्तिवादी उपन्यासों की कोटियों में रख सकते हैं ।

इन उपन्यासकारों एवं उनकी कृतियों के अध्ययन के आधार पर आज के उपन्यासों के कथानक दो स्थूल वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं । मेरी दृष्टि में यह वर्गीकरण निम्न हो सकता है -

१- सामाजिक कथानक या समाज-सापेक्ष कथानक ।

२- व्यक्तिवादी कथानक या व्यक्ति-सापेक्ष के कथानक ।

<u>समाज सापेक्ष कथानक</u> :- उपन्यास अपने स्वभाव से ही समाज-सापेक्ष होता है । अत: उपन्यासों का जो कथानक किसी एक विशेष सामयिक काल और स्थान से सम्बन्धित आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत करता हो उसे सामाजिक कथानक कहते हैं । अपने व्यापकतम् रूप में समाजस्थ मानव के सम्पूर्ण क्रिया-कलाप सामाजिक कथानक में समाविष्ट हो जाते हैं । आदर्शवादी, यथार्थवादी, रोमांटिक, प्रकृतिवादी आदि विभिन्न प्रकार के उपन्यासों के कथानक सामाजिक कथानक के ही अन्तर्गत रखे जायेंगे । विभिन्न प्रकार के समाज-सुधारवादी आन्दोलन, धार्मिक आन्दोलन, आर्थिक आन्दोलन, सामन्तवर्ग, पूंजीवादी वर्ग, सर्वहारा वर्ग, नारी आन्दोलन, मध्य वर्ग, राजनीतिक आन्दोलन आदि सब कुछ सामाजिक कथानकों के अन्तर्गत ही प्रस्तुत किये जाते हैं । इसी " सब कुछ " वर्ग के आधार पर राजनीतिक उपन्यास, समाज सुधारवादी उपन्यास, यात्रा-प्रधान उपन्यास, सर्वहारा वर्ग से सम्बन्धित उपन्यास, जीवनीपरक उपन्यास,आदि इसी सामाजिक कथानक को लेकर सृजित उपन्यास की शाखायें प्रशाखायें हैं ।

सामाजिक कथानकों का मूलाधार है समाज । मार्क्स-दर्शन के अनुसार समाज पूर्णतया आर्थिक-व्यवस्था पर आधारित होता है । अर्थ की ही नींव पर संस्कृति, साहित्य, धर्म, आचार-विचार की भित्ति खड़ी होती है । आर्थिक-वैषम्य के कारण ही समाज का बहुत बड़ा भाग दु:खी तथा कष्ट-पीड़ित हो रहा है । यह आर्थिक विषमता समाज के लिए अभिशाप है । समाज में दृष्टिगत होने वाले विभिन्न वर्गों के उदय का कारण यही वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप का अर्थ-नीतियों पर निर्भर होना है । पग-पग पर समाज में व्याप्त संघर्ष और विज्ञान के प्रसार तथा औद्योगिक विकास की तीव्र गति के परिणाम स्वरूप ही वर्ग-रचना हुई । संघर्ष विषमता के कारण ही होता है और वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक,और आर्थिक नीतियों में विषमता का सर्वत्र बोल बाला है । सामाजिक कथानकों के लिए यही संघर्ष विशेष रूप से आधार प्रस्तुत करते हैं ।

वर्तमान समाज आर्थिक दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त हो चुका है -

१- उच्च वर्ग

२- मध्य वर्ग

३- निम्न वर्ग

उच्चवर्ग " बोर्जुआ " या शोषक वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग के नाम से भी अभिहित किया जाता है। यह समाज का शक्तिशाली, साधन-सम्पन्न वर्ग होता है। विपन्न वर्ग " प्रोलिटेरियट " या शोषित तथा श्रमिक वर्ग भी कहा जाता है जो आर्थिक सम्पन्नता के बावजूद अभावग्रस्त हैं, वह जीना भी नहीं जानता। शोषित श्रेणी या वर्ग वह है जिसे उत्पादन के लिए व्यवहार में लाया जाता रहा और शोषक श्रेणी जिन साधन-विहीन लोगों को अपनी इच्छा से उत्पादन के काम में प्रयोग करती रही है। इस प्रकार शोषण के चक्र में रहते - रहते यह वर्ग दुरावस्था की उस सीमा तक पहुंच गया कि इनका जीवन अभिशाप बन गया है। मध्यम वर्ग में वे सभी व्यक्ति आ जाते हैं जो आभिजात्य वर्ग और श्रमिक वर्ग के मध्य होते हैं, जिसमें व्यावसायिक, व्यापारिक अथवा क्रय-विक्रय करने वाले लोग सम्मिलित होते हैं। इसमें प्रोलिटेरियट, छोटे व्यवसायों के स्वामी, पेशेवर लोग, बाबू वर्ग और सम्पन्न किसानों की गणना होती है। नौकरी पेशा के लोग, शिक्षक वर्ग तथा अन्य साधारण लोग भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। मध्यवर्ग विशेषतः बुद्धि-प्रधानवर्ग माना जाता है और सामाजिक क्रान्ति के प्रायः सभी विचारों का सर्जन इसी वर्ग में होता है। यह आत्मनिर्भर तथा जीवन और परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने की अद्भुत क्षमता से युक्त वर्ग है। आत्म-निर्भरता के साथ ही इस वर्ग में नेतृत्व की भी पर्याप्त क्षमता रहती है।

प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों के सामाजिक कथानकों में इन तीनों ही वर्गों का चित्रण हुआ है। इस काल में समाज में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए जिनका तत्कालीन उपन्यासों में दर्शन होता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद उपन्यास साहित्य में वर्णित सामाजिक कथानकों में भटकाव तथा परस्पर टकराव ही अधिक

दृष्टिगत होता है क्यों कि आज का समाज ही दिग्भ्रमित है । वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप जहाँ समाज की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आया है वहीं घुटन, ऊब और निराशा का भी संचार हुआ है । पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था, जीवन के मशीनीकरण, अत्यधिक औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरीकरण और नगरों की अपार भीड़-भाड़ आदि के कारण समाज में एक विशाल परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है । इस जीवन-व्यवस्था में उच्चवर्ग धन और सत्ता-सम्पन्न है, विपन्न वर्ग असहाय और पंगु है । मध्यमवर्गीय व्यक्ति इस भीड़ में अपने को खोया हुआ पाता है । समाज के परस्पर टकराते हुए स्वार्थों ने उसका व्यक्तित्व नष्ट कर डाला है जिसके कारण इस समय वह आत्म-रक्षा में ही विचार मग्न है । इस प्रकार आज की सामाजिक स्थिति बहुत ही विकट हो चुकी है । इन सभी सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण हमें प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में देखने को मिलती है । इस काल के उपन्यास-लेखकों ने गहराई में जा कर व्यापक दृष्टि ग्रहण कर आर्थिक विसंगतियों और राजनीतिक परिवेश के सामाजिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पर्श किया है । राजनीति के क्षेत्र में आज हमें सर्वत्र स्वार्थ-लिप्सा, दलबन्दी, भाई-भतीजावाद, शोषण और भ्रष्टाचार का साम्राज्य दिखाई पड़ रहा है । देश के कर्णधार भी कर्तव्य-निष्ठा से पदभार को न सम्हाल कर जनहित के स्थान पर व्यक्ति-हित को महत्व दे रहे हैं जिससे सर्वत्र खोखलापन आता जा रहा है और सरकारी मशीनरी भी दोष-युक्त हो रही है । धर्म के क्षेत्र में समाज में अस्पृश्यता व्याप्त है जिसके कारण समाज का एक बड़ा वर्ग तिरस्कृत और उपेक्षित हो रहा है । जब तक समाज में यह छुआछूत की भावना, वर्ग-भावना, जाति-पाँति और ऊँच-नीच जैसी संकीर्ण विचारधारायें व्याप्त रहेंगी तब तक हमारे देश एवं समाज की प्रगति नहीं हो सकती और न तो हमारी आधारभूत एकता ही अखण्ड हो सकती है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथानकों में भी समकालीन जीवन और परिवेश में परिव्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों और असमानताओं पर आधारित धर्म के जर्जरित स्वरूप का खण्डन करते हुये समानता, न्याय और सद्भाव पर अधिष्ठित युग द्वारा व्यापक

मानवतावादी [illegible] की महत्ता पर बल दिया गया है, इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग के सामाजिक कथानकों के आधार नारी-चेतना, वर्ग-संघर्ष, वैषम्य मूलक जीवन, मूल्यगत संक्रमण शीलता वर्तमान जीवन और समाज से सम्बद्ध राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्यायें तथा समकालीन जीवन और चेतना को प्रभावित करने वाली विभिन्न विचारधारायें जैसे समाजवादी, गांधीवादी, मानवतावादी आदि हैं।

समाज में जहां एक ओर स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वेष, कटुता, मलिनता, कामुकता, अनैतिकता, पापाचरण, मानसिक कुण्ठायें, आर्थिक-विपन्नता, दयनीय जीवन स्थितियां दुर्दम्य पाशविक प्रवृत्तियां, सामाजिक-आर्थिक वैषम्य, अन्ध-संस्कार, कुरीतियां, पीड़न आदि हैं तो दूसरी ओर स्नेह, सहानुभूति, करुणा, परोपकार, स्वार्थ-त्याग, प्रफुल्लता और मैत्री आदि सद्गुण भी हैं। समाज के यथार्थ चित्रण में इन द्विविध परिस्थितियों का चित्रांकन ही सत्य तथा स्वाभाविक होता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में समाज का यही व्यापक रूप कथानक का आधार था। पुराने लेखकों में भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि की दृष्टि प्रायः यही रही। किन्तु योरोपीय साहित्य-प्रवृत्तियों तथा चिन्तन-धाराओं के प्रभाव के परिणाम-स्वरूप प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों द्वारा सामाजिक यथार्थ के चित्रण की नवीन शैलियां आविष्कृत हुईं। " मार्क्स " से प्रभावित लेखकों ने पूंजीपति वर्ग पर निर्मम प्रहार किए और श्रेणी-संघर्ष की उदीयमान चेतना का चित्रण किया है। ऐसे उपन्यासकारों में यशपाल, नागार्जुन, अमृतराय , ... आदि लेखकों के नाम लिए जा सकते हैं। यशपाल कृत " क्यों फंसे " (१९६८) में लेखक ने अन्तर्विरोधों से भरे सामाजिक संस्कारों पर चोट किया है। " झूठा सच " में देश के विभाजन के दुष्परिणाम स्वरूप उत्पन्न हत्याकाण्ड, अव्यवस्था और शरणार्थी समस्या का चित्रण हुआ है। नागार्जुन के " रतिनाथ की चाची " उपन्यास में मैथिल ब्राह्मणों के सामाजिक स्वरूप एवं समस्याओं कुलीन-अकुलीन से उद्भूत समस्यायें, अनमेल-विवाह, छुआछूत आदि का चित्रण किया गया है। दूसरे उपन्यास " बलचनमा " में सुखी सम्पन्न वर्ग एवं दुःखी सर्वहारा वर्ग की जीवन्त दशाओं तथा पहले के द्वारा दूसरे का शोषण, उत्पीड़न का वर्णन हुआ है। इसी प्रकार उनके अन्य उपन्यास " नई पौध ", " बाबा बटेसरनाथ ", " वरुण के बेटे," और " दुःख मोचन " के भी कथानक सामाजिक समस्याओं, जीवन विधियों को आधार बना कर रचे गए हैं। अमृतराय के " बीज " नामक उपन्यास में युद्धकालीन

(१९४२ के बाद) भारत की राजनीतिक सामाजिक गतिविधि का चित्रण हुआ है।

सामाजिक कथानक की रचना करने वाले लेखक यह स्वीकार कर के चले कि मानव गुण-दोषों से निर्मित है। जीवन में इन्हीं की अधिकता है अतएव इनका चित्रण ही समाज का यथार्थ चित्रण है। इन लेखकों में उपेन्द्रनाथ "अश्क" रांगेय राघव, उदयशंकर भट्ट, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, फणीश्वरनाथ रेणु और राजेन्द्र यादव आदि उपन्यासकारों की दृष्टि प्रधानतया सामाजिक विकृतियों को चित्रित करने में अधिक दृष्टिगत होती है। अश्क कृत " गिरती दीवारें "उपन्यास में मध्यवर्ग के एक अत्यन्त भाव-प्रवण किन्तु साधारण व्यक्ति के यौवन के प्रारंभिक वर्षों के जीवन का विस्तृत चित्रण है, इस उपन्यास में निम्न-मध्यवर्ग के वातावरण का चित्रण किया गया है। अश्क जी के ही दूसरे उपन्यास" गर्म राख " में भी १९३८-३९ के आस पास के पंजाब के निम्न-मध्यवर्गीय नागरिक जीवन का चित्रण हुआ है। रांगेय राघव के उपन्यास " कब तक पुकारूं " का कथानक भी सामाजिक है जिसमें जरायम पेशा नटों की उपजाति करनट के जीवन का चित्रण है जो खानाबदोश हैं और घोर उत्पीड़ित तथा शोषित हैं। इसी प्रकार धर्मवीर भारती कृत "सूरज का सातवां घोड़ा " का कथानक आर्थिक विवशता, कुण्ठित वासना एवं प्रेम की विभिन्न समस्याओं को आधार बनाता है। लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास " धरती की आँखें "(१९५१) में कृषकों और जमींदारों का संघर्ष चित्रित है। " बया का घोंसला और सांप " में ग्रामीण जीवन की झांकियां तथा कस्बे की आत्मा का मार्मिक चित्रण है। इस उपन्यास में प्रतीकात्मक ढंग से समाज एवं भाग्य के अजगरों द्वारा बया जैसी निरीह तथा निष्कलुष सुगनी (स्त्री) के सुहाग के लुटने का संकेत किया गया है। " काले फूल का पौधा " का कथानक नगर से सम्बन्धित है और उच्च मध्यवर्गीय पति-पत्नी सम्बन्धों का विवेचन प्रस्तुत करता है। फणीश्वरनाथ रेणु कृत " मैला आंचल " में मेरीगंज के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के यथातथ्य चित्रण का प्रयत्न किया गया है। उन्हीं के दूसरे उपन्यास " परती : परिकथा " में परानपुर गांव की संक्रान्ति कालीन आर्थिक, सामाजिक, नैतिक उथल-पुथल को दृष्टि में रखकर

कथानक की सृष्टि हुई है। प्रभाकर माचवे के उपन्यास " परन्तु " में निरन्तर ह्रासोन्मुख नैतिक मूल्यों का चित्रण हुआ है। सेठ लक्ष्मी चन्द आर्थिक विवशता-ग्रस्त बेचारी विधवा हेमवती के यौवन का रस चूस डालता है और वह बेबसी में सिवाय घुटन के और कुछ नहीं कर पाती। यह विनाश व्यक्तिगत हेमवती का ही नहीं अपितु समाज में अर्थ-हीन अनेक नारियों का विनाश है। माचवे जी का दूसरा उपन्यास "सांचा" (१९५५) है जिसका कथानक चतुर्दिश-समाज-व्यवस्था, राज्य व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था में व्याप्त यंत्रीकरण की समस्या को आधार बना कर निर्मित किया गया है। इसी प्रकार राजेन्द्र यादव के उपन्यास "उखड़े हुए लोग" और प्रेत बोलते हैं" के भी कथानक सामाजिक हैं। " उखड़े हुए लोग " में एक बड़े पूंजीपति के मिथ्याडम्बर का निर्मम विश्लेषण करते हुए ऐसे लोगों का चित्रण किया गया है जो समझ -बूझ रखते हुए भी अपनी दुर्बलताओं के कारण कपटाचारियों के शोषण के शिकार हुए हैं, छोटे-मोटे समझौतों में टूटे हैं और जिनका भविष्य अंधकारमय हो उठा है। " प्रेत बोलते हैं ," का कथानक मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थवादी वर्णन करता है। इसमें भी वर्तमान आर्थिक-सामाजिक जटिलताओं से उद्भूत मध्यवर्गीय कुण्ठाओं का चित्रण किया गया है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से उपन्यासकारों के नाम लिए जा सकते हैं जिन्होंने सामाजिक कथानकों को लेकर उपन्यास की रचना किया है। उदाहरणार्थ शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' कृत " बहती गंगा " काशी के दो सौ वर्षों के जीवन की झांकियां प्रस्तुत करता है। भगवती-प्रसाद बाजपेयी कृत " चलते-चलते " , नरेश मेहता कृत " वह पथ बंधु था " में ठाकुर साहब के माध्यम से राजनैतिक कार्यकर्ताओं के दूषित चरित्र का वर्णन हुआ है।

२- व्यक्ति सापेक्ष्य कथानक :- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में प्राप्त कथानक का दूसरा रूप उसका व्यक्तिवादी होना है। व्यक्ति का मन, उसका "भोगा हुआ यथार्थ " सब कुछ व्यक्ति के चारों ओर घूमता दृष्टिगोचर होता है। इस युग के उपन्यासकारों में व्यापक जन-जीवन का या तो स्पर्श नहीं किया और यदि किया भी है तो किसी एक व्यक्ति के सन्दर्भ में, और वह भी नाम मात्र के लिए। इसका कारण यह है कि द्वितीय महायुद्ध के बाद होने वाले सामाजिक, आर्थिक,

राजनीतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप लैंगिक आत्मरति, " भोगे हुए यथार्थ "; सीमित परिधि आदि का शिकार बन कर समाज से अलग कट गया है तथा वह अपने-अपने में इकाई बना घूमता है । इसी लिए आज के उपन्यासकार व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हैं और मनोभावों एवं निजी आन्तरिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं । युद्ध के उपरान्त मानव में निराशा बढ़ी जो धीरे-धीरे आत्मा को जड़ बनाती है, चेतना को कुंठित करती है । इस नैराश्य से व्यक्ति अन्तर्मुखी हो कर अपने ही दुःखों की महती छाया को ही यथार्थ समझने लगता है और छाया उत्तरोत्तर महान आकार धारण कर लेती है । जब यह छाया चेतना के समस्त द्वारों को आच्छादित कर लेती है तो यहीं से नितान्त व्यक्तिवादी कला का प्रादुर्भाव होता है । सामाजिक उपन्यासों की आधारभूत विचारधारा व्यक्ति-चिन्तन से सम्बद्ध न हो कर समाज-मंगल से अनुप्रेरित है इसके विपरीत व्यक्तिवादी तथा मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्तियों में व्यक्ति की चेतना तथा अन्तश्चेतना की अभिव्यक्ति को ही प्रमुख तत्व स्वीकार किया जाता है । व्यक्तिवादी उपन्यासों में एक व्यक्ति की जीवन की समस्याओं को आधार बना कर कथानक सृजित होता है । जिन उपन्यासों में व्यक्तिगत जीवन, घटना, व्यक्तिगत चरित्र, व्यक्तिगत जीवन-दर्शन, व्यक्तिगत मनोविज्ञान या व्यक्तिगत जीवन समस्या का निरूपण या निर्देश सर्वोपरि होता है उन्हें व्यक्तिवादी उपन्यास कहते हैं[१२]। यह व्यक्तिवाद समाज के प्रतिनकारात्मक दृष्टिकोण रखता है । यह समष्टि की अपेक्षा व्यक्ति पर केन्द्रित होता है । हिन्दी साहित्य में व्यक्तिवाद मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया का स्वरूप है, उस सामाजिक परिस्थिति के विरुद्ध जो व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास का हनन करती है । हिन्दी का बहुत कुछ आधुनिक-साहित्य साम्राज्यवादी युग में ही लिखा गया है । फलस्वरूप व्यक्ति को विकसित होने के उचित साधन प्राप्त नहीं हुए । इस कारण से व्यक्ति की कर्म जिज्ञासा रुक गई और वह अन्तर्मुखी हो बैठा । बाह्य संसार से दृष्टि खींच कर उसने अन्तर्मुखी मन पर दृष्टि डाली । उसका अहं ही समाज और परिस्थिति का सत्य हो गया । उसी के विविध

रूपों में ही उसने अपनी कल्पना के रंग भरे। किन्तु यह आत्म-दर्शन नहीं था। यह था शुद्ध आत्म-पलायन। यही आत्म-पलायन अधिकांश छायावादी कविताओं का आधार है[१३]। इन व्यक्तिवादी उपन्यासकारों ने पाश्चात्य-चिन्तन से प्रेरणा ग्रहण किया है। ये सार्त्र, कामू, कीर्केगार्ड और नीत्शे आदि अस्तित्ववादियों से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

व्यक्तिवादी कथानक पर विचार करने से पूर्व यहाँ अस्तित्ववाद की सूक्ष्म विवेचना भी अपेक्षित हो जाती है। अत: हम पहले उसे स्पष्ट कर पुन: आगे बढ़ेंगे। "हिन्दी साहित्य कोश" भाग एक के अनुसार "अस्तित्ववाद डेनमार्क के विख्यात दार्शनिक कीर्केगार्ड के द्वारा प्रचलित हुआ था और उसका उन्नयन ज्यां पाल सार्त्र के द्वारा हुआ। सार्त्र ने उसे साहित्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित कर उसे विश्व-सन्दर्भ प्राप्त कराने में योग दिया। अस्तित्ववादी विचारधारा का आरंभ वस्तुत: दर्शन के क्षेत्र में हुआ। इस सम्प्रदाय का उद्गम-स्त्रोत जर्मन दार्शनिक हसर्ल तथा हैडेगर और डेनिश-चिन्तक कीर्केगार्ड (१८१३-५५) की विचार पद्धतियों में देखा जा सकता है। इन विभिन्न चिन्तकों के मतवादों का संघटन वर्तमान युग में फ्रांस में हुआ, जहाँ अस्तित्ववाद को साहित्यिक ख्याति ज्यां पाल सार्त्र (१९०५) के माध्यम से १९४३ के आस-पास मिली[१४]। यूरोप में द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका के कारण उत्पन्न भीषण संत्रास एवं अस्थिरता ने इस अस्तित्ववाद को पीठिका प्रदान की। फ्रांस पर हिटलर ने जिस प्रकार विजय पाई थी और फासिस्टों के बंधन से छुटकारा पाने के लिए वहाँ की जनता एवं बुद्धिजीवी वर्ग में जो छटपटाहट उत्पन्न हो गई थी, फ्रांसीसी लेखकों को उसने नव जीवन एवं जगत के सम्बन्ध में नए रूप से विचार करने को बाध्य कर दिया था। वैसा घोर अन्धकार हमारे देश में अगस्त आन्दोलन अथवा देश-विभाजन के समय भी नहीं घिरा था, यद्यपि इन दोनों घटनाओं से हम विचलित अवश्य ही उठे थे। इस लिए हिन्दी उपन्यास-साहित्य पर अस्तित्ववाद का प्रभाव कोई आश्चर्य जनक घटना नहीं है प्रत्युत् वह परिस्थिति जन्य है। अस्तित्ववाद व्यक्ति की मुक्ति पर बल

देता है। मनुष्य अपने होने में से ही, अपने होने के दर्द में से ही जानता है कि उसे मुक्त करना है, यही नहीं उसे सब को मुक्त रखना है। व्यक्ति की मुक्ति उसका बहुत बड़ा दायित्व है और उसके जीवन में क्षण का बहुत महत्व है। हम क्षण-प्रतिक्षण अपना निर्माण करते हैं और जीवन - पर्यन्त करते ही रहते हैं, इस लिए हमें प्रतिक्षण सजग रहना है और अपने सम्मुख उपस्थित विकल्पों में से अपनी प्रज्ञा के अनुसार उत्तम का ही वरण करना है और फिर अपने वरण का दायित्व स्वयं ही ग्रहण करना है। अस्तित्ववादी व्यक्ति ऐसी प्रत्येक परिस्थिति का विरोध करता है जो उसे वरण की यह स्वतंत्रता देना नहीं चाहती। अत: अस्तित्ववाद एक कर्म-प्रधान विचार - धारा है पर यह कर्म किसी परोक्ष सत्ता द्वारा पूर्व नियत कर्म न हो कर व्यक्ति के वरण से उद्भूत कर्म है। और क्यों कि उस प्रत्येक कर्म का प्रभाव केवल उसी पर ही नहीं समस्त प्रकार से समस्त मानवता के प्रति दायित्व ही है अत: व्यक्ति को प्रतिक्षण अपने वरण में अपने- आप को प्रतिफलित करते चलना होता है, तभी उसकी मुक्ति सार्थक होती है। अर्थात् उसे वरण की स्वतंत्रता तो प्राप्त है, पर वरण न करने की स्वतंत्रता नहीं है, क्यों कि वरण न करना भी तो विकल्प ही है अत: वरण है। क्यों कि हम अपने कर्म से ही अपना निर्माण करते हैं अत: हम स्वयं ही अपने निर्माता हैं [२५]। इस दृष्टि से विचार करने पर अस्तित्ववाद प्रकृतवाद का विपरीत सिद्धान्त प्रतीत होता है। वह व्यक्ति की विवशता को भी व्यक्ति का वरण ही मानता है। इसी लिए अस्तित्ववाद में वरण की स्वतंत्रता का अन्यतम् महत्व है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि अस्तित्ववाद व्यक्ति की मुक्ति, व्यक्ति के दायित्व, क्षण के महत्व अथवा व्यक्तित्व के खोज की प्रेरणा देने वाली विचार धारा है।

अस्तित्ववादी विचार धारा का प्रभाव व्यक्तिवादी उपन्यास - लेखकों पर स्पष्टतया परिलक्षित होता है। यही कारण है कि सेक्स और मनोविज्ञान का सामयिक उपन्यासों में प्रचुर उपयोग हो रहा है। व्यक्तिवादी विचार धारा के प्रादुर्भाव एवं अस्तित्ववाद के प्रभाव के फलस्वरूप सामाजिक यथार्थ

जहां खण्डित हो रहा है, वहीं व्यक्ति भी खण्डित होता हुआ दृष्टिगत होता है। उसके संस्कार और विचार अब परस्पर सहयोगी और पूरक नहीं हैं, वे आपस में टकराते भी हैं और यह टकराहट युग के संघर्ष को नया आयाम देती है - व्यक्ति से व्यक्ति की टकराहट, व्यक्तित्व के दो पहलुओं में पारस्परिक टकराहट का। इसी का अन्य आयाम है कि नारी भी व्यक्ति बनती जा रही है। वह अपनी शिक्षा ही नहीं प्रत्युत अपनी समानता और मुक्ति का नारा लगा रही है। सामन्त कालीन समाज में नारी मातृत्व - पद पर अधिष्ठित थी लेकिन अब उसका व्यक्तित्व उभर कर सामने आ रहा है।

इस व्यक्तिवाद ने ग्राम और नगर को भी पृथक कर दिया है तथा व्यक्ति और व्यक्ति के सम्बन्धों के बीच से समाज का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है और उनके जीवन की निजी वैयक्तिकता विकसित होती जा रही है। यथार्थ तो वैयक्तिक हो ही गया है आदर्श भी वैयक्तिक होता जा रहा है और एक व्यक्ति-दर्शन का विकास हो गया है। साहित्यकार की जीवन-दृष्टि भी इस व्यक्तिवाद से प्रभावित हो गयी है। व्यक्तिवाद का यह विकसित स्वरूप कुण्ठाओं एवं वर्जनाओं से पूर्ण है। जब व्यक्ति अपना मार्ग अवरुद्ध पाता है तो बेचैन हो कर कभी आत्म-पीड़न का रूप लेता है और कभी विध्वंसात्मकता का। 'मृणामयी' जिसका परिवर्धित संस्करण 'छाया' है में व्यक्तिवाद की अन्तर्मुखीन यात्रा दृष्टिगोचर होती है, भगवती चरण वर्मा कृत 'पतन', उपन्यास में उसके आत्म-मंथन का तथा जैनेन्द्र की प्रसिद्ध कृति 'परख' में आत्म-पीड़न और कृत्रिम सरलता और अबोधता (अबुद्धिवाद) का दृश्य है। 'पतन' उपन्यास का कथानक व्यक्तिवादी दर्शन पर आधारित है। उसमें एक व्यक्ति के आत्म - मंथन का दृश्य चित्रित हुआ है। इस उपन्यास में अहंवाद का प्राधान्य है जो सब कुछ तोड़ फोड़ कर और फिर बदल कर अपने अनुरूप कर लेना चाहता है। 'चित्र लेखा' में बीज गुप्त और चित्रलेखा व्यक्तिवाद से प्रभावित हैं। वे उत्कर्ष की जिस चरम भूमि पर पहुंचते हैं वह व्यक्तिवादी हैं। वर्मा जी भौतिक और अनैतिक प्रश्नों में घोर व्यक्तिवादी रूप धारण करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास " अनाथ की पत्नी " की नायिका समाज में स्वतंत्रता चाहती है जो उसे दुर्लभ है । उसकी दशा सामाजिक नियन्त्रण के कारण उत्तरोत्तर बिगड़ती जा रही है । " प्रेम पथ " में वासना और कर्तव्य के अन्तर्द्वन्द्व में वाजपेयी जी का व्यक्तिवाद निखार प्राप्त करता है । उपन्यास का नायक रमेश तारा की फटकार के परिणाम - स्वरूप क्षमा माँगता है । इस प्रकार उपन्यास का प्रणयन व्यक्तिवादी धरातल पर हुआ है । " पतिता की साधना " उपन्यास में हरी एक बाल विधवा नन्दा का कौमार्य खण्डित करता है । नन्दा गर्भवती हो जाती है जिसके कारण मायके में कानपुर में छोड़ दी जाती है और वहीं पर एक सुसंस्कृत गाने वाली का जीवन बिताती है । नन्दा का पुत्र अशोक गुरुकुल में पढ़ने लगता है । कुछ समय बाद मानहानि के एक मुकदमें में हरी आठ महीने की सजा पाता है । जेल से छूटने पर वह घर नहीं जाता एक अन्धे भिखारी के रूप में इतस्ततः भटकता रहता है । एक दिन नन्दा की उससे मुलाकात होती है और वह हरी को पहचान जाती है और इस प्रकार दोनों का मिलन होता है तथा वे गांव आ जाते हैं । इस प्रकार सामाजिक यथार्थ के साथ वैयक्तिक हृदयगत भावनाओं और दुर्बलताओं के चित्रण मे वाजपेयी जी की कला व्यक्तिवादी रूप में प्रस्फुटित हुई है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में प्रेमचन्द की परम्परा से पृथक सर्वप्रथम जैनेन्द्र जी का नाम उद्धृत किया जा सकता है जो व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं । प्रेमचन्द एवं उनके अनुयायी उपन्यास- लेखकों की रचनायें परम्परागत मान्यताओं, सामाजिक मर्यादा, एवं प्रेमचन्द की सुधारवादी प्रवृत्ति के कारण अत्यधिक बाह्योन्मुखी हो गई थीं । उनमें केवल समाज और उसकी समस्याओं का ही चित्रण किया जाता था । इस काल के उपन्यासों में जन - जीवन के घात - प्रतिघात, ममता, सहानुभूति, त्याग आदि मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति की गई है । इन उपन्यासों में जहां एक ओर जीवन का बाह्यपक्ष पुष्ट हो रहा था वहीं दूसरी ओर व्यक्ति - चेतना कुण्ठित होती जा रही थी । समूह, समाज और संस्था आदि की तुलना में व्यक्ति का स्थान गौण था । ऐसी परिस्थिति में हिन्दी उपन्यास के रंगमंच पर जैनेन्द्र

का उदय होता है जिससे साहित्य - जगत में एक क्रान्तिकारी प्रभाव की स्थिति उत्पन्न हो गई और समस्त हिन्दी कथा - साहित्य ने एक नवीन मोड़ लिया। जैनेन्द्र ने समाज की स्थितियों से अधिक सामाजिक परिवेश में जीने वाले आधार -रूप व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया। उन्होंने समाज, धर्म, राजनीति अर्थ-नीति के सन्दर्भ में व्यक्ति- जीवन को ही अभिव्यक्ति प्रदान किया है। उन्होंने व्यक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण को व्यक्तिगत और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्त किया है। उनके उपन्यासों में यद्यपि व्यक्ति - चित्रण का ही प्राधान्य है किन्तु समाज या समष्टि भी उपेक्षित नहीं है। बृहत्तर स्वार्थ के हेतु लघुतर -हित का त्याग ही जैनेन्द्र के साहित्य का परम उद्देश्य है। वह व्यक्ति के " अहं " को विस्तार देकर समष्टि में मिला देने का प्रयत्न करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी दृष्टि में यह " अहं " ही व्यक्ति की समस्त क्रियाओं का उद्गम स्रोत है। यही " अहं - विसर्जन " ही जैनेन्द्र के सम्पूर्ण उपन्यासों का परम लक्ष्य है। वह व्यक्ति की मनः - स्थितियों का बड़ी कुशलता से चित्रण करते हैं। उनके औपन्यासिक- पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व का प्राबल्य दिखाई पड़ता है।

जैनेन्द्र का सर्वप्रथम उपन्यास " परख " (१९२९) है जिसमें व्यक्ति के सामाजिक जीवन की अपेक्षा वैयक्तिक - जीवन पर ही कथानक को निर्मित किया गया है। उपन्यास में कुल चार पात्र हैं जिनके अन्तर्मन की विभिन्न कुंठाओं, संकल्प- विकल्पों और मानसिक विकृतियों को ही कथानक अभिव्यक्त करता है। कट्टो, सत्यधन और बिहारी के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण उपन्यास में दृष्टिगत होता है। " सुनीता " (१९३४) उपन्यास का नायक हरिप्रसन्न भी दमित काम-वासना का शिकार है जिसके परिणाम स्वरूप वह क्रान्तिकारी हो जाता है। उसमें एक मनोग्रंथि जन्म ले लेती है जिसे सुलझाने के लिए श्रीकान्त अपनी पत्नी सुनीता को आत्म समर्पण करने का आदेश देता है। लेखक के तृतीय उपन्यास " त्यागपत्र " (१९३६) में भी मृणाल के व्यक्तित्व को कथानक का आधार बनाया गया है। सम्पूर्ण कथानक मृणाल के अन्तर्द्वन्द्व तथा साथ- ही - साथ प्रमोद की मानसिक

प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है। "कल्याणी" (६५०) उपन्यास का कथानक भी व्यक्तिवादी है जो डा० कल्याणी असरानी का अन्तर्द्वन्द्व प्रकट करता है। नायिका कल्याणी अपने पति की स्वार्थपरता से क्षुब्ध हो कर आत्म-व्यथा में घुलते-घुलते आदर्श और अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ा में ही प्राण त्याग देती है। "सुखदा" (६५२) उपन्यास की नायिका सुखदा है जो अपने पति कान्त के साथ वैवाहिक जीवन व्यतीत करती है। सुखदा अपने अहं भाव के कारण अपने पति के साथ तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाती है और इसी मनोग्रंथि के कारण वह आजीवन आत्मदाह में ग्रस्त पश्चाताप की ज्वाला में झुलसती रहती है। "विवर्त" (६५३) का कथानक भी व्यक्ति की दमित वासना से उत्पन्न विद्रोह के अवसाद-पूर्ण अन्त को अभिव्यक्त करता है। इस उपन्यास की नायिका भुवन मोहनी एक अवकाश प्राप्त न्यायाधीश की पुत्री है। नायक जितेन जो एक अंग्रेजी पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में नौकर है उससे प्रेम करता है। किन्तु भुवन मोहिनी का विवाह न्यायाधीश नरेशचन्द्र के साथ हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप जितेन क्रांतिकारी हो जाता है। चार वर्ष पश्चात् जितेन ट्रेन उलटने में घायल होने से भुवन मोहिनी के घर शरण लेता है जहाँ वह उसकी सेवा करती है। स्वस्थ होने पर वह भुवन मोहिनी का आभूषण भी अपने साथ ले जाता है। दल में आभूषण बेचने की बात उठती है। जितेन भुवन मोहिनी का अपहरण कर पचास हजार रुपयों की माँग करने का नया प्रस्ताव रखता है। भुवन मोहिनी का अपहरण होता है किन्तु माँग की पूर्ति नहीं होती है। दोनों का पुराना प्रेम पुनरुज्जीवित हो उठता है और भुवन मोहिनी आत्मसमर्पण कर देती है। जितेन पुलिस को आत्मसमर्पण कर देता है। इस प्रकार उपन्यास का कथानक जितेन की दमित वासना, अतृप्ति और कुंठाजन्य अवसाद को व्यक्त करता है। इसी प्रकार जैनेन्द्र जी के अन्य उपन्यास "व्यतीत" (६५३) तथा "जयवर्धन" (६५६) के कथानक भी व्यक्तिवादी हैं। "व्यतीत" उपन्यास में जयन्त तथा अनीता के जीवन की स्थूल घटनाओं को ही कथानक का आधार बना कर उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों और प्रतिक्रियात्मक घात-प्रतिघातों को चित्रित किया गया है। इसी प्रकार "जयवर्धन" का कथानक स्त्री-पुरुष के मध्य विवाह के उपरान्त अन्य सम्बन्धों की संभावना को व्यक्त करता है। इस उपन्यास में भी आत्मरति

की प्रधानता है और राजनीतिक आचरण में व्यक्तिगत् वासनाओं के घात - प्रतिघात की भी अभिव्यक्ति दी गई है ।

इस प्रकार जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास - साहित्य में व्यक्तिवाद को स्वीकार कर के उसे मनोवैज्ञानिक परिवेश और नवचिन्तन का नया आयाम प्रदान किया है । उनकी इसी व्यक्तिवादी परम्परा को विकसित और परिपुष्ट करने का कार्य इलाचन्द्र जोशी ने किया । उनमें व्यक्ति के अन्तर्मन के विश्लेषण का प्रयास अधिक है ।

जोशी जी के व्यक्तिवादी कथानकों की सृष्टि व्यक्ति - विशेष की जीवनानुभूतियों, स्मृतियों एवं कल्पनाओं के संचय करके की गई है । पतित- से - पतित और कुत्सित - से - कुत्सित व्यक्तियों को भी जोशी जी ने अपने उपन्यासों के प्रमुख पात्र के रूप में चित्रित किया है । आप के उपन्यास के कथानकों में अन्तर्जगत् को विशेष महत्व दिया गया है । जोशी जी के आरंभिक उपन्यास " लज्जा " " पर्दे की रानी ", तथा " प्रेत और छाया " में विशुद्ध व्यक्तिवादी कथानकों की रचना की गई है । उनमें व्यक्ति के अहं की एकांतिकता पर कठोर प्रहार करने के लिए आत्मकथात्मक कथानकों का विधान किया गया है । जोशी जी के प्रथम उपन्यास " लज्जा "(१९२९) जो घृणामयी का परिवर्धित संस्करण है में अपने अन्तर्मन में अपार पीड़ा को संजोये हुए जीवन बिताने वाली लज्जा पाठकों को अपनी आत्मकथा सुनाती है । लज्जा पूर्णतया स्वेच्छाचारिणी है जो सामाजिक बन्धनों को स्वीकार नहीं करती । वह अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाये रखना चाहती है । अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण अपने भाई रंजन को भी अपने और अपने प्रेमी डा० कन्हैयालाल के मध्य हस्तक्षेप करते हुए सहन नहीं कर सकती है क्यों कि उसकी निगाह में प्रेम ही सर्वस्व है । इसी से रंजन के हृदय में स्थित लज्जा के प्रति भ्रातृस्नेह समाप्त हो गया, यहां तक कि वह संसार तक से विरक्त हो गया । इस प्रकार लज्जा निराश और विषाद, घृणा और मानसिक यातनाओं के विशाल सागर में डूब जाती है । " सन्यासी " उपन्यास का नायक नन्द किशोर अपनी दमित काम - वासनाओं का शिकार है । उसमें अहं कूट- कूट कर भरा हुआ है । वह नारी को

कोई सत्ता नहीं मानता तथा एक नारी की अपेक्षा जयन्ती, शान्ती आदि अनेक नारियों से अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करता है और अपनी अहं- जनित सन्देह -वृत्ति तथा ईर्ष्या भावना के कारण उन्हें झुलसा डालता है । " पर्दे की रानी " उपन्यास में जोशी जी का व्यक्तिवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है । उपन्यास की नायिका निरंजना और नायक इन्द्रमोहन दोनों में अहं भाव की प्रधानता है और दोनों एक दूसरे के अहं को कुचलने के लिए सतत् प्रयास करते हुए चित्रित किए गए हैं । निरंजना हत्यारे बाप और वैश्या माता की पुत्री है जो सामान्य नारी की तरह जीवन बिताती है तथा अपनी मां के जीवन और वैभव से अनभिज्ञ रहती है । उसकी मां की हत्या हो जाती है और मरते समय मां उसे मनमोहन नामक एक व्यक्ति के संरक्षण में छोड़ जाती है जो काम का पुतला है और निरंजना के जन्म का रहस्योद्घाटन कर उसके अहं पर चोट करता है । निरंजना इस आघात से अपने अहं की व्यथा से सन्तप्त हो कर मानस विद्रोहिणी हो जाती है क्यों कि उसकी अपनी सामाजिक-हीनता की भावना उसे कोसने लगती है । इसी की प्रतिक्रिया में वह दूसरे के सुख को भी सहन नहीं कर पाती है और इन्द्रमोहन को अपनी ही कालेज की सखी शीला की आत्म-हत्या की ओर प्रेरित करती है । इन्द्रमोहन अपनी पत्नी शीला की हत्या संखिया खिला कर केवल निरंजना को प्राप्त करने के लिए कर देता है । निरंजना इस बात से अनभिज्ञ रहती है । इन्द्रमोहन ने उसे शीला की मृत्यु का कारण हृदय-गति का रुक जाना बताता है और निरंजना को भुलावे में डालकर एक दिन चलती गाड़ी में उसका कौमार्य खंडित कर देता है । तदुपरान्त वह निरंजना से अपना रहस्योद्घाटन करता है कि अपनी इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए उसने षड्यंत्रकारी का रूप बनाया था और शीला की भी हत्या किया था । निरंजना के अहं पर दूसरा प्रहार हुआ वह इन्द्रमोहन के प्रति घृणा एवं क्रोध से भर कर पागल सी हो उठती है । इन्द्रमोहन भी क्रोधावेश में निरंजना से उसके प्रति अपना सच्चा प्रेम न प्रमाणित कर पाने के कारण दूसरी आने वाली गाड़ी के नीचे कूद कर अपना प्राण दे देता है । इस प्रकार जोशी जी ने दो अहं की विजय और पराजय का चित्रण किया है । इसी प्रकार जोशी जी के अन्य उपन्यासों " प्रेत और छाया ", " निर्वासित " में भी घोर व्यक्तिवादी कथानक की रचना की गई है । प्रथम

सतीत्व - स्खलन की बात को जब वह पिता द्वारा सुनता है तो वह इस आघात से नारी-जाति का शत्रु बन जाता है तथा कांचो, मंजरी, नन्दिनी आदि अनेकों नारियों से यौन -सम्बन्ध स्थापित करने के उपरान्त प्रतिशोध की भावना से उन्हें प्रताड़ित करता है। जब पुनः पिता का बुलावा पाता है और उसे अपने जन्म का वास्तविक ज्ञान हो जाता है तो उसकी विकृति समाप्त हो जाती है और वह हीरा का साहचर्य स्वीकार कर लेता है। इसी प्रकार " निर्वासित " का नायक महीप व्यक्तिवादी विचारधारा से अनुप्राणित है। वह लम्बा परिवार की तीन लड़कियों रमा, सुषमा और नीलिमा से प्रेम करता है, लेकिन अपनी शारीरिक हीनता के कारण वह उनमें से एक को भी प्राप्त नहीं कर पाता है। फलतः वह निराशा और अतृप्ति का भाजन बन जाता है। अपनी " हीनता की भावना " और तज्जनित महत्वकांक्षा तथा अहं के कारण वह व्यक्तिवादी स्तर पर चित्रित हुआ है तथा एक क्रांतिकारी का रूप धारण कर लिया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग के तृतीय प्रमुख उपन्यासकार अज्ञेय जी हैं जिनका जीवन - दर्शन ही वैयक्तिक भूमि पर आधारित है। वह असामाजिक रूप में हमारे समक्ष आते हैं। उन्होंने समाज से कोई सम्बन्ध नहीं रखा है इसी कारण व्यक्ति-वाद का उनमें चरम विकास दृष्टिगत होता है। उनके उपन्यास " शेखर : एक जीवनी का कथानक एक व्यक्ति (शेखर) की ही कथा प्रस्तुत करता है तथा उसकी विभिन्न दशाओं तथा मनोवृत्तियों का चित्रण करता है। शेखर में व्यक्तित्व विश्लेषण का प्रयत्न दृष्टिगत होता है। शेखर एक अतिशय आत्मकेन्द्रित तथा अन्तर्मुख व्यक्ति है। उसके साथ व्यक्तिवादी दुःख लगा हुआ है। इसी प्रकार " नदी के द्वीप का नायक भुवन व्यक्तिवादी है। वह अपनी अहं-भावना के प्राबल्य के कारण रेखा को कठोर यातना देता है। वह समाज की उपेक्षा करता है तथा उच्छिन्न व्यक्तित्व से अभिभूत हैं। उसके व्यवहारों में सवत्र अनैतिकता तथा सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन की भावना का दर्शन होता है।

इसी प्रकार यदि हम प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का सिंहावलोकन करें तो हमें यह दृष्टिगत होता है कि इस काल के सम्पूर्ण तो नहीं फिर भी अधिकांश

उपन्यासों के कथानक व्यक्तिवादी स्तर पर गठित किए गए हैं जिनमें व्यक्ति तथा व्यक्ति- जीवन में लेखक के चित्रण को प्रधानता दी गई है। उदाहरण स्वरूप राजेन्द्र यादव के उपन्यास " अनदेखे अनजान पुल " में निन्नी नामक नायिका के रूप में एक व्यक्ति का चित्रण हुआ है जो अपनी हीनता की भावना से पीड़ित है तथा वह अपनी कुरूपता के कारण दर्शन के प्रति प्रेम में असफलता प्राप्त कर भग्नाशा, कुण्ठा आदि व्यक्त करती है। इसी प्रकार राजेन्द्र यादव की अन्य कृतियाँ " एक इंच मुस्कान ", तथा " शह और मात " आदि उपन्यासों का कथानक भी व्यक्ति को केन्द्र ही लिखा गया है।

नरेश मेहता कृत " डूबते मस्तूल "," दो एकान्त "," नदी यशस्वी है " उपन्यासों के कथानक व्यक्तिवादी हैं। " डूबते मस्तूल " की नायिका रंजना रूपगर्वित युवती है जो अपनी काम - वासना के कारण अनेकों पुरुषों द्वारा छली जाती है और उसका जीवन विद्रूपताओं तथा विसंगतियों से भर जाता है। वह आत्म- विश्वास, अहं, स्पष्टवादिता तथा आत्म- गौरव आदि गुण होते हुए भी समाज से संतुलन नहीं स्थापित कर पाती है। इसी प्रकार " दो एकान्त " उपन्यास में कथानक विवेक और वानीरा के बीच बनते - बिगड़ते स्त्री - पुरुष सम्बन्धों की चर्चा हुई है। इस में लेखक का ध्यान व्यक्ति पर अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित है यद्यपि कि उसे समाज से जोड़ने का प्रयास करता है। लेखक के अन्य उपन्यास " प्रथम फाल्गुन " में गोपा द्वारा अपने जारज सन्तान होने के रहस्य का उद्घाटन करने पर महिम की विभिन्न मन:स्थितियों का उपन्यासकार चित्रण करता है।

इसी प्रकार व्यक्ति तथा उसके यौन-सम्बन्धों पर ध्यान केन्द्रित कर रचे जाने वाले उपन्यास मोहन राकेश कृत " अँधेरे बन्द कमरे ", " न आने वाला कल ", कमलेश्वर सिंह के उपन्यास " बासी फूल " लक्ष्मीनारायण लाल कृत " बड़ी चम्पा- छोटी- चम्पा "" काले फूल का पौधा " आदि के कथानक व्यक्तिवादी हैं। निर्मल वर्मा में व्यक्तिवादी दृष्टि कोण सर्वाधिक उत्कर्ष प्राप्त किये हैं। उनके उपन्यास " वे दिन " में अस्तित्ववाद की स्पष्ट छाप है। उपन्यास का नायक तथा नायिका रायना समाज के सभी सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को स्वीकार नहीं

करते हैं वे किसी सीमा में आबद्ध होना अभीष्ट नहीं समझते । उपन्यास के सभी पात्र अपनी - अपनी नियति भोगते हुए जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं तथा अकेलेपन से संत्रस्त दिखाई पड़ते हैं । प्रत्येक व्यक्ति परस्पर अजनबी है । वे सब भटकते रहते हैं तथा अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा हेतु व्याकुल रहते हैं । उषा प्रियंवदा के उपन्यास " रुकोगी नहीं राधिका " का कथानक भी व्यक्तिवादी चिन्तन पर ही आधारित है । उपन्यास की नायिका राधिका उन्मुक्त प्रेम के लिए अपना स्वतंत्र विकास करने का प्रयत्न करती है, वह परम्परागत संस्कारों से मुक्त हो कर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना करने का प्रयास करती है जिससे उसका जीवन अन्तर्विरोधों, विसंगतियों, संत्रास, घुटन आदि से पूर्ण हो जाता है । वह विश्वास-घातिनी हो कर व्यक्ति - स्वातंत्र्य तथा आत्म-सुख की प्राप्ति के स्थान पर अपने ही निर्मित जाल में उलझ जाती है । इसी प्रकार उपन्यास के पापा को छोड़ कर अन्य पुरुष पात्र डैन, मनीश, अक्षय भी अपने - अपने स्तर पर स्वतंत्र व्यक्तित्व की घोषणा करते हैं । इसी प्रकार मन्नू भण्डारी कृत " आप का बंटी ", कृष्णा सोबती कृत " मित्रो मरजानी ", परदेशी कृत " औरत एक : चेहरे हजार ", सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कृत " सोया हुआ जल ", शैलेश मटियानी कृत " कबूतर खाने ", शान्ति जोशी कृत " एक और बात " तथा " मछली और मरुथल ", भीष्म साहनी कृत " कड़ियां ", प्रमोद सिनहा कृत " उसका शहर ", रामकुमार भ्रमर कृत " कच्ची पक्की दीवारें, राजेन्द्र अवस्थी कृत " बहता हुआ पानी ", निर्मला वाजपेयी कृत " सूना सैलाब ", गिरिराज किशोर कृत " यात्राएँ ", ममता कालिया कृत " बेघर " आदि उपन्यासों के कथानक भी व्यक्तिवादी दर्शन से प्रेरित हो कर गठिबद्ध किए गये हैं । यही नहीं और भी बहुत से उपन्यासकार जैसे शरद देवड़ा, डा० रामचन्द्र 'प्रसाद ", नरेन्द्र कोहली, डा० देवराज आदि भी व्यक्तिवादी दृष्टिकोण लेकर उपन्यास रचना करते हैं ।

व्यक्ति को ही केन्द्र में रख कर कथानक की सृष्टि करने में शिवानी भी अपना विशेष महत्व रखती हैं । इस संदर्भ में उनके उपन्यास " कृष्णकली "

" भैरवी ", " चौदह फेरे " आदि उपन्यासों का नाम उद्धृत किया जा सकता है। " कृष्णकली " उपन्यास की नायिका कोढ़ी माता- पिता, पार्वती और असदुल्ला खान की अवैध सन्तान है जो शिक्षिता तथा सौन्दर्य सम्पन्न युवती है। वह अपने जन्म की बात लेकर तथा हीनता की भावना का अनुभव करती हुई समाज में चोटें सहती है और विद्रोह करती है। वह झुकती या टूटती नहीं। वह अकेले ही समाज से टक्कर लेती है, तथा अपने व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को उजागर करती है। इसी प्रकार " भैरवी " उपन्यास की नायिका चन्दन अपने सौन्दर्य का कटु अनुभव उठाती हुई जीवन के चौराहे पर खड़ी रह जाती है। " चौदह फेरे " में नारी पुरातन संस्कारों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए व्याकुल है तथा " अपराधिनी " में हत्या, जाल साजी आदि अपराधों के कारण दण्ड भोग रही स्त्रियों का चित्रण किया गया है। ये समस्त स्त्री पात्र अहं - मण्डित हैं। इस उपन्यास में पांच संस्मरणात्मक कथायें हैं जिनमें सवर्ण सेक्स चित्रण को प्रधानता प्राप्त हुई है।

अस्तु सम्पूर्ण प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास - साहित्य के अवगाहन एवं अध्ययन - अनुशीलन के उपरान्त हम स्पष्टतया यह कह सकते हैं कि इस काल के उपन्यासकारों ने व्यक्तिवादी दर्शन से प्रभावित हो कर औपन्यासिक सृजन किया है और उनकी सभी कृतियों का कथानक व्यक्ति की महत्ता, उसके जीवन, व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता, सेक्स, नारी - जीवन की विसंगतियाँ एवं समाज में उसका स्थान, प्राचीन सामाजिक, नैतिक मान - मर्यादाओं के खण्डन, अनैतिकता, क्षुद्र स्वार्थ, संकीर्णता, शहरी मध्यम एवं निम्न मध्यवर्गीय जीवन को संत्रस्त करने वाली विडंबनाओं, निराशा, भय, घुटन, संस्कार - हीनता, व्यक्ति से व्यक्ति की टकराहट आदि को आधार बना कर सृजित किए गए हैं। ये व्यक्तिवादी " स्व " की सीमा में आबद्ध हो कर अपने - अपने में इकाई बने घूम रहे हैं। वे अपना सामाजीकरण नहीं कर पा रहे हैं। अपने इसी व्यक्तिवादी-दर्शन के कारण आधुनिक उपन्यासकार मनोविज्ञान का आश्रय ग्रहण कर मानव - मन की अन्तर्वृत्तियों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करने में प्रवृत्त हुए हैं। व्यक्ति की चेतना तथा अन्तश्चेतना की अभिव्यक्ति ही व्यक्तिवाद का प्रमुख लक्ष्य है जो प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों की औपन्यासिक कृतियों में सर्वत्र दृष्टव्य है। उन्होंने व्यक्तिगत समस्याओं के चिन्तन में ही अपना ध्यान केन्द्रित कर रखा है। समाज की ये सेवक उपेक्षा करते हुए दृष्टिगत होते हैं। भारतीय परिवेश एवं भारतीयता

के परिप्रेक्ष्य में जिन कृतियों की रचना हुई है उनमें ही सामाजिक कथानक दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि मनुष्य समाज की ही गोद में पलता है और वह सामाजिक प्राणी की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस दृष्टि से समाज से उसका गहरा संबंध है। मानव जीवन से उपन्यास का गहन सम्बन्धनिर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है फिर भी आज सामाजिक उपन्यासों की संख्या स्वल्प है। फिर भी यशपाल, अश्क, नागार्जुन आदि प्रेमचन्द की परम्परा से प्रभावित उपन्यासकारों के उपन्यासों के कथानक सामाजिक हैं। सामाजिक कथानक से तात्पर्य ऐसे कथानकों से है जिनमें व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का स्थान महत्वपूर्ण होता है। समाज की समस्याओं को ही राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया जाता है तथा नए परिवेश में मानव-मूल्य एवं व्यक्ति के आचरण की मर्यादा स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है। व्यक्ति का स्थान गौण होता है। इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त कुछ आधुनिक उपन्यासकारों - जैसे शिव प्रसाद मिश्र " रुद्र ", आनन्द प्रकाश जैन, राम कुमार "भ्रमर " ,डा० देवराज आदि के कुछ उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। इन प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथानक को दो कोटियों (१) सामाजिक और (२) व्यक्तिगत में विभाजित कर के देखा जा सकता है।

१- अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ० २९

२- वही, पृ० २९

३- भगीरथ मिश्र - काव्य शास्त्र, पृ० २८

४- वही, पृ० २८

५- वही, पृ० २८

६- वही, पृ० २८

७- वही, पृ० ३०

८- धनञ्जय - दशरूपकम्, पृ० १९ श्लोक संख्या ~~२२, २३, २४~~ १८

९- वही, पृ० १९ श्लोक संख्या २२, २३, २४

१०- वही, पृ० ९७ श्लोक संख्या ५७, ५८

११- " The actual ending is often in a philosophic strain, it need only be ~~xx~~ sentence, but it usually summerises the point, the theme or moral of the novel." Basil Hograth : The Technique of Novel writing, p. 89.

१२- नन्द दुलारे वाजपेयी - नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १८४

१३- हिन्दी साहित्य कोश १ भाग ८०९१०

१४- वही, पृष्ठ ९३

१५- " Man is nothing else but that which he makes of himself, that is the first principle existentialism." Jean Paul Sartre; Existentialism And Humanism; p. 28.

:: अध्याय - ६ :: ।१२७।

-: कथ्य का वर्गीकरण :-

हिन्दी उपन्यासों के कथ्य पर पूर्ववर्ती विचारकों एवं आलोचकों ने विचार करते हुए उसके वर्गीकरण का भी प्रयास किया है। उन्होंने कथ्य के रोमांचक, तिलस्मी, जासूसी, पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आंचलिक, राजनीतिक, आर्थिक, क्रांतिकारी एवं मनोवैज्ञानिक आदि भेद किये हैं। उपन्यास में जिस जीवन-दृष्टि की प्रधानता होती है उसी के आधार पर उसके कथ्य को सम्बोधित किया जायेगा। यथा - यदि उसमें पारिवारिक समस्याओं के प्रति जीवन-दृष्टि है तो वह पारिवारिक विषय या कथ्य, अथवा यदि उसमें व्यक्ति का प्राधान्य है तो वह वैयक्तिक कथ्य की संज्ञा से अभिहित होगा। जिन उपन्यासों के कथानकों का ताना-बाना सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक सूत्रों से बुना जाता है उनके कथ्य क्रमश: सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक कहे जाते हैं। किन्तु प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में रोमांचक, तिलस्मी, जासूसी, पौराणिक आदि जीवन-दृष्टियों की स्थिति नगण्य होने के कारण कथ्य के इन भेदों का दर्शन नहीं होता। प्रेमचन्द पूर्व जब कि उपन्यास मनोरंजन, शिक्षा एवं उपदेश के उद्देश्य से लिखे जाते थे तब उनमें इस प्रकार के कथ्य को ग्रहण किया जाता था। धीरे - धीरे प्रेमचन्द ने उपन्यास के कथ्य को आदर्शवादी एवं यथार्थवादी धरातल प्रदान किया जो प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में उत्तरोत्तर निखार पाता गया। इन उपन्यासकारों ने प्रेमचन्द के आदर्शवाद को भी ठुकरा कर यथार्थ को ही अपनी कृतियों का कथ्य बनाया। उन्होंने जिस वस्तु को जैसे देखा और अनुभव किया उसे उसी रूप में ग्रहण कर अपने उपन्यासों के कथ्य का निर्माण किया। इस लिए कथ्य के उपर्युक्त विभाजन के आधार पर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य का वर्गीकरण करना युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होता।

जार्ज पटेन्हम ने काव्य-वस्तु की चर्चा करते हुए काव्य के तीन प्रकार के विषयों (कथ्य) का उल्लेख किया है - (१) पूर्णत: सत्य (२) पूर्णत: असत्य और (३) दोनों का मिश्रण[१]। तात्पर्य यह कि कथ्य वास्तविक, काल्पनिक और

मिश्रित तीन प्रकार के हो सकते हैं। किन्तु विषय - विभाजन के इस आधार को प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य के विभाजन में ग्रहण नहीं किया जा सकता, क्योंकि उपन्यासकार तो असत्य का पूर्ण बहिष्कार कर भोगे हुए यथार्थ के चित्रण में प्रवृत्त है। इन उपन्यासकारों की औपन्यासिक कृतियों में अब मिथ्या - कल्पना का दर्शन नहीं होता है।

सी० ई० डब्ल्यू० एल० डालस्ट्राम ने थीम को पांच भागों में विभक्त किया है - (१) भौतिक, अर्थात् अणु-परमाणु (मालीक्यूल्स) के रूप में मानव (२) जैविक (आर्गेनिक) अर्थात् प्रत्यपिंड (प्रोटोप्लाज्म) के रूप में मानव, (३) सामाजिक अर्थात् सामाजिक प्राणी के रूप में मानव, (४) अद्भुत, अर्थात् व्यक्ति के रूप में मानव तथा (५) दैवी, अर्थात् आत्मा के रूप में मानव[2]।

कथ्य-सर्वेक्षण करने पर हमें उसमें दो प्रकार की जीवन - दृष्टियां उपलब्ध होती हैं एक का सम्बन्ध व्यक्ति से है और दूसरे का समाज से। डा० इन्द्रनाथ मदान के कथ्य - विभाजन का यह दृष्टिकोण अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि " एक जीवन - दृष्टि का सम्बन्ध व्यक्ति चिन्तन, व्यक्ति-सत्य, व्यक्ति - यथार्थ, व्यक्ति -हित, व्यक्ति - विकास से है और दूसरी का सम्बन्ध समष्टि-चिंतन, समष्टि - सत्य, सामूहिक यथार्थ, समाज -मंगल, सामाजिक विकास से है। एक जीवन और एक जगत का चित्रण एवं मूल्यांकन व्यक्ति -चिंतन से प्रेरित मान्यताओं एवं अनुभूतियों के आधार पर करती हैं और सामाजिक विधान तथा उसकी धारणाओं को व्यक्ति - हित, व्यक्ति - स्वातंत्र्य, व्यक्ति विकास के उद्देश्य से आंकती हैं और दूसरी समष्टि - चिंतन, समष्टि - मंगल को केन्द्रस्थ कर व्यक्ति-विकास, व्यक्ति-हित आदि को नियमित करने के पक्ष में है[3]। उपन्यासकारों का एक वर्ग सामाजिक कथ्य के उपयोग में तत्पर है। इन उपन्यासों में समाज प्रमुख तथा व्यक्ति गौण रूप में चित्रित होता है। दूसरा वर्ग उन उपन्यासकारों का है जिन्होंने व्यक्ति को समष्टि या समाज की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया है। उनकी औपन्यासिक कृतियों में समाज गौण है। इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के अध्ययन एवं अनुशीलन के पश्चात् हम उनके कथ्य को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं- एक व्यक्ति सापेक्ष जो कि व्यक्ति - चिंतन से अनुप्राणित है और दूसरा समाज सापेक्ष जो

समष्टि - चिंतन से उद्भूत है । इस सम्बन्ध में डा० मदान का यह कथन द्रष्टव्य है कि " आज की कहानी का स्वरूप उस वाद्यवृन्द या आरकेस्ट्रा के समान है जिसमें सम तथा विषम सब तरह के स्वर समाहित हैं, परन्तु इसमें दो परस्पर विरोधी मुख्य स्वर हैं - एक सारंगी का जो सूक्ष्म है तथा व्यक्ति - चिंतन से अनुप्राणित है और दूसरा मृदंग का जो सशक्त है और समष्टि - चिंतन से प्रेरित है ।"

प्राय: रचनाकारिता के मूल में व्यक्ति और समाज होते हैं । इन्हीं को आधार बना कर उपन्यासकार अपने कथ्य का चुनाव करता है । व्यक्ति और समाज पर आश्रित ये दोनों प्रवृत्तियां कभी दबती और कभी उभरती चली आती दृष्टि गोचर होती हैं । उदाहरणार्थ प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में सामाजिक प्रवृत्ति का प्राधान्य था जिसके परिणाम स्वरूप तत्कालीन उपन्यासों में सामाजिक कथ्य अधिक निखार पाता रहा है और साधारणत: उपन्यास - लेखकों द्वारा ग्राह्य हुआ है । किन्तु इसी समय व्यक्ति - सापेक्ष प्रवृत्ति का भी बीजारोपण हो गया था जो प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों द्वारा विशेष रूप से ग्रहण किया गया और इसी युग में व्यक्ति - सापेक्ष उपन्यासों का सृजन अपेक्षा कृत अधिक हुआ है । इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों के आधार पर प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का वर्गीकरण स्थूल रूप में व्यक्ति - सापेक्ष और समाज सापेक्ष रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है । ये दोनों समाज सापेक्ष और व्यक्ति सापेक्ष प्रवृत्तियां भी अलग अलग धाराओं में प्रवाहित हुई हैं । व्यक्ति सापेक्ष और समाज सापेक्ष प्रवृत्तियों के तीन स्रोत प्रवाहित हुए हैं । प्रथम दो प्रवृत्तियों अर्थात् समाज सापेक्ष और व्यक्ति सापेक्ष से प्रभावित औपन्यासिक कृतियों में " वाद " का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । समाज सापेक्ष उपन्यासों में समाज-दर्शन के माध्यम से समाजवादी विचार धारा और व्यक्ति सापेक्ष्य उपन्यासों में व्यक्ति-दर्शन के द्वारा व्यक्तिवादी विचारधारा को आत्मसात् किया गया है । कतिपय उपन्यासों में " वाद " के प्रति रचनाकार की विशेष प्रवृत्ति परिलक्षित होती है तो कुछ में मनोविश्लेषण के प्रति अधिक झुकाव दृष्टिगोचर होता है । कतिपय ऐसे उपन्यास भी हैं जिनमें न तो " वाद " के प्रति आग्रह है और न ही मनोविश्लेषण के प्रति प्रत्युत् ये इन दोनों से पृथक हैं । मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकारों का मूलाधार व्यक्ति है किन्तु वह भी मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्तियों

के आधार पर समाज सापेक्ष प्रवृत्तियों को स्थान दे सकता है । मनोविश्लेषणपरक जिन उपन्यासों में सामाजिक मूल्यों की स्थापना का प्रयत्न दिखाई पड़ता है उसे हम व्यक्ति सापेक्ष उपन्यास की कोटि में न रख कर समाज सापेक्ष उपन्यासों के अन्तर्गत रखेंगे । जिन औपन्यासिक रचनाओं में वाद और मनोविश्लेषण का प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता है, वे समाज सापेक्ष उपन्यासों में सामाजिक तथा व्यक्ति सापेक्ष उपन्यासों में व्यक्ति परक उपन्यास की कोटि में परिगणित होंगे । ऐतिहासिक उपन्यासों में इन तीनों प्रवृत्तियों का दर्शन संभव हो सकता है किन्तु प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में केवल सामाजिक, व्यक्तिपरक और समाजवादी प्रवृत्तियां ही दृष्टिगत होती हैं । इस लिए इनका भी वर्गीकरण समाज सापेक्ष ऐतिहासिक उपन्यास और व्यक्ति-सापेक्ष ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में किया जा सकता है । इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य को हम निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं जो कि अधिक स्पष्ट एवं सुविधाजनक है :-

अस्तु सामाजिक और व्यक्तिपरक कथ्य के अन्तर्गत समाज और व्यक्ति की प्रवृत्तियों का अंकन दार्शनिक मान्यताओं, मनोविश्लेषणात्मक ऊहा-पोह तथा ऐतिहासिकता से रहित होता है, समाजवादी तथा व्यक्तिवादी कथ्य क्रमशः समाज और व्यक्ति के दर्शन से ओत - प्रोत होते हैं, समाजपरक मनोविश्लेषणवादी और

व्यक्ति परक मनोविश्लेषणवादी कथ्य में, समाज और व्यक्ति की प्रवृत्तियों को मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि के माध्यम से चित्रित किया जाता है। समाज परक ऐतिहासिक और व्यक्ति परक ऐतिहासिक कथ्य के अन्तर्गत इतिहास के परिपार्श्व में समाज और व्यक्ति की प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

अत: कथ्य के इसी उपर्युक्त विभाजन के आधार पर हम यहां प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों केकथ्य का अध्ययन करने का प्रयास करेंगे जिससे यह विभाजन और भी अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

<u>सामाजिक कथ्य</u> :- हिन्दी उपन्यासों में सामाजिकता का संचार प्राय: प्रेमचन्द से माना जाता है। उनके उपन्यासों का मूल कथ्य समाज - कल्याण रहा है। प्रेमचन्द सामाजिक जीवन से निकट का सम्बन्ध रखते हुए भी व्यक्ति की उपेक्षा नहीं कर सके हैं [५]। उन्होंने सामाजिक परिस्थितियों के बीच व्यक्ति की पीड़ा को अपने उपन्यासों का कथ्य बनाया है। समाज को आधार मान कर उन्होंने व्यक्ति की समस्याओं को अपनी रचनाओं के कथ्य के रूप में ग्रहण किया है। उनके साहित्य में व्यक्ति की अपेक्षा समाज प्रमुख है [६]। तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों का मूल कथ्य सामाजिक उपकार या समाज - मंगल की भावना थी, यही कारण है कि हिन्दी उपन्यास के बहुत से आलोचक गणों ने इसी समाज-मंगल की भावना को ही सामाजिक उपन्यास-कला का आधार स्वीकार कर लिया है [७] जो कि मात्र भ्रान्त धारणा है। सामाजिक उपन्यासों का कथ्य समाज - मंगल तथा व्यक्तिवादी उपन्यासों का कथ्य व्यक्ति - मंगल नहीं होता। साहित्य में व्यक्ति या सामाजिक - मूल्यों की स्थापना की जाती है। व्यक्ति परक उपन्यासों में उपन्यासकार व्यक्ति के माध्यम से जीवन को देखता एवं अभिव्यक्त करता है तथा अपने विश्लेषण एवं चिंतन के द्वारा व्यक्ति - मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का उपक्रम करता है जब कि समाजिक उपन्यासकार व्यक्ति की अवहेलना कर जीवन - मूल्यों को समाज के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति सदैव परिवर्तनशील रही है । प्रारंभ के सामाजिक उपन्यासों का कथ्य समाज सुधार रहा है । इन उपन्यासों में नैतिकता के प्रति सुधारवादी दृष्टि को कथ्य बनाया गया है । सामाजिकता के विवेचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिन्दी उपन्यासों का कथ्य आदर्श से यथार्थ के धरातल पर उतर आया है । अत: सामाजिक उपन्यासों का कथ्य किसी व्यक्ति मात्र से सम्बन्धित न हो कर किसी समूह, परिवार, समाज या देश से सम्बद्ध होता है । जीवन को सामाजिक दृष्टि से देखना, सामाजिक दृष्टि से उसका विवेचन एवं विश्लेषण करना, व्यष्टिसत्य को समष्टिसत्य में अन्तर्निहित कर देना एवं समाज के माध्यम से जीवन-मूल्यों की स्थापना करना ही हिन्दी के प्रेमचन्दोत्तर सामाजिक उपन्यासों का कथ्य है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर के प्रमुख उपन्यासों 'बूंद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर' तथा 'सेठ बांके मल' का कथ्य सामाजिक है । नागर जी की उपन्यास कला का मूल भूत ध्येय व्यक्ति और समाज की समस्या में समन्वय स्थापित करते हुए भी समाज की महत्ता, व्यक्ति के ऊपर प्रतिष्ठित करने का, रहा है[८] । व्यक्ति के साथ सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति ही नागर जी के उपन्यासों का मूल कथ्य है । 'बूंद और समुद्र' उपन्यास में व्यक्ति को व्यक्ति परकता एवं व्यक्तिवादी चिंतन के बंधन से मुक्त कर उसमें सामाजिक संचेतना को जागृत करने को ही कथ्य के रूप में ग्रहण किया गया है । व्यक्ति और समाज में समन्वय करना ही इस उपन्यास का कथ्य है । जैसा कि उपन्यास में महिपाल व्यक्तिवादी चिंतन में भी सामाजिक दृष्टिकोण के रहने को अनिवार्य मानता है । वह समाज को एक तथा व्यक्ति को अनेक मानता है[९] । इसी प्रकार सज्जन भी सुख-दु:ख में व्यक्ति के व्यक्ति से अटूट संबंध पर बल देता है जैसे कि बूंद से बूंद का अटूट सम्बन्ध होता है । उसे विश्वास है कि व्यक्ति की सामाजिक चेतना अवश्य उद्बुद्ध होगी[१०] । इस प्रकार व्यक्ति और समाज का समन्वय कर के व्यक्ति की सामाजिक चेतना को जगाना ही इसका कथ्य है जो कि स्पष्टत: सामाजिक है ।

। १२३।

इसी प्रकार नागर जी के दूसरे उपन्यास " सुहाग के नूपुर " में तत्कालीन समाज और राज्य - व्यवस्था के परिवेश में वेश्या- समस्या को आधार बना कर माधवी, कन्नगी और कोवलन् के प्रेम और विवाह के त्रिकोण और विषाक्त जीवन के चित्रण के माध्यम से " मनुष्य -समाज के द्वारा पीड़ित अर्धांग नारी के अनन्त शोषण और पुरुष की स्वाभाविक उच्छृंखलता की कथा को प्रस्तुत कर समाज की दूषित परम्परा, सड़े - गले सामाजिक नियमों और सामाजिक रूढ़ियों को ही कथ्य के रूप में प्रस्तुत किया है । उपन्यासकार समस्त पापों के मूल में पुरुषों की स्वार्थजनित दंभ भरी मूर्खता को ही मानता है जिससे उसकी अर्धांगिनी नारी पीड़ित है तथा वह स्वयं भी दोलायमान है [११]। यही उपन्यास का कथ्य है जो समाज से सम्बन्धित है । " सेठ बांके मल " नाम का उपन्यास में भी इसी प्रकार युग की सड़ी-गली रूढ़ियों पर व्यंग किया गया है । इसी प्रकार " शतरंज के मोहरे " और " ये कोठे वालियां " उपन्यासों का भी कथ्य सामाजिक है ।

उदय शंकर भट्ट की औपन्यासिक कृतियां " वह जो मैंने देखा ", "नये मोड़ ", " एक नीड़ दो पंछी ", " सागर लहरें और मनुष्य " तथा दो अध्याय हैं जिनमें " सागर लहरें और मनुष्य " उनका महत्व पूर्ण उपन्यास है । इनके उपन्यासों के कथ्य सामाजिक हैं क्यों कि उनमें सामाजिकता का स्वर मुखर है । भट्ट जी की जीवन - दृष्टि सामाजिक है वह सृष्टा को व्यक्ति न मान कर समष्टि मानते हैं और उसकी कृतियों के वर्णित सुख- दुःख, आसक्ति, विरक्ति, अनुराग, द्वेष को लेखक का अपना न मान कर समाज का मानते हैं [१२], " यह मानना पड़ेगा कि कलाकार या सृष्टा, व्यक्ति न हो कर एक समष्टि है । वह जन जीवन का प्रतिनिधित्व करता है । वह अपनी सृजन की भूख को सन्तुष्ट करने के लिए जो कुछ करता है, उसमें सुख-दुःख, आसक्ति, विरक्ति, अनुराग, द्वेष उसके अपने नहीं हैं, समाज के हैं, युग के हैं, क्यों कि वह व्यक्ति नहीं है " । जो निश्चित रूप से उन्हें सामाजिक उपन्यासकारों की श्रेणी में स्थान प्रदान करती है । किन्तु हिन्दी के कतिपय आलोचकों ने केवल प्रेम और विवाह को व्यक्ति - चेतना और सामाजिक चेतना

का प्रतीक मान कर भट्ट जी को सशक्त व्यक्तिवादी उपन्यासकार घोषित किया है,[१३]
" व्यक्ति को विशेषकर नारी को सामाजिक बन्धनों में जकड़ा हुआ पा कर लेखक
विद्रोह की भावना को जागृत कर वैयक्तिक स्वतंत्रता के स्वर को ध्वनित करता है ।
प्रेम के लिए व्यक्ति की उत्कट व्यक्तिवादी चेतना को मुखरित करती है । इसी तरह
दूसरे उपन्यास में रत्ना का चरित्र प्राचीन के प्रति विमुखता और नवीन के प्रति
ममता को व्यंजित करता है । उसके जीवन की आशा - आकांक्षायें व्यक्तिवादी
चेतना की प्रतीक है । डा० शेफाली और रत्ना के चरित्रांकन में भट्ट ने समस्त
सहानुभूति को उड़ेल कर निजी जीवन- दृष्टि का परिचय दिया है जिसके आधार पर
उनकी कृतियों को व्यक्तिवादी उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है-"
जो अत्यन्त ही भ्रामक है । उन्होंने निश्चित रूप से अपने उपन्यासों के लिए सामाजिक
कथ्य को ग्रहण किया है । " सागर लहरें और मनुष्य " उदय शंकर भट्ट का एक
समाज शास्त्रीय उपन्यास है । इसमें लेखक ने मछुआ समाज की एक नारी रत्ना के
माध्यम से मछुओं के जीवन, सुख - दु:ख, हास्य - अश्रु, आनन्द और पीड़ा को कथ्य
बनाया है । इस उपन्यास में एक जन-जाति का सभी पहलुओं से समाजशास्त्रीय
अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास में वर्णित जन जाति में पली एक शिक्षित
लड़की रत्ना की कथा एक व्यक्ति की न हो कर पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करती
है । शिक्षा के प्रसार से जन जातियों के जीवन में क्या परिवर्तन उपस्थित हुआ है
यह रत्ना के चरित्रांकन एवं उसके जीवन - चित्रण से प्रतिध्वनित होता है । बरसोवा
का जीवन, मछुओं का आचार - विचार उनके ग्रामीण व्यवहार, सामाजिक रीति-
नीति, सदाचार - दुराचार, प्रेम - वियोग, ईर्ष्या - द्वेष, कलह - सुलह, हास -
परिहास, नैतिकता - अनैतिकता, आर्थिक संघर्ष, विश्वास - अविश्वास, आस्था-
अनास्था का सजीव चित्रण ही इस उपन्यास का प्रमुख कथ्य है जो इसकी सामाजिकता
को पुष्ट करता है । इसी प्रकार भट्ट जी के उपन्यास " लोक परलोक " में पाश्चात्य
सभ्यता के प्रभाव से पतनोन्मुख उत्तर प्रदेश के एक गांव के युग के सामाजिक यथार्थ के
चित्रण को कथ्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है । " एक नीड़ दो पंछी " में नारी का

सामाजिक जीवन " शेष अशेष " में साधु - जीवन तथा " दो अध्याय " में समाज की विकृतियों के प्रस्तुती करण को कथ्य बनाया गया है जो निश्चित रूप से सामाजिक है।

फणीश्वर नाथ रेणु को तो हिन्दी उपन्यासकारों में निर्विवाद रूप से प्रेमचन्द को सामाजिक चेतना का उपन्यासकार माना गया है। " मैला आंचल ", " परती : परिकथा ", " दीर्घतपा " और " जुलूस " रेणु जी की औपन्यासिक रचनायें हैं जिनके कथ्य सामाजिक हैं। " मैला आंचल " लेखक का एक आंचलिक - सामाजिक उपन्यास है जिसमें एक गांव मेरी गंज के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन का चित्रण सामूहिक दृष्टि से हुआ है। इसमें व्यक्ति -चिंतन न हो कर समाज -चिंतन प्रमुख है और व्यक्ति प्रमुख न हो कर समाज प्रमुख है। मेरीगंज के समाज में व्यक्ति खो जाते हैं और समाज उभर जाता है। इसी प्रकार लेखक के अन्य उपन्यास " परती : परिकथा " में परानपुर ग्राम के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक उथल - पुथल के चित्रण के माध्यम से राजनीतिक कुचक्र के स्थान पर सांस्कृतिक चेतना के विकास करने को उपन्यासका कथ्य बनाया है। सांस्कृतिक चेतना ही मनुष्य में सामाजिक चेतना को उद्बुद्ध करती है। " दीर्घतपा " में आधुनिक युग की सफेद - पोश महिला संस्थाओं में व्याप्त अनैतिकता और व्यभिचारों का रहस्योद्घाटन हुआ है। मिस बेला गुप्ता और मिसेज ज्योति आनन्द के माध्यम से लेखक ने समाज के गर्हित स्वरूप का चित्रण किया है जिसमें सामाजिकता का स्वर अधिक मुखर है। यही उपन्यास का कथ्य है। " जुलूस " में लोक - संस्कृति - मूलक समाज के गठन को उपन्यास का कथ्य स्वीकार किया गया है और सामाजिक चेतना को आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया है जो उपन्यास के कथ्य को सामाजिक सिद्ध करता है।

धर्मवीर भारती का प्रसिद्ध उपन्यास " सूरज का सातवां घोड़ा " का भी कथ्य सामाजिक है। भारती स्वयं को जीवन से प्रतिबद्ध स्वीकार करते हैं [१४]। इस लिए उनकी जीवन - दृष्टि सामाजिक है। इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्गीय समाज की अभिव्यक्ति का प्रयास है। आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विश्रृंखलता, अनाचार, निराशा, कटुता और अंधेरा जो कि निम्न- मध्यवर्गीय समाज के जीवन में व्याप्त है वही इस उपन्यास का कथ्य है। अज्ञेय जी ने भी " सूरज का सातवां घोड़ा " को सामाजिक उपन्यास माना है [१५]। डा० सुषमा धवन ने इसे मनोविश्लेषणात्मक

उपन्यासों की श्रेणी में रखा है जो कि सर्वथा उचित नहीं है [२६]।

समाज सापेक्ष उपन्यासों की श्रेणी में ही समाजवादी उपन्यासों की भी अवस्थिति है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में यशपाल समाजवादी कथ्य को ग्रहण करने वाले सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं, उन्होंने समाज की उपेक्षा कभी नहीं की है। उन्होंने अपनी कृतियों में मानव - जीवन की परिस्थितियों को कथ्य बना कर समाजवादी जीवन - दृष्टि को अभिव्यक्ति प्रदान किया है। वह अपनी अभिव्यक्ति और रचनात्मक प्रवृत्ति को सामाजिक भावनाओं और परिस्थितियों से स्वतंत्र आत्म-निष्ठा प्रवृत्ति और आत्मा की पुकार नहीं समझते प्रत्युत अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति में समाज की परिस्थितियों, अनुभूतियों और कामनाओं को सचेत प्रतिक्रिया मान कर सामाजिक हित के प्रयोजन से अभिव्यक्त करते रहे हैं [३०]। यशपाल ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास " झूठा - सच " में स्वातंत्र्योत्तर भारत के विभाजन के परिपार्श्व में युग के सामाजिक और राजनीतिक सत्य को कथ्य के रूप में ग्रहण किया है। इस उपन्यास में प्रेम और विवाह की समस्या को समाजवादी दृष्टि कोण से देखने का लेखक ने प्रयास किया है। समाजवादी विचारधारा के अनुसार विवाह केवल एक सामाजिक समझौता नहीं होता। शोषण और अन्याय की स्थिति में प्रत्येक पक्ष को यह अधिकार होता है कि पुराने समझौतों को भंग करके नये समझौतों की स्थापना कर सकता है। विवाह के अधिकारों के धरातल पर खींच लाना मार्क्सवादी चिंतन का परिणाम है इस लिए इस उपन्यास के कथ्य को समाजवादी कथ्य की श्रेणी में रखा गया है। " बारह घन्टे " यशपाल का नवीनतम उपन्यास है जिसमें उपन्यासकार " लारेंस " के स्वर में बोलता है, " हमारी औचित्य और अनौचित्य सम्बन्धी धारणायें ही नैतिकता होती है। लेखक ने इस कृति में समाजवादी जीवन -पद्धति के आधार पर नैतिकता के प्रश्न को उठाया है जो इस उपन्यास का कथ्य है। इस उपन्यास में समाजवादी जीवन-पद्धति का ग्रहण वैचारिक धरातल पर हुआ है। इसी प्रकार लेखक के अन्य उपन्यासों में " अमिता " को छोड़ कर शेष अन्य " दादा कामरेड ", " देश-द्रोही ", "दिव्या ", "पार्टी कामरेड "," मनुष्य के रूप ", झूठा सच (वतन और देश), " झूठा -सच "(देश का भविष्य) आदि उपन्यासों के कथ्य समाजवादी है।

रांगेय राघव भी समाजवादी उपन्यासकार हैं। उन्होंने साहित्य के स्थाई मूल्यों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए व्यक्ति और समाज के समन्वय से शोषण - मुक्त जिस जीवन की कल्पना लेखक करता है वह मानवतावाद है[१८]। लेखक का यही मानवतावादी स्वर वस्तुत: भारतीय समाजवाद है[१९]। उनके उपन्यासों में अनर्गल प्रभाव से बचकर जनवादी विचारधारा को प्रश्रय देते हुए समाजवाद का अभिव्यक्तिकरण हुआ है। रांगेय राघव के प्रसिद्ध उपन्यास "कब तक पुकारूं" में करनटों के नैतिक जीवन का चित्रण ही कथ्य है[२०]। शोषण, सामाजिक अन्याय, पूंजीवादी मनोवृत्ति एवं असमानता के विरुद्ध आवाज उठा कर प्रगतिशील चेतना के माध्यम से करनटों के जीवन का चित्रण कर, शोषित वर्ग पर होने वाले शोषण का चित्र खींचकर लेखक ने इस उपन्यास के कथ्य में जनवादी विचारधारा को समुन्नत किया है। प्रस्तुत कृति के कथ्य में वर्ग-संघर्ष के चित्रण को स्थान मिलने के कारण उसे समाजवादी कथ्य की संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार के अन्य उपन्यासों के कथ्य भी समाजवादी है। "सीधा सादा रास्ता" में प्रतिक्रियावादी शक्तियों और प्रतिगामी शक्तियों के बीच संघर्ष का चित्रण किया गया है और आशावादी स्वर का उद्घोष है। "हुजूर" उपन्यास में पूंजीवादी और शोषित वर्ग के घिनौने रूप और निम्नवर्ग की दीनहीन अवस्था का चित्रण ही कथ्य है जिसमें समाजवादी जीवन-दृष्टि है। इसी प्रकार "उबाल," "बोलते खण्डहर," "राई और पर्वत," "पथ का पाप" आदि उपन्यासों का कथ्य भी समाजवादी है। "धरती मेरा घर" उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है जिसमें मानवतावादी जीवन-दृष्टि का दर्शन होता है। "आखिरी आवाज" उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत में शासक दल के नेताओं और सरकारी अधिकारियों की रिश्वतखोरी का भण्डाफोड़ किया गया है किन्तु इससे इस उपन्यास का कथ्य समाजवादी नहीं कहा जा सकता। नागार्जुन कृत "बलचनमा" उपन्यास में बलचनमा के माध्यम से प्रस्तुत दीन - हीन सर्वहारा वर्ग के साधन सम्पन्न शोषक वर्ग के प्रति वर्ग - संघर्ष का चित्रण कर, साधन - विहीन वर्ग में वर्ग - संघर्ष की ज्वाला को उद्दीप्त करना ही कथ्य है। इस वर्ग - संघर्ष के चित्रण में समाजवादी चेतना के निर्देश निहित हैं। उपन्यास के प्रमुख पात्र बलचनमा में भारतीय किसानों के प्रति होने वाले अमानवीय अत्याचारों एवं तज्जनित वर्ग - संघर्ष की अभिव्यक्ति तथा

समाज - संघर्ष की अभिव्यक्ति होने के कारण कम्युनिस्ट पार्टी की अपेक्षा भारतीय समाजवादी दल के सिद्धान्तों का पुष्टिकरण हुआ है। इस उपन्यास का कथ्य पूर्वाग्रह से रहित समाजवादी चेतना से प्रभावित है। 'नई पौध' में अनमेल विवाह की समस्या के परिप्रेक्ष्य में नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष -चित्रण को कथ्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नई पीढ़ी के विजय -घोष के माध्यम से नये समाज की स्थापना के लिए समाजवादी चेतना का ग्रहण ही इस उपन्यास के कथ्य को समाजवादी कथ्य की श्रेणी में प्रतिष्ठित करता है। इसी प्रकार लेखक के अन्य उपन्यासों 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुख मोचन', 'कुंभीपाक' एवं 'हीरक जयन्ती' आदि के कथ्य भी समाजवादी हैं।

भैरव प्रसाद गुप्त कृत 'सती मैया का चौरा' उपन्यास में ग्रामीण भारत के सामन्ती मूल्यों और व्यवस्थाओं के विघटन का चित्रण किया गया है। इसमें पूंजीवाद की पतनोन्मुख वृत्तियों का चित्रण है एवं हिन्दू - मुस्लिम -ऐक्य के माध्यम से नये जीवन - मूल्यों की स्थापना की गई है यही उपन्यास का कथ्य है। 'सती मैया का चौरा' साम्प्रदायिक संघर्ष की अभिव्यक्ति करता है। साम्प्रदायिक संघर्ष के माध्यम से हिन्दू - मुस्लिम जनता में वर्ग - चेतना उत्पन्न कर गांव में समाजवादी समाज की स्थापना करने की लेखकीय कल्पना के कारण उपन्यास का यह कथ्य निश्चित ही समाजवादी है। 'मशाल' उपन्यास के नायक नरेन के द्वारा सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करा कर लेखक ने समाजवादी चेतना को उद्बुद्ध किया है। 'गंगा मैया' उपन्यास का कथ्य भी समाजवादी है। उसमें समाजवादी समाज की स्थापना का प्रयत्न किया गया है[२१]।

अमृत राय के उपन्यासों का कथ्य भी समाजवादी है। वह छात्रावस्था से ही मार्क्सवाद के प्रति आकर्षित हो कर साम्यवादी बन गए थे तथा साहित्य में प्रगतिशीलता के सिद्धान्त के समर्थक बन चुके थे। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'बीज' आत्मकथात्मक शैली में रचित एक बृहत्काय कृति है जिसमें युद्ध कालीन भारत की राजनैतिक सामाजिक,जीवन के परिप्रेक्ष्य में साम्यवादी सम्पत्ति के संघर्ष को कथ्य चुना गया है।

समाजवाद से प्रेरित उपन्यासकार वर्ग - हीन समाज की स्थापना की कल्पना करता है जिससे इस उपन्यास के कथ्य में समाजवादी यथार्थवाद की झलक मिलती है। " नागफनी का देश " में साम्यवादी सिद्धान्तों का पुष्टीकरण नहीं है बल्कि उसमें केवल एक भ्रमित नारी की जीवन-गाथा का चित्रण है। " हाथी के दांत " उपन्यास में वर्ग - संघर्ष को कथ्य बनाया गया है जिसमें सामंती - शोषण की कथा प्रस्तुत की गई है।

<u>समाज परक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य</u> :- प्राय: मनोविश्लेषणात्मक कथ्य में व्यक्ति की प्रमुखता होती है क्यों कि इसमें व्यक्ति के अचेतन मन को चेतन स्तर पर लाने का प्रयास सन्निहित रहता है। किन्तु प्रेमचन्दोत्तर कतिपय मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों के कथ्य में समाज का ही प्राधान्य है। मनोविश्लेषण समाज से गहन रूप में सम्बद्ध है। अभी तक प्राणिशास्त्रीय मत को प्रमुखता दी जा रही है। एक पाश्चात्य आलोचक का कथन है कि " मनोविश्लेषण विशेष रूप से विकास मनोविज्ञान पर आधारित है जो सामाजिक तत्वों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन में प्राणिशास्त्रीय महत्व भी रखता है। मैं शब्दों की धुंधली प्रकृति से परिचित हूं और यह सब से अच्छा है कि यह विभिन्न क्षेत्र समाजशास्त्र और प्राणि- विज्ञान में स्थान पा जाते हैं। मैं यहां समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण रखता हूं क्यों कि यह मेरे विषय की आवश्यकता है। मैं प्राणिशास्त्रीय दृष्टिकोण को भी कम महत्व नहीं देता[२२]। सामाजिक मूल्यों को आधार स्वरूप ग्रहण, सामाजिक मूल्यों की स्थापना का प्रयत्न करते हुए, समाज के परिपार्श्व में सामाजिक व्यक्ति के अचेतन मन के अध्ययन को जब कोई उपन्यासकार अपनी रचना का कथ्य बनाता है तो वह समाज परक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य की संज्ञा से अभिहित किया जायेगा। हिन्दी उपन्यासों में समाजपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य को ग्रहण करने वाले औपन्यासिकों में इलाचन्द्र जोशी का नाम लिया जा सकता है। जोशी जी के उपन्यासों के कथ्य में फ्रायड की काम -कुण्ठित और युंग के सामूहिक अचेतना का सम्पृक्त रूप दृष्टिगत होता है। वह व्यक्तिवादिता से सामाजिकता तथा व्यक्ति मनोविश्लेषणवादी विचारधारा से समाज परक मनोविश्लेषणवादी विचारधारा की ओर उन्मुख हो

चुके हैं। सामाजिक पर्दे के भीतर छिपे हुए व्यक्ति के अहंभाव की ऐकान्तिकता पर निर्मम प्रहार करना ही उनके उपन्यासों का कथ्य है[२३]। इस लिए हिन्दी उपन्यासों के जो आलोचक पाश्चात्य सिद्धान्तों के आधार पर व्यक्ति चिंतन और व्यक्ति - विश्लेषण को जोशी जी के उपन्यासों का कथ्य मानते हैं उनकी यह धारणा नितान्त भ्रामक है[२४]। उन्होंने सामाजिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति के चेतन अवचेतन और अचेतन मन के विवेचन व विश्लेषण का प्रयास किया है। वह व्यक्तिगत जीवन के घेरे में प्रतिबद्ध प्रतिभा को महत्व नहीं देते क्यों कि लेखक अपने समय की राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं के प्रभाव से बच नहीं सकता[२५]। जोशी जी के उपन्यास "जिप्सी" का कथ्य समाजपरक मनोविश्लेषणवादी है क्यों कि उसमें बुर्जुआ संस्कृति के प्रतीक रञ्जन और "प्रोलेटेरियत" संस्कृति की प्रतीक मनिया का मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से अध्ययन करते हुए "जन संस्कृति समन्वय" को आधार बनाया गया है। इसमें मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का आश्रय लेकर सामाजिक मूल्यों की स्थापना की गई है[२६]। इस लिये "जिप्सी" का कथ्य समाज परक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य की कोटि में रखा जायेगा। "जहाज का पंछी" उपन्यास का कथ्य एक व्यक्ति की सामूहिक पीड़ा से सम्बद्ध है। कथानायक की सम्पूर्ण जीवन -यात्रा में समाज के अभावों और दुर्बलताओं का चित्रण ही इस उपन्यास का मूल कथ्य है। आज के युग की हजारों विकृतियों के ताने बाने से उसकी विषम आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति व्यवस्था के शिकारों के प्रति स्वयंभू समाजपतियों का यह रुख जनता द्वारा इसी तरह उपेक्षित रहता चला जायेगा[२७]। मनोविश्लेषण के साथ - साथ सामाजिक चेतना और सामाजिक - मूल्यों की स्थापना का इसमें प्रयास है। अस्तु समाज के परिपार्श्व में एक व्यक्ति के मन का मनोविश्लेषण कर उसके सामाजिक व्यक्तित्व को उभारने का प्रयास होने के कारण इस उपन्यास का कथ्य समाज परक मनोविश्लेषणात्मक है। इसी प्रकार जोशी जी के अन्य उपन्यासों "मुक्ति -पथ", "सुबह के भूले" के कथ्य भी समाजपरक मनोविश्लेषणात्मक हैं। एक आलोचक ने "मुक्ति - पथ", "सुबह के भूले", "जिप्सी" और "जहाज का पंछी" उपन्यासों में तीव्र सजग सामाजिक भावना को स्वीकार किया है[२८]।

<u>समाज परक ऐतिहासिक कथ्य</u> :- प्रेमचन्दोत्तर कालीन कतिपय औपन्यासिक कृतियों के कथ्य में या तो सामाजिकता का आग्रह दृष्टिगत होता है या समाजवादी चेतना प्रतिध्वनित होती है और मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव परिलक्षित होता है। जब उपन्यासकार अपनी औपन्यासिक कृतियों में युगीन सभ्यता और संस्कृति के विवेचन एवं विश्लेषण के माध्यम से उस युग में गतिशील सामाजिक घात प्रतिघातों को कथ्य बनाता है तो वह समाजपरक ऐतिहासिक कथ्य होता है। उपन्यास की कथा में व्यक्ति के स्थान पर समाज महत्वपूर्ण होता है, पात्र सामाजिक व्यक्तित्व लेकर उस युग के वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा रचनाकार सामाजिक चेतना और मूल्यों की स्थापना करता है। हिन्दी उपन्यासों में चतुर सेन शास्त्री के "वयंरक्षाम:" उपन्यास का कथ्य प्राग्वैदिक कालीन रावण की रक्ष संस्कृति का प्रचार - प्रसार और विलासिता के कारण पतन चीत्रित करना है। इसमें प्राग्वैदिक कालीन समाज, उस युग के मुक्त सहवास, विवसन, विचरण, नारी - अपहरण, अनावृत यौवन और नर - मांस - भक्षण आदि का चित्रण किया गया है जिससे यह पूर्णतया स्पष्ट है कि इसमें प्राग्वैदिक काल का सांस्कृतिक और समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है। इसकी ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में लेखक ने विचार करते हुए इसे "अतीत -रस" का उपन्यास स्वीकार किया है, इतिहास-रस का तो इसमें केवल रंग है[२]। अत: इस उपन्यास का कथ्य समाज परक ऐतिहासिक है। इसी प्रकार शास्त्री जी के अन्य उपन्यास "सोमनाथ", "आलमगीर", "गोली" तथा "सोना और खून" उपन्यासों के भी कथ्य समाज परक ऐतिहासिक कथ्य की श्रेणी में हैं। निर्विवाद रूप से इस उपन्यास का कथ्य प्रागैतिहासिक काल से सम्बद्ध है, जिसमें इतिहास - रस से अधिक अतीत - रस है।

वृन्दावन लाल वर्मा ने भी अपने उपन्यास का कथ्य इतिहास से चुन कर उसमें नये आदर्शों को खड़ा किया है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास "टूटे - कांटे" का कथ्य समाज परक ऐतिहासिक है। उपन्यासकार ने युग के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन के चित्रण को उपन्यास का कथ्य बनाया है जिसमें नादिर शाह की क्रूरता और बर्बरता, बाजीराव पेशवा, निजाम और मुहम्मद शाह के बीच चलने

बाढ़ै राजनीतिक षाडयंत्र, साधारण मनुष्य के भयाकुल जीवन और राजमहलों की रंगरेलियों के चित्रण को स्थान दिया है। अत: इस उपन्यास का कथ्य इतिहास की पृष्ठभूमि पर युग के राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त करना है, इसमें सामाजिक यथार्थ का सुन्दर अभिव्यक्तीकरण हो सका है इस लिए समाजपरक ऐतिहासिक कथ्य के अन्तर्गत रखा गया है। इसी प्रकार राहुल सांकृत्यायन के उपन्यास " विस्मृत यात्री " का कथ्य बौद्ध धर्म के दु:खवाद के सिद्धान्त को मार्क्सवाद के धरातल पर स्थापित करते हुए मानव समाज के दु:खों का पता लगाना है जिसमें समाजवादी चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। यही कारण है कि "विस्मृत - यात्री " का कथ्य समाजपरक ऐतिहासिक कथ्य के अन्तर्गत माना गया है। यशपाल कृत " अमिता " उपन्यास में भी ऐतिहासिक यथार्थ का प्रस्तुतीकरण हुआ है। इसमें आधुनिक युग की विश्व - शांति की समस्या को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। युद्ध समाज के जीवन को क्षीण एवं जर्जरित कर देते हैं यही युद्ध जनित विभीषिका का चित्रण ही उपन्यास का कथ्य है जिसमें समाज में शान्ति की स्थापना का प्रयत्न दृष्टिगत होता है जो " अमिता " के कथ्य की समाजपरक ऐतिहासिकता को सिद्ध करता है। अमृतलाल नागर के प्रसिद्ध उपन्यास " शतरंज के मोहरे " का कथ्य भी समाज परक ऐतिहासिक कथ्य की सीमा में परिगणित किया जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में घुटन भरे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास का कथ्य है। नागर जी ने " शतरंज के मोहरे " में उस युग के नवाबी जमाने के एक ऐसे चित्र को कथ्य रूप में प्रस्तुत किया है जिसमें उस युग के आचार, विचार, भाषा के लहजे, आकांक्षायें, संघर्ष, सहयोग, उन्नति - पतन, गरज के माध्यम से तात्कालिक सम्पूर्ण जीवन प्रतिबिंबित हो उठता है [30]। व्यक्ति समाज में विलीन हो जाता है तथा सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति प्रमुख हो उठती है। अत: इस उपन्यास का कथ्य समाज परक ऐतिहासिक है।

इसी प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रसिद्ध उपन्यास "बाण भट्ट की आत्मकथा" में सामन्त युग की सामंत चेतना और धर्म-साधना के चित्रण के माध्यम से मध्ययुगीन सामाजिक, धार्मिक जीवन का चित्र खींच कर, वर्तमान भारत की बहुत सी समस्याओं

एवं उनके समाधान का चित्रण किया गया है जो कि इस उपन्यास का कथ्य है। अतः इस उपन्यास का भी कथ्य समाज परक ऐतिहासिक है जिसमें व्यक्ति-कथा की अपेक्षा मध्ययुगीन भारतीय समाज की कथा प्रमुख है। यद्यपि व्यक्तियों की अपनी विशेषतायें हैं फिर भी उनका सामाजिक व्यक्तित्व युग के सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त करता है। लेखक ने इतिहास के इस पहलू को समाज की दृष्टि से आंकने का प्रयास किया है। इतिहास के परिप्रेक्ष्य में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण निहित होने के कारण " बाणभट्ट की आत्मकथा " का कथ्य समाज परक ऐतिहासिक कथ्य की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

<u>व्यक्ति परक कथ्य</u> :- ऐसे सभी उपन्यासों के कथ्य व्यक्तिपरक कथ्य होते हैं जिनके अन्तर्गत व्यक्तिगत जीवन-चरित्र और व्यक्तिगत जीवन घटना के साथ व्यक्ति - मूल्यों की प्रतिष्ठा दृष्टिगत होती है एवं उनमें व्यक्तिवादी जीवन- दर्शन तथा मनोविश्लेषण का समावेश न हो। समाज - सापेक्ष कथ्य वाले उपन्यासों के विवेचन एवं विश्लेषण करते समय हम इस तथ्य से अवगत हो चुके हैं कि यद्यपि सामाजिक कथ्य को लेकर रचित उपन्यासों में व्यक्ति की उपेक्षा नहीं की गई फिर भी समाज एवं सामाजिक जीवन के चित्रण को प्रधानता दी गई है। उनमें समाज प्रमुख तथा व्यक्ति गौण है। इन उपन्यासों में सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। व्यक्ति परक उपन्यासों का कथ्य व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसके वैयक्तिक मूल्यों और उसकी स्वतंत्रता को आधार स्वरूप ग्रहण करता है। व्यक्ति परक कथ्य का केन्द्र समाज - सापेक्ष व्यक्ति होता है, समाज नहीं। समाज के बीच यहाँ व्यक्ति अधिक उत्कर्ष प्राप्त करता है जो वैयक्तिक चेतना और व्यक्ति -मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। व्यक्ति परक कथ्य के अन्तर्गत सामाजिक मूल्यों, सामाजिक व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन की भी स्थिति होती है। इसी व्यक्ति परक कथ्य का ही अगला विकास व्यक्तिवादी कथ्य है जिसमें व्यक्ति का अध्ययन मात्र व्यक्ति - रूप में ही दृष्टिगत होता है, उसमें समाज - निरपेक्ष व्यक्तिवादी मानव की प्रतिष्ठा होती है। किन्तु व्यक्ति परक कथ्य के अन्तर्गत समाज - सापेक्ष व्यक्ति, मानव का अध्ययन किया जाता है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों के कथ्य को व्यक्ति परक कथ्य की संज्ञा दी जा सकती है।

वर्मा जी व्यक्ति परक उपन्यासकार हैं [31]। वह व्यक्ति की वैयक्तिक उपलब्धि को समाज - सापेक्ष मानते हैं, समाज -निरपेक्ष नहीं। सामाजिक परिपार्श्व में व्यक्ति - मूल्यों की स्थापना, व्यक्ति की बौद्धिक चेतना, व्यक्ति के नवीन नैतिक भावों की स्थापना ही उनके उपन्यासों के कथ्य हैं जिन्हें व्यक्तिपरक कथ्य कहा जायेगा। उनके प्रसिद्ध उपन्यास " भूले बिसरे चित्र " में वर्ण- व्यवस्था का विरोध, पारिवारिक विघटन, पूंजीवाद की जर्जर मान्यतायें, राजनीतिक शोर - शराबे, हिन्दू -मुस्लिम की साम्प्रदायिक चर्चा आदि समस्याओं पर विचारों का प्रस्तुतीकरण हुआ है किन्तु इस उपन्यास का मूल कथ्य एक मध्यवर्गीय परिवार की चार पीढ़ियों के जीवन की बदलती परिस्थितियों के साथ, परिवर्तनशील जीवन - मूल्यों की अभिव्यक्ति है। अस्तु समाज के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति को केन्द्र मान कर जीवन- मूल्यों और व्यक्ति परक चेतना की अभिव्यक्ति के कारण इस उपन्यास का कथ्य व्यक्तिपरक है। डा० सुषमा धवन ने वर्मा जी की जीवन दृष्टि को विशुद्ध रूप से व्यक्तिवादी विचार धारा से प्रभावित माना है [32] किन्तु व्यक्ति और समाज के ही प्रश्न को ले कर आलोचकों के एक दूसरे वर्ग ने वर्मा जी को सामाजिक दृष्टि कोण से समस्याओं का निदान प्रस्तुत करने वाला उपन्यासकार कहा है [33]। किन्तु वर्मा जी के उपन्यासों के सूक्ष्म विश्लेषण एवं विवेचन करने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि न तो वे विशुद्ध व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं और न विशुद्ध सामाजिक ही। वह व्यक्तिवादिता और सामाजिकता के संधि-स्थल पर खड़े समाज-सापेक्ष व्यक्तिपरक चेतना के उपन्यासकार हैं। वह स्वान्तः सुखाय के समाज -विरोधी होने से सतर्क रहना श्रेयस्कर समझते हैं [34]। इसी प्रकार " सामर्थ्य और सीमा " उपन्यास में रानी मान कुमारी, मनोहर, देवशंकर, शिवानन्द शास्त्री, मंसूर, ज्ञानेश्वर राव और मेजर नाहर सिंह आदि चरित्रों के माध्यम से व्यक्ति की असमर्थता एवं अक्षमता को अभिव्यक्त किया है। व्यक्ति अपने को सक्षम समझता है, किन्तु प्रकृति की तुलना में वह अक्षम और असमर्थ है। प्रकृति उसकी सक्षमता एवं सामर्थ्य को सीमाबद्ध कर देती है यही उपन्यास का कथ्य है जो व्यक्तिपरक है। यद्यपि इस उपन्यास के कथ्य में यत्र - तत्र जीवन के सामाजिक पहलू और सामाजिक रूप का चित्रण भी मिलता है किन्तु लेखक को विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तिपरक रूप को प्रस्तुत करना ही

अभीष्ट है। भगवती चरण वर्मा के इन विवेचित दोनों उपन्यासों के अतिरिक्त " रेखा ", " आखिरी दाँव ", " अपने खिलौने ", " वह फिर नहीं आई " आदि उपन्यासों के भी कथ्य व्यक्तिपरक हैं।

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने भी अपनी औपन्यासिक कृतियों में व्यक्तिपरक कथ्य को स्वीकार किया है। उनके व्यक्ति समाज के अंग हैं, वे समाज से पृथक् व्यक्तिवादी दर्शन की घोषणा नहीं करते। वाजपेयी जी के प्रमुख उपन्यास " यथार्थ से आगे " में व्यक्ति और समाज का संघर्ष चित्रित हुआ है तथा व्यक्ति अपने अस्तित्व और स्वातंत्र्य के लिए अनवरत् संघर्ष - रत दिखाया गया है। रंजना व्यक्ति - मूल्यों की स्थापना करती है और धीरेन्द्र व्यक्तिवादी चेतना का प्रतीकार कर समाज के परिपार्श्व में व्यक्ति के आदर्श और व्यक्ति - मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। यही उपन्यास का कथ्य है जिसमें समाज के स्थान पर, व्यक्ति - मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए व्यक्ति सामने आते हैं। इस लिए इस उपन्यास का कथ्य व्यक्ति परक है। इसी प्रकार वाजपेयी जी के अन्य उपन्यासों " चलते चलते ", " पतवार " तथा " मनुष्य और देवता " आदि उपन्यासों के कथ्य भी व्यक्तिपरक हैं।

उपेन्द्र नाथ अश्क की जीवन -दृष्टि व्यक्ति परक है। उनके उपन्यासों के कथ्य में समाज के परिपार्श्व और पृष्ठभूमि पर व्यक्ति -चिंतन और व्यक्ति - मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। अश्क जी जीवन और समाज से जुड़े हुए होने पर अपने को जीवन से असम्पृक्त अनुभव करते हैं[35] इसके विपरीत व्यक्तिवादी उपन्यासकार होता है जो अपने अस्तित्व एवं एकाकीपन को शेष जिन्दगी से कटा हुआ अनुभव करता है। इस लिए अश्क जी व्यक्तिपरक उपन्यासकार हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास " गर्मराख " में लाहौर की पृष्ठभूमि पर निम्नमध्यवर्गीय समाज के परिप्रेक्ष्य में एक युवक की यौनकुण्ठाओं को कथ्य बनाया गया है जिसकी अभिव्यक्ति में रचनाकार की व्यक्तिपरक जीवन दृष्टि प्रकट हुई है। इस लिए उपन्यास का कथ्य व्यक्ति परक है। यद्यपि बहुत से आलोचकों ने " गर्मराख " को सामाजिक यथार्थवादी[36] वैयक्तिक,[37] , व्यक्तिवादी[38] , प्रकृतवादी[39] नामों से अभिहित किया है किन्तु इसमें

व्यक्ति - परक जीवन - दृष्टि है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पात्रों की व्यक्तियों, स्त्री-पुरुषों के रूप में चित्रित करते हुए व्यक्तियों की यौन-कुण्ठाओं के प्रस्तुतीकरण में प्रेम के प्रति व्यक्तिपरक दृष्टिकोण का दर्शन होता है। "बड़ी बड़ी आँखें" उपन्यास में अश्क जी ने राजनीतिक वातावरण के बीच में व्यक्ति की घुटन एवं आश्रम-जीवन के प्रति विद्रोह का चित्रण किया है एवं आश्रमों तथा संस्थाओं की घुटन से व्यक्ति की मुक्ति को आवश्यक बताया है। उपन्यास में वर्णित पात्रों में से कोई भी सामाजिक व्यवस्था के प्रति आस्थावान नहीं है। अस्तु इस उपन्यास का कथ्य व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर बल देने के कारण व्यक्तिपरक स्वीकार किया गया है। अश्क जी के तृतीय प्रमुख उपन्यास "पत्थर अल-पत्थर" में मध्यवर्ग की कंजूसी और खोखलेपन की पृष्ठभूमि में निम्नवर्गीय एक गरीब घोड़ावान हसन दीन के दर्द, अभावों, पीड़ाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति मिली है जो कि इस उपन्यास का कथ्य है। हसन दीन का दर्द सम्पूर्ण निम्नवर्ग का दर्द है। इस उपन्यास का कथ्य निम्नवर्गीय व्यक्ति का यथार्थ चित्रण एवं उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति है जो व्यक्ति की पीड़ा है, समाज की नहीं। इस लिए इस उपन्यास का कथ्य व्यक्ति-परक है। डा० इन्द्रनाथ मदान ने "पत्थर - अल पत्थर" उपन्यास की कला को चिन्तन की ओर उन्मुख बताया है और हसन दीन के व्यक्तित्व में समाज मंगल की भावना को सन्निहित निरूपित किया है[४०] जो भ्रामक प्रतीत होती है। उपन्यासकार हसन दीन को केवल व्यक्ति - रूप में देखता है। उसकी आशायें, आकांक्षायें और आस्तिकता सभी कुछ उसकी अपनी हैं, वैयक्तिक हैं, किन्तु वह निम्नवर्ग का भी प्रतिनिधित्व करता जान पड़ता है। अतः समाज के परिपार्श्व में व्यक्ति का चित्रण होने के कारण इस उपन्यास का कथ्य व्यक्ति परक ही माना जायेगा। इसी प्रकार उपेन्द्र नाथ अश्क के एक अन्य उपन्यास "शहर में घूमता आइना" का भी कथ्य व्यक्तिपरक है। लेखक ने चेतना के, व्यक्ति के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय शहरी जीवन के अभावों, दुर्बलताओं, कुण्ठा और भटकन को प्रदर्शित किया है जो कि उपन्यासका कथ्य है और जिसमें केवल चेतना उभरता है। सामाजिक परिपार्श्व में व्यक्ति की अनुभूतियों, दुर्बलताओं और अभावों के वर्णन की कथ्य में स्थिति होने के कारण वह व्यक्तिपरक है।

व्यक्तिपरक कथ्य को लेकर उपन्यास की रचना करने वाले रचनाकारों में राजेन्द्र यादव की भी गणना महत्वपूर्ण है। वह व्यक्तिपरक एवं व्यक्ति - सापेक्ष उपन्यासकार हैं क्यों कि अपने आस - पास की जिन्दगी से सम्पृक्त होते हुए भी वह स्वयं को असम्पृक्त अनुभव करते हैं[४१]। उनके इन्हीं विचारों का दर्शन हमें उनकी औपन्यासिक कृतियों में होता है। समाज के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने व्यक्ति - चित्रण, व्यक्ति - मूल्यों के स्थापनार्थ किया है जिसमें व्यक्ति - चिंतन प्रमुख है, इस लिए उनके उपन्यासों के कथ्य व्यक्तिपरक हैं। कुछ उपन्यासों के कथ्य मनो - विश्लेषण आधारित हैं। जो उन्हें व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य की श्रेणी में प्रतिष्ठित करते हैं। राजेन्द्र यादव का प्रसिद्ध उपन्यास " उखड़े हुए लोग " का कथ्य युद्धोत्तर कालीन स्त्री - पुरुष के बिगड़ते - बदलते - बनते सम्बन्धों का चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें लेखक ने व्यक्तियों के माध्यम से समाज के चित्र को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तथा अस्वस्थ व्यक्ति- मूल्यों के स्थान पर स्वस्थ व्यक्ति- मूल्यों को समाज के परिपार्श्व में प्रतिष्ठित किया है जो कथ्य की व्यक्तिपरकता को प्रमाणित करते हैं। " प्रेत बोलते हैं " यादव जी का दूसरा प्रमुख उपन्यास है जिसका कथ्य है - मध्यवर्गीय समाज का प्रेत नया व्यक्ति है, जो नए जीवन की मांग कर रहा है और इस नये जीवन में नये व्यक्तिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कर रहा है। अतः समाज के परिपार्श्व में नवीन वैयक्तिक मूल्यों की स्थापना के कारण इस उपन्यास का कथ्य भी व्यक्तिपरक है।

<u>व्यक्तिवादी कथ्य</u> :- व्यक्तिवादी कथ्य का अभिप्राय ऐसे कथ्य से है जिसमें व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन अनिवार्य रूप से सन्निहित रहता है। जब उपन्यासकार व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन से प्रेरित होकर कथ्य का चुनाव करता है तो वह कथ्य व्यक्तिवादी होता है। व्यक्तिवादी जीवन - दर्शन पाश्चात्य के अस्तित्व- वादी दार्शनिकों सार्त्रे, किर्कगार्ड, फ्रेडरिक, नीत्से, कार्लमार्क्स, गैब्रियल मार्सल, मार्टिन हैडेगर और ज्यापाल सार्त्र की देन है जो व्यक्ति को प्रधानता देता है,

व्यक्ति के अस्तित्व को ही सर्वस्व स्वीकार करता है। वह समाज से पृथक् व्यक्ति का अस्तित्व मानता है।

अस्तित्ववादी दर्शन में हमें आस्तिकता और नास्तिकता ये परस्पर विरोधी दो धारायें दृष्टिगत् होती हैं। यास्पर्स और सार्त्र ने अपने विचारों के माध्यम से अस्तित्ववाद की मूल स्थापनाओं को अभिव्यक्त किया है। यास्पर्स पूर्णतया जागृत आत्मचेतना को स्वाकी पन और मुक्ति की चेतना मानता है[४२]। वह कहता है कि मेरा स्थान निश्चित है[४३]। मेरा सार मुक्ति में है[४४]। ज्यां पाल सार्त्र के अनुसार जीवन स्वयं ही अपना मार्ग निश्चित करता है[४५]। व्यक्ति का अस्तित्व सार - सत्ता से पहले होता है[४६]। इस प्रकार अस्तित्ववाद मनुष्य को विश्व से पृथक् देखने वाला दर्शन है[४७]। यह व्यक्ति के अस्तित्व दर्शन है[४८]। इसमें व्यक्ति-मूल्यों के सामाजिक मूल्यों से सम्बद्ध होने को मौखिक किंवदन्ती कहा गया है[४९]। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता का उद्घोष करने वाला तथा सह-अस्तित्व को हेय बताने वाला दर्शन है। व्यक्ति की कुण्ठाओं के लिए यह व्यक्ति को ही उत्तरदायी मानता है परिस्थितियों को नहीं। अस्तु यह अस्तित्वाद व्यक्तिवादी दर्शन का पक्ष है।

अत: हिन्दी के जिन औपन्यासिक कृतियों के कथ्य में उपर्युक्त व्यक्तिवादी जीवन - दर्शन की स्थापना मिलती है उन्हें व्यक्तिवादी कथ्य की संज्ञा से अभिहित किया गया है। व्यक्तिवादी कथ्य में व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर बल दिया जाता है। अपने अस्तित्व के लिए उसकी स्वतंत्रता निर्बाध है इसी लिए वह अनिवार्य है। वह सामाजिक मान्यताओं एवं नीतियों के वशीभूत न हो कर स्वयं अपना होता है। व्यक्तिवादी - चेतना के इन्हीं विचार-कणों का समावेश जिन औपन्यासिक रचनाओं के कथ्य में हुआ है इन्हीं को व्यक्तिवादी कथ्य की सीमा में रखने का प्रयास किया गया है।

हिन्दी में सर्वप्रथम जैनेन्द्र कुमार के उपन्यासों के कथ्य में इस व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन को आत्मसात् किया गया है। वह व्यक्ति के दायित्व को

को आत्मिक एवं वैयक्तिक मानते हैं[५०] तथा साहित्य में व्यक्ति के समूचे प्रतिनिधित्व के समर्थक हैं[५१]। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया है और व्यक्ति को ब्रह्माण्ड का केन्द्र माना है[५२] जो उन्हें व्यक्तिवादी उपन्यासकार सिद्ध करता है। उनके उपन्यासों के कथ्य में इसी व्यक्तिवादिता की स्थापना हुई है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास "सुनीता" में जीवन के प्रति व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। नारी एक व्यक्ति है और यह एक व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व की कहानी है, यह एक स्वतंत्र और अभिशप्त व्यक्ति (नारी) की कहानी है। सुनीता का अस्तित्व, उसके व्यक्तित्व में, उसकी मुक्ति की विचार-धारा को अभिव्यक्त किया गया है। सुनीता के जीवन तथा चरित्र और मनः-स्थितियों के चित्रण के माध्यम से उसकी व्यक्तिगत् मान्यताओं को स्थापित करना ही उपन्यास का कथ्य है। इस प्रकार सुनीता के अन्तर्गत् का कथ्य में चित्रण होने से यह व्यक्तिवादी कथ्य के अन्तर्गत् परिगणित किया गया है। जैनेन्द्र जी के एक दूसरे उपन्यास "विवर्त" में व्यक्ति - मानस के विवर्त को अभिव्यक्त कर रूपित किया गया है तथा घटनाओं और चेतन के मन के परिप्रेक्ष्य में प्रेम और विवाह का चित्रण किया गया है।

इस उपन्यास में व्यक्ति-मानस के विवर्त और ग्रंथियों की अभिव्यक्ति को कथ्य के रूप में चुना गया है। जितेन और भुवन मोहनी का विवाह व्यक्तिवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास का कथ्य भी व्यक्ति की स्वतंत्रता का उद्घोष करता है[५३]। उपन्यास के सभी पात्रों में व्यक्तिवादी विचारधारा की स्पष्ट छाप है इस लिए इसके कथ्य को व्यक्तिवादी कथ्य की श्रेणी में रखा गया है। जैनेन्द्र कृत तृतीय उपन्यास "व्यतीत" का कथ्य भी व्यक्तिवादी है। इसमें व्यक्ति के रूप में जयन्त ने अपने विगत् जीवन के ऊहापोह में जीवन का यथार्थ एवं सार स्वरूप निरूपित करता है[५४] यही उपन्यास का कथ्य है जिसमें व्यक्तिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति सन्निहित है। इसी प्रकार लेखक के अन्य उपन्यास "जयवर्धन" तथा "मुक्तिबोध" के कथ्य में भी व्यक्तिवादी विचारधाराओं का पूर्णतया प्रभाव है जिससे

वे भी व्यक्तिवादी कथ्य की कोटि में हैं। व्यक्ति के मुक्ति और बंधन के प्रश्न को व्यक्तिवादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना ही " मुक्तिबोध " उपन्यास का कथ्य है।

व्यक्तिवादी कथ्य के आधार पर रचित उपन्यासों के क्रम में अज्ञेय जी द्वारा रचित " नदी के द्वीप " का महत्वपूर्ण स्थान है। अज्ञेय जी व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं। उन्होंने सदैव समाज की उपेक्षा कर व्यक्ति को महत्व दिया है। उनकी सभी कृतियों में अहं की अभिव्यक्ति एवं पुष्टि हुई है। " नदी के द्वीप " को स्वयं अज्ञेय जी ने ही व्यक्ति - चरित्र का उपन्यास स्वीकार किया है[५५]। इस उपन्यास के शीर्षक से ही यह स्पष्ट है कि सभी व्यक्ति नदी के द्वीप हैं जो पृथक-पृथक होते हुए भी सेतु से जुड़े हुए हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक क्षण एक द्वीप है[५६]। यही उपन्यास का कथ्य है। इसमें व्यक्तिवादी दर्शन की अभिव्यक्ति है यही कारण है कि इसे व्यक्तिवादी कथ्य की संज्ञा दी गई है। एक आलोचक ने " नदी के द्वीप " को मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास कहा है[५७] जो अत्यन्त भ्रामक धारणा का परिचायक है। क्यों कि इसमें अचेतन को चेतन-स्तर पर लाने का कहीं प्रयास दृष्टिगत नहीं होता। इस लिए यह व्यक्तिवादी कथ्य को लेकर रचित होने के कारण व्यक्तिवादी उपन्यास है। व्यक्तिवादी कथ्य को ही ग्रहण कर रचित अज्ञेय जी के द्वितीय उपन्यास "अपने अपने अजनबी " है। अस्तित्ववाद की मान्यता है कि यह अस्तित्व की चालता ही नरक है (सार्त्र), " मृत्यु के साक्षात्कार " के माध्यम से इसी अस्तित्ववादी अनुभूति को उपन्यास के कथ्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मृत्यु के साक्षात्कार के माध्यम से जीवन-बोध को इस कथ्य में अभिव्यक्ति हुई है। जीवन के अस्तित्व के प्रश्न को लेकर दो व्यक्तियों के चेतन मन का विश्लेषण इस उपन्यास में किया गया है इस लिए यह मनोविश्लेषणात्मक - अस्तित्ववादी उपन्यास है। और यह मनोविश्लेषण भी केवल चेतन मन का होने के कारण साधन मात्र है, साध्य तो व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन है। अस्तित्वादी विचारधारा के मूल में भी व्यक्ति के अस्तित्व, व्यक्ति - स्वातंत्र्य और व्यक्ति की पीड़ा की विचार धारा है इस लिए इस उपन्यास के कथ्य को व्यक्तिवादी उपन्यास एवं कथ्य की श्रेणी में रखना उचित है। कुछ आलोचक इस उपन्यास में अस्तित्ववाद की स्पष्ट स्थापना को देखते हुए भी इसे पूर्णतया अस्तित्ववादी उपन्यास नहीं मानते हैं जो कि केवल उनका दुराग्रह ही

कहा जा सकता है [५]।

डा० देवराज उपाध्याय के प्रसिद्ध उपन्यास "अजय की डायरी" का कथ्य भी व्यक्तिगत है। अजय के रूप में एक व्यक्ति की समस्याओं और कुण्ठाओं तथा उसके अस्तित्व के प्रश्न को ही लेखक ने उपन्यास का कथ्य चुना है। अजय के अनुचिन्तन का विषय है प्रेम जो शारीरिक जीवन जीने के लिए आवश्यक है साधारण जीवन के लिए तो क्षणिक काम-वासना ही सन्तोषप्रद हो जाती है [५]। इस प्रकार अजय का यह प्रेम विषयक अनुचिन्तन तथा तज्जनित कुण्ठायें एवं समस्यायें ही उपन्यास का कथ्य है जिन्हें व्यक्तिवादी धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। इस कथ्य में व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति मिली है।

नरेश मेहता ने भी व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन के धरातल पर अपने उपन्यास "यह पथ बंधु था" के कथ्य का चुनाव किया है, राजनीतिक व सामाजिक जीवन के परिपार्श्व में एक व्यक्ति की व्यक्तिवादी चेतना को अभिव्यक्ति करना तथा उस अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यक्ति के यथार्थ एवं उसके अस्तित्व को सत्य निरूपित करना ही मेहता जी के इस उपन्यास का कथ्य है। इस प्रकार "यह पथ बंधु था" उपन्यास का कथ्य एक व्यक्ति का जीवन है जो समाज से बिल्कुल कटा हुआ है। यही कारण है कि इस उपन्यास के कथ्य को व्यक्तिवादी कथ्य की संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार लेखक के एक अन्य उपन्यास "डूबते मस्तूल" में एक व्यक्तिवादी नारी के व्यभिचार एवं बलात्कार की कथा को कथ्य -रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस लिए इस उपन्यास का कथ्य भी व्यक्तिवादी है।

इसी प्रकार मोहन राकेश ने "अंधेरे बन्द कमरे" उपन्यास के कथ्य को व्यक्तिवादी-जीवन-दर्शन से प्रेरित हो कर चुना है। आधुनिक युग की पृष्ठभूमि पर सह-जीवन की यंत्रणा से पीड़ित व्यक्तियों का चित्रण है जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। सहअस्तित्व को नरक मानते हुए व्यक्ति उसमें मजबूरी के कारण रह रहा है। अत: व्यक्ति के अस्तित्व का प्रश्न ही इस उपन्यास का कथ्य है इस लिए यह व्यक्तिवादी कथ्य है।

इस प्रकार जिन उपन्यासों के कथ्य में व्यक्तिवादी चेतना का स्वर मुखरित हुआ है वे व्यक्तिवादी कथ्य की श्रेणी में रखे गए हैं ।

<u>व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य</u> : जब किसी व्यक्ति के मानसिक रोगों की छान-बीन कर के उसके असाधारण व्यवहारों के माध्यम से अचेतन मन को, चेतन मन के स्तर पर लाकर उसे किसी उपन्यास का कथ्य बनाया जाता है तो वह व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य होता है । इस प्रकार व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य का आधार व्यक्ति होता है जो सामाजिक चेतना से अनपेक्ष होता है । व्यक्ति के मन में दमित कामवासनाओं का विस्फोट उसके असामान्य व्यवहारों में प्रतिभासित होता है । फ्रांस अलेक्जेंडर के अनुसार यथार्थ में संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब अचेतन प्रवृत्तियां उसके अहं (ईगो) में प्रविष्ट होती हैं और वह अपनी अचेतन प्रवृत्तियों को व्यक्तित्व का एक अंग महसूस करता है । इस प्रकार जिन औपन्यासिक कृतियों के कथ्य का आधार व्यक्ति का मनोविश्लेषण होगा उनके उस कथ्य को व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य की कोटि में रखा जायेगा ।

प्रेमचन्द परवर्ती युग में व्यक्ति के मनोविश्लेषण को कथ्य के रूप में ग्रहण कर उपन्यास - रचना करने वाले औपन्यासिकों में डा० देवराज उपाध्याय का प्रमुख स्थान है । उनके प्रसिद्ध उपन्यास ' पथ की खोज ' में व्यक्ति की कुण्ठा, निराशा, जड़ता और यौन-प्रवृत्तियों का वर्णन प्राप्त होता है । इसमें व्यक्ति की इच्छाओं एवं आदर्श का संघर्ष दिखाया गया है, व्यक्ति को दुर्बलताओं एवं कमजोरियों से निकाल कर नये पथ की खोज का प्रयास किया गया है । यही उपन्यास का कथ्य है । कुछ आलोचकों ने मध्यवर्ग के अंतोन्मुख आदर्शों के संयत, मनोवैज्ञानिक और कलापूर्ण चित्रण को इस उपन्यास का कथ्य स्वीकार किया है [११] जो अत्यन्त भ्रामक धारणा है । उपन्यास के कथ्य में वर्णित कुण्ठायें, निराशायें एवं समस्यायें समाज की न हो कर व्यक्ति की हैं । अस्तु मनोविश्लेषणात्मक आधार पर, व्यक्ति की

अतृप्त कामवासनाओं को नये पथ की ओर उन्मुख करना ही उपन्यास का कथ्य है, यही कारण है कि इस उपन्यास के कथ्य की गणना व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य के अन्तर्गत की जा रही है। लेखक के एक द्वितीय उपन्यास "बाहर भीतर" में मनोविश्लेषणात्मक आधार पर व्यक्ति-मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया गया है। कतिपय आलोचकों ने अनमेल विवाह की समस्या को उपन्यास का कथ्य सिद्ध करने का प्रयास किया है[42] जो उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि अनमेल विवाह तो केवल माध्यम मात्र है जिसके द्वारा नारी की पीड़ा और वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। वस्तुत: उपन्यास में बाहर (समाज, संसार) और भीतर (व्यक्ति, इच्छायें) का संघर्ष प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति इच्छाओं, भावनाओं और आकांक्षाओं का मूर्तिमान स्वरूप है। इच्छाओं के उन्नयन एवं उदात्तीकरण में ही व्यक्ति-जीवन की सफलता निहित है। अत: मनोविश्लेषणात्मक आधार पर नवीन व्यक्ति-मूल्यों की स्थापना करते हुए, भीतर से बाहर की ओर जाना ही इस उपन्यास का कथ्य है। जिसे व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य की श्रेणी में रखना अधिक समीचीन है।

रांगेय राघव के प्रसिद्ध उपन्यास "पतझड़" में अनिता और नलिन के अचेतन मन के भीतर दबी अतृप्त कामनाओं और इच्छाओं को अभिव्यक्ति मिली है। सामूहिक अचेतन के आधार पर कतिपय नामधारी एवं व्यक्तित्वहीन पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना ही उपन्यास का कथ्य है।

राजेन्द्र यादव ने भी व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य को चुन कर अपने उपन्यासों की सर्जना किया है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास "कुलटा" में मिसेज तेजपाल (एक व्यक्ति) के व्यक्तित्व की परतों को खोलकर, उसके अंतर में सन्निहित अतृप्त कामवासनाओं को कथ्य बनाया गया है। इन अतृप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति मिसेज तेजपाल के अचेतन मन में थी जो समय आने पर व्यवहार में अभिव्यक्त हो कर भयानक विस्फोट करती हैं। इस प्रकार इस उपन्यास के कथ्य में व्यक्ति के अचेतन मन को चेतन के स्तर पर लाने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है

यही कारण है कि " कुलटा " उपन्यास का कथ्य व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक कथ्य के अन्तर्गत परिगणित हुआ है । यादव जी के दूसरे उपन्यास " अनदेखे अनजान पुल " में निम्मी के रूप में एक व्यक्ति के अचेतन मन में दबी अतृप्त काम भावनाओं की हीनता-ग्रंथि के माध्यम से चेतन के स्तर पर लाने का प्रयास ही कथ्य है जिसमें सामाजिक चेतना की अपेक्षा की गई है । इस लिए इस उपन्यास का कथ्य निर्विवाद रूप से व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक है । इसी प्रकार राजेन्द्र यादव के एक अन्य उपन्यास " शह और मात " में भी सुजाता और उदय की प्रेम कथा को उपन्यास का कथ्य बनाया गया है जिसकी अभिव्यक्ति मनोविश्लेषणात्मक जीवन दृष्टि के आधार पर हुई है । इस लिए " शह और मात " का कथ्य भी व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक है ।

<u>व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य</u> :- जिस प्रकार व्यक्तिपरक कथ्य के अन्तर्गत किसी व्यक्ति का चरित्र प्रतिपाद्य होता है उसी प्रकार व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य के अन्तर्गत किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का चरित्र-चित्रण होता है जिनमें उन व्यक्ति-चरित्रों का प्रशंसनीय पक्ष ही उद्घाटित हुआ है । इतिहास के परिपार्श्व में वैयक्तिक गुणों को अभिव्यक्ति देना ही व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य है । व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य में व्यक्तिवादी तथा व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक जीवन दृष्टि का सर्वथा अभाव दृष्टिगत होता है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य को लेकर उपन्यास -रचना करने वालों में सर्वश्रेष्ठ हैं । इनके अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री के " आलमगीर " आदि उपन्यासों के कथ्य भी व्यक्तिपरक हैं किन्तु इनके स्थान महत्वपूर्ण नहीं हैं ।

वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास " मृगनयनी " में ऐतिहासिक विषय को चुनकर कथा-सृजन किया है । लेखक ने परिचय में ही कहा है कि [illegible] के अन्त में ग्वालियर की एक सम्मानित पत्रिका ने मृगनयनी और मानसिंह तोमर के ऐतिहासिक रूमानी कथानक पर उपन्यास लिखने का अनुरोध किया है[६३] । यही कारण है कि लेखक ने युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कर्तव्य और कला के समन्वय की प्रतीक मृगनयनी और उसके व्यक्तित्व को कथ्य-रूप में प्रस्तुत किया है । यद्यपि उपन्यास में युगीन स्थितियों का भी चित्रण किया गया है । लेकिन वह लेखक का

श्रेय नहीं है प्रत्युत् व्यक्ति (मृगनयनी) को केन्द्र मान कर जीवन-मूल्यों की स्थापना करना ही उसका प्रधान मन्तव्य है । इस लिए " मृगनयनी " के कथ्य में व्यक्ति-चेतना का स्वर प्रधान है जिससे उसकी गणना व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य के अन्तर्गत की जा रही है ।

वर्मा जी के ही एक दूसरे उपन्यास " अहिल्याबाई " में अहिल्याबाई के ऐतिहासिक जीवन की पृष्ठभूमि में चरित्र-विधान के माध्यम से उसके आदर्श विचारों और कार्यों के वर्णन को कथ्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें अहिल्याबाई के व्यक्ति मूल्यों की स्थापना का लेखक ने प्रयास किया है । यही कारण है कि " अहिल्याबाई " का कथ्य भी व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य ही है । इसी प्रकार लेखक के अन्य उपन्यासों में "भुवन विक्रम " भी महत्वपूर्ण कृति है जिसमें उसने वैदिक युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थितियों का प्रस्तुतीकरण तो किया है[६४] किन्तु उसका मूल कथ्य समाज के परिवार्श में व्यक्ति के आदर्शों की अभिव्यक्ति ही प्रतीत होता है । पुरुषार्थ और धर्म के संयोग से व्यक्ति को जीवन में सफलता मिलती है यही उपन्यास का कथ्य है । यद्यपि उपन्यासकार ने ऐतिहासिक पुरुषों के माध्यम से ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि की है किन्तु कथ्य का केन्द्र-बिन्दु युग नहीं प्रत्युत् भुवन विक्रम है जो उस समय के आदर्श का प्रतीक है । इस प्रकार उपन्यास में सामाजिक मूल्यों और सामाजिक चिन्तन के साथ व्यक्ति को केन्द्र मान कर व्यक्ति मूल्यों एवं उसके आदर्शों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है जिससे निस्सन्देह इस उपन्यास का कथ्य कक व्यक्तिपरक ऐतिहासिक कथ्य की सीमा में आबद्ध किया जा सकता है ।

" माधव जी सिंधिया " कथ्य का चुनाव भी वर्मा जी ने इतिहास से किया है । देश की खंडित राजनीतिक पृष्ठभूमि पर माधव जी सिंधिया के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को उजागर करना ही इस उपन्यास का कथ्य है[६५] । कथ्य के केन्द्र माधव जी सिंधिया को वीर, आदर्श जननायक के रूप में चित्रित कर उसके वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का लेखक ने पूर्ण प्रयास किया है । इस प्रकार उपन्यास के कथ्य में नायक -पूजा के माध्यम से व्यक्ति-मूल्यों की स्थापना होने के कारण वह व्यक्तिपरक

ऐतिहासिक कथ्य को अंग से साम्य स्थापित किया जा रहा है। उपन्यासकार[६६] की औपन्यासिक - सर्जनात्मक कल्पना के इतिहास मूलक होने के कारण भी उसके कथ्य की व्यक्तिपरक ऐतिहासिकता पुष्ट होती है। इसी प्रकार " महरानी दुर्गावती " उपन्यास में भी वर्मा जी ने इतिहास के परिपार्श्व में दुर्गावती के वैयक्तिक चरित्र की अभिव्यक्ति को कथ्य स्वीकार किया है जो व्यक्ति परक ऐतिहासिक है।

१ – भगीरथ दीक्षित - समीक्षालोक , पृ० ११६ प्र० सं० १९६४ समुदय प्रकाशन उन्नीसवीं रास्ता खार, बम्बई)

2 – " Themes may be divided (Dahlstrom) into 1.Physical, man as molecule; 2. Organic, man as protoplasm; 3. social, man as socius, 4. Egoic, man as individual 5. Divine, man as soul "
C.E.W.L. Dahlstrom- "The Analysis of Literary Situation"PMLA 51,1936 in Dictionary of World Lit. P. 584.

३ - डॉ० इन्द्रनाथ मदान - आलोचना और साहित्य , पृ० १२५ प्रकाशक नीलाभ प्रकाशन खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद- प्रथम संस्करण १९६४)

४- डॉ० इन्द्रनाथ मदान - आलोचना और साहित्य पृ० १२५ प्रकाशक- नीलाभ प्रकाशन , खुसरोबाग रोड, इलाहाबाद - प्रथम संस्करण : १९६४ ,

५ – '' साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रही , बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होती जाती है । अब वह व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता किन्तु समाज के अंग के रूप में देखता है ।'' (साहित्य का उद्देश्य- प्रेमचंद पृ० १६)

६ – '' मनुष्य की भलाई या बुराई की परख उसके सामाजिक या असामाजिक कृत्यों में है । जिस काम से मनुष्य - समाज को हानि पहुंचती है , वह पाप है , जिससे उसका उपकार होता है , वह पुण्य होता है । सामाजिक उपकार या अपकार से हमारे कार्य का कोई महत्व नहीं है और मानव-जीवन का इतिहास सामाजिक उपकार की मर्यादा बांधता चला गया है ।''
(वही - पृ० ८३)

७– डॉ० सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास , पृ० ६) ।

८– '' व्यक्ति और समाज सूक्ष्म दर्शनार्थ विवेचन विश्लेषण के लिए तो अलग - अलग देखे जा सकते है, वस्तुतः वे ' गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न है । यदि हम समाज को शब्द मान लें तो व्यक्ति उसका अर्थ है, इसी प्रकार व्यक्ति को शब्द मान लें तो समाज उसका अर्थ हो जाता है .... इसी प्रकार अन्तश्चेतना भी मेरे लिए कोरमकोर अमूर्त वस्तु नहीं, अपने समाज से अंतरंग होने की प्रक्रिया में वह मुझे मिलती है । ''

(आलोचना २८ , पृ० ८६) ।

९– '' व्यक्ति अवश्य रहे, पर उसके व्यक्तिवादी चिंतन में भी सामाजिक दृष्टिकोण रहना अनिवार्य हो । .... दुःख - सुख, शान्ति - अशान्ति आदि व्यक्तिगत अनुभव है पर ये समाज में प्रत्येक व्यक्ति के है । अतएव हमें यह मानना चाहिए कि समाज एक है - व्यक्ति तो अनेक है । ''

(बूँद और समुद्र - अमृतलाल नागर पृ० ५८०)।

१०–'' हमारा समाज अभी जागरूक नहीं है .... हमारा देश विचारों और रीति- रिवाजों का एक महान अजायबघर है। ..... हमारे आज के लोक-जीवन में फैले अविश्वास का दूसरा कारण आज की राजनैतिक पार्टियाँ है .... जन- जीवन अंध विश्वास और भ्रान्तियों से जुड़ा हुआ है .... इस समय तो ऐसा लगता है कि देश में, पृथ्वी पर, केवल व्यक्ति रहता है, समाज नहीं। व्यक्ति केवल अपने दायरे में रहता, सोचता और कर्म करता है । ऐसा लगता है, जैसे हर व्यक्ति एक - एक द्वीप में

अलग - अलग है ।...... मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए । मनुष्य को दूसरे को सुख- दुःख में अपना सुख - दुःख मानना चाहिए ।.... पर शर्त यह है कि सुख-दुःख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सम्बन्ध बना रहे - जैसे बूंद से बूंद जुड़ी रहती है - लहरों से लहरें । लहरों से समुद्र बनता है इसी तरह बूंद में समुद्र समाया है...... व्यक्ति की सामाजिक चेतना जाग कर ही रहेगी ।'' (बूंद और समुद्र अमृतलाल नागर पृ०५८३)

११- '' पुरुष जाति के स्वार्थ और दंभ भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है । उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग - नारी जाति पीड़ित है । एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बना कर ही सुखी कर सकता है और न वेश्या बना कर ही । इसी कारण वह स्वयं ही कौले खाता है और खाता रहेगा ।'' (सुहाग के नूपुर - अमृतलाल नागर पृ० २४४-४५)

१२- '' यह मानना पड़ेगा कि कलाकार या सृष्टा, व्यक्ति न होकर एक समष्टि है । वह जन जीवन का प्रतिनिधित्व करता है । वह अपनी सृजन की भूख को सन्तुष्ट करने के लिए जो कुछ करता है, उसमें सुख - दुःख, आसक्ति, विरक्ति, अनुराग, द्वेष उसके अपने नहीं हैं, समाज के हैं, युग के हैं, क्योंकि वह व्यक्ति नहीं है । ''

(आलोचना १५ - उदयशंकर भट्ट पृ०६१)

१३- '' व्यक्ति को विशेष कर नारी को सामाजिक बंधनों में जकड़ा हुआ पाकर लेखक विद्रोह की भावना को जाग्रत कर वैयक्तिक स्वतंत्रता के स्वर को ध्वनित करता है । प्रेम के लिए व्यक्ति की ललक व्यक्तिवादी चेतना को मुखरित करती है । इसी तरह दूसरे उपन्यास में रत्ना का चरित्र प्राचीन के

प्रति विमुखता और नवीन के प्रति ममता को व्यंजित करता है । उसके जीवन की आशा - आकांक्षायें व्यक्तिवादी चेतना का प्रतीक है । डॉ० शेफाली और रत्ना के चरित्रांकन में भट्ट ने समस्त सहानुभूति को उड़ेल कर निजी जीवन- दृष्टि का परिचय दिया है जिसके आधार पर उनकी कृतियों को व्यक्तिवादी उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है । ''

(हिन्दी उपन्यास - डॉ० सुषमा धवन पृ० १४६)

१४- '' मुझे लगता है कि मेरे अपने जीवन का रस , सार्थकता , संकल्प और तलाश इसलिए है कि मेरी जिन्दगी दूसरी अनेकानेक जिन्दगियों की भावना के अनुबंध (त्याग , घृणा, विरोध , संगति) रिश्तों से जुड़ी हुई है । जिन्दगियों के इस पारस्परिक उलझाव में सुख भी है , त्रास भी है , कष्ट भी है , यंत्रणा भी है और आश्वासन भी - रचनाकार होने के नाते और नागरिक होने के नाते भी मैं अपने परिवेश से सबसे पहले सम्बद्ध हूं । ''

(नई धारा फरवरी मार्च १९६६ पृ० ९८-१००) ।

१५- '' सूरज का सातवां घोड़ा एक कहानी में अनेक कहानियां नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी है । वह एक पूरे समाज का चित्र है, और जैसे उस समाज की अनंत शक्तियां परस्पर सम्बद्ध , परस्पर आश्रित और परस्पर सम्भूत है । '' (सूरज का सातवां घोड़ा , भूमिका पृ० ५३)

१६- डॉ० सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास , पृ० २६१

१६ —" मेरा सुनिश्चित दृढ़ विश्वास है कि मैं समाज और अपने समाज के व्यक्तियों के प्रतिक्षण सहयोग और सहायता के बिना क्षण भर भी नहीं जी सकूँगा । इसलिए मैं जीवन की प्रक्रिया और जीवन के मार्ग में अनुभव होने वाली अड़चनों और उचित तथा विकासशील जीवन की समस्याओं के सम्बन्ध में, अपना दृष्टिकोण अपनी रचनाओं द्वारा समाज के सन्मुख रखने का आग्रह करता हूँ । मैं अपनी अभिव्यक्ति और रचनात्मक प्रवृत्ति को सामाजिक भावनाओं और परिस्थितियों से स्वतंत्र आत्मनिष्ठ प्रवृत्ति और आत्मा की पुकार नहीं समझता । अपनी अभिव्यक्ति अथवा रचना प्रवृत्ति को मैं समाज की परिस्थितियों, अनुभूतियों और कामनाओं की सचेत प्रतिक्रिया ही समझता हूँ और उन्हें अपनी चेता और सामर्थ्य के अनुसार अपने सामाजिक हित के प्रयोजन से अभिव्यक्ति करता रहता हूँ । "   (आलोचना :२८ पृ० ८५)

१८ —" साहित्य सामाजिक जीवन को बिम्बित करते हुए चुप नहीं रह सकता, वरन मानव में एक व्यापक दृष्टिकोण जागृत करता है । वर्ग - संघर्ष के माध्यम से साहित्य और समाज मनुष्य को यांत्रिक बनाते हैं, वे रूढ़िवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं । वे लोग जो आत्मवाद के नाम पर व्यक्ति को समाज से निरपेक्ष बनाकर देखते हैं, वे अवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हैं । पहला कुत्सित समाजशास्त्री है, दूसरा समाज - शास्त्र को नहीं मानता । इन दोनों के बीच का रास्ता ही ठीक है । पहला समाजीकरण में व्यक्ति को अस्वीकृत करता है, दूसरा व्यक्ति के नाम पर समाजीकरण का तिरस्कार करता है । "

(आलोचना : १४ पृ० ६ और १०) ।

१९--'' साम्यवादी यथार्थवाद के बारे में यह भ्रम है कि केवल मजदूर किसान के विषय में लिखा गया साहित्य भी साम्यवादी यथार्थवाद है। मार्क्स के महत्व को स्वीकार कर सकते हैं। मार्क्स ने इतिहास का गम्भीर अध्ययन करके यही तथ्य निकाला कि समाज का भी द्वन्द्वात्मक विकास होता है। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद आज के ऐतिहासिक और दौर में मनुष्य के अन्तिम शत्रु है। समाजवाद में व्यक्ति को पूर्ण अधिकार तब प्राप्त होंगे, जब वह पढ़ेगा, ज्ञान को पायेगा, चिन्तामुक्त होगा, रोगमुक्त होगा, और कला और विज्ञान के पास जाने की सहूलियत होगी।''

(वही,पृ०६८-७०)

20--'' मैंने इनकी नैतिकता को समाज का आदर्श बना कर प्रस्तुत नहीं किया। बल्कि पाठकों को इसमें ' सेक्स ' की ऐसी जानकारी के रूप में ही ग्रहण करना चाहिये कि यह इनमें होता है। यह सारा समाज खानाबदोश है, उत्पीड़ित है, शोषित है। न इनके सामाजिक नियम शाश्वत है। न हमारी नैतिकता की बन्धन ही शाश्वत है।''

(रांगेय राघव - कब तक पुकारूं,भूमिका)

२१--'' गंगा मैया का ' उनकी धरती का, इन खेतों का, इस हवा और पानी का, इस जंगल और किनारों का और अपने सब साथियों का मोह मुझे अपने बाल बच्चों की तरह, बल्कि उससे भी कहीं ज्यादा है।-हमारा जोर बढ़ता जा रहा है। हमारे साथी बढ़ते जा रहे हैं जमाना आगे बढ़ रहा है।''

(भैरव प्रसाद गुप्त - गंगा मैया पृ०१३६)

22—" साइकी अनालिजिज इज पार्टीक्यूलर्ली इन्ट्रेस्टेड एण्ड फोर गुड रीजन्स बेस्ड आन इट्स कन्सेप्ट्स आफ डवलपमेन्ट साइकोलोजी, इन द साइकोलोजिकल स्टडी आफ सोशल फैक्टर्स ऐज हैव ए "बायोलोजिकल" इम्पोर्टेन्स ऐज वैल। आई एम वेल अवेअर आफ द बेजिन कैरेक्टर 'आफ दोज टर्म्स, एण्ड इट माइट बी बेस्ट सिम्पली टू स्टेट दैट दोज क्रिटेट फैल्स फैन फाउन्ड देअर प्लेस इन द फ्रेमवर्क आफ सोशलोजी ऐज वेल ऐज बायलोजी। इफ आई कन्सन्ट्रेट हियर सोलली आन द सोशलोजिकल अप्रोच, इट इज बिकाज माई सब्जेक्ट काल्स फार इट।"

(हार्टमैन एम० बी-साइकी अनालिजिज ऐण्ड सोशियोलोजी, पृ०३२९)

23—" आजकल के महत्त्वाकांक्षी किन्तु मनोविकारग्रस्त, अपनी प्रतिभाशालिता के कारण जनता के आंखों के आगे धोखे का रंगीन जाल फैलाकर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के इच्छुक, घोर व्यक्तिवादी और आत्मकामी चरित्रों का पर्दाफाश करना वह अपना कर्तव्य समझता है। .... मेरे सभी उपन्यासों का उद्देश्य व्यक्ति के अहं-भाव की ऐकान्तिकता पर निर्मम प्रहार करने का रहा है। सामाजिक पर्दे के भीतर छिपे हुए इसी सत्य का उद्घाटन मनोवैज्ञानिक उपायों से करने का प्रयास मैंने किया है।"

(इलाचन्द्र जोशी - विवेचना पृ० १०२,१०३)

24—" यह भ्रान्त धारणा है कि इलाचन्द्र जोशी की उपन्यासकला का मूल उद्देश्य पाश्चात्य सिद्धान्तों के आधार पर व्यक्ति-चिन्तन और व्यक्ति - विश्लेषण है।"

(डॉ० इन्द्रनाथ मदान-इलाचन्द्र जोशी: साहित्य और समीक्षा भूमिका)

२५- " युग की आर्थिक विषमता और राजनीतिक समस्याओं ने जीवन को चारों ओर से ढक लिया है कि चाहने पर भी साहित्यकार उनसे कतराकर भाग नहीं सकता । व्यक्तिगत जीवन के घेरे में बद्ध प्रतिभा का आज कोई मूल्य नहीं है । "

(इलाचन्द्र जोशी - आलोचना ३ , पृ०५०)

२६- " वे अपने को समन्वयवादी बताते हैं । किसी भी मतवादी की इच्छाओं को ग्रहण करने के लिए वह सब तैयार रहते हैं - चाहे वह सर्वोदयवाद हो चाहे साम्यवाद । साथ ही सत्य और अहिंसा पर उन्हें पूरा विश्वास है । वे यह भी मानते हैं कि इसी देश की सांस्कृतिक मिट्टी के परिपूर्ण उत्कर्ष और यहीं की संस्कृति के बीजों के विकास से ही यहाँ की जनता का वास्तविक उद्धार हो सकता है , बाहर से लाये गये बीजों से नहीं । "

(इलाचन्द्र जोशी - जिप्सी पृ०६०५ पर रंजन का कथन)

२७- " इलाचन्द्र जोशी - जहाज का पंछी पृ०३२

२८- " प्रकाशचन्द्र गुप्त -आलोचना १८ पृ० ६३

२९-- " वयं ~~रक्ष~~ रक्षामः एक उपन्यास तो अवश्य है , परन्तु वास्तव में वह वेद , पुराण , दर्शन और वैदेशिक इतिहास- ग्रन्थों का दुस्तर अध्ययन है । .... संक्षेप में मैंने सब वेद , पुराण , दर्शन , ब्राह्मण और इतिहास के पात्रों की एक बड़ी गठरी बाँध कर इतिहास-रस में डुबकी दे दी है । सब को इतिहास- रस में रंग दिया है । फिर भी यह इतिहास-रस का उपन्यास नहीं ' अतीत -रस ' का उपन्यास है । इतिहास रस का तो केवल इसमें रंग है , स्वाद है , अतीत है । "

(चतुरसेन शास्त्री - वयं रक्षामः प्रथम खंड पृ०५,५)

३०— आलोचना ३५ पृ० १४३

३१— '' हर व्यक्ति अपने में अकेला है और शायद यह अकेलापन ही उसकी वैयक्तिक उपलब्धि है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मैं इस वैयक्तिक अकेलेपन को लिए हुए भी मैं समाज से जब तक जुड़ा हूँ तब तक मैं स्थित हूँ।''

(नई धारा, फरवरी - मार्च १९६६ पृ० ११५)

३२— '' भगवतीचरण वर्मा की जीवन- दृष्टि विशुद्ध रूप से व्यक्तिवादी विचारधारा से प्रभावित है। ''

(डॉ० सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास पृ० ९०)

३३— आलोचना २० पृ० ५०

३४— '' यह स्वान्तः सुखाय समाजविरोधी न हो जाय इस पर हमें ध्यान रखना पड़ेगा। ''

(भगवतीचरण वर्मा - आलोचना १५ पृ० ६६)

३५— '' मैं जिन्दगी से हमेशा जुड़ा रहा हूँ — वैयक्तिक तौर भी और सामाजिक तौर भी। वास्तव में मेरे जैसे लेखक की यह नियति है कि वह जिन्दगी से कट कर न लिख सकता है न जी सकता है। लेकिन अच्छा लेखक चौबीसों घंटे जिन्दगी से जुड़ा रहे, यह सम्भव नहीं। वह जब उन अनुभूतियों को जिनका वह उपभोगता होता है, कलम की नोक पर उतारता है तो उनसे नितान्त असम्पृक्त हो जाता है। ...... अपने सृजन के क्षणों में मैं असम्पृक्त होता हूँ, बाकी वक्त जिन्दगी से जुड़ा हुआ। ..... लेकिन सागर किनारे की हल्की लहर, जैसे सागर बीच की तरंगसे जुड़ी होती है, वैसे ही मैं एक ओर बैठा भी जिन्दगी को अपने से जुड़ा पाता हूँ।''

(उपेन्द्रनाथ अश्क -नई धारा, फरवरी -मार्च १९६६ पृ० ११८)

३६— डॉ० गोपाल - हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० ८३

३७— वही, पृ० ३४७

३८— डॉ० सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास , पृ०१२७

३९ — शिवदान सिंह चौहान - साहित्यानुशीलन पृ० २२७

४० — '' अश्क की उपन्यास कला मूलतः व्यक्तिचिन्तन से प्रभावित होने पर भी ' पत्थर - अलपत्थर ' में आकर हसनदीन के माध्यम से अंततः समष्टि- चिन्तन की ओर उन्मुख हो गयी है । लेखक का समष्टि- चिन्तन अथवा समाज मंगल सम्बन्धी दृष्टिकोण हसनदीन के व्यक्तित्व में मुखरित हुआ है । ''

(डॉ० चन्द्रनाथ मदान - उपन्यासकार अश्क पृ० ४५)

४१— '' मुझसे साफ पूछा जाय तो आज यह प्रश्न ही अपने आप में निश्चित असंगत और अनावश्यक है । दुनिया का कौन सा कलाकार है जो अपने आस-पास की जिन्दगी और परिवेश से किसी न किसी रूप में बंधा और जुड़ा नहीं है । हाँ इस जुड़ने के रूप अनेक हो सकते हैं । कभी हमें आस- पास की जिन्दगी से वितृष्णा होती है, शिकायत होती है, ऊब और घुटन होती है, असन्तुष्टि और अलगाव की अनुभूति होती है और कभी ठीक इसका उल्टा भी होता है । .... इस प्रकार अपने आस- पास की दुनिया के बीच हम अपनी एक व्यक्तिगत दुनियाँ लिए घूमते रहते हैं । व्यक्तिगत की बजाय मैं इसे व्यक्तिगत दुनियाँ [illegible] कहना ज्यादा पसन्द करूँगा । ......मेरी अपनी विवशता है कि जितना ही मैं अपने परिवेश से छिन्न होता हूँ उतना ही इस व्यक्तिगत दुनियाँ में गहरा चला जाता हूँ। ''

(राजेन्द्र यादव - नई धारा :समकालीन कहानी विशेषांक , फरवरी- मार्च १९६६ पृ० १४७-४८)

४२— '' सेल्फ कान्शसनैस इवेन इट अज थ्रूली अवेकैण्ड इन कानशसनैस आफ माइ सौलीट्यूड ऐंड माई लिबर्टी ।''
(सिक्स ऐक्जिस्टेन्शियलिस्ट थिंकर्स - एच० जे० ब्लेकहैम पृ०४८)

४३— '' माई सिचुएशन इज डिटरमाइण्ड ।'' (वही पृ० ५०)

४४— '' माई अरीना इज माइ लिबर्टी ।'' (वही पृ० ५०-५१)

४५— '' लाइफ इटसेल्फ हैज नो मीनिंग (वही पृ० १३५)

४६— '' ऐक्जिस्टेंस प्रीसीड्स असेन्स ।'' (वही पृ० १६२)

४७- '' द पेक्यूलारिटी आफ एक्जिस्टेन्शियलिज्म, देन इज देट इट, डील्स विद द सेपरेशन आफ मैन फ्राम हिमसेल्फ ऐण्ड द वर्ल्ड । (वही पृ० १५१)

४८ - '' एग्जिस्टेन्शियलिज्म, आलसो इज द फिलासोफी आफ बीइंग'' (वही पृ० १५)

४९— '' दिस व्यू आफ रिलेशन आफ इण्डिविजुअल कम्युनिकेशन टू सोशल कम्यूनिकेशन इज ऐन इनटेलिजिबुअल मैक ।'' (वही पृ० १५८)

५०— '' व्यक्ति का दायित्व असल में वैयक्तिक और आत्मिक है । यानी वह जीवन में गर्भित है । यहाँ तक कि वह दायित्व के रूप में अनुभव में नहीं आता, स्वभाव सा लगता है । सच्चे दायित्व का यही रूप है ।''
(जैनेन्द्र कुमार - आलोचना १५ पृ० ६३)

५१— '' व्यक्ति की सौचि अपने जीवन में मिलने वाला जो लाभ है वह साहित्य का श्रेय है । साहित्य अब अधिकाधिक व्यक्तिगत हो रहा है । पहले वह अपेक्षाकृत समाजकृत था । व्यक्ति का समूचा प्रतिनिधित्व साहित्य में चाहिये ।''
(जैनेन्द्र कुमार - साहित्य का श्रेय और प्रेय पृ० १३ व २५)

५२— '' मैं व्यक्ति को ब्रह्माण्ड का केन्द्र मानना सकता हूँ । कारण, व्यक्तिचित केन्द्र है । केन्द्र को चित में मान लेने से सारा ब्रह्माण्ड सजीव और चिन्मय हो उठता है ।''
(जैनेन्द्र कुमार - समय और हम पृ० ६२)

५३— " इस जो है है, वह एक को खुद होने की स्वतंत्रता है।"

(जैनेन्द्र कुमार - विवर्त, पृ०१८)

५४— " लगता है जीवन व्यर्थ भार हो है क्योंकि कहीं इसे कभी देकर सो नहीं सका, ताकि कुछ पा जाता और यों भटकता न फिरता।"

(जैनेन्द्र कुमार - व्यतीत, पृ०१६६)

५५— " .... ' नदी के द्विप' समाज के जीवन का चित्र नहीं है। यह व्यक्ति - चरित्र का उपन्यास है। ...... वह निरा पुतला, निरा जीव नहीं है, बुद्धि - विवेक - सम्पन्न व्यक्ति। .... तो मेरी रुचि व्यक्ति में रही है और है, ' नदी के द्विप' व्यक्तिचरित्र का उपन्यास है।"

(अज्ञेय - आत्मनेपद, पृ० ७१-७३)

५६— " हम द्विप है मानवता के सागर में व्यक्तित्व के छोटे-छोटे द्विप और प्रत्येक क्षण एक द्विप है - खास कर व्यक्ति और व्यक्ति के सम्पर्क कान्टैक्ट का प्रत्येक क्षण अपरिचय के महासागर में एक छोटा, किन्तु कितना मूल्यवान द्विप।"

(अज्ञेय - नदी के द्विप, पृ० ११०)

५७— " नदी के द्विप हिन्दी का एक उल्लेख्य मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है।"

(नलिन विलोचन शर्मा - हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ, पृ०३०१)

५८— " अस्तित्ववादी विचारणा के कुछ प्रतिमानों का अपनी दृष्टि से उपयोग करने का यत्न अज्ञेय ने ~~[illegible]~~ अपने - अपने अजनबी में किया है। सच तो यह है कि अपनी परिस्थितियों में अस्तित्ववाद से बड़ी और अधिक संयत दृष्टि विकसित करके ही हम अस्तित्ववाद के मूल्यों का उपयोग और संयोजन कर सकते है। यह ठीक है कि अपने -अपने अजनबी

अस्तित्ववादी उपन्यास नहीं है - किसी भी आत्मास्थवादी लेखक के लिए वह हए भी क्यों होगा ? - उसमें अस्तित्ववाद का उपयोग करने की चेष्टा भर है । ''

(माध्यम अक्टूबर १९६४ पृ० ८४)

५९- '' सिर्फ औरोंके जीवन को ही प्रेम की जरूरत होती है । दूसरों को कामवासना की क्षणिक तृप्तियों से चल जाता है, किन्तु वैसी तृप्ति कभी पूर्ति या फुलफिलमेन्ट नहीं दे सकती । ''

(देवराज - अजय की डायरी , पृ०३३२)

६०- '' द रैड कन्फलीक्ट अराइजेज आनली आफ्टर द अनकान्शस टेण्डन्सीज बिगिन टू सेण्टर द ईगो एण्ड द पैरेण्ट टू फोल देम सेल्ज पार्ट आफ ऐक्चुअल पर्सनालिटी । ''

(फ्रांस अलेक्जेन्डर - साइको अनालिसिज टुडे , ऐलेटर सेण्डर लीराण्ड , पृ० १४७)

६१- आलोचना २ पृ० १२७

६२- आलोचना १५ पृ०८०

६३- वृन्दावन लाल वर्मा - मृगनयनी , पृ०१

६४ - '' वैदिक काल के एक अंग पर लिखने की बहुत समय से इच्छा थी । उस काल की तरुणा और सदय ओजस्विता का स्पन्दन इतिहास और कथाओं में स्थान-स्थान पर मिलता है । विकास का यह क्रम अनन्त है और मानव की यह ओजस्विता भी । किसी-किसी युग में विकास-क्रम में कुछ कड़ियाँ सड़ी-गली और निर्बल भी दिखायी पड़ती हैं । ''

(वृन्दावन लाल वर्मा - भुवन विक्रम, पृ०१ परिचय)

६५- '' इतिहास के जिस चौखटे में माधव जी सिंधिया का मैं चित्रण करना चाहता था , वह विशाल और विस्तृत था अखिल भारतीय चित्र की रूप-रेखा, विभिन्न रंगों का अनुपात और वितरण , ऐतिहासिक तथ्यों और कल्पना का मेल - मेल - ये समस्याएं सामने थीं। परन्तु इन सब को चुनौती देने वाला

था माधव जी का महान व्यक्तित्व, घेर गलाने वाले युग में।''
(वृन्दावन लाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ०३)

६६- '' माधव जी सिंधिया का जीवन - चरित्र न लिख कर उपन्यास लिखने का मैंने संकल्प मैंने इस कारण किया कि बड़ी मात्रा में कल्पना की गुंजाइश मिल गयी। परन्तु मैंने कल्पना को इतिहासमूलक रखा है। ''

(वृन्दावन लाल वर्मा - माधव जी सिंधिया, पृ०४ भूमिका)

:: अध्याय - ७ ::

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथानक

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्दोत्तर युग वैज्ञानिकता का युग है, संक्रान्ति का युग है, प्रायः समस्त पूर्वस्थापित मूल्यों के विघटन एवं नवीन मूल्यों के स्थापन - प्रयत्नों का युग है । युग -परिवर्तन के साथ ही साथ प्राचीन उपन्यास - शिल्प की समस्त मान्यतायें भी परिवर्तित हो गईं । स्वरूप गठन की दृष्टि से यदि हम उपन्यासों पर दृष्टिपात करें तो देखें कि प्रथम युग रोमांस का था । जब रोमांस उत्कर्ष को प्राप्त हो रहा था तो कथानक में जटिलता बढ़ने लगी थी तथा वर्णनात्मकता को उपन्यासकारों ने अपने उद्देश्य की सिद्धि का साधन बनाया था । इस वर्णनात्मकता के परिणाम स्वरूप तद्युगीन उपन्यासों में कथा की गति मन्द दृष्टिगोचर होती है, उसमें ठहराव आ गया था । इसी रोमांस से आधुनिक उपन्यास का जन्म हुआ था जो परिस्थितियों के बीच में पड़ कर परिवर्तित हो गया । डार्विन, फ्रायड, मार्क्स, सार्त्र, कामू, काफ्का आदि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उद्घाटित यथार्थवादी दृष्टिकोण, जीवन के प्रति परिवर्तित नूतन दृष्टिकोण के कारण आधुनिक औपन्यासिक-कला भी परिवर्तित हो गई । प्राचीन बंधन समाप्त हो गए तथा अनेकानेक नवीन शिल्प-विधियों का विकास हुआ । जिसके फलस्वरूप प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में प्रेमचन्द-युगीन नियमानुवर्तिता के स्थान पर तोड़-फोड़, सादगी के स्थान पर पेचीदगी, गठन के स्थान पर बिखराहट का दर्शन होता है । आज की सम्पूर्ण युग-चेतना मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं फ्रायड के चेतना-वाद से पूर्णतया ओत-प्रोत हो कर क्रियाशील हो रही है । मनोविज्ञान, यौनभाव(Sex) और दर्शन का सर्वाधिक तथा क्रिया-कलाप का न्यूनाधिक प्रभाव आधुनिक-युग में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों का ध्यान अब घटनाओं की ओर न हो कर चरित्र-चित्रण तथा उसके माध्यम से नानाविध उद्देश्यों की सिद्धि की ओर आकृष्ट हो चुका है । दूसरी औद्योगिक क्रान्ति तथा वैज्ञानिक प्रगति के परिणाम स्वरूप उद्भूत हमारी नवीन सभ्यता में सर्वत्र छिन्न॥- भिन्नता दृष्टिगत

हो रही है। हमारा दृष्टिकोण भी वैयक्तिक हो चुका है तथा अहं का प्राबल्य हो गया है। इस व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ने समग्र संसार एवं हमारी समस्याओं को एक नवीन रूप में परिवर्तित कर दिया है जिसके कारण मनुष्य का विश्वास उठ चुका है। दूसरों पर विश्वास करने की तो बात ही छोड़ दी जिसे हमारा स्वयं में भी विश्वास नहीं रह गया है। सर्वत्र अनिश्चितता का साम्राज्य छाया हुआ है। ऐसे ही वातावरण में आधुनिक उपन्यास की सृष्टि हो रही है। इस विश्वास-हीनता के कारण आज रचनाकार की रचना को किसी का सहारा प्राप्त नहीं है और उसे अपना ही सहारा देना पड़ता है जिसके फलस्वरूप आज उपन्यास से कथा-मात्र निष्कासित हो गई है। पाश्चात्य विद्वान शेरवुड एन्डरसन (Sherwood Anderson) ने तो कथानक को कहानी का विष कहा है। यही नहीं, प्रसिद्ध आलोचक विधान कथावस्तु के प्रति पूर्णतया उदासीन और आस्था-रहित है। वह कथानक को सदैव के लिए सीधे सागर में फेंक देना चाहता है। अनके कथात्मक विधान के अन्तर्गत् कथानक ही वह भारी भ्रामक शब्द कहलाता है। संज्ञा के रूप में कथानक साधारणतया, न कम, न अधिक मात्रा में कहानी समझा जाता है। इसका क्रिया रूप में प्रयोग आकार या विधि के अर्थ में किया जाता है। विधान अनिश्चितता से घृणा करता है इस लिए वह " प्लाट " शब्द का संज्ञा वाचक रूप के लिए और क्रिया वाचक के लिए रचना शब्द का प्रयोग करता है[१]। किन्तु यदि हम विधान के इस कथन पर विचार करें तो वह पूर्णतया उचित नहीं प्रतीत होता, क्यों कि कोई भी कलाकार अपनी कलाकृति के निर्माण के पूर्व कोई न कोई योजना अवश्य बनाता है। उदाहरणार्थ भवन-निर्माण करने वाला कलाकार सर्वप्रथम भवन की रूप - रेखा बनाता है, फिर अपनी उस रूप -रेखा के आधार पर ही भवन का निर्माण करता है। ठीक वैसे ही एक उपन्यासकार को भी अपनी औपन्यासिक - कला की सृष्टि के पूर्व ही एक योजना बनानी होती है जिसके अन्तर्गत वह उपन्यास की कथा को अभिव्यक्ति देता है। कथानक के अभाव में उपन्यास की रचना नहीं हो सकती। विधान के इस विचार का प्रभाव प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में भी देखा जा सकता है - जैसे " सोया हुआ जल " "मैला आंचल "," रोड़े और पत्थर", "सूरज मुखी अँधेरे के", सफेद मेमने ", आदि।

फिर भी इन उपन्यासों में किसी न किसी रूप में कथा का अस्तित्व है ही । उपन्यास से कथा निष्कासित नहीं की जा सकती । हां, इतना अवश्य है कि प्रेमचन्दोत्तर युग की औपन्यासिक कृतियों में कथानक ह्रासोन्मुख है । मात्र हिन्दी में ही नहीं अपितु संसार की किसी भी भाषा में कोई ऐसा उपन्यास नहीं रचा गया जो कथानक - विहीन कहा जा सके, जिसमें सूक्ष्म अथवा सांकेतिक रूप में कथानक का अस्तित्व न हो । हां कतिपय आधुनिक उपन्यासों में कथानक के प्रस्तुतीकरण की कुछ ऐसी विधियां प्रयोग में लाई गई हैं कि कथानक,कथानक न प्रतीत हो कर अन्य किसी न किसी तत्व की अभिव्यक्ति की अनुभूति देने लगा है । यदि कथानक-विहीन उपन्यासों की रचना असंभव नहीं है तो कष्ट-साध्य अवश्य है ।

कथानक की परिसीमितता :- प्रेमचन्द - परवर्ती उपन्यासों में प्रेमचन्द के बाद एक बड़ा परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है और वह परिवर्तन है उनके कथानकों की परिसीमितता । आधुनिक उपन्यासों के कथानक वस्तुत: लम्बाई - चौड़ाई में सीमित हो कर गहराई में लीन हुए हैं । सुसंगठित एवं विस्तृत कथानक, सहज-स्वाभाविक भाषा, सम्बद्ध घटनायें, सप्रयोजन अन्त एवं विशद चरित्रांकन प्रेमचन्द एवं उनके अनुयायी उपन्यासकारों की शिल्पगत विशेषतायें थीं । उनमें केवल दो आयाम-चौड़ाई (कथानक के परिवेश एवं परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में) तथा लम्बाई (कथानक एवं घटनाओं के समायोजना की कल्पनाशीलता के सन्दर्भ में) ही प्रयुक्त होते थे, किन्तु उपन्यास - जगत में जैनेन्द्र के प्रवेश के साथ ही तीसरा आयाम गहराई (चरित्रांकन के सन्दर्भ में) का चित्रण होने लगा जिसने हिन्दी उपन्यास को विकास की ओर अग्रसर किया और कथानक के संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ । कथानक के ह्रास का आरम्भ वस्तुत: प्रेमचन्द के समय में ही हो गया था । जैनेन्द्र ने 'गोदान' उपन्यास को पढ़ कर गांव की कथा पर[2] शहर की कथा को थोपा हुआ बताया जिससे कथानक में अनावश्यक विस्तार हैं । "गांव की कथा पर शहर कुछ थोपा हुआ सा है । वह अनिवार्य नहीं है, पुस्तक की कथा के साथ एक नहीं है । हो सकता था कि होरी की कथा के केन्द्र में रहने के लिए, और ऐसे ही सब प्रकाश उसी पर पड़े दूसरे ज्यों ही ध्यान को खींच कर अपनी ओर न ले जायें, शहर की

पुस्तक से मैं अनुपस्थित हो जाने देता "[1] आज के उपन्यासकार का उद्देश्य कहानी सुनाना नहीं है। आलोच्य युग की प्रवर्तक कथा-कृति " सुनीता " की प्रस्तावना में ही इसका उद्घोषण कर दिया गया था[2]। आधुनिक उपन्यासकार की दृष्टि प्रसाधन से अधिक प्रयोजन पर रहती है। वह " मूल्य देना चाहता है, कथा का रस नहीं। ये मूल्य समस्त साहित्य के केन्द्र मानव के लिए होते हैं और मानवीय समस्याओं के निरीक्षण - परीक्षण तथा व्याख्या, विश्लेषण से ही प्राप्त किए जा सकते हैं, अतएव उसकी दृष्टि चरित्र पर आ जाती है। कथा पर नहीं। "[3] इस लिए आज उपन्यासकारों का ध्यान कथा की अपेक्षा चरित्र पर ही गया[4] तथा कथानक सूक्ष्म[4-] तथा गौण होने लगा। आज पात्र कथा को गति देते हैं[4]। इसी कारण उपन्यासों में जहाँ समूह पात्रों का चित्रण हुआ है[5] वहां नायक रहित उपन्यास भी रचे गए हैं[6]। अब उपन्यासकार कथा के स्थान पर भाव-व्यंजन करने लगा। अब घटनाओं की अपेक्षा व्यक्ति को महत्व दिया जाने लगा है। उपन्यास में केन्द्रीय पात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित अथवा उद्घाटित करने वाली घटनाओं, विचारों और भावनाओं को वस्तु स्वरूप में ग्रहण कर विन्यस्त किया जाता है। इससे स्वतः चरित्र की प्रधानता उभर कर सामने आती है और कथानक उसी अनुपात में सिमट कर अथवा संक्षिप्त हो कर पृष्ठभूमि में विलीन हो जाता है। उपन्यासकारों का ध्यान चरित्र की ओर आकर्षित करने का श्रेय भी वस्तुतः प्रेमचन्द को ही है[7]। इस प्रकार प्रेमचन्द ने मानव-चरित्र के चित्रण तथा उसके रहस्यों के उद्घाटन के हेतु परवर्ती उपन्यासकारों को प्रेरणा प्रदान किया। प्रेमचन्द -पूर्व उपन्यासों में सतहीपन एवं स्थूलता अधिक परिलक्षित होती है तथा उपन्यासों की रचना मात्र-मनोरंजन प्रदान करने के लिए की जाती थी। किन्तु प्रेमचन्द ने इसे मानव-जीवन के चित्र-रूप में ग्रहण किया[8]। यह मानव-चरित्र का चित्रण दृष्टिकोण के यथार्थ परक रूप एवं रहस्योद्घाटन उसके अन्तःप्रवेशकारी अर्थात् मनोविज्ञान परक रूप से सम्बन्धित है। इस प्रकार प्रेमचन्द ही हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने यथार्थ -आधारित चरित्र-प्रधान उपन्यासों की नींव डाली और पात्रों के चरित्रों का विकास दिखाया जिसका उत्कर्ष हमें परवर्ती-उपन्यासकारों में दृष्टिगत होता है। प्रेमचन्द का इसी दृष्टि के परिणाम - स्वरूप हिन्दी उपन्यासों में मनोविज्ञान का भी प्रवेश हुआ और

। १८३

पूर्व-प्रेमचन्द उपन्यासों में निहित परिकाल्पनिकता प्रेमचन्द के माध्यम से यथार्थ के धरातल पर गतिशील होती हुई जैनेन्द्र तथा उनके अन्य समकालीन उपन्यासकारों द्वारा मनोविज्ञान की सहायता से मानव-मन के विविध अन्तर्लोकों में प्रविष्ट हो गई। उपन्यास साहित्य में इस मनोविज्ञान के प्रवेश के परिणाम-स्वरूप उसके कलेवर में सूक्ष्मता और सौष्ठव आ गया। कथानक की सूक्ष्मता एवं सीमितता, केवल आवश्यक चरित्रों की ही उपस्थिति, घटनाओं की उपयोगी आयोजना आदि से उपन्यासों का स्वरूप एक नवीन और सुगठित तथा सुव्यवस्थित रूप में आ गया।

<u>मनोविज्ञान का प्रभाव</u> :- हिन्दी उपन्यास में मनोविज्ञान के समावेश के वस्तुत: दो कारण थे। प्रथमत: तो ऐतिहासिक विकास-क्रम की दृष्टि से मनोविज्ञान का प्रवेश हिन्दी उपन्यास में अनिवार्य हो गया था और द्वितीय: उपन्यासकार स्वयं भी इस हेतु सचेष्ट थे। भारतेन्दु काल से ले कर प्रेमचन्द तक हिन्दी उपन्यास घटना योजन एवं क्रिया-कलापों (actions) की दृष्टि से पूर्ण हो चुका था। प्रेमचन्द ने अपने कतिपय प्रारंभिक उपन्यासों के द्वारा इसे कथानक की दृष्टि से समृद्ध बना दिया था। अत: अब जब उसका ढांचा तैयार था और वह मानव-चरित्र के चित्रण-फलक के रूप में प्रस्तुत था तो उसमें यथार्थपरक दृष्टि की सहायता से मानव-मन के विविध पक्षों का अंकन होना अनिवार्य हो हो गया था जो प्रेमचन्द तथा उनके समकालीन अन्य उपन्यासकारों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस समय तक प्रेमचन्द एवं अन्य उपन्यासकार स्वत: यह अनुभव करने लगे थे कि चरित्र का बाह्य चित्रण ही अब पर्याप्त अर्थात् प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता। मनो-वैज्ञानिक-सत्य को कहानी के आधार रूप में ग्रहण करने के लिए चुन लिया गया। मानव-मन के रहस्यों का उद्घाटन उपन्यासकार का मुख्य ध्येय बन गया[६]।

<u>मानसिकता</u> :- मनोविज्ञान को कहानी का आधार बनाए जाने के कारण आधुनिक उपन्यास में मानसिकता का प्रादुर्भाव हो उठा है। उसने जीवन का विशाल धरातल छोड़ कर मानस का संकीर्ण धरातल ग्रहण किया है। प्रेमचन्द के पूर्वयुगीन उपन्यासों में किसी राजा, नायक, मंत्री, राज-पुरुष, नेता, (किसी भी कोटि का) को ले कर उपन्यास लिखा जाता था, किन्तु आज किसी कुली, मेहतर,

आधार बनाया जा चुका है[१०]। यही कारण है कि आलोच्यकालीन उपन्यासों में प्रेमचन्द युग की बाह्य-जगत की स्थूल घटनायें अन्तर्जगत की सूक्ष्म घटनायें बन गई हैं। उन्होंने मानसिक स्वरूप धारण कर लिया है। इन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में प्रधान-पात्र की जीवन-गति या मनोगति कथा का स्वरूप निश्चित करती है। कथा का विकास पात्रों के भीतर से होता है। प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम परिस्थिति एवं प्रवृत्ति के संयोग से मनोविज्ञान की प्रतिष्ठा की है। उनके समकालीन तथा उन्हीं के आदर्शों को मानकर चलने वाले उपन्यासकारों में प्रसाद, कौशिक, उग्र तथा शास्त्री आदि ने मानव-जीवन को ही अपने उपन्यासों का आधार बनाकर उसी को स्पष्ट, अति स्पष्ट तथा स्वाभाविक, अति स्वाभाविक रूप में अंकित करने के लिए मनोविज्ञान की सहायता ग्रहण की है। किन्तु दूसरी ओर जैनेन्द्र, जोशी, भगवती चरण वर्मा प्रभृति उपन्यासकार हैं जिनकी रचनात्मक दृष्टि का केन्द्र ही मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान का सही अर्थों में प्रयोग जैनेन्द्र से ही आरम्भ हुआ। उन्होंने हिन्दी उपन्यास को "किस्सा गोई" से मुक्त कर संवेदना के धरातल पर प्रतिष्ठित किया तथा उसे व्यक्ति के अन्तर्मन के विश्लेषण की ओर उन्मुख किया। परिणाम-स्वरूप कथानक ह्रासोन्मुख हो गया तथा व्यक्ति का अन्तर्विश्लेषण प्रमुख हो उठा है।

<u>कथानक के ह्रास के प्रमुख कारण : काल-विपर्यय पद्धति (Time shift</u>

अन्तर्विश्लेषण की इस प्रक्रिया के विकास के कारण आधुनिक उपन्यासों में कथा भी विश्रृंखलित एवं क्रमोल्लंघित हो गई है, क्यों कि अन्तर्यात्रा बहिर्यात्रा की भाँति निश्चित रूप-रेखा बना कर क्रमानुसार विकसित नहीं होती - विगत, वर्तमान और भावी में जहाँ-कहीं चल सकती है। कथा का प्रारम्भ कहीं से भी किया जा सकता है। प्रारम्भ, मध्य और अन्त का कोई नियम नहीं रह गया है[११]। इसे काल-विपर्यय पद्धति (Time shift) की संज्ञा दी जाती है। जीवन के प्रसंग विच्छिन्न - विपर्यस्त हो कर कथा में कहीं भी स्थान पा सकते हैं। घटना-नियोजन के लिए शास्त्रीय नियमों की उपेक्षा कर कथा को मानव की आन्तरिक प्रवृत्ति के अनुसार विन्यस्त किया जाना स्वाभाविक समझा जाता है। 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'गिरती दीवारें' आदि उपन्यासों में कथा का यह विश्रृंखलित रूप देखा जा सकता है।

<u>पूर्वदीप्ति पद्धति</u> :- मनोवैज्ञानिक कथानकों में आगे बढ़ता हुआ पात्र जहां कहीं स्वतः स्फूर्त होता है और कहीं कोई बाह्य उद्दीपन उसे प्रेरित करता है। विगत घटनायें स्मृति के रूप में वर्तमान का स्वरूप धारण कर सामने आने लगती हैं। "पिछली गड़ी यादें अंगड़ाई लेती उभरती सी" प्रतीत होती हैं। विगत क्षणों को पुनरुज्जीवन मिलता है। अतीत, वर्तमान प्रतीत होने लगता है। प्रभावाभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र हो उठती है तथा पाठक स्वयं चरित्र बन जाता है। लेखकीय वर्णन - व्याख्या के बिना भी पाठक उसका प्रत्यक्ष और जीवन्त साक्षात्कार करता है। यह पूर्वदीप्ति (Flash back) पद्धति कहलाती है। इसका "शेखर : एक जीवनी" के अतिरिक्त "धूमकेतु : एक श्रुति", यह पथ बंधु था", "डूबते मस्तूल", "डाक बंगला", उखड़े हुए लोग", "उस पार का अंधेरा", सूरज मुखी अंधेरे के", "शमयाना", "अंतराल तथा मानस का हंस आदि में सफल प्रयोग दृष्टिगत होता है। इस पूर्वदीप्ति पद्धति से कथानक में मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता के साथ ही साथ नाटकीय वर्तमानता भी आ जाती है[12]।

<u>दृष्टिकोण - पद्धति (Point of view Method)</u>:- आधुनिक उपन्यासों में कथा को विशृंखलित करने वाले कुछ अन्य शिल्प-कौशल भी है जिनमें पात्रों के दृष्टिकोण से कथा को प्रस्तुत करना प्रमुख है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास "लज्जा" और "पर्दे की रानी", अज्ञेय के "नदी के द्वीप" और लक्ष्मीनारायण लाल के "काले फूल का पौधा" आदि उपन्यासों में कथा का प्रस्तुतीकरण विभिन्न पात्रों के दृष्टिकोण से हुआ है। इन उपन्यासों में एक या एक से अधिक पात्र बारी-बारी से पाठकों को अपनी कथा सुनाते हैं। कथानक का सूत्र इन उपन्यासों में पात्रों के हाथ में सौंप दिया गया है। हेनरी जेम्स ने इस विधि को दृष्टिकोण "Point of view Method" की संज्ञा प्रदान किया है।[13] कथोद्घाटन की इस पद्धति में उपन्यास परस्पर पूरक लघु-खण्डों में विभक्त कर दिए जाते हैं। विभिन्न मुख्य पात्रों के आत्मकथनों या दृष्टिकोण से कथा के प्रस्तुतीकरण हेतु पृथक्- पृथक् अनेक खण्ड निर्मित कर दिये जाते हैं[14]। ऐसे सभी उपन्यासों में कथा को एक सूत्रित तथा संयोजित करने का कार्य पाठक को करना पड़ता है और अनेक लेखक अपनी तटस्थता

किन्तु इस रूप में एक पात्र का दृष्टिकोण दूसरे पात्र के दृष्टिकोण से प्रभावित होता है जिससे चरित्र - चित्रण सुविधाजनक बन जाता है । कथा और चरित्र का उद्घाटन क्रमश: होता है इस लिए पाठकों में आद्यन्त उत्सुकता बनी रहती है । लेखक इसे एक नाटकीय विधि मानता है [२४] ।

<u>लेखकीय परिवर्तित जीवन दृष्टि</u> :- कथानक के इस ह्रास का एक प्रमुख कारण उपन्यासकारों की जीवन-दृष्टि है । अब यह समझा जाने लगा है कि उपन्यास मानव - जीवन की अभिव्यक्ति है, यदि मानव - जीवन ही क्रमहीन और विशृंखल है तो उपन्यास का कथानक स्वाभाविक रूप से क्रमहीन होना चाहिए । उपन्यास का काम नैरन्तर्य की अपेक्षा अनैरन्तर्य दिखाना ही गया है [२६] । इससे कथानक में उलट फेर आ गया ।

<u>लेखकीय तटस्थता</u> :- प्रेमचन्दोत्तर युग में ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की गई है जिनमें लेखक तटस्थ है । वह मात्र प्रस्तुतकर्ता है । उदाहरणार्थ 'बाणभट्ट की आत्म कथा' उपन्यास में लेखक स्वयं तटस्थ रहता है । वह एक विदेशी महिला से प्राप्त पाण्डुलिपि को मात्र उपन्यास का स्वरूप प्रदान करता है । इसी प्रकार ' सेठ बांके मल ' का लेखक सेठ बांके मल की आत्मकथा का श्रवण कर उसी के शब्दों में लिख कर देता है । इसी प्रकार ' सूरज का सातवां घोड़ा ' उपन्यास में भी लेखक पूर्णतया तटस्थ है । वह माणिक मुल्ला द्वारा सुनी हुई कहानियों को अविकल रूप में प्रस्तुत कर देता है । लेखक पात्रों तथा चरित्रों के मध्य से अनुपस्थित होने का नाट्य करता है जिससे कि वह कृति की सफलता-असफलता के गुण-दोषों से मुक्त रह सके । बीच-बीच में अनेक वाक्यों द्वारा यह भी स्मरण कराता चलता है कि क्या वह नहीं कह रहा है । लेखक की इस नाटकीयता ने उपन्यास को नाटक के अधिक समीप ला कर उपस्थित कर दिया है । इस लेखकीय तटस्थता से कथानक पर्याप्त रूप से प्रभावित हुआ है ।

<u>आत्म-विश्लेषण की प्रमुखता</u> :- प्रेमचन्द - परवर्ती उपन्यासों के अध्ययन एवं अनुशीलन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आधुनिक उपन्यासकार अपेक्षाकृत

अधिक आत्म-विश्लेषक हो उठा है। फलत: आधुनिक उपन्यासों में आत्म-
कथात्मक शैली को विशेष प्रश्रय मिला है। इसलिये मैं कथा की अभिव्यक्ति करने
वाला "कठकन्या" और "बाणभट्ट की आत्मकथा" की भांति मुख्य पात्र होता
है अथवा "सेठ बांके मल" और "कल्याणी" की भांति गौण या पात्र का नाम
मात्र रह जाता है। आत्मकथात्मक शैली के उपन्यासों में "मैं" अपनी कथा सुनाता
है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त "शेखर : एक जीवनी" उपन्यास में एक विशेष
प्रकार का वैचित्र्य दृष्टिगत होता है। "शेखर" स्वयं को प्रथम और अन्य पुरुषों में
विभक्त कर कथा कहता है। कभी शेखर आश्रय का रूप ग्रहण कर आलम्बन शेखर की
कथा कहता है और कभी दोनों मिलकर एक रूप हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मपरकता
तथा वस्तु-परकता का यहां अद्भुत सामंजस्य हुआ है। इस प्रकार आत्मकथा में
इतिहास शैली समाहित है। "अमृत और विष" में जहां उपन्यास के भीतर उपन्यास
की सृष्टि की गई है, वहां आख्याता से संबंधित उपन्यास आत्म-कथात्मक शैली में
लिखा गया है जो आत्मकथा होने का भ्रम उत्पन्न करता है और दूसरा उपन्यास
इतिहास शैली में।

<u>नाटकीय विधियों का प्रयोग</u> :- कथानक का ह्रास आधुनिक उपन्यासों
में नाटकीय विधियों के प्रचलन के कारण भी हुआ है। इन उपन्यासों में अन्तर-
मन की अन्वेषणा प्राप्त होती है। पत्रों और डायरी के अभिव्यक्ति के विभिन्न
प्रकारों का प्रचलन पर्याप्त बढ़ गया है। ऐसे उपन्यासों में कथा का सृजन पात्रों के
मन में होता है, उपन्यास में उसकी सृष्टि नहीं की जाती है। उपन्यासकार यह
समझ कर कि आधुनिक युग की पाठकीय चेतना प्रशिक्षित है, अपनी धारणा की
उपेक्षा करता है। इस अनुमान अथवा धारणा की उपेक्षा के कारण कभी-कभी
उपन्यास अस्पष्ट हो जाता है और उसमें दुरूहता आ जाती है। इन उपन्यासों में
लेखक की "रिपोर्टिंग" कम और मनोवैज्ञानिक व्यञ्जनाओं का आधिक्य रहता है।
शिक्षित चेतना से रहित पाठक को कहीं-कहीं अभीष्ट स्पष्टता के अभाव में हानि
उठानी पड़ जाती है। उदाहरणार्थ - प्रभाकर माचवे कृत "परन्तु", जैनेन्द्र कृत
"जयवर्धन", अज्ञेय का "अपने - अपने अजनबी" और रघुवंश कृत "तन्तुजाल"
उपन्यास इस दृष्टि से द्रष्टव्य है।

<u>व्यंजनात्मकता</u> :- हिन्दी उपन्यास जगत में प्रेमचन्द के आविर्भाव तक उपन्यास अभिधा से लक्षणा की ओर गतिशील हो गया था और प्रेमचन्दोत्तर युग में व्यंजना का आधिक्य दिखलाई पड़ता है । सांकेतिक शैली[20], प्रतीक शैली[21], प्रतीकात्मक दृश्यों[22] और पात्रों के सांकेतिक कर्मों का विनियोग व्यंजनात्मकता की प्रधानता को प्रमाणित करते हैं । जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि की शैली सांकेतिक एवं व्यंजनात्मक है । ये ब्यौरे न दे कर ऐसा चित्र प्रस्तुत करते हैं जो सांकेतिक होते हैं । 'सुनीता', 'व्यतीत', 'बया का घोंसला और सांप' तथा 'सूरज का सातवां घोड़ा' आदि उपन्यासों में संकेत शैली का प्रयोग देखा जा सकता है । अज्ञेय कृत 'नदी के द्वीप' में रेखा और हेमेन्द्र का विवाह किन परिस्थितियों में हुआ और सम्बन्ध विच्छेद क्यों हुआ, इसका वर्णन नहीं किया गया है,। चेतना-प्रवाह-पद्धति में संकेत प्राप्त होते हैं कि हेमेन्द्र ने उससे विवाह किया था, क्यों कि हेमेन्द्र ने युवा बन्धु के साथ बचपन की कसमें खायी थीं और रेखा की आकृति उसकी मित्र से मिलती थी । यद्यपि वह उससे प्रेम नहीं करता था । यह सांकेतिक शैली में व्यक्त हुआ है । सांकेतिक शैली के कारण कथानक के विस्तार का परिहार हो जाता है और उपन्यास में एक कलात्मक सौन्दर्य आ जाता है । प्रतीकात्मक शैली के विकास से भावाभिव्यंजन में कलात्मकता आई । जिन भावों को व्यक्त करने में व्यक्ति को कठिनाई होती है वह प्रतीकात्मक शैली के आश्रय से सहज स्वाभाविक ढंग से प्रकट हो जाते हैं । 'सोया हुआ जल', 'नदी के द्वीप' और 'सूरज का सातवां घोड़ा' आदि उपन्यासों में प्रतीकात्मक शिल्प-विधि का उदाहरण मिलता है । पात्रों की अचेतनता को उद्घाटित करने के लिए स्वप्न-दृश्यों की योजना भी की गई है, जिनके स्पष्टीकरण के अभाव में उपन्यास में दुरूहता सी आ ही गई है, कथानक अपेक्षाकृत और भी अधिक सूक्ष्म हो गया है ।

<u>दृश्य - विधान शैली</u> :- आधुनिक उपन्यासों में कथा की धारावाहिकता 'दृश्य - विधान शैली' के प्रयोग के कारण भी टूटी है । आधुनिक उपन्यासकार ने इस शैली को अपना कर पाठकों को समूर्त प्रत्यक्षीकरण के आनन्द से लाभान्वित होने में योग दिया है । इसमें वर्णन-विवरणों का स्थान मूर्त-दृश्य

"सुबह ", "तट के बंधन ", " कठपुतली ", " यथार्थ के आगे ", " चित्र लेखा ", "नदी मोड़ ," "रोटी और पत्थर " आदि उपन्यासों में दृश्यों तथा विवरणों का सन्तुलित समायोजन प्राप्त होता है । सर्व प्रथम "दृश्य - विधान " शैली का प्रचुर प्रयोग "शेखर : एक जीवनी " में अज्ञेय ने किया था । तत्पश्चात् इसका विकसित रूप "मैला आंचल " और "परती: परिकथा " में मिलता है । "सोया हुआ जल " उपन्यास तो पूर्णतया दृश्य-विधान शैली में ही रचित है । दृश्य-विधान ने परम्परागत कथानक के अभिव्यक्ति करण के कौशल को आमूल परिवर्तित कर दिया ।

<u>अनेक कहानियों में एक कहानी की योजना</u> :- प्रेमचन्दोत्तर युग में वस्तु - विन्यास के क्षेत्र में और भी बहुत से नवीन प्रयोग दृष्टिगत होते हैं जिनसे कथा की प्रवाहात्मकता में बाधा पड़ी है । ऐसे प्रयोगों में अनेक कहानियों में एक कहानी की योजना विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है । दृश्य, घटना अथवा विचार के आधार पर अनेक कहानियों को प्रस्तुत कर के समग्र प्रभाव के रूप में एक कहानी की सर्जना हुई है जिसने वस्तु-विन्यास को एक नवीन रूप प्रदान किया है । धर्मवीर भारती ने अपने उपन्यास " सूरज का सातवां घोड़ा " में अनेक कहानियों के माध्यम से एक कहानी कहा है । इसी प्रकार " बहती गंगा " उपन्यास में भी अनेक कहानियों को पृथक् - पृथक् रूप में प्रस्तुत कर धारा - तरंग - न्याय से उपन्यास का स्वरूप निर्मित किया गया है ।

<u>सूक्ष्मता</u> :- प्रेमचन्द - परवर्ती उपन्यासकारों का ध्यान स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की ओर विशेष आकर्षित हुआ है जिससे उन्होंने जीवन के सूक्ष्मतम गति-क्षेत्रों के चित्रण पर बल दिया है । आधुनिक उपन्यासकार भारी-भरकम घटनाओं के चित्रण के स्थान पर प्रतीकों का आश्रय ग्रहण कर जीवन अथवा घटना का आभास मात्र करा देता है या ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देता है जहां पाठक का मन रम कर रह जाता है [२१]। जीवन में घटनायें घटती नहीं बल्कि स्थितियां उत्पन्न होती हैं । इस लिए इन स्थितियों का आभास उपन्यासकार पाठक को दे देता है । इलाचन्द्र

जोशी ने भी छोटी-छोटी बातों के चित्रण में इसका महत्व स्वीकार किया है[२४]।
अन्तर्मुखी उपन्यासों में जीवन की साधारण तुच्छ नगण्य बातों को जीवन की यथातथ्यता का आभास देने के लिए महत्व प्रदान किया गया है[२५]। यथार्थवादी तथा प्रकृतिवादी कल्पित कथानक, या जीवनवृत्त कथानक नहीं, और वह भी "खुर्दबीन" से देखा हुआ -- जिससे कथा की रमता, रोचकता तथा रागात्मक प्रभाव-क्षमता विशेष क्षति-ग्रस्त हुई है। ऐसे उपन्यासों में परिपार्श्व का व सूक्ष्म पर्यवेक्षण और प्रणयन की प्रत्यक्षीकरण-क्रिया हुई है किन्तु कथा का समानुपातिक बोध समुचित रूप से नहीं हो सका है। उदाहरणार्थ अश्क कृत 'गिरती दीवारें,' 'शहर में घूमता आइना' तथा फणीश्वर नाथ 'रेणु' कृत 'मैला आंचल' उपन्यास देखे जा सकते हैं।

<u>वादी स्वर की मुखरता</u> :- आधुनिक युग विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक विचारधाराओं से अनुप्राणित युग है। हमारे दैनिक जीवन के क्रिया-कलाप विविध विचारधाराओं से अनुप्राणित और संचालित होते हैं। हिन्दी के कुछ उपन्यासकार अपनी औपन्यासिक कृतियों में विभिन्न प्रकार के वादों से प्रभावित विचारों को स्थान दिया है। उदाहरणार्थ यशपाल के उपन्यासों में साम्यवादी विचारधारा को अभिव्यक्त करने वाले कथानकों की संयोजना प्राप्त होती है। इन विभिन्न वादों के प्रभावान्तर्गत आधुनिक उपन्यासों में कथा तत्व क्षीण और शिथिल हो गया है।

<u>दार्शनिकता तथा मतवादी सिद्धान्त की प्रमुखता</u> :- कथानक की शिथिलता एवं नीरसता का एक बहुत बड़ा कारण दार्शनिकता तथा मतवादी सिद्धान्त-मुखरता है। प्रेमचन्द के पूर्व या उनके समय तक की चेतना प्रायः कर्म-प्रधान थी किन्तु इस युग की चेतना दर्शन-प्रधान हो गई है। 'पथ की खोज', 'जयवर्धन', 'बीज', 'बूंद और समुद्र', 'अर्थ-हीन' तथा 'अपने अपने अजनबी' उपन्यासों के कथानक इसी दर्शन की प्रधानता के कारण ही क्षीण और नीरस प्रतीत होते हैं।

<u>चेतना-प्रवाह पद्धति</u> :- चेतना-प्रवाह आदि नवीन शिल्प-पद्धतियों के प्रति उपन्यासकारों के मोहाधिक्य के कारण भी कतिपय उपन्यासों में

कथा-सूत्र का अभाव हो गया है। इस शिल्प-विधि के हिमायती उपन्यासों ने घटनाओं का तिरस्कार तो किया ही है अन्तर्जगत के घटकों को भी निराकृत कर दिया। वे केवल विचारों के परिवेश में भ्रमणशील पात्रों के चारित्रिक विकास पर ही अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया जिससे उनके उपन्यासों में कथानक उपेक्षित तथा नीरस हो गया है। प्रेमचन्द-परवर्ती युग में ऐसे उपन्यासों की संख्या बहुत कम है, जिनमें उद्देश्य की गंभीरता तथा कथा का सामञ्जस्य हो सका हो उदाहरणार्थ- "दिव्या", "बाणभट्ट की आत्मकथा", "मुसाहिब जू", "सुहाग के नूपुर", "शतरंज के मोहरे", "सन्यासी", "पर्दे की रानी", "स्वाधीनता के पथ पर", "पत्थर-अल-पत्थर" और "बाहर-भीतर" आदि उपन्यासों को प्रस्तुत किया जा सकता है। इस युग में ऐसे भी उपन्यास दृष्टिगत होते हैं जिनमें कथा का प्रवाह भी है और नवीन प्रयोगों से अथवा घटनाओं के वैचित्र्य से उत्पन्न रोचकता भी। किन्तु इन उपन्यासों का मूल उद्देश्य चारित्र्यस्त हो गया है। उदाहरण स्वरूप "सागर लहरें और मनुष्य", "चलते-चलते"; "टूटा-टी-सेट", मनुष्य के रूप; "डूबते मस्तूल; बीरस घेरे;" भाग्यवन्त् सेव;" आन्तुकन", "सरहदों के बीच," और "बहरम का पंछी" प्रभृति उपन्यासों के उद्देश्य की प्रकृति एवं उनमें प्रयुक्त रोचकता के साधनों में विरोध है।

<u>शिल्पगत विभिन्न प्रयोग</u> :- हिन्दी के आधुनिक उपन्यासकारों की एक प्रवृत्ति यह रही है कि पाश्चात्य देशों में उपन्यास के क्षेत्र में जो शिल्पगत प्रयोग हुए उनसे अवगत होने पर उन्होंने भी उनके समानान्तर प्रयोग किए। ये उपन्यासकार मौलिकता की अपेक्षा बाह्य प्रभाव से अधिक प्रेरणा ग्रहण करते हैं। इन नवीन शिल्पगत प्रयोगों के परिणाम स्वरूप भी कथानक प्रभावित हुआ है। लेखक की तटस्थता ने आधुनिक उपन्यासकारों को कथानक के प्रस्तुतीकरण की ऐसी विधि की प्रेरणा दिया जिसके फलस्वरूप वे चरित्रों तथा पाठकों के मध्य न आयें और तटस्थ बने रहें। "सेठ बांकेमल" "सूरज का सातवां घोड़ा" "बाणभट्ट की आत्मकथा आदि ऐसी ही रचनायें हैं जिनमें लेखकीय तटस्थता के कौशल से वस्तु को अनुपम ढंग से विन्यस्त किया है।

कौशलपूर्ण प्रारम्भिक लेखन पद्धति :- आधुनिक उपन्यासकारों में अपनी कथा की वास्तविकता को प्रमाणित करने के लिए कृतियों के मुख पृष्ठ पर कौशलपूर्ण प्रारंभिक लिखने की प्रथा चल पड़ी है। जैनेन्द्र के " त्यागपत्र "," कल्याणी और" व्यतीत " में असाधारण पात्रों के अन्तर्गत वैचित्र्य को वास्तविक बनाने के लिए कौशलपूर्ण प्रारंभिक लिखे गये हैं। इसी प्रकार धर्मवीर भारती ने माणिक मुल्ला की कथाओं को उसी के मुंह से सुन कर केवल प्रस्तुत किया है, स्वयं नहीं लिखा है। राहुल ने "सिंह सेनापति " तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बाण भट्ट की " आत्म कथा में वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने के लिए अपने - अपने ढंग से प्रारम्भिक लिखा है। इसी प्रकार सुरेश सिनहा ने " एक और अजनबी " में मित्र की डायरी को "प्रस्तुत " किया है। यहां भी लेखक तटस्थ होकर कला-सिद्धि किया है। फणीश्वर नाथ "रेणु " ने "दीर्घतपा " के अन्त में " लेखक की स्वीकारोक्ति " नामक परिशिष्ट लिखा है। भैरव प्रसाद गुप्त ने " अन्तिम अध्याय " उपन्यास में एक नये फिल्मी तरीके से वास्तविकता का निषेध कर उपन्यास को वास्तविक बनाने का कौशलपूर्ण प्रयास किया है, देखिये - " यह उपन्यास है। इसमें आये सभी पात्र और घटनायें काल्पनिक हैं। यदि किसी जीवित या मृत व्यक्ति से इस उपन्यास के किसी भी पात्र या उसके जीवन की किसी भी घटना की कोई समानता मिले तो उसे आकस्मिक तथा एक संयोग ही समझना चाहिए। " यही ध्वनि अमृतलाल नागर के " अमृत और विष के "कथनीय " में मिलती है - " अन्त में यह सफाई देना भी आवश्यक है कि उपन्यास के सभी पात्र यथार्थ के प्रतीक होते हुए भी काल्पनिक हैं।

कविता लिखने की पद्धति :- आधुनिक उपन्यासों के मुखपृष्ठ या आरम्भ के किन्हीं पृष्ठों पर देसी या विदेशी कविता देने की प्रथा भी चल पड़ी है। "यह पथ बंधु था ", " सूरज का सातवां घोड़ा ", " नदी यशस्वी है "," वे दिन ", "एक और सच "," सुबह अन्धेरे पथ पर " तथा " एक और अजनबी " आदि उपन्यासों में जो कवितायें लिखी गई हैं वे उपन्यास के प्रयोजन का संकेत देती हैं, उपन्यास के मूल - स्वर की, प्रेरणा - स्रोतों की भी प्रतीति होती है।

<u>आदि और अन्त की कलात्मकता</u> :- आधुनिक उपन्यासकारों ने उपन्यासों में कथानकों के आदि और अन्त की कलात्मकता पर बल दिया है। इस दृष्टि से पर्याप्त विविधता और विलक्षणता दृष्टिगत होती है। "सुनीता", "त्यागपत्र "संन्यासी", "शेखर : एक जीवनी", "सोया हुआ जल", "चांदनी के खण्डहर", "काठ का उल्लू", "पत्थर - अलपत्थर", "कबूतर", "कलकनमा" और "बिल्लेसुर बकरिहा" आदि प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यासों के आदि और अन्त विशेष कौतुहल-पूर्ण जिज्ञासात्मक, उद्देश्य-उद्घाटक, चरित्र - प्रकाशक तथा विचार उद्बोधक हैं। प्रारंभ में अन्त की अभिव्यक्ति और अन्त के अधूरे पन्ने ने भी पाठकीय संवेदना को आंदोलित किया है।

<u>कथानक का परिच्छेदी करण</u> :- आधुनिक उपन्यासों में कथानक का विभाजन कौशल भी ध्यान आकर्षित करता है। उपन्यास के भिन्न - भिन्न प्रमुख पात्रों, घटनाओं, विचारों के आधार पर परिच्छेदीकरण प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ "परन्तु", "पर्दे की रानी", "नदी के द्वीप" तथा "काठ फूल का पौधा" में प्रमुख पात्रों के आधार पर परिच्छेदीकरण मिलता है। "शेखर : एक जीवनी" को आठ खण्डों में विभक्त कर लिखा गया है और प्रत्येक खण्ड को प्रतीकात्मक नाम दिये गये हैं जो चारित्रिक विकास की व्यंजना के साथ ही साथ "शेखर" के उद्देश्य तथा प्रभाव की व्यापकता को प्रमाणित करते हैं। इसी प्रकार राजेन्द्र यादव के उपन्यास "सारा आकाश" में नायक के विकासानुकूल दो भाग हैं - पूर्वार्द्ध जिसका शीर्षक है "सांझ" और नीचे लिखा है - बिना उत्तर वाली दस दिशायें और उत्तरार्द्ध, जिसका शीर्षक है "सुबह" और नीचे है - प्रश्न पीड़ित दस दिशायें। उपन्यास का अन्त स्थूल तथा सांकेतिक दोनों अर्थों में "सुबह" में हुआ है। "यह पथ बन्धु था" उपन्यास में भी कथानक तीन सार्थक शीर्षकों में संगुम्फित है। संक्षेप में वस्तुगत प्रयोग के आधिक्य के परिणामस्वरूप जहां एक ओर कथा में शिथिलता और क्षीणता आई है वहीं दूसरी ओर उपन्यास नवीन कथात्मक सौष्ठव से भी अभिमण्डित हुआ है।

निष्कर्ष :- अस्तु प्रेमचन्दोत्तर युग उपन्यासकारों की जो पीढ़ी उभर कर सामने आई है उसने परम्परागत कथा रूढ़ियां तोड़ी है । प्रेमचन्द युग की कार्य-कारण शृंखला, वर्णन-प्रियता, कथा तत्व आदि बातें आधुनिक उपन्यासकारों के लिए सारहीन सिद्ध हो चुकी हैं । प्रेमचन्द-परवर्ती उपन्यासों में कथानक सम्बन्धी जो परिवर्तन हुए हैं उनमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर, विशालता से सूक्ष्मता की ओर, बाह्य जगत से अन्तर्मन की ओर, घटना से भाव या विचार की ओर, आदर्शोन्मुख यथार्थता से विशुद्ध यथार्थवादिता की ओर, अभिधा से लक्षणा तथा लक्षणा से व्यंजना की ओर, मध्य अथवा अन्त से आदि की ओर तथा व्यक्ति से स्थिति अथवा स्थान की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति आदि प्रमुख हैं । प्राचीन उपन्यासों की भांति आलोच्यकालीन उपन्यासों में एक सुगठित तथा परस्पर सम्बन्धित घटनाओं की शृंखला खोजना असंभव प्राय हो गया है । पहले जहां घटनायें चरित्र को प्रभावित करती थीं, उसकी गति स्थिति को आमूल परिवर्तित कर देती थीं, वहां आज वे ही अपने अन्त तक के लिए चरित्र की मन:स्थिति का अवलम्ब लेने की अपेक्षा रखती हैं । फलत: कथानक में सर्वत्र ह्रास की स्थिति दृष्टिगोचर होती है, जो एक प्रकार से आधुनिक उपन्यास के कलात्मक विकास का द्योतक है[२६] । इस प्रकार आज के बदलते युग में धीरे धीरे कथानक का महत्व कम होता हुआ दृष्टिगोचर होता है । यह ठीक भी है क्यों कि बृहत्काय कथानकों में सूक्ष्मता लाना बहुत दुष्कर प्रतीत होता है । किसी भी उपन्यास का महत्व उसके विस्तृत कथानक से नहीं आंका जाता प्रत्युत् वह इस बात पर निर्भर करता है कि उपन्यासकार द्वारा गृहीत विषय का उसे कितना अनुभव है, वह उसके रहस्यों तथा भावनाओं से कितना परिचित है और उसकी अभिव्यक्ति करने की उसमें कितनी कुशलता है । उपन्यास की ये विशेषतायें कथानक की सफलता - असफलता को बहुत कुछ निर्णायक हुआ करती हैं । इस लिए सफल उपन्यास के लिए कथानक का विस्तार आवश्यक न हो कर उसके अभिव्यक्ति की टेकनीक विशेष ध्यातव्य है[२७] । यही कारण है कि आधुनिक उपन्यासकार विस्तार में न जा कर थोड़े में ही बहुत अधिक कह देना चाहते हैं जिससे कथानक बहुत ही सूक्ष्म हो गए हैं । कहीं कहीं तो पूर्णतया संदिग्धावस्था में हैं

उदाहरणार्थ -" रोड़े और पत्थर " आदि कतिपय उपन्यासों को देखा जा सकता है। यही कारण है कि कुछ आधुनिक आलोचकों ने कथानक -विहीन उपन्यासों की चर्चा करते हुए निश्चिंतता पूर्वक यह दावा भी उपस्थित कर दिया है कि शनै: शनै: कथानक उपन्यासों में इस सीमा तक क्षीण हो गया है कि लाख खोजने पर भी उसकीउपस्थिति सुनिश्चित अथवा विश्वसनीय नहीं होती। किन्तु यह बात विचार की अपेक्षा रखती है। आज तक विश्व की किसी भी भाषा में कोई भी ऐसा उपन्यास नहीं प्राप्त होता जिसमें कथानक का पूर्णतया बहिष्कार हो। प्रत्येक उपन्यास में सूक्ष्म अथवा संक्षिप्त रूप में कथानक का अस्तित्व रहता ही है। हां इतना अवश्य है कि आधुनिक उपन्यासों में कथानकका आधार कम से कम होता जा रहा है किन्तु उनकी संरचना में वस्तुगत् कल्पना का अस्तित्व है ही। वस्तु-तत्व किसी भी रचना की रचनात्मक - प्रक्रिया और संघटन की अनिवार्य स्थिति होती है। आधुनिक उपन्यासों में कथा के प्रस्तुती करण की ऐसी विधियां अवश्य प्रयोग में लाई गई हैं जो कथानक को इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं कि कथानक, कथानक न प्रतीत होकर अन्य किसी न किसी तत्व की अभिव्यक्ति की अनुभूति देने लगता है। इस का यह तात्पर्य नहींकि कि कथानक - विहीन उपन्यासों की सर्जना असंभव है। क्यों कि प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जो एक युग में असंभव होता है वह दूसरे युग में संभव और सत्य रूप भी धारण कर सकता है। अतः इस सत्यानुभूति के आधार पर यदि भविष्य में किसी कथानक - विहीन उपन्यास की सृष्टि हुई तो वह विकास की दृष्टि से एक महत्व पूर्ण अगला कदम समझा जायेगा और उपन्यास - साहित्य - जगत में एक नवीन युग का शुभारंभ होगा।

१- " With or without your kind permission I will kick the word plot right into the sea, hoping that it will sink and never reappeamr. It is the most deceptive word in the jargon of the art, craft, or what would you. As a noun it usually means nothing more or less than story outline or simply. As a verb it means to shape or plan.
I had ambiguities, and so I am substituting story outline for the noun and devise for verbs,

Francis Vivan: Cfeative Technique in Fiction, p.424

2- जैनेन्द्र कुमार - साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० 239

3- " पुस्तक में मैंने कहानी कोई लम्बी चौड़ी नहीं कही है। कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है। अतः तीन-चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है। इस विश्व के छोटे-से-छोटे खंड को लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य के दर्शन पा सकते हैं। उसके द्वारा हम सत्य के दर्शन करा भी सकते हैं। जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिंड में भी है। इसलिए अपने चित्र के लिए बड़े कैनवास की जरूरत मुझे नहीं लगी। थोड़े में समग्रता क्यों नहीं दिखलायी जा सके ? "

(जैनेन्द्र कुमार - सुनीता की प्रस्तावना से उद्धृत)

४- रामकुमार 'भ्रमर' — गली - गली पानी, लक्ष्मीकान्त वर्मा — टेरा कोटा।

५- गिरधर गोपाल — चाँदनी के खंडहर, उपेन्द्रनाथ अश्क- शहर में घूमता आइना

६- फणीश्वरनाथ रेणु — मैला आँचल, भगवतीचरण वर्मा - सबहिं नचावत राम गोसाईं।

७- " यों कहना चाहिये कि भावी उपन्यास जीवन चरित होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई - बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायेगा कि जिन पर उसने विजय पाई है। हाँ, वह चरित्र इस ढंग से लिखा जायेगा कि उपन्यास मालूम होगा"

८ - प्रेमचन्द - कुछ विचार , पृ० ४१

९ - "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार कोई मनोवैज्ञानिक सत्य हो।"
(वही , पृ० ३२)
तथा
" उपन्यासों में पात्रों के बाह्य रूप देखकर हम सन्तुष्ट नहीं होते। हम उनके मनोगत भावों तक पहुँचना चाहते हैं और जो लेखक मानवीय हृदय के रहस्यों को खोलने में सफल होता है, उसी की रचना सफल समझी जाती है।"
(प्रेमचन्द - कुछ विचार , पृ० २२)

१० - अज्ञेय - शेखर: एक जीवनी , नरेश मेहता - धूमकेतु : एक श्रुति तथा प्रथम फाल्गुन , सूर्यकुमार जोशी - दिगम्बरी आदि ।

११ - रमेश बक्षी - अठारह सूरज के पौधे , अमृत लाल नागर - मानस का हंस, - मोहन राकेश - अन्तराल , अज्ञेय - शेखर: एक जीवनी , कृष्णा सोबती - सूरजमुखी अंधेरे के , आदि ।

१२ " In the mind past and present merge; we suddenly call up a memory of childhood that is chronologically of the distant past; but in it memory becomes instantly vivid and is relieved for the moment that is recalled... the novelist is catching andrecording the present moment - and no other. "

Leon Edel: The Psychological Novel, p.29

13. " James called this particular method of revelation of the story, that is illumination of the situation and characters through one or several minds, the point of view. " - Ibid page 36.

१४- शेखर : एक जीवनी, टूटती इकाइयाँ, सूरजमुखी अँधेरे के।

१५- " It is the method of the drama, the unravelling of an exposition as we get it on the stage, but with much greater subtlity which a novel permits."

Ibid : P. 36.

१६- " मानव - जीवन क्रम-हीन है। उसमें कोई बात क्रमिक रूप से होती नहीं। जब जीवन में कोई सीधा राजमार्ग नहीं होता, तो उपन्यास ही क्यों राजमार्ग से यात्रा को निकले। उसका कथानक कैसे क्रम- युक्त हो सकता है। इसलिए प्रेमचन्दोत्तर कुछ उपन्यासों के कथा-क्रम (Chronological order) में भयानक उलट- फेर दृष्टिगत होता है। "

(डॉ० देवराज — आधुनिक कथा साहित्य: मेरी मान्यताएँ, पृ०६०

१७- नदी के द्वीप, परन्तु, आँसू की मशीन और न आने वाला कल।

१८- गुनाहों का देवता, मृगनयनी, बैसाखियों वाली इमारत, सेठ बांकेमल।

१९- जयवर्धन, सुजाता की डायरी, अजय की डायरी, तथा अन्तराल।

20- अपने - अपने अजनबी।

21- बया का घोंसला और साँप, सोया हुआ जल, मछली मरी हुई, दो एकान्त।

22- शेखर: एक जीवनी, परती : परिकथा।

23- " इस उपन्यास के चरित्र घटनाओं में नहीं, परिस्थितियों में बढ़ते हैं तथा अन्त में पहुँचते भी हैं। आपके जीवन में सामान्यतः घटनाएं नहीं घटतीं बल्कि स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। "

(नरेश मेहता — दो एकान्त का आरम्भ)

२४- '' मनुष्य की यथार्थ प्रकृति का वास्तविक परिचय प्राप्त होता है। बड़ी बातों से मानव-चरित्र की ऊपरी सतह का परिचय मिलता है और छोटी बातें उसके मर्म में छिपी हुई विशेषताओं को प्रकाश में लाती है। ''

(इलाचन्द्र जोशी — संन्यासी में नन्द किशोर के शब्द, पृ०३६२

२५- '' नन्हीं - नन्हीं निरर्थक तफसीलों और उन छोटे - छोटे अकिंचन अति हेय पात्रों को — जिनसे हमारा जीवन-पथ अटा पड़ा है और जिन्हें आसमान में लगी हमारी दृष्टि देखकर भी नहीं देख पाती - उस दैनिक जीवन की दलदल से निकाल, बना - सवार अपनी अन्यमनस्क, उदासीन आँखों के सामने इस प्रकार रखना कि आप उन्हें बरबस देखने और उनका नोटिस लेने को विवश हो जायँ, कम कष्टसाध्य नहीं। सूर्य की भव्यता का दर्शन कराने वाली दूरबीन के मुकाबले में नन्हे - नन्हे अदृश्य अकिंचन कीटाणुओं को दिखाने वाली खुर्दबीन कम महत्वपूर्ण और उपादेय नहीं।''

(उपेन्द्रनाथ अश्क — गिरती दिवारें की भूमिका)

२६- '' कहा जाता है कि कथा - भाग का ह्रास आधुनिक उपन्यास के विकास का इतिहास है। प्राचीन उपन्यास में एक बहुत लम्बी - चौड़ी कथा हुआ करती थी। अब वह कथा- प्रसारण का युग समाप्त हो गया। कथा- कुंचन का युग प्रारम्भ होकर अपने चरमोत्कर्ष पर है। ''

(डॉ० देवराज — कथा साहित्य : मेरी मान्यताएँ, पृ०८४)

२७- '' संक्षेप में हम कह सकते हैं कि किसी उपन्यास का महत्व केवल इस बात से नहीं आँका जा सकता कि उसका कथानक कितना विस्तृत अथवा महान है, क्योंकि विस्तृत कथानक अधिकांशतः बिखराव से भरे होते हैं और उनमें संगठनात्मकता का अभाव होता है। वास्तव में कथानक का सशक्त और प्रखर रूप में प्रस्तुत होना ही उसके महत्व का द्योतक है। ''

(डॉ० प्रतापनारायण टण्डन — हिन्दी उपन्यास कला, पृ०१५९)

:: अध्याय - ८ ::

उपन्यासों में कथ्य

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य के विकास का अध्ययन करते समय हम यह निर्दिष्ट कर आये हैं कि अनेकानेक आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव के परिणाम स्वरूप प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों के कथ्य के मूल-स्वरूप में एक व्यापक परिवर्तन उपस्थित हो गया है। कथ्य के इस परिवर्तन में युगीन परिस्थितियों का प्रभाव अपने समग्र रूप में क्रियाशील रहा है। साहित्य अपने युग का प्रतिबिंब होता है। विभिन्न साहित्य -रूपों की अपेक्षा कथात्मक साहित्य में युगीन प्रभाव को ग्रहण करने की क्षमता अधिक होती है। कोई भी कथाकार इन युगीन परिस्थितियों से तटस्थ नहीं रह सकता है। हिन्दी उपन्यासों में प्रेमचन्दोत्तर युग वैज्ञानिक विकास का युग है, संक्रान्ति का युग है जिसमें साहित्यिक क्षेत्र में स्थापित समस्त प्राचीन मूल्यों में बिखराहट दृष्टिगत् होती है एवं उनके स्थान पर नवीन मूल्यों की स्थापना का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। पाश्चात्य विचारक मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, और फ्रायड के चेतनावाद ने वैचारिक जगत में क्रांति तथा उथल-पुथल मचा दिया है जिसका विशेष रूप से औपन्यासिक - कथ्य पर सक्रिय प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में व्यक्ति के आन्तरिक विश्लेषण को कथ्य रूप में स्थान दिया जाने लगा जो इसे अपनी पूर्व -परम्परा से पृथक कर देता है। मनोविज्ञान, यौनभाव (सेक्स) और दर्शन को कथ्य का आधार बनाया गया। कालान्तर में उपन्यासों के कथ्य के रूप में किसी भी मनःस्थिति, अनुभूति के क्षण एवं किसी भी विचार बिन्दु को प्रस्तुत किया जाने लगा।

<u>यथार्थवाद के प्रति आग्रह</u> :- प्रेमचन्द एवं उनके समकालीन लेखकों ने पूरे समाज और उसकी समस्याओं तथा उनके समाधान के प्रश्न को कथ्य रूप में प्रस्तुत किया। उनके अपने समयके सम्पूर्ण जन-जीवन का सरल सजीव एवं यथार्थ-चित्रण ही उनकी औपन्यासिक कृतियों में अभिव्यक्त होता है। वे यहाँ अधिकांशतः साहित्य

के स्वरूप पदा के हिमायती थे। इन उपन्यासकारों ने युग की समस्याओं को हृदयंगम कर, चेतना की कसौटी पर कसकर ज्ञान कर मंजी हुई तार्किक शक्ति से उपस्थित कर अपने - अपने ढंग से उनका समाधान प्रस्तुत किया। मनुष्य की सामाजिक भावना की अधिकांशतः प्रेमचन्द द्वारा स्वीकृत थी। यही स्वीकृति उनके कथ्य की आधार शिला थी। प्रेम चन्द ने ही उपन्यास में यथार्थ - चित्रण की आवश्यकता पर बल दिया था जिससे परवर्ती औपन्यासिक कथ्य यथार्थ पर आधारित हो गया। प्रेमचन्द द्वारा उपेक्षित यथार्थ - परिस्थिति से उद्भूत मनुष्य अब अपनी सम्पूर्ण गरिमा एवं व्यक्तित्व की संपूर्णता के साथ प्रतिष्ठित होने के लिए प्रयत्नशील था तभी सत्ता एक अंकुश आ गया जिसने कतिपय लेखकों को अन्तर्मुखी बना दिया। यहीं से हिन्दी उपन्यास साहित्य में धीरे व्यक्तिगत स्वर उभर आया जिसके परिणाम - स्वरूप उपन्यास - साहित्य में मन-मन के नए उभरते और शक्ल लेते या टूटते सम्बन्धों को कथ्य रूप में चित्रित किया जाने लगा। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों की कृतियों में इस प्रभाव को स्पष्टतया देखा जा सकता है।

इन्हीं प्रभावों के परिणाम -स्वरूप प्रेमचन्दोत्तर युग में समष्टि विषयक सभी मान्यतायें तथा विचारधारायें धीरे - धीरे प्रभावहीन होने लगीं। समष्टिगत चिन्तन के स्थान पर धीरे - धीरे व्यष्टिगत चिन्तन का महत्व बढ़ गया और उपन्यासकारों ने अब व्यक्ति को महत्व दिया तथा उसी के माध्यम से सामाजिक स्वरूप को समझने का प्रयास किया। यह अन्तर्मुखी प्रवृत्ति है जिसके फलस्वरूप प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासों में जीवन की जटिल अभिव्यक्ति, अस्तित्व की विवशता और कोठे मन की स्थितियों का अभिव्यक्तीकरण हुआ।

<u>मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर गृहीत कथ्य का स्वरूप :-</u>

हिन्दी उपन्यासों के कथ्य में यथार्थवाद के प्रति जो आग्रह उत्पन्न हुआ वह मनोविज्ञान के प्रभाव के परिणाम - स्वरूप था। इस मनोवैज्ञानिक दृष्टि का श्रीगणेश प्रेमचन्द द्वारा ही हुआ[२]। मनोवैज्ञानिक दृष्टि के कारण ही औपन्यासिक कथ्य अन्तर्मुखी हो गया। क्यों कि प्रेमचन्द ने ही परवर्ती उपन्यासकारों को पात्रों के मनोगत भावों तक पहुंचने एवं मानवीय हृदय के रहस्यों को खोलने के लिए

प्रेरित किया था[३]। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों प्रेमाश्रम, कायाकल्प, गबन, रंगभूमि, तथा गोदान में मानव-मन के विविध पक्षीय आंतरिक चित्रण के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध होते हैं। किन्तु मनोविज्ञान का सही अर्थों में प्रयोग जैनेन्द्र की औपन्यासिक रचनाओं में मिलता है। सर्व प्रथम उन्होंने ही व्यक्ति के अन्तर्मन को कथ्य बनाया और उपन्यास साहित्य को आभ्यन्तरिकता की ओर प्रवृत्त किया। उनके सभी उपन्यासों में पात्रों के भीतर होने वाली छटपटाहट, अहं, दमित, काम-वासना, हीनता की भावना एवं अन्तर्द्वन्द्व को कथ्य - रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनकी कृतियों में फ्रायडीय मान्यताओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यास लेखकों ने भी फ्रायड, एडलर और युंग के मनोविश्लेषण से प्रेरणा ग्रहण कर अपनी कृतियों के कथ्य का चुनाव किया। इन पाश्चात्य मनोविश्लेषणवादी विचारकों ने इन उपन्यासकारों को अचेतन और अर्द्धचेतन की एक विराट दुनिया से परिचित कराया है जिन्हें उन्होंने कथ्य -रूप में प्रस्तुत किया। जैनेन्द्र की इस व्यक्तिवादी और मनोवैज्ञानिक विचार-धारा को इलाचन्द्र जोशी ने और भी अधिक पुष्ट किया तथा व्यक्ति के अन्तर्मन के विश्लेषण को अपने उपन्यासों के लिए कथ्य चुना। उन्होंने व्यक्ति के बाह्य जीवन की अपेक्षा भीतरी सत्य पर विशेष ध्यान दिया है। व्यक्ति के माध्यम से मनोविज्ञान के कतिपय सिद्धान्तों और मानव-मन की ग्रंथियों के परीक्षण को उन्होंने अपने उपन्यासों में कथ्य रूप में प्रस्तुत किया है। वह व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं में फंस के विराट बाह्य जीवन-जगत् की समस्याओं को देखने के पक्ष में हैं[४]।

अज्ञेय ने औपन्यासिक कथ्य की इस मनोवैज्ञानिकता को एक नया मोड़ दिया। आज के अनिश्चय, अव्यवस्था और जटिलता के युग में एक व्यक्ति के भीतर उन्मथित अनेकानेक बहुमुखी व्यक्तित्व और उनके फलस्वरूप जो उसके भीतर अनन्त संघर्ष उठ खड़ा हुआ है, मानव के संचित अनुभव के प्रकाश में उसी सच्चाई से परखने का प्रयत्न ही अज्ञेय के उपन्यासों का कथ्य है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' में शिशु मानस के स्पर्शों को, आनन्दपूर्ण जीवन-दशाओं को, उसकी उत्कण्ठाओं एवं जिज्ञासाओं को तथा उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर समाज तथा पिता-माता के व्यवहार से उत्पन्न दमन को, मानसिक-ग्रंथियों को तथा उसके जीवन-व्यापी प्रभाव को

कथ्य के रूप में व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार 'नदी के द्वीप' में भी व्यक्ति-चरित्र की उपेक्षा नहीं की कथ्य बना कर प्रस्तुत किया गया है।

इन्हीं मनोवैज्ञानिक-कथ्य को आधार बना कर रचना करने वालों उपन्यासकारों में भगवती चरण वर्मा का नाम भी महत्वपूर्ण है। वर्मा जी के उपन्यासों 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव' तथा 'वह फिर नहीं आई' के कथ्य भी विशुद्ध मनोविज्ञान की पीठिका पर रचित हैं।

उपर्युक्त इन कथाकारों की औपन्यासिक कृतियों के अनन्तर रचित समस्त प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासों के कथ्य इन्हीं मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों पर आधारित दृष्टिगत होते हैं। इनमें विद्रोही, पापी, अपराधी, स्त्री-पुरुष सम्बन्धी नैतिक मूल्यों आदि पर मनोवैज्ञानिक गहराई से चिन्तन अभिव्यक्त हुआ है। इस युग का यह नवीन दर्शन मनोविश्लेषण का आश्रय लेकर अवतरित हुआ है, जिससे औपन्यासिक कथ्य को एक नई दिशा प्राप्त हुई। युग के इसी समाज निरपेक्ष व्यक्तिवादी दर्शन के कारण उपन्यास भी स्वच्छन्द और व्यक्ति-प्रधान हो गया तथा व्यक्ति, व्यक्ति-चरित्र, व्यक्ति-मानस आदि को उसके कथ्य के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। इस प्रकार उसने जीवन के विशाल धरातल को छोड़ कर मानस का संकीर्ण धरातल ग्रहण कर लिया।

<u>विवेच्य युग के समाज-सापेक्ष कथ्य का स्वरूप</u> :- अस्तु इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यासों कथ्य समष्टि की ओर से पराङ्मुख हो कर व्यष्टि पर पूर्णतया केन्द्रित हो गया। किन्तु इस कथन का यह तात्पर्य नहीं समझना चाहिए कि प्रेमचन्द की सामाजिकता की भावना का पूर्णतया लोप हो गया क्यों कि कोई भी नवीन आन्दोलन, अपने पूर्ववर्ती परम्परा से पूर्णतया असम्पृक्त नहीं हो पाता है। प्रेमचन्दोत्तर अनेकानेक उपन्यासों के कथ्य सामाजिक पृष्ठभूमि को आत्मसात् किये हुए हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन उपन्यासकारों की सामाजिक दृष्टि और प्रेमचन्द की सामाजिक-दृष्टि में क्रमशः परिवर्तन-शीलता आती गई है। प्रेमचन्द द्वारा लिखित उपन्यासों के सामाजिक कथ्य में सुधार की भावना प्रधान रही है, उनमें नैतिकता के प्रति सुधारवादी-दृष्टि परिलक्षित होती है।

किन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग के सामाजिक उपन्यासों का कथ्य प्रेमचन्दीय आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से यथार्थवाद के धरातल पर उतर आया है। इन उपन्यासों का कथ्य जीवन को सामाजिक दृष्टि से देखना है, जीवन का विवेचन - विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से करना है, व्यष्टि-सत्य को समष्टि-सत्य में तिरोहित कर देना है एवं जीवन-मूल्यों की स्थापना समाज के माध्यम से करना है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में सामाजिक कथ्य के उपन्यास लिखने वाले लेखकों एवं उनकी कृतियों में अमृतलाल नागर कृत " बूंद और समुद्र ", "सुहाग के नूपुर ", "सेठ बांकेमल ", उदय शंकर भट्ट कृत " सागर लहरें और मनुष्य ", लोक परलोक ; " एक नीड़ दो पंछी ", " शेष - अशेष ;" दो अध्याय " फणीश्वर नाथ रेणु कृत " मैला आंचल ;" परती परिकथा "," दीर्घतपा ","जुलूस " तथा धर्मवीर भारती कृत " सूरज का सातवां घोड़ा " आदि उल्लेखनीय हैं जिनमें व्यक्ति समूह में विलीन होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इन उपन्यासों के कथ्य में समाज उभरा हुआ है व्यक्ति नहीं। इनमें सामाजिक कथा, व्यक्ति का सामाजिक व्यक्तित्व और कथ्य में सामाजिकता का स्वर प्रतिध्वनित होता है।

<u>समाजवादी विचार धारा से अनुप्राणित कथ्य का स्वरूप</u> :- सामाजिक कथ्य पर ही आधारित प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों की एक और धारा दृष्टिगत होती है जिसे आलोचकों ने समाजवादी धारा से अभिहित किया है। समाजवादी-दर्शन से प्रभावित इन उपन्यासों के कथ्य के अन्तर्गत भी समाज के सर्वतोन्मुखी उत्थान की ललक है तथा धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक विकृतियों और आर्थिक विसंगतियों पर कठोर प्रहार किये गये हैं एवं शोषित वर्ग के उद्धार के लिए प्रबल आवाज उठाई गई है। समाजवादी दर्शन से प्रभावित इन उपन्यास-लेखकों ने प्रत्येक समस्या का निदान मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सहारे ही खोजने का प्रयास किया है और उसी के आधार पर विश्लेषण करते हुए समाधान की ओर अग्रसरित हुये हैं। जब कि प्रेमचन्द युग के चिंतन -दर्शन -प्रधान उपन्यासों का मूल कथ्य सामाजिक कल्याण की भावना पर आधारित होता था। इसी समाजवादी विचारधारा की आधारशिला कालान्तर में साम्यवाद विकसित हुआ। मनुष्यों को शोषण एवं बंधन से मुक्ति-हेतु

तथा उन्हें आर्थिक सुविधाओं के समान वितरण के महान और उदार आदर्श की प्रेरणा से मार्क्सवादी भौतिक-अर्थवाद का उदय हुआ। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य पर मार्क्सवाद का यथेष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। मार्क्स की विचारधारा में भौतिक अर्थवाद की प्रधानता है जो प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासों के कथ्य को प्रभावित किये हुये हैं।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में समाजवादी दर्शन से प्रेरित हो कर कथ्य का चुनाव करने में यशपाल जी का नाम अग्रणी है। वे सच्चे अर्थों में यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। वह स्पष्ट रूप से मार्क्स के समाजवादी दर्शन से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उनके अधिकांश उपन्यासों में समाजवादी दर्शन की पूर्णतया छाप है। इस समाजवादी दर्शन के प्रभावाधिक्य के कारण ही उन्होंने आर्थिक विषमता सामाजिक असन्तुलन का वास्तविक चित्रण किया है। लेकिन उनके उपन्यासों पर मार्क्सवाद हावी दृष्टिगत होता है। उनका कथ्य इसी वाद से प्रेरित और अनुशासित होता है। किन्तु मार्क्सवादी दर्शन में आस्था रखने के कारण यशपाल जी अन्य सामाजिक विचारधाराओं से अस्पृश्य रहे हों तो ऐसा नहीं है। उनके लेखन में आधुनिक मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं का भी प्रभाव देखा जा सकता है। उनकी औपन्यासिक-कृतियों में एक ओर तो सर्वहारा चेतना का स्वरूप है तो दूसरी ओर दमित काम भावना का भी चित्रण मिलता है। यद्यपि यशपाल जी में उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की अपेक्षा अधिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता, फिर भी उनकी कृतियों में नवीन जीवन-बोध अवश्य समाविष्ट हुआ है। वह साहित्य के प्रति एक सामाजिक उत्तरदायित्व का अनुभव करते हैं जो उनकी मार्क्सवादी धारणा को पुष्ट करती है[५]। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में मार्क्सवादी दृष्टि से जीवन और इतिहास को समझने और अंकित करने का प्रयास किया है। "झूठा सच" उपन्यास में भारत विभाजन के परिप्रेक्ष्य में एक मध्यवर्गीय भारतीय परिवार की कथा को कथ्य-रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस कथ्य के अन्तर्गत प्रेम और विवाह के मार्क्सवादी पहलू को यशपाल जी ने स्थान दिया है। लेखक ने इसमें विवाह को अधिकारों के धरातल पर प्रतिष्ठित चित्रित करने का प्रयास किया है जिसमें मार्क्सवादी चिंतन का स्पष्ट प्रभाव है। इसी प्रकार उनके अन्य उपन्यासों में "दादा कामरेड", "देशद्रोही",

"दिव्या," "पार्टी कामरेड," "मनुष्य के रूप", "बारह घण्टे" आदि के कथ्य भी समाजवादी विचारों की आधार-शिला पर स्थापित हुए हैं।

समाजवादी विचारधारा से ही प्रेरित हो कर कथ्य-चयन करने वाले अन्य उपन्यासकारों में रांगेय राघव का नाम प्रमुख है। उनकी प्रसिद्ध औपन्यासिक रचना "कब तक पुकारूं" में समाजवादी-यथार्थवाद का प्रभाव लक्षित होता है। इसमें शोषण, सामाजिक अन्याय बूर्जुआ मनोवृत्ति एवं असमानता के विरुद्ध आवाज उठाते हुए वर्ग-संघर्ष को कथ्य रूप में चित्रित किया गया है, जिसमें निश्चय ही समाजवादी-दर्शन निहित है। इसी प्रकार लेखक के अन्य उपन्यासों में "सीधा सादा रास्ता," "राई और पर्वत" तथा "हुजूर" आदि के कथ्य भी समाजवादी-दर्शन से प्रभावित हैं। "हुजूर" उपन्यास में पूंजीपति और शोषित वर्ग के घिनौने रूप और निम्नवर्ग की दीन-हीन अवस्था का चित्रण किया गया है जो लेखक के समाजवादी जीवन-दृष्टि की अभिव्यक्त करता है। रांगेय राघव के अतिरिक्त नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय प्रभृति उपन्यासकारों ने भी समाजवादी जीवन-दृष्टि पर आधारित कथ्य को चुन कर अपने अनेक उपन्यासों की रचना किया है। नागार्जुन कृत "बलचनमा" उपन्यास में दीन-हीन सर्वहारावर्ग एवं साधन-सम्पन्न शोषक वर्ग का संघर्ष ही कथ्य है जिसमें वर्ग-संघर्ष की ज्वाला को उद्दीप्त किया गया है, फिर भी इसमें मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार नहीं है अपितु समाजवादी चेतना का विशुद्ध भारतीय रूप ही प्रस्तुत हुआ है। नागार्जुन आंचलिक उपन्यासकार के रूप में अधिक विश्रुत हैं। सामाजिक एवं आर्थिक संघर्षों से टूटती हुई निम्न-वर्गीय तथा मध्यवर्गीय जनता से विशेषता सम्बद्ध रहे हैं। उनके उपन्यास "रतिनाथ की चाची" में मैथिल ब्राह्मणों के सामाजिक स्वरूप एवं समस्याओं - कुलीन - अकुलीन की भावना से उत्पन्न समस्यायें, अनमेल विवाह, बिकौवा वर, विधवा युवती, छुआ-छूत एवं भोज-भात आदि का चित्रण ही कथ्य है। "बाबा बटेसर नाथ" में वट-वृक्ष द्वारा कथित कहानी ही कथ्य है जो उसकी उतनी नहीं है जितनी गांव के उत्थान-पतन की, सामाजिक, राजनीतिक दावं-पेंच की है। इसमें सर्वहारा वर्ग पर होने वाले संघर्षों को समाप्त कर नवीन राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया गया है जिसमें सशक्त जनवादी चेतना दृष्टिगत होती है। "वरुण के बेटे" में

नागार्जुन ने मछुओं के जीवन को कथ्य स्वीकार किया है। अनेक प्रकार की मछलियों के नाम, उन्हें फँसाने की कला, मछुओं के सामाजिक जीवन एवं प्रणय-व्यापार आदि के चित्रण को कथ्य में स्थान दिया है। इसी प्रकार लेखक की अन्य औपन्यासिक रचनाओं में "दुखमोचन" तथा "हीरक जयन्ती" आदि के कथ्य भी इसी समाजवादी जीवन-दर्शन की पीठिका पर आधारित हैं।

समाजवादी विचारों से प्रेरित हो कर ही रचित अन्य आधुनिक उपन्यासों में भैरव प्रसाद गुप्त कृत "सती मैया का चौरा" भी उल्लेखनीय कृति है। ग्रामीण-भारत के सामन्ती मूल्यों और व्यवस्थाओं का विघटन ही इस उपन्यास का कथ्य है जिसमें वर्ग-चेतना पैदा कर, जनता की मुक्ति के संघर्ष को वर्ग-संघर्ष के स्तर पर लाने का प्रयास दृष्टिगत होता है तथा साम्प्रदायिक संघर्षों में गाँव में समाजवादी समाज की स्थापना की कल्पना निहित है। लेखक के अन्य उपन्यासों में "मशाल" तथा "गंगा मैया" के कथ्य भी समाजवादी हैं। इसी प्रकार अमृत राय कृत "बीज" उपन्यास में युद्धकालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक गतिविधियों का चित्रण ही कथ्य है। इस कथ्य के अन्तर्गत साम्यवादी सम्पत्ति के संघर्षों एवं उतार-चढ़ाव की अभिव्यक्ति मिली है तथा वर्ग-हीन समाज की स्थापना को यथार्थ रूप देने की कल्पना निहित है। इसी प्रकार "हाथी के दाँत" का भी कथ्य समाजवादी ही है।

<u>मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा से प्रभावित कथ्य के अन्तर्गत सामाजिकता का स्वरूप :</u>

प्रेमचन्दोत्तर मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा से प्रभावित उपन्यास-कारों ने भी अपनी रचनाओं में समाज को स्थान दिया है। ऐसे उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी सर्वप्रमुख हैं जो व्यक्ति के चेतन-अवचेतन और अचेतन मन को कथ्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। किन्तु उनके इस कथ्य की अभिव्यक्ति सामाजिक पृष्ठभूमि पर हुई है। वह सामूहिक अचेतन में विश्वास करते हैं। "जिप्सी" उपन्यास में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से "धर्मसंस्कृति समन्वय" को जोशी जी ने कथ्य रूप में चुना है। इस उपन्यास के कथ्य के अन्तर्गत मनोविश्लेषणात्मक तरीके

से सामाजिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास है जिससे यह मनोविश्लेषणात्मक कथ्य का उपन्यास होते हुये भी समाज परक हो गया है। इसी प्रकार जोशी जी के अन्य उपन्यासों " जहाज का पंछी ", " मुक्ति पथ ", " सुबह के भूले " के कथ्य भी मनोविश्लेषण से सम्बन्धित होते हुए भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त हुये हैं। फ्रायडीय मान्यताओं, यौन - कुण्ठाओं से प्रभावित होते हुए भी इलाचन्द्र जोशी ने युग के सामूहिक अचेतन से अधिक प्रेरणा ग्रहण किया है। यही कारण है कि उनके औपन्यासिक कथ्य व्यक्ति - चिंतन और व्यक्ति-हित पर आधारित न हो कर समाज-चिंतन और सामाजिक मूल्यों का पोषण करते हैं। मनोविश्लेषणात्मक आधार पर रचित कथ्य के माध्यम से सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने वाले एक-मात्र उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी ही हैं यही कारण है कि वह अन्य मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकारों से पृथक् स्थान रखते हैं।

<u>इतिहास - आधारित कथ्य में सामाजिकता का स्वरूप :-</u>

इसी प्रकार प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के सामाजिक कथ्य का एक और भी रूप दृष्टिगत् होता है जिसे हमने समाज परक ऐतिहासिक कथ्य कहा है। ऐसे औपन्यासिक कथ्य इतिहास की सीमा से गृहीत हैं जिनमें मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का अभाव तथा सामाजिक चेतना की प्रतिध्वनि गुंजायमान है। चतुरसेन शास्त्री कृत " वयंरक्षाम: ", " सोमनाथ ", " आलमगीर ", " गोली " और " सोना और खून " इसी कोटि के कथ्य पर आधारित उपन्यास हैं। वृन्दावन लाल वर्मा ने भी समाज-परक ऐतिहासिक कथ्य को आधार बना कर उपन्यास-रचना किया है। " टूटे कांटे " उपन्यास में वर्मा जी ने भारतीय इतिहास के एक अध्ययन के सामाजिक जीवन के चित्रण की पृष्ठभूमि पर सामाजिक जीवन की रिक्तता प्रदर्शित करते हुये नूरबाई के जीवन चित्रण द्वारा सात्विकता का सन्देश दिया है जो इस उपन्यास का कथ्य है। इसमें इतिहास के परिप्रेक्ष्य में युगीन राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति प्रदान की गई है जिससे सामाजिक यथार्थ का सुन्दर चित्रण सम्भव हो सका है। इसी प्रकार राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों के ऐतिहासिक कथ्यों में

समाजवादी चेतना दृष्टिगत होती है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास " विस्मृत यात्री " में अतीत के समाज की समानतारी के साथ वास्तविक रूप में चित्रण करना ही लेखक का कथ्य है जिसमें बौद्ध धर्म के दु:खवाद के सिद्धान्त को मार्क्सवाद के धरातल पर स्थापित करते हुए लेखक ने नरेन्द्र के माध्यम से समाजवादी भावना को अभिव्यक्त किया है।

यशपाल कृत " अमिता " उपन्यास का कथ्य भी समाजपरक ऐतिहासिक है। इतिहास के परिपार्श्व में आधुनिक युग की विश्व-शांति की समस्या का प्रस्तुती करण ही इस उपन्यास का कथ्य है। उपन्यास में ऐतिहासिक यथार्थ अभिव्यंजित हुआ है जिसमें भौतिकवादी दृष्टि है। युद्ध समाज के जीवन के लिए अभिशाप है, क्षयरोग है यही कारण है कि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समाज में शांति की स्थापना ही इस उपन्यास का कथ्य है। " शतरंज के मोहरे " उपन्यास में अमृतलाल नागर ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में घुटन भरे सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त किया है। तत्कालीन नवाबों के जीवन का सामाजिक पृष्ठभूमि पर चित्रण करना, युग के आचार, विचार, भावना के द्वन्द्व, आकांक्षायें, संघर्ष, सहयोग, उन्नति-अवनति तथा गरम के चित्रण के माध्यम से तद्युगीन समग्र जीवन को पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर देना ही लेखक को काम्य है। व्यक्ति समाज में विलीन हो जाता है तथा सामाजिक जीवन को अभिव्यक्ति मिलती है। इसी प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रसिद्ध उपन्यास " बाणभट्ट " में सामन्ती - युग की सामन्ती चेतना और धर्म - भावना के चित्रांकन को ही कथ्य रूप में उपस्थित किया गया है। इसके अन्तर्गत मध्य-युगीन सामाजिक, धार्मिक जीवन का चित्रण के माध्यम से वर्तमान भारत की अनेक समस्याओं एवं उनके समाधान के चित्र को प्रस्तुत करने का प्रयास निहित है[७]। इस उपन्यास में लेखक इतिहास के पहलू को समाज की दृष्टि से आंकता है अत: इसका कथ्य ऐतिहासिक होते हुए भी सामाजिक है।

उपर्युक्त विवेचन एवं विश्लेषण से यह स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है कि प्रेमचन्दोत्तर अनेक उपन्यासकारों ने भी समाज में निहित अनेक समस्याओं को

कथ्य बनाकर अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । यद्यपि इन औपन्यासिकों की सामाजिक दृष्टि तथा प्रेमचन्द एवं उनके समकालीन लेखकों की सामाजिक दृष्टि में अन्तर दृष्टिगोचर होता है । अत्याधुनिक उपन्यासकारों का एक विशाल समुदाय जहां व्यक्ति, व्यक्ति-मानस एवं व्यक्तिगत मनोवृत्तियों को कथ्य के रूप में प्रस्तुत कर रहा है वहीं कतिपय उपन्यासकार ऐसे भी दृष्टिगोचर होते हैं जो समय की नब्ज को पहचानते हुए व्यक्ति-मानस की अतल गहराइयों से निकल कर सामाजिक कथ्य को प्रस्तुत किया । ऐसे उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी सर्वप्रथम हैं जिन्होंने " मुक्ति पथ " के रूप में एक संतुलित कृति प्रदान किया । अमृत लाल नागर ने " बूंद और समुद्र " में व्यक्ति और समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को कथ्य बनाया और दोनों के सामंजस्य पर बल दिया । इनके अतिरिक्त उदय शंकर भट्ट ,विष्णु प्रभाकर माचवे, रांगेय राघव, नागार्जुन, राजेन्द्र यादव आदि नवीन प्रतिभाओं ने भी अपनी कतिपय औप-न्यासिक कृतियों में सामाजिक दशा को कथ्य रूप में प्रस्तुत किया है।

व्यक्ति सापेक्ष कथ्य का स्वरूप - आभ्यान्तरिकता :-

समाज - सापेक्ष कथ्य को लेकर उपन्यास - रचना करने वाले इन उपन्यासकारों की अपेक्षा इस विवेच्य काल में व्यक्ति-निष्ठ कथ्य की सृष्टि करने वाले औपन्यासिकों का समूह अधिक सशक्त रहा है । व्यक्ति को कथ्य-रूप में प्रस्तुत किये जाने के कारणों का उल्लेख करते हुए विगत पृष्ठों में हमने मनोवैज्ञानिक, नैतिक, दार्शनिक एवं परिवेशगत् अनेकानेक प्रभावों को अभिव्यक्त किया है जिनके आलोक में इन रचनाकारों ने अपनी रचनायें प्रस्तुत किया है । साथ ही व्यक्ति को कथ्य-रूप में प्रस्तुत करने वाले तथा सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में जैनेन्द्र जी का नाम उद्धृत किया गया है । जैनेन्द्र जी ने फ्रायड, एडलर और युंग आदि की मनो-वैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित हो कर अपने उपन्यास "सुखदा", विवर्त ,""व्यतीत " "जयवर्धन " ," मुक्ति बोध "आदि उपन्यासों में व्यक्ति - स्वातंत्र्य, कुण्ठा, दमन, काम-भाव,दमनोत्पन्न अनेक विवशताओं को कथ्य रूप में अभिव्यक्ति दी है । व्यक्ति-मन के आन्तरिक खुरदुरे पन का विश्लेषण और चित्रण ही जैनेन्द्र को काम्य है । इन उपन्यासों में व्यक्ति प्रमुख है । वैयक्तिक सत्य एवं संवेदना से ही प्रेरित हो कर अज्ञेय,जोशी, भगवतीचरण वर्मा आदि ने भी व्यक्ति के चेतन, अवचेतन एवं उपचेतन

आदि अन्तर्मन की सूक्ष्म रेखाओं के पर्यवेक्षण, विश्लेषण और आकलन कर उन्हें अपने उपन्यासों में कथ्य के रूप में रूपायित किया है ।

उपन्यासकारों की संवेदना का आधार : व्यक्ति :

इसी बीच भारत स्वतंत्र हुआ । स्वतंत्रता - जनित अनेक दुष्परिणामों (जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है) के फलस्वरूप व्यक्ति ने स्वयं के विषय में चिंतन किया और उसे चतुर्दिक निराशा, घुटन, कुण्ठा, पीड़ा आदि का अहसास हुआ । इस लिए स्वातंत्र्योत्तर व्यक्ति समाज की परम्पराओं, नैतिक मान्यताओं और विधान के प्रति उत्पन्न विद्रोहाग्नि से प्रज्वलित हो उठा । यही कारण है कि हमारी औपन्यासिकों की संवेदना व्यक्ति पर आकर केन्द्रित हो गई । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में व्यष्टि की आस्था का ही कथ्य रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य की अवधारणा के विभिन्न स्रोत:-

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में कथ्य - चयन के स्रोत अपने आप में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करते हैं जो पूर्ववर्ती युग में संभव नहीं था । नौकरी पेशा नारी की बहुमुखी समस्याओं को भी इसी युग में रूप और आकार मिला । इनकी तह तक पहुंचने की लक्ष्य शिवानी, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा और कृष्णा सोबती आदि महिला उपन्यासकारों में तो मिलती ही हैं, इस दिशा में पुरुष उपन्यासकार भी उनसे पीछे नहीं रहे । इस शताब्दी की सर्वाधिक क्रांतिकारी घटना तो यह है कि जीवन अब जीने और भोगने के बजाय समझने और समझाने का, व्याख्या और विश्लेषण का, विषय बन गया है तथा अनुभूति के स्थान पर बौद्धिकता का संचार हुआ । अनुभूति की गहनता के ह्रास होते ही औपन्यासिक कथ्य में भी फीकापन आने लगा, किन्तु शीघ्र ही बौद्धिकता एवं शिल्प का आश्रय लेकर प्रेमचन्दोत्तर आधुनिक उपन्यास इस विकट स्थिति से उबर आया ।

स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों से गृहीत कथ्य :

स्वतंत्रता की प्राप्ति के उपरान्त देश-विभाजन की घटना सामने आई जिसमें भारतीय व्यक्ति ने खून-खराबी का भी दर्शन किया जिससे उसे एक

व्यापक रूसी क्रांति के समान ही चेतना प्राप्त हुई । उसकी वैयक्तिक सत्ता ने अपना महत्व अनुभव किया एवं पुरातन विधि-विधान, विचार-पद्धति, समाज-संरचना और नैतिक प्रतिमानों के सम्मुख इस स्वातंत्र्योत्तर व्यक्ति ने प्रश्न चिन्ह लगा दिया । आजादी प्राप्त होने के बाद वैयक्तिक तथा सामूहिक स्तर पर आत्मसजगता, दायित्व-बोध और स्वायत्तता की अनुभूति हुई एवं व्यक्ति व समाज के कल्याणार्थ अनेकानेक योजनायें निर्मित हुईं । इसी बीच अनेकानेक सामाजिक-दर्शनों ने भी देश की वैचारिक-भावना को प्रभावितकिया । यही कारण है कि जहाँ स्वतंत्रता-पूर्व कथाकार अपने सामयिक परिवेश से असम्पृक्त हो कर व्यक्तिगत कुण्ठाओं, व दर्शन और मनोविज्ञान के कतिपय बाह्य स्वरूपों में ही अधिक व्यस्त थे वहीं स्वतंत्रता-परवर्ती उपन्यास-लेखकों में भारतीय-व्यवस्था, राजनीति और प्रशासन की अनेकानेक त्रुटियों ने मोह-भंग की स्थिति उत्पन्न कर दिया जो इन लेखकों द्वारा चित्रित मध्य और निम्न मध्यवर्ग में दृष्टिगोचर होती है । इस स्थिति की सही अभिव्यक्ति हमारे उपन्यासकारों ने की है[८] जिसने इनकी औपन्यासिक कृतियों के कथ्य को एक नया स्वरूप प्रदान किया । सम्पूर्ण देश में बढ़ती हुई जन-संख्या एवं बेकारी, बेरोजगारी ने व्यक्ति को अकेला बना दिया । वह असन्तुष्ट, पराजित और कुछ दृष्टिहीन होने लगा[९] । इन परिस्थितियों के प्रभावान्तर्गत इन उपन्यासकारों ने अकेले पन, अप्रति-बद्धता और वर्तमान की सार्थकता की ओर कदम बढ़ाया । उन्होंने अतीत और भविष्य के प्रति किसी प्रकार की प्रतिबद्धता स्वीकार नहीं किया बल्कि उनकी दृष्टि अपने जीवित परिवेश एवं वर्तमान के प्रति अधिक उन्मुख हुई[१०] ।

अस्तित्ववाद से प्रभावित कथ्य :

इसी मध्य पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन ने अपने सम्पूर्ण वेग से इन औपन्यासिकों के भावोद्गारों को प्रभावित किया । अस्तित्ववाद के इस प्रभाव ग्रहण का प्रमाण इन लेखकों के स्वयं अपने कथा-साहित्य की भूमिकाओं, आलोचनात्मक ग्रंथों, विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से मिल जाता है[११] ।

जिनमें उनका साहित्यादर्श स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है। उन्होंने अस्तित्व-वादी दर्शन के प्रभाव-ग्रहण के संकेत उसके प्रमुख ग्राह्यतत्वों अनास्था, व्यथा, निराशा, अकेलेपन, शून्यता, मृत्यु-बोध, कर्म तथा संघर्ष आदि के आधार पर किये हैं। जब कथाकार व्यक्ति-महत्व, पारिवारिक सम्बन्धों आदि के चित्रण को कथ्य-रूप में प्रस्तुत करता है तब इनके पीछे अवश्य ही अस्तित्ववादी दर्शन आधारित दृष्टिगत होता है[१२]। इसी प्रकार अन्य प्रेमचन्दोत्तर आधुनिक उपन्यासकारों, सुरेश सिनहा, शिवानी, मन्नू भण्डारी, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा आदि की रचनाओं में भी अस्तित्ववाद का पूर्णतया प्रभाव लक्षित होता है। जहाँ तक इस दर्शन के प्रभाव-ग्रहण करने का प्रश्न है वह समय-सापेक्ष एवं युग की आवश्यकता के अनुरूप है, इतना ही नहीं इन अत्याधुनिक उपन्यासकारों को विरासत में भी कुछ कथाकारों से अस्तित्ववादी चिन्तन की परम्परा ही प्राप्त हुई है। दूसरा कारण यह है कि ऐसे संकटापन्न समय में हमारा कोई ऐसा भारतीय दर्शन नहीं है जो इन कथाकारों के विचारों को आधार प्रदान कर सकता[१३]। फिर भी इस विदेशी दर्शन को प्रेमचन्दोत्तर कथाकारों में से अधिकांश ने भारतीय परिवेश में ही ग्रहण किया है जो उनकी मौलिक चेतना की श्रेष्ठता को प्रमाणित करता है। इस काल के समस्त कथाकारों की जीवन दृष्टि इसी धरातल पर निर्मित होने के कारण प्रायः समान है[१४], इसी लिए इन सब की औपन्यासिक कृतियों के कथ्य-रूप में जीवन के विविध भोग, विसंगति, कुण्ठा, संत्रास, अस्तित्व, संकट, अकेलापन आदि को चित्रित किया हुआ देखा जा सकता है।

<u>कथ्य की अवधारणा में अनुभूति की प्रमाणिकता पर बल :</u>

इन नवीन कथाकारों के नवीन विचारों ने प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य के चयन में अपने पूर्ववर्ती कथाकारों से भिन्न आदर्श प्रस्तुत किया। जहाँ पूर्ववर्ती कथाकार व्यक्ति के सामने खड़ी भयावह परिस्थितियों और आसन्न संकट को

और दृष्टिपात् करना अनुचित समझता था वहाँ इन नवीन उपन्यासकारों ने अपने को इस जड़ता से उन्मुक्त किया । उन्होंने जीवन की सारी संगतियों-विसंगतियों, जटिलताओं और दबावों का अनुभव किया यही कारण है कि उन्होंने अनुभूति की प्रामाणिकता पर बल देते हुए उसे कथ्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया । ये उपन्यासकार उपन्यास के कथ्य में अपने प्रामाणिक अनुभव को सम्प्रेषित करते हैं । प्रसिद्ध उपन्यास-कार अज्ञेय ने उपन्यासकारों की दृष्टि को अनुभूति की प्रामाणिकता में सन्निविष्ट करने का आग्रह किया[९५] जिसे परवर्ती उपन्यासकारों ने भी अपना समर्थन दिया[९६] तथा पूर्ण मनोयोग से उसे स्थापित किया । कालान्तर में तो इन उपन्यासकारों ने अपनी अनुभूति को ही अधिक प्रामाणिक स्वीकार किया जिसके समकक्ष अन्य वस्तु नहीं ठहरती । ये प्रतिबद्ध हैं तो अपनी अनुभूति के प्रति । लेखकों की अपने प्रति प्रतिबद्धता का कारण आज की सामाजिक व्यवस्था ही है जिसने व्यक्ति को अनेक स्तरों पर विभक्त कर दिया जहाँ पर उसे सम्पूर्ण समस्याओं से सम्बद्ध निर्णय उसे स्वयं ही लेने पड़ते हैं । इन नवीन उपन्यासकारों के उदय से पूर्व के कथाकारों द्वारा चित्रित पात्र अपने में जीने के हामी थे, वे परिवेश से नितान्त अनपेक्ष, अपनी व्यक्तिगत कुण्ठाओं एवं दर्प में ही आकण्ठ लीन थे । व्यक्ति की नितान्त व्यक्तिगत सीमा ही कथा-साहित्य की सीमा हो गई थी । उसमें सत्य व प्रामाणिकता का मात्र भ्रम ही परिलक्षित होता है । इन उपन्यासकारों के कथ्य में पूर्ववर्ती औपन्यासिक कथ्य की अपेक्षा अधिक प्रामाणिकता है । उसमें वास्तविक या यथार्थ की सही-सही अभि-व्यक्ति ही नहीं, यथार्थ का सत्यपरक चुनाव भी है । इनके कथ्य का झुकाव इसी सत्यपरक चुनाव का दृष्टि कोण है । 'भोक्ता' का यह चुनाव ही अनुभव की प्रामा-णिकता है । कथ्य-चयन की दृष्टि से यही नये और पुराने उपन्यासों का मौलिक अलगाव का बिन्दु है । यह अनुभव की प्रामाणिकता समय सापेक्ष होती है । यह लेखक का वह अनुभव है जिसे वह अपने परिवेश में जीता है और अपनी अनुभूति का अंग बन जाने पर ही अपनी कृतियों के द्वारा प्रेषित करता है ।

<u>कथ्य चयन में यथार्थ के प्रति विशेष आग्रह :</u>

अनुभूति की प्रामाणिकता के प्रति इसी लेखकीय आग्रह के कारण लेखकों ने यथार्थ को ही अपना कथ्य स्वीकार किया क्योंकि आज का उपन्यासकार जीवन के प्रति इमानदार है। अब उसके कथ्य का स्रोत जीवन का यथार्थ-बोध है। इन उपन्यासकारों ने यथार्थ की सम्पूर्णता को स्वीकार किया और अयथार्थ को सम्पूर्णतः अस्वीकार किया। इन नई दृष्टियों के कारण राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती और निर्मल वर्मा आदि नवीन उपन्यासकारों ने मानव सम्बन्ध के बंधे पैटर्न को तोड़ कर नये सम्बन्धों को अभिव्यक्ति दी और यथार्थता से एक नवीन नैतिक बोध के स्तर को जन्म दिया जो उनकी औपन्यासिक कृतियों में देखा जा सकता है। इन लेखकों द्वारा गृहीत यथार्थ का स्वरूप भी पूर्ववर्ती लेखकों से भिन्न है। दो दशक पूर्व के औपन्यासिक कृतियों में यथार्थ का तात्पर्य वातावरण को सामान्य ढंग से प्रस्तुत कर देना, पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करना और जीवन में व्यापक ढंग से दृष्टिगत होने वाली समस्याओं को व्यक्त कर देना था इसके विपरीत आधुनिक उपन्यासों में वातावरण कि चिरपरिचित अभिव्यक्ति की अपेक्षा अन्तरंग भावों को प्रामाणिक रूप में प्रकट करने पर बल रहता है और यथार्थवादी रचना उसी को माना जाता है जिसमें अनुभूति का नया पन हो। इन लेखकों में यथार्थ को क - ब - ह देखने की दिशा में प्रत्येक पूर्वाग्रह और परम्परागत् दृष्टिकोण को छोड़ने की अकुलाहट और हर लीक को तोड़ने का आग्रह व्याप्त है। ये आधुनिकता के उस यथार्थ को जिसे आज का परिवेश और मनुष्य दोनों मिल कर बना रहे हैं - को जैसे जिस रूप में देखते हैं उसी रूप में ग्रहण करते हैं। ये उसमें किसी प्रकार की ढाक - ढपेट स्वीकार न कर पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करने के पक्ष में है [१०]। उसने भोगे हुए यथार्थ को ही कथ्य के रूप में अभिव्यक्त किया है। वह यथार्थ के प्रति प्रतिश्रुत होने के कारण उसे ही अपना कथ्य बनाया है।

<u>कथ्य में देश-काल तथा परिवेश-चित्रण का महत्व :</u>

यथार्थ के प्रति लेखकों के इसी आग्रह के परिणाम स्वरूप उनकी रचनाओं के कथ्य में परिवेशगत् चित्रण को महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति मिल सकी है। वह अपने

करता है। परिवेश-गत् आनाकर्षण एवं परिस्थितियों के कारण ही इन उपन्यासों में व्यक्ति को प्रधानता मिली है और वह नित्य-प्रति नवीन-नवीन कथानकों की लेखकीय आवश्यकता के अनुरूप नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन को उपन्यासों में स्थान मिलने लगा। उपन्यासकारों ने व्यक्ति-जीवन के परस्पर विरोधी तत्वों- संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व, विचारों के नवीनीकरण, दृष्टि-कोण की विविधता एवं व्यक्तिगत अनुभवों की भरमार को ग्रहण कर अपनी कृतियों का कथ्य बनाया, जो सामान्य पाठक को अपनी ओर आकर्षित करते हैं तथा उसकी बौद्धिकतुष्टा प्राप्त करते हैं क्योंकि ये व्यक्ति उसी समाज के अंग हैं जिसका पाठक। अतः ये कथ्य पाठक के अधिक निकट हैं, उस कथ्य की अपेक्षा जो किसी राजा, अधिनायक अथवा पूंजीवादी व्यक्ति के जीवन से गृहीत हों। शासक अथवा शोषक वर्ग के व्यक्तियों के जीवन से निर्मित कथ्य उसी वर्ग के पाठक को अधिक आकर्षित करते हैं, न कि निम्न-मध्यवर्गीय पाठक को, जो उसकी कृपा-दृष्टि पर आश्रित है। अतः सामान्य जीवन से प्राप्त कथ्य में कथाकार को अपनी कल्पना के उपयोग का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है, और दूसरी ओर उस कथानायक के जीवन से सम्बद्ध संघर्ष, अवसाद, उल्लास, स्पन्दन, संवेदना और सहानुभूति आदि क्षणों में उसकी मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया के निरीक्षण का अवसर भी। यही कारण है कि इन आधुनिक उपन्यासकारों ने देश-काल अथवा परिवेश के महत्व को पहचानते हुए उस पर बल दिया क्योंकि परिवेश की संगति से ही चित्रित व्यक्ति, सत्य, घटना-संघटन वास्तविक होते हैं[६]।

विवेच्य युगीन औपन्यासिक कथ्य और समय सापेक्ष मानव-मूल्य :

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में मूल्य-विघटन, मूल्य-संक्रान्ति, मूल्य-शून्यता, मूल्य-विहीनता और मूल्य-निरपेक्षता के प्रश्नों को लेकर आलोचकों ने पर्याप्त आरोपण-प्रत्यारोपण किया है जो बाह्यजगत में राजनीतिक विडम्बनाओं, आर्थिक विषमताओं एवं सामाजिक वैकल्य के रूप में दृष्टिगत होती है तथा व्यक्ति के आत्मिक स्तर पर कुण्ठा, भय, संत्रास, अलगाव, अजनबीपन, आध्यात्मिक बाँझपन, स्त्री-पुरुष के

के समस्त-सम्बन्धों में क्रांतिकारी परिवर्तन तथा यौन - स्वच्छंदता के रूप में । इस मूल्य-हीनता का कारण उपन्यासकारों की परम्परागत नैतिक अवधारणाओं, सांस्कृतिक दृष्टिकोणों, सामाजिक-परम्पराओं के प्रति अस्वीकार की भावना है । हिन्दी के परम्परागत उपन्यासों में नैतिक और आत्मिक प्रश्नों पर गहनता पूर्वक विचार नहीं किया गया और न ही उनकी गहरी छान-बीन की गई । इनमें इन प्रश्नों को चुनौती के रूप में ग्रहण न कर सीमित नैतिक-बोध के स्तर पर ग्रहण किया गया जो किसी लेखक की नैतिक-मान्यता, सिद्धान्त या आदर्श को पुष्ट करता था । किन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग में विशेषतः स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश में उत्पन्न परिकल्पनात्मक विरोधाभास के माध्यम से भी स्वतंत्रता के स्वरूप को पकड़ और समझ सकना अत्यन्त कठिन हो गया । प्रत्येक व्यक्ति सच्चाई से यह अनुभव करने लगा कि परम्परागत मूल्य और आदर्श उसे समाधान दे सकने में सक्षम नहीं है किन्तु उनके स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिए अन्य नवीन मूल्यों का अभाव था । शनैः शनैः स्वतंत्रता अपने वास्तविक रूप में प्रकट होती गई और नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना की ओर प्रयास भी होने लगा । अतः परम्परागत स्वीकृत मूल्य-सम्पन्नता को इन उपन्यासों में खोजने वाले आलोचक गण का मूल्य-हीनता से सम्बन्धित यह आरोप निरर्थक है और इन औपन्यासिक कृतियों के प्रति अन्याय है । इनमें आधुनिक व्यक्ति का जिस तटस्थ गहन और गंभीर ढंग से विवेचन एवं विश्लेषण प्राप्त होता है वह उसकी मूल्य-सम्पन्नता कही जानी चाहिए । दूसरे यह कि रूढ़ नैतिक बोध जहां अनुभव की क्रियाशीलता और प्रकृति को निश्चित करने लगें वहां उपन्यास के आधुनिक होने का प्रश्न ही नहीं उठता । इन प्रेमचन्दोत्तर आधुनिक उपन्यासों की संरचना के मूल में भी किसी नैतिक आग्रह की मान्यता नहीं दी जा सकती ।

अस्तु मूल्य-हीनता की स्थूल रूप में अभिव्यक्ति सर्वथा अनुचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वर्तमान जीवन में व्याप्त अवसाद व अस्थिरता की अनुभूति कलाकार के जागृत युग-बोध को प्रमाणित सिद्ध करती है - जो व्यक्ति और कला दोनों के लिए अभीष्ट है । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि विघटन की चेतना या अनुभूति एक बात है तथा उसी को सत्य मानकर जीवन के उच्चतर मूल्यों के प्रति निषेधात्मकता दूसरी बात है । अस्थिरता, विघटन या अनास्था की वास्तविक चेतना स्वयं में एक तीखे दर्द की अनुभूति है यदि उसका सर्जनात्मक उपयोग कर सकने में

समर्थ है तो उनकी रचना का कलात्मक मूल्य निश्चय ही स्वीकृत करना होगा । इन आधुनिक उपन्यासकारों द्वारा प्रस्तुत विघटन में भी एक संघटन की भावना, अनास्था में भी आस्था प्रच्छन्न रूप से मुखरित होती है [19]।

पारिवारिक - विघटन :-

मूल्यों की बिखराहट सामाजिक परम्पराओं व नैतिक मान्यताओं के प्रति विक्षोभ के साथ ही साथ पारिवारिक-विघटन के माध्यम से भी उद्भूत हुई हैं यही कारण है कि इन उपन्यासकारों की अनेक औपन्यासिक कृतियों में यह पारिवारिक-छिन्नभिन्नता कटु रूप में प्रस्तुत की गई है । परिवार में बिखराव की स्थितियां आज निरन्तर बढ़ती जा रही हैं । यही कारण है कि आधुनिक जीवन के जटिल परिवेश में विघटित होते हुए परिवार की समस्या लेखक की गहन आन्तरिक समस्या बन गई है ।

नगर - बोध : कस्बाई मनोवृत्ति :

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय ग्रामों में परिवर्तन तो हुआ ही साथ ही साथ भारतीय नगरों में भी व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है । एक ओर मध्यवर्गीय परिवार व्यवस्था स्वीकार कर लेने के कारण अथवा उच्च शिक्षा ग्रहण कर लेने के कारण उच्चवर्गीय परिवारों के रूप में प्रतिष्ठित हुये तो दूसरी ओर नगरों का महानगरीकरण हुआ । उनमें नये- नये बोधों का जन्म हुआ । नगर - बोध के अन्तर्गत आधुनिकता, कृत्रिम जीवन - प्रणाली, बढ़ती रोजगार, काम की उग्र भूख, जीवन-मूल्यों में तीव्र परिवर्तन, परम्परा-मुक्ति की उत्कट कामना, नये प्रकार के सम्बन्ध, प्राचीन-अर्वाचीन का संघर्ष, अपरिचय, 'एडजेस्ट' न होना, क्षण-बोध तथा स्त्री-पुरुष का झुकना और अन्त में टूटना अपने आप समाविष्ट हो गये । यह नगर-बोध की अनुभूति युवा-उपन्यासकारों की है [20] क्योंकि वे इसे 'भोगते' और 'जीते' हैं । इस बोध को प्रमुख रूप में प्रस्तुत करने वाले प्रमुख उपन्यासकारों में निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, उषा प्रियम्वदा, मन्नू भण्डारी,

शिवानी, आदि प्रमुख हैं। कमलेश्वर, धर्मवीर भारती आदि आधुनिक लेखक भी यदा-कदा कस्बाई वस्तु-वर्णन के माध्यम से, कभी उपहास में, कभी उपेक्षित जन-जीवन को कथ्य के आधार रूप में स्वीकृत कर, नगर-बोध एवं कस्बाई मनोवृत्ति के संघर्ष का चित्रण करते हुए दृष्टिगत होते हैं।

पति- पत्नी के सम्बन्ध :

प्रेमचन्द परवर्ती युग तक पति-पत्नी के सम्बन्धों में सदा से ही एक प्रकार की भावनात्मक स्थिति होती है किन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग में इन सम्बन्धों में एक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। बीते हुए नर-नारी के सुपरिचित सम्बन्धों के स्थान पर जो कथा समाविष्ट हुआ था उसे इन उपन्यासकारों ने कथ्य बनाया है। स्त्री-पुरुष के परिवर्तनशील सम्बन्धों का जैसा अभिव्यक्ति करण इन आधुनिक उपन्यासों में मिलता है वह युग-सापेक्ष है। विवाह अब धार्मिक अनुष्ठान -मात्र न हो कर स्त्री-पुरुष के समान -स्तर पर होने वाले समझौते का रूप ग्रहण कर लिया। दूसरी ओर जब देश-विभाजन हुआ तो स्त्रियों को जो भुगतना पड़ा उससे उसने अनुभव किया कि व्यक्ति एवं समाज की समस्त विकृतियों का सर्वाधिक शिकार उसे ही बनना पड़ता है। अस्तु नारी अब अपने परिवारों के प्रति सचेष्ट हो गई तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के कन्धे से कंधा मिला कर चलने की मांग करने लगी। विकास-शील सभ्यता के अन्तर्गत उसकी स्वतंत्रता स्वीकृत की गई तथा कानून ने भी उसे बराबरी का अधिकार दिया। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा ग्रहण कर वह स्वाभिमानी हो गई। इस प्रकार सभ्यता कानून और शिक्षा ने स्त्रियों के शारीरिक -बंधन को मुक्त कर दिया किन्तु उसके अन्तःकरण में जो सदियों से दासता के संस्कार जमें थे वे उसकी आत्मा को जकड़े रहे। लाख प्रयत्न करने पर भी वह नारी उनसे उन्मुक्त नहीं हो पा रही थी। इस प्रकार संस्कारों में वह प्राचीन ही रही, पर आधुनिकता को उसने फैशन के रूप में ग्रहण कर लिया। इस द्वैत के परिणाम स्वरूप नारियों का व्यक्तित्व खंडित हो गया जो प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों के आकर्षण का केन्द्र बना।

इलाचन्द्र जोशी, उदयशंकर भट्ट, जैनेन्द्र और प्रभाकर माचवे की कतिपय औपन्यासिक कृतियों के कथ्य में नारी का यह द्वैत व्यक्त हुआ है। समाज में व्याप्त सैक्स और अर्थ की सम्मिलित विकृतियों के प्रभावान्तर्गत नारी क्या से क्या हो जाती है, इसका चित्रण यशपाल कृत " मनुष्य के रूप " तथा भगवतीचरण वर्मा के " आखिरी दांव " में दृष्टिगत होता है। गृहस्थी पर बढ़ते हुये बोझ, स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा एवं नागरिक जीवन की रंगीनियों ने नारी को नौकरी-क्षेत्र में प्रविष्ट होने के लिये बाध्य किया। गृहस्थी की जिम्मेदारी तो उस पर सदा से ही थी यह एक और भी अतिरिक्त उत्तरदायित्व उस पर आ पड़ा। पहले तो वह घर में ही शोषण की शिकार थी अब बाहर भी बन गई, यद्यपि अब उसमें वह निरीहता नहीं थी। किन्तु जो स्त्रियां सच्चाई से दोनों ही दायित्वों का निर्वाह करना चाहती थीं, वे दो पाटों के बीच पिसने लगीं। नौकरी-पेशा नारियों की समस्या को कथ्य रूप में ग्रहण कर उषा प्रियम्वदा आदि अनेकों महिला उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों की सर्जना किया है। इनके अतिरिक्त पति-पत्नी के नवीन सम्बन्धों को कथ्य बना कर अनेकानेक युवा उपन्यासकारों ने अपनी औपन्यासिक कृतियां रची हैं जिनमें पारिवारिक विघटन से लेकर नारी के इस नवीन अर्द्ध-शिक्षित स्वरूप तक का चित्रण किया गया है।

अजनबीपन - एकाकीपन :

आधुनिक सन्दर्भों में अपरिचय, अजनबीपन, एकाकीपन मार-बोध से उत्पन्न प्रमुख दिशायें हैं जिन्हें इन उपन्यासकारों ने कथ्य बनाया है। आधुनिक व्यक्ति हर प्रकार से स्वयं को अपरिचित और एकाकी अनुभव कर रहा है। वह एक दूसरे से कटा हुआ है तथा दूसरे की प्रसन्नता एवं कष्ट से भी उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी का अनादर या अपमान उसे कम कष्ट दे सकता है उसके कष्ट का बिन्दु है अपरिचय जो उसे अपने परिचितों के मध्य मिल रहा है। यही आधुनिक व्यक्ति के संवेदना का बिन्दु है जहां पर वह स्वयं को परम्परागत आदर्शों से एकदम विच्छिन्न और अलग पाता है। यह अकेलापन आज के जीवन का यथार्थ है जिसमें ये आधुनिक प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकार सांसे ले रहे हैं और जिसकी उसे सत्यानुभूति है[२१]।

यही कारण है कि वह अजनबीपन, एकाकीपन को कथ्य रूप में प्रस्तुत करता है क्योंकि वह उस यथार्थ का प्रस्तुत करता है जिसका वह प्रतिपल भोक्ता है। ऐसी परिस्थिति में इस सत्य से वह कैसे पलायन कर सकता है।

क्षण-चित्रण का महत्व :

स्वातंत्र्योत्तर के उपन्यासकार जीवन को सभी सम्बन्धों से अलग कर केवल वर्तमान के चित्रण पर परखना चाहते हैं - ~~वर्तमान शब्द भी कुछ अटपटा प्रतीत होता~~ है - वर्तमान शब्द भी कुछ बड़ा प्रतीत होता है - केवल क्षण के चित्रण पर। क्षण के माध्यम से ही व्यक्ति के पूर्ण और मानवीय स्वरूप को देखा-परखा जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई उनमें व्यक्ति प्रतिपल टूट रहा है इस लिए वह क्षण को बहुत महत्वपूर्ण दृष्टि से देखता है। एक ही क्षण में कोई भी व्यक्ति राजा हो सकता है, कोई रंक उसका यह आर्थिक दृष्टिकोण उसकी सम्पूर्ण चिन्तन-प्रक्रिया को प्रभावित करता है। प्रेमिका के लिये प्रिय का उतना महत्व नहीं है जितना कि उस क्षण का है जिसमें उसका प्रिय से समागम होता है। अब प्रेम के स्थायित्व की उतनी चिन्ता नहीं दृष्टिगत होती जितनी कि उस क्षण को ही जीने की बात सोची जाती है तथा शादी की बातें भी अब मूर्खता की बातें होती जा रही हैं। महत्व मात्र क्षण भर का है। " क्षण-चित्रण " अस्तित्ववाद की एक नाटकीय दृष्टि है किन्तु उन अस्तित्ववादियों ने साहित्य से उदात्त तत्वों के निष्कासन पर बल नहीं दिया है। क्षण-चित्रण का यह आग्रह आधुनिक व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन करता है। इस सम्बन्ध में नीत्शे का विचार दर्शनीय है [२२]। जिसमें वह क्षण की अनुभूति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोषित करता है। इन्हीं विचारों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए आधुनिक उपन्यासकार अपने कथ्य के अन्तर्गत क्षण के चित्रण को महत्वपूर्ण स्थान देता है।

काम - सम्बन्धों का चित्रण :

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य के रूप में यौन-सम्बन्धों का नग्न-चित्रण किया गया है। वैसे काम की भूख सब की है और सभी स्थानों तथा समयों

को भी । यह नगर-बोध की अभिन्न अंग है । नगरीकरण एवं महानगरीकरण से उद्भूत निराशा, कुण्ठा व घुटन के परिणाम-स्वरूप लेखकों का ध्यान यौन-चित्रण पर विशेष रूप से गया [23] । इन नगरों में खुले आम काम की भूख मिटायी जाती है । प्रत्येक घर, प्रत्येक लड़की, प्रत्येक पार्क में प्राय: ये दृश्य देखे जाते हैं । आज का व्यक्ति सर्वत्र कादम्ब-कामिनी की खोज में भ्रमित है तथा वह "स्नायविक उत्तेजना" का अनुभव कर रहा है । आज की युवती भी कठोर पुरुष की आकांक्षा करती है जो उसे यौन-तृप्ति दे सकने में समर्थ हो । इसके लिए उसे अपमान भी सहना पड़ता है क्यों कि शिथिल पति उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकता । यही कारण है कि बहुतेरी स्त्रियां अन्यत्र भुकती हुई दृष्टिगोचर होती हैं । आज लोग "घर में कोई नहीं" फोन पर सुनते ही प्रेमिका के घर के दूसरे बिस्तर पर आ जाते हैं, इस प्रकार का गुप्त प्रेमाचार और प्रकट काम तृप्ति आज के नगर-बोध की आवश्यक पहचान हो गई है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास लेखकों का ध्यान परिवेश के यथार्थ अंकन के प्रति विशेष आकर्षित है इस लिए वे जीवन में जो कुछ जैसा भी देखते हैं उसे उसी रूप में चित्रित कर देते हैं । आधुनिक युग में काम-जीवन का असामञ्जस्य और वैषम्य समाज में सर्वत्र व्याप्त है । प्रेमचन्द पूर्व का उपन्यासकार यह नहीं जानता था कि समकालीन सामाजिक परिस्थिति में काम-सम्बन्धों में कितनी विषमता आ गई है । प्राचीन काल में राजकुमार और राजकुमारी का परस्पर मिलाप एवं प्रेम होता था, फिर विवाह हो जाता था और वे शेष जीवन सुख से बिता देते थे । किन्तु आज की स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है । बहुसंख्यक जन-समुदाय का दाम्पत्य-जीवन नरकमय दृष्टिगोचर हो रहा है । यदि किसी के दाम्पत्य-जीवन में सुखात्मक-स्थिति है तो वह कड़ी साधना और समझौते के आधार पर ही है । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों को इन सब कारणों का प्रत्यक्ष ज्ञान है जिससे उसने यौन-सम्बन्धों को यथार्थ-रूप में अभिव्यक्त करने को महत्व प्रदान किया है । दूसरी ओर नवीन परिस्थितियों में काम का महत्व पहले की अपेक्षा कम भी हो गया है क्यों कि उसका अस्तित्व सहज भाव से स्वीकार किया गया है साथ ही काम-जीवन में "पवित्रता" का वह अर्थ या महत्व नहीं रह गया है जो पहले था । विवाह-पूर्व पुरुष और स्त्री की कामानुभूति को अब समाज या रचनाकार दाम्पत्य-जीवन के सुख का बाधक नहीं मानता ।

आज यह माना जाता है कि स्त्री भूल करके भी संभल सकती है तथा समाज की उपयोगी सदस्या बन कर जीवन के साथ काम-चलाऊ समझौता कर सुख प्राप्त कर सकती है । इसका कारण सैक्स के सम्बन्ध में समाज का नया दृष्टिकोण तो है ही साथ ही साथ फ्रायड, एडलर और युंग आदि मनोवैज्ञानिकों की विचारधारा का प्रभाव भी । यही कारण है कि प्रेमचन्दोत्तर अपेक्षाकृत स्वातंत्र्योत्तर अधिकांश उपन्यासकारों की संवेदना का बिन्दु यौन-चित्रण या सैक्स पर आधारित दृष्टिकोण होता है । ये उपन्यास - कार स्त्री-पुरुष के शरीर को लेकर, उनकी यौन-सम्बन्धी संगतियों-विसंगतियों के चित्रण का कथ्य के आधार-स्वरूप ग्रहण करने में किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं करते क्योंकि वे इसे मनुष्य या समाज की एक वास्तविक एवं अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकार करते हैं[२४] ।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य में यौन-चित्रण को महत्वपूर्ण स्थान दिये जाने के कारण अनेक आलोचकों ने श्लीलता और अश्लीलता का प्रश्न उठाया है जिसे पूर्णतया उचित नहीं कहा जा सकता । जिस देश के प्रत्येक गांव, शहर, कस्बे इतना ही नहीं सड़कों और प्रत्येक गलियों के मोड़ पर " लूप " के विशाल विज्ञापन लगे हों, वहां सैक्स-नैतिकता या श्लील-अश्लील का प्रश्न उठाना ही भ्रान्तिपूर्ण है । उच्च शिक्षा - संस्थाओं में जहां किशोर एवं किशोरियां एक साथ कक्षा में बैठ कर शरीर के अंग-प्रत्यंग के विभिन्न उपयोग और परिणाम का ज्ञान प्राप्त करते हैं - उनके लिए वहां कोई किशोर -सृष्टि रही नहीं गई है । दूसरे नवीन परिस्थितियों में परिवर्तनशील जीवन की प्रक्रिया के प्रति लेखकीय दृष्टिकोण, अनुभूति और अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता के आग्रह ने इन उपन्यासकारों को वास्तविक यथार्थ के चित्रण में अधिक प्रवृत्त कर दिया है चाहे वह यथार्थ सद् हो या असद्, नैतिक हो अनैतिक, श्लील हो अश्लील । बिना किसी लाग-लपेट के, बिना कोई कलई किये यथार्थ को उसी स्वरूप में अभिव्यक्ति जैसा कि वह है, ही इन उपन्यासकारों का कथ्य है । लेखकों की इस दृष्टि के फलस्वरूप भी श्लीलत्व-अश्लीलत्व की धारणा का ह्रास हुआ है । इस सम्बन्ध में डाक्टर शंभूनाथ सिंह का भी कथन उचित ही है कि कलावादी साहित्य में कोई भी वस्तु अश्लील या अनैतिक नहीं होती[२५] ।

जो कुछ भी हो सैक्स एवं नैतिकता के प्रश्न पर इतना कहा जा सकता

इन लेखकों के इस दावे में पर्याप्त सत्यता दृष्टिगोचर होती है कि उनमें अपने पूर्वजों का सा ढोंग नहीं है। वे किसी भी यथार्थ पर आदर्श का रंग चढ़ाने के पक्ष में नहीं हैं। औरों ने जो किया उसे किया, लेकिन कहा नहीं, उसे स्वीकार करने का साहस इन लेखकों में दृष्टिगत होता है क्योंकि वह ढोंग को अनैतिक कार्य-विशेष से भी अधिक अनैतिक मानता है। अतिरिक्त साहसिकता और आत्म-प्रदर्शन के बावजूद यह मानसिक खुलापन कुल मिला कर साहित्य के लिए स्वास्थ्यप्रद ही है।

मृत्यु - बोध :

अस्तित्ववादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण इन उपन्यासकारों में मृत्यु-बोध भी अधिक प्रबल रूप से दिखाई पड़ता है। यह मृत्यु अस्तित्ववादी विचारधारा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है जो नगर-बोध से प्रादुर्भूत है जहाँ प्राय: सहस्त्रों व्यक्ति प्रति दिन मरते हैं, उनकी मृत्यु पर कोई शोक नहीं प्रकट करने वाला होता, आस-पास के लोग पहचानते भी नहीं। इस प्रकार मृत्यु एक साधारण कार्य हो गई है। फिर भी मृत्यु भयावह स्थिति का बोध तो जीव-मात्र को कराती ही है। यही कारण है कि ये कथाकार मृत्यु-भय आदि को कथ्य रूप में रूपायित करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कथ्य का जो स्वरूप सामने उभरता है- भय, संत्रास, कुंठा, प्रेम, सेक्स, मूल्यों की बिखराहट, परम्पराओं एवं नैतिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह, क्षण-बोध, मोहभंग एवं निराशा तथा घुटन आदि सब को एक समान रूप से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों के कथ्य रूप में अभिव्यक्ति मिली है। इस अभिव्यक्ति में समस्त कथाकारों की जीवनी-दृष्टि भी समान ही है क्योंकि वे एक ही परिस्थिति या परिवेश में जीवन जी रहे हैं तथा इस जीवन-क्रम में जो कुछ भी सदसद्, शिवाशिव उन्हें दृष्टिगत होता है उसके यथार्थ-रूप को पूर्ण सत्य-निष्ठा के साथ बड़े ही साहस-पूर्वक अपनी औपन्यासिक कृतियों के कथ्य रूप में रूपायित कर रहे हैं। उदाहरण के लिये धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों के देवता' के कथ्य में यौनाकर्षण पर विशेष बल दिया गया है। राजेन्द्र यादव कृत 'शह और मात' में भी एक सस्ती रूमानी कथा, प्रेम ही को कथ्य का आधार बनाया गया है। 'अनदेखे अनजाने पुल

। ६.१।

में निम्मी नामक नायिका के रूप में एक व्यक्ति की हीनत्व-भावना, प्रेम-जनित निराशा से उत्पन्न भग्नाशा तथा कुण्ठा आदि का चित्रण किया गया है । "नरेश मेहता " के प्रसिद्ध उपन्यास " डूबते मस्तूल "में वासना के फलस्वरूप एक रूपवती युवती रंजना का कई पुरुषों द्वारा छली जाने तथा आधुनिक नारी के मनोविज्ञान को कथ्य स्वीकार किया गया है । उनका दूसरा उपन्यास" दो एकान्त " भी प्रेम-की तनाव की अभिव्यक्त करता है, जिसमें स्त्री-पुरुष के बनते-बिगड़ते सम्बन्धों का सामयिक यथार्थ की भूमि पर प्रत्यक्षीकरण हुआ है । इस उपन्यास में विवेक और वानीरा के माध्यम से मध्य-वर्ग का संकट-बोध भी दर्शाया गया है ।

आज के दाम्पत्य - जीवन में पड़ी दरारों, विसंगतियों एवं विडम्बनाओं के परिणाम स्वरूप सर्वत्र व्याप्त तनाव, बिखराव आदि को कथ्य-रूप में चित्रित करने वाले मोहन राकेश का उपन्यास "अन्धेरे बन्द कमरे " है जिसमें दिल्ली के जन-जीवन के खोखले पन एवं स्त्री-पुरुष के निर्बन्ध सम्बन्धों की विडम्बना का कथ्य-रूप में प्रकटीकरण हुआ है । महानगर दिल्ली के परिवेश में मनुष्य के "एलियनेशन " और अजनबी पन को विशेष रूप से विवाहित जीवन की परिधि में अभिव्यक्त किया गया है ।

<u>मोह - भंग :</u>

मोह-भंग की कथ्य रूप में अभिव्यक्ति राजेन्द्र यादव के "उखड़े हुये लोग" , कमलेश्वर कृत " खोया हुआ आदमी", कृष्णा सोबती के "मित्रो मरजानी " नरेश मेहता के " यह पथ बन्धु था", लक्ष्मीकान्त वर्मा के" खाली कुर्सी की आत्मा " धर्मवीर भारती कृत " सूरज का सातवां घोड़ा " और गिरधर गोपाल के " चांदनी के खण्डहर " में मिलती है जिनमें मूल्यों का विरोध, मनुष्यों की टूटन, अर्थ-हीनता, अजनबी पन, अकेला पन का चित्रण किया गया है । उपेन्द्र नाथ अश्क कृत "गिरती दीवारें ", लक्ष्मीनारायण लाल कृत "काले फूल का पौधा ", "धरती की आँखें " और बया का घोंसला", और सांप " उपन्यासों में मनुष्य की सीमित

परिवेश में देखा गया है जिससे "लघु-मानव" का उदय हुआ है।

व्यक्तिवादी चिन्तन को कथ्य के आधार के रूप में प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों में उषा प्रियम्वदा कृत "पचपन खंभे लाल दीवारें" है जिसमें निर्बाध एवं उन्मुक्त प्रेम भोगने तथा शारीरिक भूख मिटाने के लिए स्वतंत्रता ग्रहण करने वाली राधिका के रूप में एक स्वातंत्र्योत्तर नारी के जीवन के अन्तर्विरोधों, विसंगतियों, संत्रास, घुटन आदि का चित्रण किया गया है। शिवानी कृत "कृष्ण कली" में भी एक व्यक्ति के रूप में कृष्ण कली की कथा को कथ्य बनाया गया है जिसमें समाज के प्रति विद्रोह एवं व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की अभिव्यक्ति की गई है। "भैरवी" में अपने सौन्दर्य के कटु अनुभव से युक्त जीवन के चौराहे पर खड़ी एक नारी (व्यक्ति) के रूप में चन्दन की कथा ही कथ्य है। "चौदह फेरे" उपन्यास का कथ्य संस्कारों से ग्रस्त नारी-जीवन, तथा उसकी मुक्ति-हेतु छटपटाहट है। "अपराधिनी" के कथ्य में लेखिका [illegible] अधिक प्रबल हो उठा है। इस उपन्यास में हत्या, जाल-साजी आदि अपराधों के कारण जेल-जीवन बिताने वाली महिलाओं का अत्यन्त मार्मिक सहानुभूति पूर्ण चित्रण किया गया है। नारी-स्वतंत्रता, नारी-जीवन के अवसाद व विडम्बना को कथ्य रूप में प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों की श्रेणी में ही शान्ति जोशी कृत "मेरा मन वनवास दिया सा", उदास पंछी, "शून्य की बाहों में"; एक और बात", मछली और मरा जल" भी हैं। भीष्म साहनी कृत "कड़ियाँ" में विवाहित पत्नी प्रमिला को छोड़ कर दफ्तर की एक लड़की सुषमा के प्रति महेन्द्र के आकर्षण की कथा है जिसमें इस अनुचित प्रेम-व्यापार से टूटते हुए परिवार का चित्रण किया गया है।

मन्नू भण्डारी के प्रसिद्ध उपन्यास "आप का बंटी" का कथ्य भी स्त्री-पुरुष के तनावपूर्ण सम्बन्धों की छाया में पिसते अबोध बालक के मानसिक जगत का चित्रण है। सेक्स और विवाह पर ही कथ्य को केन्द्रित कर लिया गया

प्रमोद सिनहा का " उसका शहर " उपन्यास है। इसमें जीवन-मूल्यों के विघटन, तनाव, ऊब, यौनिकता, घुटन, मानसिक-ग्रन्थि आदि के द्वारा विवाह जैसी लौकिक सम्बन्ध की निस्सारता को सिद्ध करने का प्रयास दृष्टिगत होता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद तो उपन्यासों में सेक्स की ही प्रधानता दृष्टिगत होती है। सेक्स को कथ्य रूप में रूपायित करने वाले इन उपन्यासों में जगदम्बा प्रसाद दीक्षित कृत " कटा हुआ आसमान ", राजेन्द्र अवस्थी कृत " बहता हुआ पानी ", निर्मला बाजपेयी कृत " सूखा सैलाब ", गिरिराज किशोर कृत " यात्रायें ", ममता कालिया कृत " बेघर " आदि प्रमुख हैं।

सेक्स की विविध प्रकार की भूखों, विवाहित जीवन की विसंगतियों को ही कथ्य बनाने वाले उपन्यासकारों एवं उनकी कृतियों के रूप में शरद देवड़ा कृत "टूटती इकाइयाँ", राजकमल चौधरी कृत " मछली मरी हुई ", डा० रामचन्द्र "प्रवास" कृत " विमानिता ", रंजन वर्मा कृत " कांचन ", रमेश उपाध्याय कृत "स्वप्न जीवी " आदि प्रमुख हैं। नरेन्द्र कोहली ने भी "अस्पताल" , "पुतला ", " दि कालेज ;" शफा देने वाले " तथा "दि लाइफ " उपन्यासों में एब्सर्ड, सेक्स-सम्बन्धों को कथ्य बनाया है।

मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनाओं, आधुनिक जीवन की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को कथ्य रूप में ग्रहण किये गये प्रमुख उपन्यासों में राजेन्द्र यादव कृत "प्रेत बोलते हैं " इसी का संशोधित रूप "सारा आकाश ", " उखड़े हुये लोग " हैं जिनमें लेखक ने आधुनिक भारतीय मानव के जीवन को जर्जरित बनाने वाली बातों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। "कुलटा ", "अनदेखे", "अनजान पुल", लेखक के लघु उपन्यास हैं। " अनदेखे , अनजान पुल " का कथ्य एक कुरूप लड़की की हीनभावना, निराशा तथा कुण्ठा आदि है।

। ९३ ।

सुरेश सिनहा कृत "सुबह अन्धेरे पथ पर" उपन्यास में भारतीय जन-जीवन में व्याप्त भटकाव, विघटन, संत्रास और कुण्ठा आदि को कथ्य का आधार बनाया गया है। इसमें स्वातंत्र्योत्तर जीवन-मूल्यों का बिखराव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। "पत्थरों का शहर" लेखक का दूसरा उपन्यास है जिसमें दिल्ली के माध्यम से १९६० और १९७० के बीच के भारतीय जीवन के सन्दर्भ में एक उच्च मध्यवर्ग की कथा कही गई है। दिल्ली के "पतन विहार" में रहने वाले सुशिक्षित एवं सुसम्पन्न परिवार के माध्यम से किया गया नवकुलीनविलासहीनता, राजनीतिक तथा आर्थिक भ्रष्टाचार, अकेलापन, अनास्था, मूल्यहीनता और नैतिक पतन आदि का चित्रण ही कथ्य है। इस प्रकार "पत्थरों का शहर" उपन्यास में आधुनिक जीवन की विडम्बना व्यक्ति और समाज के विविध स्तरों पर सूक्ष्मता से अभिव्यक्त हुई है।

मानवीय संकट पर ही कथ्य को आधारित कर लिखा गया उपन्यास शिवप्रसाद सिंह का "अलग-अलग वैतरणी" है। इसमें लेखक ने दर्शाया है कि मनुष्य अपने से ही पराजित हो चुका है और अपनी ही विडम्बनाओं में फंसकर जीवन का अर्थ खो चुका है। सारी व्यवस्था दूषित हो चुकी है। यह मनुष्य गरिमाहीन तथा मर्यादाच्युत हो गया है। अपनी नियति पर रो रहा है।

उपर्युक्त औपन्यासिक-कृतियों के अध्ययन एवं अवलोकन के पश्चात् यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि इन स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकारों ने अपने कथ्य में व्यक्ति को महत्व दिया है। इनमें व्यक्तिवाद का असामाजिक स्वर प्रधान हो गया है। रचनाकार व्यक्ति की अधम भावनाओं की अभिव्यक्ति उदात्त भावनाओं के स्तर से उतर कर भी करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। वह नगण्य से नगण्य व्यक्ति अथवा वस्तु को अपने कथ्य का आधार बनाता है। गली-कूचे और सैल-अफिसान के मामूली व्यक्ति को उसकी अपनी सम्पूर्ण नगण्यता के साथ सजीव रूप में कथ्य का आधार स्वीकार करता है। यह लेखकों की कथ्य-चयन की दिशा में विकास ही है क्योंकि इसमें यथार्थ चित्रण का प्रबल आग्रह है।

। ७५ ।

निष्कर्ष :- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों के कथ्य के विवेचन एवं विश्लेषण के उपरान्त संक्षिप्त रूप में हम यह निष्कर्षात्मक ढंग से कह सकते हैं कि इन औपन्यासिक कृतियों के कथ्य के संक्रमण अथवा विकास की दिशा स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर एवं आदर्श से यथार्थ की ओर है। इस युग में जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि उपन्यास लेखकों ने प्रेमचन्द के सामाजिक कथ्य की परम्परा से पृथक हटकर व्यक्ति एवं उसके अन्तरतम् में छिपे विभिन्न रहस्यों को अपना कथ्य बनाया। इस प्रकार कथ्य-चयन की दृष्टि से ये लेखक मनोविज्ञान से प्रेरणा ग्रहण करते हुए व्यक्ति के बाह्य-जीवन को छोड़ कर उसके अन्तर्मन में प्रविष्ट हो गये और मानव की मौलिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने लगे। इस प्रकार कथ्य का आधार समाज न हो कर अब व्यक्ति हो गया। व्यक्ति-निष्ठता पर इन लेखकों ने बल दिया। स्वातंत्र्योत्तर काल में एक और भी कथ्यगत् परिवर्तन दृष्टिगत् होता है जो परिस्थितिजन्य है एवं लेखकों को विभिन्न दर्शनों के प्रभाव से गृहीत प्रेरणा के परिणाम स्वरूप है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद जब व्यक्ति ने अपने विषय में विचार किया तो उसे अपना जीवन निराशा, कुण्ठा, घुटन और पीड़ा से भरा हुआ प्रतीत हुआ। परिणामस्वरूप समाज की परम्परा और विधान के प्रति आक्रोश प्रकट कर विद्रोह करना उसकी नियति हो गई, जिससे साहित्यकार, दर्शक, पाठक सभी का दृष्टिकोण समाज की अपेक्षा व्यक्ति पर आ कर केन्द्रित हो गया। इस व्यष्टि की आस्था का स्वर, प्रेम, सेक्स, रोटी, राजनीति, घुटन, अचेतन तथा स्वप्न आदि ही इन उपन्यासों में कथ्य के रूप में रूपायित होने लगे तथा उनमें मध्यवर्गीय, नागरिक जीवन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। यही कारण है कि कतिपय आलोचक इन उपन्यासकारों पर मूल्य-हीनता, अनैतिकता तथा अनौचित्य का आरोप लगाते हुये दृष्टिगत् होते हैं किन्तु वे यह विस्मृत हो जाते हैं कि उपन्यास-विधा साहित्य की अन्य समस्त विधाओं की अपेक्षा अधिक समय सापेक्ष विधा है। वह समय के साथ कंधा मिला कर चलती है। युग की सर्वाधिक छाप उपन्यासों पर ही पड़ती है। इस लिए प्राचीन मूल्यांकन-मानों के आधार पर इन उपन्यासकारों पर लगाया गया दोष समीचीन नहीं प्रतीत होता। आज के उपन्यासकारों की अनुभूतियों का

सन्दर्भ ही बदल गया है। प्राचीन आस्थाओं एवं विश्वासों के खोने या नष्ट होने पर उसे गहनतम् संकटों से गुज़रना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में वह अस्वीकार में जीता है, व्यर्थता का अनुभव करता है - और स्वयं निस्संग (इंडिविडुअलाइज़्ड) हो गया है। इस कारण से भी उसके कथ्य के कोण में परिवर्तन उपस्थित हुआ है। इन रचनाकारों द्वारा व्यक्त अनास्था में भी आस्था, घृणा में भी प्रेम, निराशा में भी आशा, अनैतिकता में भी नैतिकता एवं अनेकता में भी एकता प्रकारान्तर से विद्यमान है।

पुनश्च सामाजिक-कथ्य की दृष्टि से प्रेमचन्द की परम्परा के उपन्यास भी लिखे गये हैं। इतना अवश्य है कि प्रेमचन्द और प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासकारों की सामाजिक-दृष्टि में अन्तर है। जहां प्रेमचन्द का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद काम्य था वहां इन उपन्यासकारों में यथार्थ को बिना लाग लपेट की उसी रूप में प्रस्तुत करने का आग्रह दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले यशपाल, नागार्जुन और फणीश्वर नाथ 'रेणु' जैसे लेखक हैं। रेणु के उपन्यास-साहित्य में पदार्पण से आविर्भूत आंचलिक-उपन्यासों के कथ्य यद्यपि सीमित क्षेत्र एवं परिवेश के चित्रण पर आधारित हैं किन्तु वे अपनी सीमितता से भी असीमितता को प्रकट करते हैं। इनमें चित्रित ग्रामीण जीवन या अंचल विशेष का जीवन गांव का ही न रह समाज का है और समाज का ही न रह पूरे राष्ट्र का है। इनके अतिरिक्त अत्याधुनिक उपन्यासकारों ने भी सामाजिक कथ्य को लेकर उपन्यास-रचना किया है जिनमें, उदय शंकर भट्ट, अमृत लाल नागर, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों की पुनर्स्थापना का प्रयास किया है तथा व्यक्ति और समाज के समन्वयात्मक सम्बन्ध पर बल दिया है। इसी प्रकार कतिपय अत्याधुनिक उपन्यासकारों ने भी इस दिशा में सोचने का सराहनीय कार्य प्रारंभ कर दिया है। अतः भविष्य के प्रति निराशा प्रकट करना समुचित नहीं है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में निरन्तर उपस्थित यह परिवर्तन उसके विकास का द्योतक एवं पूर्णतया स्वस्थ है तथा सुखद भविष्य की सूचना देता है।

१- प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य , पृ०७४

२- " सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार कोई मनोवैज्ञानिक सत्य हो । "

(प्रेमचन्द - कुछ विचार , पृ०३२)

अथवा

" प्रेमचन्द जी तो हिन्दी में आधुनिक मनोवैज्ञानिक कथा- साहित्य के प्रवर्तक हैं ही । "

(डॉ० देवराज उपाध्याय -आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य और मनोविज्ञान - आमुख , पृ०८)

३- " उपन्यासों में पात्रों के बाह्य रूप देखकर हम संतुष्ट नहीं होते । हम उनके मनोगत भावों तक पहुँचना चाहते हैं । और जो लेखक मानवीय हृदय के रहस्यों को खोलने में सफल होता है, उसी की रचना सफल समझी जाती है । "

(प्रेमचन्द - कुछ विचार , पृ०३२)

४- इलाचन्द्र जोशी - विवेचना , पृ०१६२

५- " अतीत के समाज को ईमानदारी के साथ वास्तविक रूप में रखना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ ।"

(राहुल सांकृत्यायन - विस्मृति यात्री, पृ०१)

६- " इसमें अतीत का इतिहास है, वर्तमान का विचार है एवं भविष्य के लिए सन्देश है और इस अर्थ में काल के एक खंड में सीमित न रहकर कथा त्रिकाल व्यापिनी हो जाती है । "

(माध्यम , प्रवेशांक , पृ०६८)

७- '' विभाजन, मोहभंग, यान्त्रिकता, विसंगतियों, परिवारों के विघटन, राजनीतिक भ्रष्टाचार और व्यापक असन्तोष के बीच जो मनुष्य साँस ले रहा था, जिसका समकालीन साहित्य जवाबदेही से कतरा रहा था .... या जिससे आन्तरिक और बाह्य संकट की अभिव्यक्ति नहीं दे रहा था, वह मनुष्य इतिहास के क्रम में अपने पूरे परिवेश को लिए - दिए एक अवरुद्ध राह पर सम्भ्रमित तथा चकित खड़ा था।''

(कमलेश्वर - नई कहानी की भूमिका, पृ० १६)

८- '' सारे देश की मानसिकता और परिस्थितियों में बदलाव। जनसंख्या बढ़ने से परिवार - नियोजन का प्रचार और ' सेक्स ' जैसे टेबूज का टूटना और बड़ी - बड़ी योजनाएं और बड़े - बड़े निर्माण...... पुराने मूल्यों का विघटन और भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, रिश्वत और बेइमानी का सारे देश में माहौल, इन सब की मानसिकता से जुड़ी हुई हताश, पराजित, कमरें झुकी नई पीढ़ी ...... आतंक, तनाव और विश्वास -हीनता की वायु में साँस लेता सारा देश ...... विघटन और ह्रास से गुजरती हुई आदमी की नैतिकता और संस्कृति .... औदयोगिक निर्माण के कारण। बड़े - बड़े शहर और इन महानगरों में अकेले आदमियों का बना हुआ समुद्र। अपने आस- पास से कटा हुआ और विवशता में जुड़ा हुआ अकेला आदमी ...... सारे रिश्तों और संस्थाओं पर अनास्था और फिर भी अपना औचित्य तथा अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए किसी स्तर पर झुलसी हुई आकांक्षा। व्यक्तियों के लिए व्यक्तियों में केन्द्रित राजनीति

और उसकी सर्वग्रासी छाया में कांपता और मुक्ति के लिए छटपटाता अपने को बेसहारा महसूस करता हुआ मानव - समूह .... आक्रोश और झुंझलाहट में खुद को नोचती हुई पागल भीड़ .... विश्वविद्यालयों पर राजनीति का अधिकार और रचनात्मकता से कटी हुई शिक्षा - व्यवस्था । निरुद्देश्यता के भंवर में ऊभ - चूभ करती हुई विध्वंसक युवक- शक्ति... ...... जीने के साधनों का केन्द्रीयकरण और दूसरों के रक्त पर पलता हुआ सुख - सुविधाओं पर जन्म- सिद्ध अधिकार किये हुए एक वर्ग .... रोज होती हुई हत्याएं और उनका संत्रास .... ' नई कहानी ' (स्वातंत्र्योत्तर कहानी) का यही संसार है और उसमें अभिव्यक्ति पाती हुई मानसिकता से गुजरने वाली भीड़ है ...... । "

(सुरेन्द्र — नई कहानी : प्रकृति और पाठ - नई कहानी और उसकी प्रकृति , पृ०४१-४२)

९- राजेन्द्र यादव — एक दुनिया : समानान्तर , पृ०२६

१०- कमलेश्वर — नयी कहानी की भूमिका , पृ० १६९

११- डॉ० लालचन्द गुप्त ' मंगल ' — नई कहानी पर अस्तित्ववाद का प्रभाव, पृ०२४६

१२- सुरेश सिन्हा — नई कहानी का कलात्मक परिपार्श्व और जीवन-दृष्टि लेख - माध्यम , जनवरी १९६८ पृ० ७९-८०

१३- डॉ० गंगाप्रसाद विमल — समकालीन कहानी का रचना - विधान , पृ०६४

१४- " मेरा आग्रह रहा है कि लेखक अपना अनुभूत ही लिखे । "
(अज्ञेय – शरणार्थी की भूमिका)

१५- " हर बाहरी सिद्धान्त , सन्देश और आदर्श झूठ है – लेखक की आस्था और कमिटमेन्ट इनमें से किसी को नहीं मिलनी चाहिए। वह किसी के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होगा – होगा तो सिर्फ अपने प्रति । वह हर सिद्धान्त , हर राजनीति , हर दर्शन और हर सामाजिक जिम्मेदारी से ऊपर है । इन धरातलों पर उससे कुछ भी अपेक्षा करनी उसकी विशिष्टता पर सन्देह करना है , उसे छोटा करना है – वह तो कार्लाइल का हीरो , शोपेन हॉवर का जीनियस और नीत्से का सुपरमैन है । अरविंद का सुपरमाइन्ड है जो उसका मन होगा वही लिखेगा । अपनी अनुभूति के अलावा कुछ भी लिखना आदेशित और आरोपित होगा । "
(राजेन्द्र यादव – एक दुनिया : समानान्तर , पृ०२५)

१६- राजेन्द्र यादव – एक दुनिया : समानान्तर , पृ० २६-२७

१७- राजेन्द्र यादव – किनारे से किनारे तक , पृ० १२

१८- डॉ० नगेन्द्र – नई समीक्षा : नये सन्दर्भ , पृ० ८३

१९- " हर जीवित इन्सान के चेहरे पर एक कहानी लिखी रहती है , जो उसके चेहरे की झुर्रियों में , उसकी पलकों के निमिषों में और उसके माथे की सलवटों में पढ़ी जा सकती है । "
(मोहन राकेश – नये बादल की भूमिका , पृ० ५)

२०- सुरेश सिन्हा – कई आवाजों के बीच की भूमिका , पृ० ७-८

21- '' वह कौन सी अनुभूति है जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है ? वह उस क्षण की अनुभूति है जब विकटतम घृणा तुम्हारे सम्पूर्ण अन्तर को, तुम्हारे सारे व्यक्तित्व को आच्छन्न कर देती है और तुम्हें एक अपूर्व सम्वेदना में डुबो कर तुम्हारी चेतना को झकझोर देती है। वह क्षण, जिसमें तुम्हें स्वयं अपनी सुखानुभूति घृणास्पद लगने लगते है, जिसमें अपने विवेक और अपनी मांगलिक प्रवृत्ति के प्रति भी तुम्हें विरक्ति होने लगती है। ''

(इलाचन्द्र जोशी - विवर्तमयी प पृ० १५-१६)

22- '' इन नये कहानीकारों ने बाद में चलकर प्रत्येक कुण्ठा, निराशापूर्ण घुटन को लेकर सेक्स से जोड़ दिया और वे अपने को अधिकाधिक संकुचित करते गये, जिससे ह्रासोन्मुख एवं प्रतिक्रियावादी तत्वों को अधिक प्रश्रय मिलने लगा और कहानियों का समूचा दौर एक स्वस्थ बिन्दु से प्रारम्भ होकर विघटनकारी दिशा की ओर अप्रत्याशित रूप से मुड़ गया। इससे प्रत्येक जागरूक एवं प्रबुद्ध पाठक का विस्मय में रह जाना स्वाभाविक ही था। ''

(डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- आधुनिक कहानी का परिपार्श्व, पृ०१०५)

23- कमलेश्वर - नई कहानी की भूमिका, पृ० १९

24- डॉ० शम्भूनाथ सिंह का लेख - आलोचना जनवरी १९५६ पृ० ६२

:: अध्याय - ६ ::

कथ्य और कथानक का प्रयोग, महत्व तथा पारस्परिक सम्बन्ध निरूपण

कथ्य - प्रयोग और महत्व :- प्रत्येक रचनाकार किसी न किसी अनुभूति विचार अथवा आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होने पर ही रचना-कर्म में प्रवृत्त होता है। उसकी वही अनुभूति या मूलसंवेदना कथ्य की संज्ञा से अभिहित होती है। कथ्य का प्रस्तुतीकरण लेखक के जीवन-दर्शन अर्थात् दृष्टिकोण का साहित्यिक रूपान्तरण होता है। लेखक का दृष्टिकोण ही कृति के कथ्य का निर्धारण करता है। जब परिस्थितिवश दृष्टिकोण में परिवर्तन घटित होते हैं तो कथ्य में परिवर्तन स्वतः ही दृष्टिगोचर होने लगता है। हिन्दी उपन्यास-साहित्य का इतिहास इस सत्य का उद्घाटन करता है कि उसके विकासक्रम,कथ्य में, मौलिक दृष्टिकोण के कारण स्पष्ट क्रान्तिकारी प्रयोग हुए हैं। आधुनिक उपन्यासों के बाह्याकार और उनकी अभिव्यक्ति के प्रकार में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है उसके मूल में युगानुरूप परिवर्तित कथ्य ही क्रियाशील है, क्योंकि कथ्य ही शैली और शिल्प का निर्णायक होता है। उपन्यास का कथानक कथ्य के अनुरूप ही होता है अतएव इस दृष्टि से उसका अपना विशेष महत्व है।

प्रेमचन्दोत्तर औपन्यासिक कथ्य की प्रयोगात्मकता उसकी अपनी पूर्ववर्ती परम्परा के परिप्रेक्ष्य में अधिक सुविधा पूर्वक स्पष्ट हो सकेगी। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकार किसी सीमा तक सुधारक और आलोचक ही रहे हैं किन्तु आज उपन्यास का कथ्य सुधार और आलोचना न हो कर मानव जीवन और उसके अन्तर्मन की विवेचना करना बन गया है। यही कारण है कि आधुनिक उपन्यासों में कथ्य के अनुकूल कथा में हेर फेर, निष्कर्ष, पात्रों का निर्माण तथा नाम करण देखा जाता है[१]। इनमें कथ्य का विकास स्वाभाविक क्रम से हुआ है।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य की मूल प्रेरणा सामाजिक जीवन दृष्टि है जो समय के साथ अन्य विचारधाराओं से प्रभावित हो और नया रूप ग्रहण करती आयी है। समाज में स्पष्ट दो विचारधारायें क्रियाशील हैं। एक विशुद्ध सामाजिक विचार धारा है जो हिन्दी में प्रारंभिक उपन्यासों से प्रारंभ हुई और आज भी उपन्यासों में अनवरत रूप से प्रवाहित हो रही है। इस विचार धारा में समष्टि के मंगल अर्थात् लोक-कल्याण की भावना का प्राधान्य है। इसमें व्यक्ति का स्थान गौण है।

लोक - कल्याण हेतु इन उपन्यासों में आदर्शवादी विचार धारा की प्रधानता रहती है। यह विचारधारा मानव को ऊँचे उठा कर उन मूल्यों की स्थापना या समर्थन करती है जहाँ केवल मानव-कल्याण की भावना ही प्रधान रहती है। मानव सर्वोपरि है उसका कल्याण समाज का कल्याण है। फणीश्वर नाथ रेणु कृत " जुलूस और लक्ष्य ," अमृत लाल नागर कृत " महाकाल ", यज्ञदत्त शर्मा कृत " रंगशाला ", रांगेय राघव कृत घरौंदे "," जब तक पुकारूँ ", विषाद ", " मठ ", और धरती मेरा घर ", इलाचन्द्र जोशी कृत " अहाज का पंछी ", " मुक्ति पथ ", उदय शंकर भट्ट कृत " नयी मोड़ "," डा० शेफाली ", एवं भगवती प्रसाद वाजपेयी कृत "पिपासा " जैसे उपन्यासों का कथ्य इसी विचारधारा का प्रतिफलन है। युग- परिवर्तन के साथ ही समाज की परम्परायें, मान्यतायें, मर्यादायें एवं आस्थायें मूल्य हीन होती गईं। इस लिए युग-धर्म एवं युग-सत्य के साथ चलने के लिए एवं व्यक्ति-हित को देखते हुए परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ना आवश्यक समझा गया जिससे कि व्यक्ति अधिक स्वतंत्र और सुखी जीवन बिता सके। नैतिक मूल्य, विवाह और प्रेम सम्बन्धी मान्यतायें, नारी अधिकार और स्वतंत्रता, व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं पर अधिक स्वतंत्रता पूर्वक विचार हुआ एवं संकीर्ण सामाजिक विचारधाराओं का उदारता पूर्वक विस्तार किया गया जिसे नागार्जुन कृत " नयी पौध ", उदय शंकर भट्ट कृत " सागर लहरें और मनुष्य " आदि उपन्यासों में देखा जा सकता है। इस नयी विचारधारा के परिणाम स्वरूप व्यक्ति अधिक स्वतंत्र, उदार तथा प्रगतिशील बना।

प्रगतिशील विचारधारा के परिणाम स्वरूप सामाजिक रूढ़ियाँ, मूल्य-मर्यादायें एवं आस्थायें ढीली अवश्य पड़ीं किन्तु व्यावहारिक रूप में यह विचारधारा सफल नहीं हो पाया। व्यक्ति की समस्याओं का मूलाधार तो उसकी आर्थिक परतंत्रता है जिस पर प्रहार नहीं हुआ। यदि व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र नहीं होगा तो वह अनवरत शोषण एवं दासता का शिकार बना रहेगा। नारी जीवन की सभी समस्यायें इसी का परिणाम हैं। आर्थिक रूप से परतंत्र होने के कारण ही नारी को पुरुष की दासता, अत्याचार एवं नैतिक मर्यादाओं की शृंखला को प्रत्येक- दशा में स्वीकार करना पड़ता है। जब तक व्यक्ति को आर्थिक स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं होगी उसका समाज द्वारा शोषण होता रहेगा। इस प्रकार यह समाजवादी विचारधारा है जो समाज तथा जीवन में प्रत्येक क्षेत्र तथा स्तर पर क्रान्ति का आवाहन करती है। समाज - वादी विचारधारा से प्रेरित कथ्य को ले कर लिखे गये उपन्यासों में यशपाल कृत "दिव्या", भगवती चरण वर्मा कृत "तीन वर्ष", नागार्जुन कृत "बलचनमा", "कुंभी पाक", "वरुण के बेटे" और भैरव प्रसाद गुप्त कृत "गंगा मैया", "जंजीरें और आदमी" आदि प्रमुख हैं।

निरन्तर परिवर्तन शील युग-सत्य को वहन करने की सामर्थ्य न होने के कारण समाज की कठोर सीमायें टूटने लगीं। व्यक्ति अपनी समस्त परतंत्रता और बंधनों को तोड़ कर समाज में अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ उभरने लगा। व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप क्या है ? उसके बाह्यावरण की प्रेरक शक्तियाँ कौन सी हैं जो प्रत्यक्ष दृष्टिगत नहीं होतीं ? इन व्यक्ति सम्बन्धी कतिपय प्रश्नों का समाधान मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर खोजा जाने लगा। फ्रायड, एडलर और युंग के सिद्धान्तों के आधार पर व्यक्ति के अन्तर्मन का अन्वेषण होने लगा। परिणाम स्वरूप इस काल के लिखित उपन्यासों के नायकों में फ्रायड की काम भावना और एडलर की हीनता ग्रंथि का प्रभाव स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आने लगा। इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय और राजकमल

चौधरी के उपन्यासों में नायक काम भावना और हीनता ग्रन्थि से ग्रसित है [2]। इतना ही नहीं, मनोविज्ञान की सहायता से व्यक्ति के व्यक्तित्व की ऐसी भीतरी पर्तें खुलती गई जो सत्य होते हुये भी स्वीकार्य नहीं है। पुरुष नारी के प्रति ही नहीं, नारी पुरुष के प्रति ही नहीं आकर्षित होते, अपितु इनमें समलिंगिक आकर्षण (होमोसेक्स) भी पाया जाता है [3]। इस प्रकार मनोविज्ञान की सहायता से अहं, हीनता-ग्रंथि, यौन-समस्यायें आदि को उपन्यासों का कथ्य बनाया जाने लगा और व्यक्ति एक नये संदर्भ में सामने आया। उपन्यास अपनी स्वाभाविकता और यथार्थवादिता के कारण जीवन के अधिक निकट आ गया।

युग - परिवर्तन के साथ युग धर्म और युग- सत्य भी परिवर्तित होता है परिणाम स्वरूप से मानव-मूल्य जो संस्कृति के आधार स्तम्भ होते हैं टूटने लगते हैं। व्यक्ति नये युग-सत्य में प्राचीन धर्म, ईश्वर, सामूहिक विश्वास, आस्थाओं, मान्यताओं एवं स्थापनाओं को वहन कर नहीं चल सकता। फल-स्वरूप, एक ऐसी स्थिति आई जिसमें मूल्य-हीनता का बोध जाग्रत हुआ। निरर्थक विद्रोह की आवाजें बुलन्द हुईं। आधुनिक उपन्यासों में मूल्य-विघटन, मूल्य-संक्रान्ति, मूल्य-शून्यता, मूल्य- विहीनता और मूल्य निरपेक्षता की स्थिति आ गई जिसे बाह्य जगत में राजनीतिक विडंबनाओं, आर्थिक विसंगतियों और सामाजिक विषमताओं के रूप में देखा जा सकता है। व्यक्ति के आत्मिक स्तर पर यह मूल्य-हीनता उसकी कुंठा, भय, संत्रास, अलगाव, संशय, आध्यात्मिक बांझपन और पुरुष-नारी के समस्त सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों तथा यौन स्वच्छंदता के रूप में दिखाई पड़ती है। आस्था और विश्वास का स्थान बुद्धि और तर्क ने ग्रहण कर लिया तथा जीवन की शाश्वत भावनाओं की परख का आधार तर्क बन गया। बुद्धिजीवी प्राणी आस्था-हीन हो कर न तो प्राचीन मूल्यों की ग्रहणशीलता रख सका और न ही दृढ़ता पूर्वक किसी नये मूल्य की स्थापनायें ही कर सका। स्थिति यह हुई कि प्राचीन मूल्य टूट तो गये पर नये निर्मित न हो सके [4]।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी उपन्यासों में सामयिक प्रवृत्तियों के अनुरूप कथ्य में परिवर्तन होता रहा है। बदलती परिस्थितियों में मानव-जीवन में ले कर जो अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित हुए उन्हें विवेच्य युगीन उपन्यासों के कथ्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। अब उपन्यासों का कथ्य मनोरंजन, रोमांस, आदर्शवादिता, उपदेशात्मकता एवं सामयिक यथार्थवादिता के प्रभावों की मंजिल पार कर जीवन के साथ कदम मिला कर गतिशील होने लगा। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार मानव-मन में ज्वार-भाटे की भाँति उठते-गिरते, बनते-बिगड़ते अनेक प्रकार के भावों को कथ्य रूप में प्रस्तुत करने लगे। कतिपय कुछेक अत्याधुनिक उपन्यासों में तो एक मनःस्थिति, अनुभूति का क्षण अथवा कोई विचार-बिन्दु मात्र को कथ्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। अनेकानेक उपन्यासकारों ने नग्नता की ओट में आधुनिकतावादी नारों का आश्रय लेकर कथ्य सम्बन्धी नूतन प्रयोग किये हैं। इन आधुनिकतावादी लेखकों ने यथार्थ के नग्न-स्वरूप को कथ्य के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है।

<u>कथानक प्रयोग तथा महत्व</u> :- कथानक उपन्यास के मूलतत्व के रूप में स्वीकार्य रहा है। यह उपन्यासकार के कथ्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। कथ्य केन्द्रीय भाव है जो कहानी का प्राण है और इसी भाव को केन्द्र बना कर उसके इर्द-गिर्द खड़ी की गई इमारत कथानक है। परन्तु उपन्यास का मुख्य तत्व ही न हो कर उसकी रचनात्मकता का आधार भी है। देशी और विदेशी सभी साहित्य-चिन्तकों ने कथानक को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया है। पाश्चात्य उपन्यास-शास्त्री ई० एम० फार्स्टर ने स्पष्ट रूप से इस तथ्य की घोषणा कर कथानक को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है कि उसके बिना उपन्यास की रचना संभव ही नहीं है[५]। फार्स्टर ने सिद्ध किया है कि यदि हम तार्किक और बौद्धिक दृष्टि से विचारकों को तथा उपन्यास के तत्वों का आपेक्षिक और आनुपातिक महत्व देखें तो हमें कथानक को ही उपन्यास मान लेना पड़ता है। फार्स्टर के इस मत से सहमति हो अथवा न हो, परन्तु इतना निश्चित है कि कथानक के महत्व के विषय में उसकी विचारधारा सर्वथा उचित है।" उपन्यास

"उपन्यास में कथानक का वही स्थान है जो शरीर में हड्डियों का। जिस प्रकार शरीर के लिए मांसपेशियाँ आदि की आवश्यकता आवरण के रूप में होती है, उसी प्रकार भाषा, शैली और चरित्र चित्रण की उपन्यास में। बिना हड्डियों के जैसे मांस-पेशियाँ खड़ी नहीं रह सकती, वैसे ही बिना कथानक के किसी उपन्यास को रूपाकार नहीं किया जा सकता।

जैसे-जैसे हिन्दी उपन्यासों का कथ्य सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित होता गया उसी के अनुरूप कथानक-शिल्प में परिवर्तन और प्रयोग हुये। विषय की नवीनता नये शिल्प की माँग करती है क्योंकि शिल्प कोई ऐसा ढाँचा नहीं जिसमें प्रत्येक कथ्य रूपायित हो सके। युगीन परिस्थितियों ने विभिन्न विचारधाराओं को जन्म दिया और परिणाम-स्वरूप इन विचारधाराओं पर केन्द्रित विभिन्न जीवन-दर्शन भी सामने आये जिनके आधार पर जीवन-जगत की विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण और समाधान किया जाने लगा। नये कथ्य के लिए प्रचलित कथानक-शिल्प अनुपयोगी और अपूर्ण प्रतीत हुआ। कथ्य के अनुरूप कथानक के विकास और गठन में नये-नये प्रयोग किये गये। कथा कहने के पुराने ढंग में परिवर्तन हुआ। उपन्यासकार कथाकार न रह कर तटस्थ पर्यवेक्षक बन गया। कथा में अधिक विश्वसनीयता और निर्वैयक्तिकता का समावेश हुआ और कथा परोक्ष रूप से कही जाने लगी। आत्मकथा, पत्र-शैली और डायरी-शैली में कथा प्रस्तुत की जाने लगी।

हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में घटना की बहुलता होती थी किन्तु आज घटनाओं का महत्व नहीं रह गया और जो घटनायें हैं भी वे प्रत्यक्ष न घट कर स्मृति में घटती हैं। शेखर: एक जीवनी, धूमकेतु: एक श्रुति, यह पथ बन्धु था, डूबते मस्तूल, डाक बंगला, उखड़े हुये लोग, उस पार का अन्धेरा, सूरजमुखी अन्धेरे के, शवयात्रा, अन्तराल तथा मानस हंस प्रभृति उपन्यासों में सब घटनायें स्मृति में सामने आती हैं। घटनाओं के स्मृति में घटने के कारण उपन्यास की कालावधि भी सीमित

ही गई है और उसमें नाटकीय संकलनत्रय भी मिलने लगा है। जैसे: एक जीवनी, डूबते मस्तूल, चांदनी के खण्डहर, सूरज का सातवां घोड़ा, बारह घन्टे, काठ का उल्लू और कबूतर, सामर्थ्य और सीमा, उखड़े हुये लोग, सोया हुआ जल, सेठ बांकेमल तथा एक कहानी अन्तहीन आदि उपन्यासों के कथानक सीमित कालावधि में आबद्ध किये गये हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि विवेच्य युग में विस्तृत कालावधि को ले कर लिखे गये उपन्यासों का अभाव है। " भूले बिसरे चित्र ", सबहीं नचावत राम गोसाईं "," और " जुगुलबन्दी " आदि उपन्यासों का कथानक की कालावधि विस्तृत है।

प्रारंभिक उपन्यासों में उपन्यासकार सर्वज्ञ की भांति कथा और पाठक पर पूर्ण नियंत्रण रखता था। वह बीच- बीच में कथा में आ कर पाठक को वस्तु-स्थिति का बोध कराता रहता था और अपने भी विचारों को प्रकट करता रहता था। " सूरज का सातवां घोड़ा "," काठ का उल्लू और कबूतर ", लाठी कुर्सी की आत्मकथा "," सूने कमरे ;" उखड़े हुए लोग "," कब तक पुकारूं "," हुजूर ", " नागफनी का देश " एवं " कठपुतली " प्रभृति उपन्यासों में कथा का प्रस्तुती करण परम्परागत रूप में हुआ है।

आलोच्य युग का उपन्यासकार अपेक्षा कृत अधिक आत्म विश्लेषक हो गया है। फलतः आधुनिक उपन्यासों में आत्म कथात्मक शैली को प्रश्रय मिला। जैनेन्द्र कृत " सुखदा ", इला चन्द्र जोशी कृत " संन्यासी "; भगवती प्रसाद वाजपेयी कृत " चलते - चलते "; नरेश मेहता कृत " धूम केतु ;" एक श्रुति, नागार्जुन के " बलचनमा "; सुरेश सिनहा के " सुबह अन्धेरे पथ पर "; निर्मल वर्मा के " वे दिन " और रमेश बक्षी के " किस्से ऊपर किस्सा " आदि उपन्यासों की कथा आत्मकथात्मक या " मैं " शैली में प्रस्तुत हुई है। प्रथम पुरुष के अतिरिक्त कृष्णा सोबतीकृत " मित्रो मरजानी "," सूरजमुखी अन्धेरे के ", ममता कालिया के " बेघर " तथा सुरेश सिनहा के " पत्थरों का शहर " आदि उपन्यासों की कथा को प्रस्तुत करने के लिए तृतीय पुरुष -शैली का प्रयोग भी मिलता है।

आधुनिक युग के अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासों में लेखक कथा का प्रस्तुत कर्ता मात्र है। वह किसी पात्र का निर्माण करके उसी के माध्यम से अपनी बात कह कर अपनी तटस्थता घोषित करता है। "बाण भट्ट की आत्म-कथा", "सूरज का सातवां घोड़ा" और "सेठ बांके मल" आदि अनेक उपन्यासों में यह शिल्प देखा जा सकता है। आज उपन्यास में विभिन्न पात्रों के माध्यम से विभिन्न दृष्टिकोणों से कथा प्रस्तुत की गई है। इतना ही नहीं एक ही पात्र पर विभिन्न लेखक विभिन्न दृष्टिकोण से लिखते हैं [7]। पात्रों, घटनाओं, विचारों के आधार पर कथा का परिच्छेदीकरण किया गया है [8]। कथा का प्रस्तुतीकरण विभिन्न खण्डों में विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत हुआ है [9]। बीच-बीच में अन्तरालों में कथा का बोध होता है [10]।

कथाकार कथा कहने का उत्तरदायित्व स्वयं पात्रों पर छोड़ देता है। पात्र स्मृत्यवलोकन प्रणाली, चेतना-प्रवाह, डायरी शैली, पत्र-शैली तथा उदाहरण शैली द्वारा अपने अन्तर्मन की अभिव्यक्ति करता चलता है [11]। पात्रों पर कथा कहने का उत्तरदायित्व होने के परिणाम स्वरूप कथा-क्रम और धारा-वाहिकता में व्याघात पहुंचा है। प्रारंभ, मध्य और अन्त का कोई नियम नहीं रह गया क्यों कि कथा मानव के अन्तर्मन के सूक्ष्म भावों से सम्बद्ध है। ये भाव टुकड़े-टुकड़े हो कर सामने आ जाते हैं [12]। व्यक्ति खण्ड-खण्ड हो कर जाता है [13]।

मोहन राकेश कृत "अन्तराल" और अमृत लाल नागर कृत "मानस हंस" आदि उपन्यासों में अनेक पात्र कथा कहते देखे जाते हैं। "चलते-चलते" और "शहर में घूमता आइना" आदि उपन्यासों में कथा नहीं अनेक कथायें चलती हैं। कथा में से कथा [14] उपन्यास में से उपन्यास निकलते हैं [15]। देश काल और वातावरण पात्र के रूप में उपन्यासों में आने लगा है। अब उपन्यासों में कथानक के स्थान पर स्थितियां दृष्टिगत होती हैं। घटनाओं के स्थान पर भावों का चित्रण हुआ है [16] तथा इन सब परिवर्तनों ने उपन्यास के कथानक को प्रभावित किया है।

।२०५।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों का उद्देश्य कथा कहना नहीं रह गया है। वह पात्रों के माध्यम से मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन अथवा नये मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। यही कारण है कि कथा में पात्रों का स्थान अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। आज पात्र कथा को गति देते हैं। इस दृष्टि से राम कुमार 'भ्रमर' के 'गठे गठे पानी' तथा लक्ष्मी कान्त वर्मा के 'टेरा कोटा' आदि उपन्यासों को देखा जा सकता है। जहाँ गिरधर गोपाल के 'चांदनी के खण्डहर' तथा उपेन्द्र नाथ अश्क के 'शहर में घूमता आईना' आदि उपन्यासों में समूह-पात्रों का चित्रण हुआ है वहीं नायक रहित उपन्यासों की सर्जना भी हुई है।

आधुनिक उपन्यासों का कथ्य व्यक्ति के जीवन का बिखराव, मानव -मन की विभिन्न अनुभूतियाँ, प्रतिक्रियायें और संवेदनायें हैं इस लिए इन उपन्यासों के कथानक में घटना-क्रम का स्थान नहीं रह गया। कथानक में घटनाओं का अभाव होने लगा। व्यक्ति वर्तमान में रह कर भी अपनी स्मृतियों में जाता है, भटकता है और खो जाता है। जीवन में घटनायें क्रम में नहीं घटतीं। अतीत की घटनायें व्यक्ति की स्मृति में बिखर कर आती हैं। व्यक्ति के विचारों में क्रमबद्धता नहीं है, जीवन की घटनाओं में शृंखला नहीं है और ऐसे में व्यक्ति जीने के प्रयास में टूट-टूट कर जीने के लिए प्रयत्नशील है। इसी लिए आधुनिक उपन्यासों में क्रमबद्धता और विशृंखलित कथानक प्राप्त होता है। टूटे व्यक्तित्व की खण्ड-खण्ड हुई संवेदनाओं और अनुभूतियों का प्रतीकात्मक चित्रण ही आधुनिक उपन्यासों के कथ्य -रूप में प्रस्तुत हो रहा है। समय विपर्यय, प्रतीकात्मकता, पूर्वदीप्ति,, दृश्य-विधान शैली, कथाक्रमोच्छेदक पूर्व-स्मृति, फ्लैश बैक पद्धति, नाटकीयता तथा बौद्धिकता ने कथानक की धारा-वाहिकता को अवरुद्ध कर उसे विशृंखलित कर दिया है। कथा आदि, मध्य और अन्त की विभिन्न स्थितियों में से होती हुई विकसित नहीं होती है। वर्तमान में अन्त से कथा प्रारम्भ हो कर अतीत में जा कर पूर्ण होती है।

अब उपन्यास में कथा का स्थान गौण हो गया है। कथा व्यक्ति से नहीं भाव से और स्थितियों से सम्बन्धित है[20]। उपन्यासों में प्रमुख कथा के साथ कई कथायें प्रमुख रूप से समानान्तर चलती हैं[21]। इन कथाओं में एक पूरा वातावरण बोलता है - एक पूरा युग बोलता है[22]। यही कारण है कि आधुनिक उपन्यासों में कथानक का ह्रास परिलक्षित होता है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कृत 'सोया हुआ जल', फणीश्वर नाथ रेणु कृत 'मैला आंचल', कृष्णा सोबती कृत 'सूरज मुखी अंधेरे के' और मणिमधुकर कृत 'सफेद मेमने' आदि उपन्यासों में तो कथानक का अस्तित्व ही संदिग्ध प्रतीत होता है।

अस्तु यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासकारों ने युगानुरूप परिवर्तनशील कथ्य की प्रभावपूर्ण प्रेषणीयता के लिए कथानक शिल्प में भी विभिन्न प्रयोग किया है। समय की आवश्यकताओं के अनुरूप उपन्यासकारों की आन्तरिक प्रेरणा ने उन्हें अपनी कृतियों के लिए नये कथ्य के चुनाव में प्रवृत्त किया। युग-परिवर्तन नये कथ्य को जन्म देता है और ये नये कथ्य अपनी अभिव्यक्ति के लिए नये शिल्पविधान को। कथानक-शिल्प के अन्तर्गत होने वाले सभी प्रयोग इसी के परिणाम हैं। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि भाव परिवर्तन के साथ-साथ भाव प्रकाशन के रंग-ढंग में भी परिवर्तन आ जाता है। भाव जब आते हैं तो अपनी सानुकूल रचना - प्रणाली, तदर्थ रूप व्यंजक शैली स्वतः साथ लिये आते हैं। इसी लिये आधुनिक उपन्यासों के कथानक को अभिव्यक्त करने के लिए आत्मकथात्मक, कहानी मूलक, लोक कथात्मक, जीवनी परक, आत्म-संस्मरणात्मक, डायरी परक, पत्रात्मक, संलापात्मक, प्रतीकात्मक, रिपोर्ताज, स्वप्न-विश्लेषण, पूर्वदीप्ति आदि विभिन्न शैलियों का प्रयोग हुआ है। इतना ही नहीं एक ही उपन्यास में अनेक शिल्प-विधियों के प्रयोग हुये हैं[23]।

<u>कथ्य और कथानक का पारस्परिक सम्बन्ध निरूपण :-</u> किसी भी रचना में कथ्य का अपना महत्व है और रचना का महत्व कथ्य के प्रभावपूर्ण संप्रेषण में है। किसी वस्तु की कलात्मकता उसके बाह्य रूप पर ही निर्भर है।

किसी कला का बाह्य रूप उसके आन्तरिक रूप का आभास देता है। वह रूप जितना आन्तरिकता के अनुकूल होगा, उतना ही श्रेष्ठ भी। कला की प्राथमिक आवश्यकता यह है कि जो कुछ अभिव्यक्त किया जाय (कथ्य) उसकी आकृति कलाकार के मस्तिष्क से संबद्ध हो। अभिव्यक्ति मात्र के लिए यह आवश्यक है कि कलाकार के मानस पटल पर उसका स्वरूप प्रकट हो, बाह्य जगत को दिखाने के पहले स्वयम् वह उसके दर्शन करे। यह दर्शन कल्पना, बुद्धि और विवेक की साधना - शक्तियों के फलस्वरूप ही प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक कलाकृति महत्व तभी होता है जब उसके अन्तर में कृतिकार की चैतन्य आत्मा फलकती है और जब विवेक -प्रसूत एक दर्शन रक्त प्रवाह की भांति उस कला-शरीर को सजीव बनाता है।

युगीन परिवेश के अनुसार उपन्यास का कथ्य बदलता रहता है क्योंकि उपन्यास मानव -जीवन के अधिक निकट होता है। उपन्यासकार को अपने उपन्यास के कथ्य के अनुकूल कथानक-शिल्प का अन्वेषण करना पड़ता है। नवीन कथ्य अपने लिए अभिव्यक्ति के नये माध्यम की मांग करता है। उपन्यास-कला की रचना - विधि का निर्धारण मूलत: उसके कथ्य पर अवलम्बित है। कथ्य अपनी नवीनता के कारण युग प्रचलित परम्परानुमोदित कथानक के अनुकूल सिद्ध नहीं हो सकता। इस स्थिति में ही उपन्यासकार को अभिव्यक्ति के नये माध्यमों के अन्वेषण की समस्या उठती है। नये कथ्यों को अभिव्यक्ति देने के लिए लेखक नव्यतर रचना पद्धतियों को ग्रहण करता है और इस तरह शिल्प में प्रयोगों की अनिवार्यता सहज ही रच जाती है[२४]।

प्रत्येक युग का अपना सत्य होता है, जिसके सन्दर्भ में जीवन-मूल्य और जीवन - दर्शन रूप ग्रहण करते हैं। युग परिवर्तन के साथ ही उसके मूलभूत सिद्धान्तों, आचारों तथा सन्दर्भों में अन्तर अवश्यम्भावी हो जाता है।

युग -सत्य को वहन करने के लिए कथ्य की नवीनता वांछनीय है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए तदनुकूल माध्यम की। कथ्यकी सहज संप्रेषणीयता ही उपन्यासकार का सफलता है।

वस्तुतः कथ्य और कथानक का अनिवार्य सम्बन्ध है। दोनों का अलगाव अत्यन्त कठिन है। कथ्य को कथन से अलग नहीं किया जा सकता[२५]। दोनों मिलकर एक संघटित आत्मिक अनुभव की इकाई बनते हैं जिसको कला अभिव्यक्त करती है। वस्तुतः कथ्य और कथानक में वही सम्बन्ध है जो आत्मा और शरीर का है। एक को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता और दोनों के संतुलित समन्वयन से श्रेष्ठ उपन्यास की सर्जना संभव है। जैसे वाक् और अर्थ सम्पृक्त रहते हैं उसी प्रकार कथानक और कथ्य भी परस्पर जुड़े होते हैं। बिना कथानक के कथ्य की अभिव्यक्ति संभव नहीं है और बिना कथ्यात्मक जीवन दृष्टि के कथानक का कोई अर्थ नहीं। जिस प्रकार मनुष्य, शरीर और आत्मा की स्थिति होती है उसी प्रकार रचना, कथानक और कथ्य की।

उपन्यासकार की अनुभूति, अनुभव, संवेदना और युग-बोध मिल कर उसके कथ्य का निर्धारण करती है। कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए वह कथानक का निर्माण करता है। इसके अन्तर्गत उन सभी घटनाओं या व्यापारों को समाविष्ट किया जाता है जिनसे उपन्यास का सम्बन्ध होता है। कथानक में समाविष्ट घटनायें पात्रों के द्वारा ही घटती हैं जो उन घटनाओं से प्रभावित भी होते हैं। इन्हीं पात्रों के क्रिया कलापों से कथानक का निर्माण एवं कथ्य का प्रतिपादन होता है। कथानक में पात्रों की स्थिति अनिवार्य है। उपन्यास का सम्पूर्ण कलेवर मूलतः कथानक से ही निर्मित होता है। व्यापक अर्थ में उपन्यास में वर्णित घटनाओं के साथ ही साथ दृश्य, पात्र-चित्रण, संवादादि सभी कथानक के सहकारी अंग होते हैं। प्रत्येक उपन्यासकार को अपने कथ्य की सफल अभिव्यक्ति हेतु कथानक की रचना करते समय उन्हीं घटनाओं, दृश्यों, पात्रों के कार्यव्यापारों एवं संवादों को काम में लाना चाहिए जिनसे उसकी

अनिवार्य संगति हो। कथानक के अंग प्रत्यंग में कथ्य की वही स्थिति रहनी चाहिए जो शरीर के अंग-प्रत्यंग में प्राणों के रहने से होती है। जैसे शरीर के प्रत्येक अवयव स्फुरण शीलता की स्थिति में प्राण के अस्तित्व की गवाही देते रहते हैं उसी प्रकार कथानक के प्रत्येक सहकारी अंगों से कथ्य की ध्वनित होते रहना चाहिये। कथाकार को अपनी कृति के कथ्य और कथानक में एक आद्यन्त संगति बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिए। "कहानी हो या उपन्यास, रचना जब अपने यथार्थ की आभ्यन्तरिक आवश्यकता और वास्तविक समस्याओं के दबाव से उद्भूत हो कर नहीं आती, अपनी चिन्तन - प्रक्रिया और व्यक्तित्व की समग्रता की प्रतिच्छाया नहीं बन जाती, तब तक न उसमें सजीवता आ पाती है, न शक्ति। जब चरित्र सपाट और अनदेखे हों, जब समस्यायें और परिस्थितियां उधार की और गढ़ी हुई हों, जब भाषा और भारी शब्दावली झूठी और उगलती हुई हो, तो रचना का सारा शिल्प सौन्दर्य श्मशान का सौन्दर्य लगता है।

उपन्यास मानव - जीवन का चित्र है जो अपने कथ्य में अनेक रूपता स्वीकार करता है। कथ्य के अनुरूप ही कथानक शिल्प का भी निर्माण होता है। इसी कारण उपन्यास के कथ्य में ही नहीं अपितु कथानक-शिल्प भी बदलता चलता है। कथ्य की सफल अभिव्यक्ति के लिए उचित कथानक ही नहीं, भाषा शैली भी आवश्यक है। निःसन्देह प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों ने युगानुरूप अधिक सच्ची संवेदनाओं को चुनकर अधिक प्रामाणिक अनुभवों को अपने कथ्य के रूप में चुनकर अधिक विश्वसनीय परिस्थितियों उन्हें प्रस्तुत किया है तथा कथानक का विकास और चरित्र-चित्रण की नवीन शैलियों का निर्माण किया है। कथ्य की समर्थ अभिव्यक्ति में शैली का विशेष महत्व होता है। वस्तुतः शैली लेखक के व्यक्तित्व का एक अविभाज्य और घनिष्ठ अंग है, उसे उसके विचारों से अलग नहीं किया जा सकता। सामयिक परिस्थितियों से अन्तर्गत उद्भूत नवीन विचारों को प्रतिपादित करने के लिए आलोच्यकालीन उपन्यासकारों तदनुरूप अनेक शैलियों का आविष्कार किया है जिन की चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है।

भाषा शैली का अनिवार्य अंग है। भावानुकूल भाषा में भी परिवर्तन होता चलता है। इस प्रकार भाव भाषा का और विशेष ढंग से भाषा का प्रयोग शैली विशेष का रूप निर्धारित करता है। भाषा इस प्रकार शैली का आधार बन जाती है। नवीन उपन्यासकारों ने अपने पात्रों की समर्थ अभिव्यक्ति के लिये तदनुकूल नयी भाषा का भी आविष्कार किया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग उपन्यासों के सृजन की दृष्टि से पर्याप्त धनी है। इस युग में अनेक पुराने ढंग के उपन्यासकारों ने भी औपन्यासिक रचनायें प्रस्तुत की हैं तथा बहुसंख्यक नवीन प्रतिभायें भी इस क्षेत्र में उतरी हैं और उतर रही हैं जो निरन्तर औपन्यासिक सृजन कर रही हैं। इन सभी प्रतिभाओं की कृतियों का विश्लेषण इस शोध-प्रबन्ध में संभव नहीं है। इस लिए आलोच्य युग के कतिपय महत्वपूर्ण उपन्यासकारों एवं उनकी विशिष्ट कृतियों के विश्लेषण का प्रयास किया जा रहा है जिसके माध्यम से विवेच्य युग के कथाकारों के कथ्य और कथानक के निर्वाह की सफलता- असफलता सामने आ सकेगी। इन विशिष्ट उपन्यासों के अध्ययन के मूल में इसी दृष्टि की प्रधानता है कि उपन्यासकार की कृति का जो कथ्य है, वही कथा या पात्रों के चरित्र की अन्तिम परिणति से ध्वनित हो रहा है कि नहीं। कथानक की कलात्मकता इसी बात में निहित है कि उसका सारा शिल्प कथ्य को अभिव्यंजित करे और कथ्य अपनी समग्रता में अभिव्यंजित हो जाय, यही सुविन्यस्त उपन्यास की पहचान भी है[२६]। जिन उपन्यासों में पात्रों के आचरण एवं कार्यव्यापार तथा कथा के द्वारा मूल कथ्य व्यंजित नहीं होता उसका कला की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रह जाता। कथानक शिल्प की सार्थकता कथ्य के अधिक से अधिक अनुकूल हो कर उसकी प्रभावपूर्ण प्रेषणीयता में निहित है। इसी बात को दृष्टि में रख कर हम किसी नयी तकनीक को गौरव दे सकते हैं।

<u>जैनेन्द्र कुमार</u> :- हिन्दी उपन्यास - साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द - युग में समाज और उसकी समस्या ही कथ्य के रूप में अभिव्यक्ति पाती

रही तथा जीवन का बाह्य पक्ष पुष्ट हो रहा था एवं व्यक्ति - चेतना कुंठित हो रही थी । एक ही मन:स्थिति में रहने से उपन्यास- साहित्य में नवोन्मेष का अभाव था । ऐसी ही परिस्थिति में जैनेन्द्र का उपन्यास - साहित्य में प्रवेश हुआ और हिन्दी कथा- साहित्य को विकास की एक नई दिशा मिली । उन्होंने व्यक्ति के अन्तर्गत एवं उसमें परिव्याप्त अन्त: संघर्ष को अपने उपन्यासों का लक्ष्य बनाया एवं व्यक्ति के सामाजिक जीवन के स्थान पर ही वैयक्तिक जीवन को ही कथा का आधार बनाया । सृष्टि के मूल स्तंभ " स्त्री-पुरुष" की समस्या को ले कर उन्होंने अपनी औपन्यासिक कृतियों की सर्जना की । " उनके लिए समाज मूल्यहीन रहा है, व्यक्ति की सभी समस्यायें भी मूल्यहीन रही हैं । उन्होंने यदि व्यक्ति का किसी समस्या का कोई मूल्य समझा है तो वह केवल उसके प्रेम, विवाह एवं सेक्स की । वह भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नहीं, वैयक्तिक अनुभूति के एक विशिष्ट स्तर पर, जो आज जड़ हो चुका है[७] ।"

अत:, जैनेन्द्र कुमार के साहित्यिक दृष्टिकोण को समझने के लिए उन्हीं के अपने विचारों का आश्रय लेना वांछनीय होगा ।

" साहित्य की कसौटी वह संस्कारशीलता है, जो हृदय से हृदय का मेल चाहती है और एकता में निष्ठा रखती है । जो सहृदय का चित्त मुदित करता है, वह साहित्य खरा है । संकुचित करता है, वह खोटा "[८] । अर्थात् साहित्य का वास्तविक लक्ष्य पाठक के हृदय - तंतुओं को अपने संस्पर्श से द्रवीभूत कर रसानुभूति कराना है । जो साहित्य इस उद्देश्य की पूर्ति में असमर्थ है वह वह व्यर्थ है एवं निरर्थक है । उपन्यास के सम्बन्ध में भी उनकी धारणा विचारणीय है - " वह जीवन में गति देने के लिए है । गति, यानी चैतन्यगति, चक्की की नहीं ------- उपन्यास का लक्ष्य ऊंचा है । जीवन को स्फूर्ति दे कर उसे ऊर्ध्वगामी बनाना उसका काम है और यदि जीवन के भीतर भेदों को सुलझाने का उसमें प्रयास है तो इसी लिये कि जीवन

अपनी जगह से छूटे और ऊपर उठने में समर्थ हो[२८]।

जैनेन्द्र व्यक्ति के मानस का अतल गहराइयों में प्रविष्ट हो कर आन्तरिक प्रवृत्तियों और संघर्ष को उद्घाटित करते हैं। वह व्यक्ति - मानस में परिव्याप्त द्विविधात्मक स्थिति को समाप्त कर नई दिशा प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। उनके सम्पूर्ण उपन्यासों की नायिकाओं के चरित्रानुशीलन से हम देखते हैं कि वे कर्तव्य से पति-परायण हैं, प्रेम से अपने प्रेमियों के प्रति समर्पिता हैं। उनका मानस प्रेम और कर्तव्य के इसी द्वन्द्व से उद्वेलित रहता है। यही अतीत (अवचेतन ?) में उनके विवेक बुद्धि का संघर्ष है। अपने प्रेमियों के प्रति भावातिरेक से वे उनके निकट बढ़ती ही जाती है किन्तु प्रेमियों के प्रति पूर्णतया आत्म - समर्पण करने से पूर्व ही उनका कर्त्तव्य उन्हें झकझोर देता है, और वे सीधी राह अपने पति के पास वापस आ जाती हैं। यहीं उनके मानसिक संघर्ष तथा विवेक -बुद्धि और इच्छा के पारस्परिक संघर्ष का अन्त आता है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने जैनेन्द्र कुमार को व्यक्तिवादी उपन्यासकार स्वीकार किया है -

" जैनेन्द्र की साहित्य सृष्टि व्यक्ति मुखी है। उनका सम्बन्ध सामाजिक जीवन के व्यापक सम्बन्धों से कम ही है। वे वैयक्तिक मनोभावों और स्थितियों के चित्रकार हैं -------- जैनेन्द्र सामाजिक जीवन से दूर जा कर जिस साहित्य की सृष्टि करते हैं, उसमें व्यक्ति के मानसिक और उसकी परि- स्थिति जन्य समस्याएं प्रमुख रूप से आती हैं[३०]।"

जैनेन्द्र कुमार एक सफल उपन्यासकार होने के साथ एक दार्शनिक भी हैं। वह अपने दार्शनिक विचारों को उपन्यास - रस से सिञ्चित कर उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत करते रहते हैं। व्यक्ति का " अहं " ही उसकी समस्त क्रियाओं का उद्गमस्थल है। इसी अहं का विसर्जन उनके औपन्यासिक-सृजन

का प्रधान - स्वर है। उनके उपन्यासों के सभी पात्रों का अहं- विसर्जन दो सन्दर्भों में होता है - प्रथमत: तो सामाजिक सन्दर्भ में जहां उनका " अहं " "पर " की पीड़ा का कारण होता है। उसमें स्व-हित की भावना का प्राधान्य होता है। दूसरे वैयक्तिक स्तर पर जहां व्यक्ति को " मैं " का अकेलापन कष्ट-कारक प्रतीत होता है। वह " स्व " को " पर " में विलीन करने के लिए उद्विग्न हो जाता है। दूसरे रूप में उन्होंने स्त्री - पुरुष - सम्बन्धों को अपने उपन्यासों का कथ्य बनाया। स्त्री अपने स्त्रीत्व में तथा पुरुष अपने पुरुषत्व में नितान्त एकाकी तथा अपूर्ण है। स्त्री-पुरुष में अपने अभाव को खोजती है, पुरुष स्त्री में भाव पाता है जिसे जैनेन्द्र ने अर्द्ध-नारी श्वर के रूप में अभिव्यक्त की है।

सामाजिक सन्दर्भ में जैनेन्द्र के उपन्यासों के पात्र अपने जीवन में अत्यधिक कष्ट झेलते हुए भी समाज की मंगल-कामना चाहते हैं। " त्याग-पत्र " की मृणाल तथा " कल्याणी " में कल्याणी पीड़ा को सहन कर ही स्वयं को समाज के प्रति समर्पित करती हैं। उनके नायकों में गांधीवादी जीवन-दर्शन का प्रधानसूत्र - आत्म पीड़न दिखाई पड़ता है, किन्तु हल्के रूप में या पूर्णतया परिवर्तित रूप में वे सभी अतृप्त वासना के शिकार हैं, जिससे उनके चरित्र में बिखराव दृष्टिगत होता है। उनका व्यक्तित्व खण्डित है तथा वे स्वयं में अपूर्ण हैं। जीवन में सम्पूर्णता पाने के लिए वे भटकते हैं। सामाजिक दृष्टि से वासनाजन्य अनुचित प्रेम समझी जाती है इस लिए जैनेन्द्र के उपन्यासों के ये नायक दार्शनिकता के आवरण से आच्छादित कर दिये गये हैं, ताकि उनका वास्तविक स्वरूप रहस्यमय ही बना रहे। वे समाज से परे अपनी कुण्ठा या वर्जना, अपने - आप में जीते हैं।

यही स्त्री - पुरुष की समस्या अथवा काम और श्रृंगार की समस्या तथा दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन जैनेन्द्र की प्राय: अधिकांश औपन्यासिक कृतियों का कथ्य है जिसे सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है।

सुनीता :- सुनीता जैनेन्द्र जी का चरित्र - प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यासों में तीन प्रमुख पात्र सुनीता, हरिप्रसन्न और श्रीकांत हैं जिनके व्यक्तिगत जीवन की अपनी - अपनी ग्रंथियां हैं, अतएव इन्हीं के मनोविश्लेषणात्मक चरित्राध्ययन को ले कर 'सुनीता' की रचना हुई है।

'सुनीता' की कथा का मूलाधार हरिप्रसन्न की मनोवृत्ति है। दमित काम्वासना के फलस्वरूप हरिप्रसन्न के मन में एक ग्रंथि का जन्म होता है जो उसे क्रान्तिकारी बना देती है। वह गृहस्थी से दूर - दूर भागता है, कहीं बंधना नहीं चाहता। लम्बे अन्तराल के बाद एक दिन सहसा वह अपने मित्र श्रीकांत को मिल जाता है। श्रीकांत उसे घर लाता है तथा अपनी पत्नी सुनीता को उसकी समस्या से अवगत करा कर उसे सही रास्ते पर लाने की इच्छा प्रकट करता है। यहां तक कि हरिप्रसन्न की इस मनोग्रंथि को सुलझाने के लिए श्रीकांत सुनीता को आत्म-समर्पण का भी आदेश दे देता है और सुनीता एक दिन निर्जनवन में मध्यरात्रि के समय हरिप्रसन्न के सम्मुख निरावरणा हो जाती है। उसी समय हरिप्रसन्न का मोह भंग हो जाता है और वह चला जाता है। सुनीता जो प्रारंभ में अपने पति से अन्यमनस्क रहती थी, पति को उन्मुक्त मन से समर्पिता बन जाती है। हरिप्रसन्न की जिस अतृप्त काम-जनित मनोग्रंथि को सुनीता द्वारा खुलवाने का प्रयत्न किया गया है, वही हिंसा-वृत्ति का मूल कारण है जिसका अन्वेषणा कथाकार का मूल लक्ष्य है। काम और श्रृंगार तथा दार्शनिक तत्वों का विवेचन ही इस उपन्यास कथ्य है।

'सुनीता' का कथानक बहुत ही संक्षिप्त है, जो मनोवैज्ञानिक कथ्य के अनुकूल है। उसमें न तो विविध घटनाओं का संगठन है और न आधिक्य ही। 'प्रस्तावना' में जैनेन्द्र जी ने स्वयं ही इसे स्वीकार किया है -

'पुस्तक में मैंने कहानी को लम्बी - चौड़ी नहीं कही है। कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है। अतः तीन चार व्यक्तियों से मेरा काम चल गया है। इस विश्व के छोटे-छोटे खण्ड को ले कर हम अपना

चित्र बना सकती हैं और उसमें सत्य के दर्शन पा सकते हैं। उसके द्वारा हम सत्य के दर्शन करा भी सकते हैं। जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में भी है। इस लिए अपने चित्र के लिये कहीं कैनवास की जरूरत मुझे नहीं हुई [३१]।

इस उपन्यास में कथानक के जो भी अंश है, पर्याप्त दुर्बोध हैं। उन्हें समझने के लिये पाठक को काफी मानसिक व्यायाम करना पड़ता है। मानव के अन्तर्मन को उद्घाटित करना ही कथाकार को अभीष्ट है और मानव-मन की वृत्तियों का चित्रण साध्य। कथा की अव्याकुलता के कारण कथानक अस्पष्ट है एवं स्थान-स्थान पर क्रम-हीनता है। सुसम्बद्धता बाधित है। उपन्यासकार ने विशाल घटनाओं की अपेक्षा विशिष्ट जीवन-सूत्रों को आधार बना कर कथा को विकसित किया है। पात्रों का अचेतन अनेक रहस्यों से पूर्ण है। 'सुनीता' में भी अन्तर्जीवन के रहस्यों को समझाने की उत्सुकता है। यही कारण है कि केवल यह उपन्यास घटना - प्रधान नहीं है, बल्कि इसमें घटनाओं का अभाव भी है। पात्रों का व्यक्तित्व विशिष्ट तत्वों के आधार पर विकसित होता है और वे ही कथा विकास के भी आधार हैं। कथा में उत्सुकता बनाये रखने के लिए जैनेन्द्र जी ने बीच-बीच में रहस्यमयी घटनाओं की सृष्टि की है।

उपन्यासकार ने कथा का प्रारम्भ समस्या का संकेत दे कर किया है। हरिप्रसन्न की मानसिक कुण्ठा की ओर श्रीकांत ने संकेत किया है - ' भले आदमी को पता तो कहे कि क्या जंगल और गांव और खेत की खाक छानता फिरता है। युवती, रमणी और निर्मल शिशु भी दुनिया में हैं। उसकी इन्कार कर वह स्वराज्य लेगा। ---- तुम अपनी तस्वीर जरूर बना देना [३२]।

कथा का प्रारंभ भी कथाकार ने स्वयं किया -, ' श्रीकांत ने अनिवार्य बी०ए० किया, एल०एल०बी० किया, शादी की और प्रैक्टिस शुरू कर दी यह गिरस्ती और प्रैक्टिस गिरत-पड़ती चलने भी लगी है। पर हरिप्रसन्न को

याद दूर नहीं होती । वह याद खलल डालती है [२३]। जैनेन्द्र जी के उपन्यासों के कथानक का विकास त्रिकोणात्मक - सूत्र के आधार पर होता है - एक नायक और नायिका को लेकर मुख्य कथा-सूत्र के विकसित होने की जो परिपाटी है, वह जैनेन्द्र के उपन्यासों में नहीं मिलती । उनके उपन्यासों में नायक - नायिका के अतिरिक्त एक तीसरा पात्र और भी होता है, जिसका मुख्य कथा में उतना ही योग रहता है, जितना नायक या नायिका का । यही कारण है कि उसका खिंचाव तीन ओर से रहता है और इस त्रिकोण के केन्द्र - बिन्दुओं के पारस्परिक संघर्ष से कथा को विकास की दिशायें मिलती हैं [२४]। 'सुनीता' में, सुनीता केन्द्रस्थ चरित्र है । पति के रूप में श्रीकान्त और प्रेमी के रूप में हरिप्रसन्न दोनों ही सुनीता की ओर आकर्षित हैं । सुनीता अन्तर्द्वन्द्व में उलझी रहती है । वह पति के प्रति कर्तव्य परायण भी बनी रहना चाहती है तथा साथ ही प्रेमी हरिप्रसन्न के प्रति समर्पिता भी । वह दुविधा में फंसी हुई अपने सामाजिक संस्कारों तथा आधुनिक जीवन के तकाज़ों के कारण दो पुरुषों के बीच भटकती रहती है । वह आधुनिकता की चुनौती को तो स्वीकार करना चाहती है लेकिन संस्कार से कर नहीं सकती और निरन्तर तनाव की स्थिति में ही रहती है । इस द्वन्द्व से गुजरती हुई वह सूक्ष्म यातना का अनुभव करती है । आत्म-पीड़न के द्वारा वह हरिप्रसन्न के अहं को विकेन्द्रित करना चाहती है क्यों कि आत्म-पीड़न के द्वारा ही औरों का अहंकार तोड़ा जा सकता है । इस प्रकार यातना सहन करती हुई सुनीता अंत में पति की ओर ही वापस आती है जिसे हिंसा पर अहिंसा की विजय की भी संज्ञा दी जा सकती है, जिसे गांधीवादी दर्शन से जैनेन्द्र ने अपने रूप में ग्रहण किया है ।

जैनेन्द्र एक दार्शनिक कथाकार हैं । 'सुनीता' की कथा दार्शनिक विश्लेषण के आधार पर गतिशील हुई है । कथाकार कथा के बीच में आ - आ कर अपने दार्शनिक विचारों का विश्लेषण करता हुआ अग्रसरित होता है । 'सुनीता' विश्लेषणात्मक शिल्पविधि का उपन्यास है जिसमें कथा तीव्र-गति से अपने कथ्य की ओर अग्रसर हुई है । कथा-श्रृंखला बीच में

टूट गई है क्यों कि जीवन की कुछ विशिष्ट स्थितियों का विश्लेषण ही कथाकार का ध्येय रहा है। उदाहरण के लिए सुनीता की कथा प्रस्तुत की जा सकती है जो बीच में आ - आकर अनेक बार टूटी है। कथा के मध्य में वह एक लम्बे समय के लिए मुख्य केन्द्र से पैर हटा दी गई है। इस शृंखला के तोड़ने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए एक आलोचक का कथन है --" अतः जैनेन्द्र के उपन्यासों में कथा- शृंखला टूटी सी, कथा भाग में बड़े - बड़े रिक्त स्थान (गैप्स) है इसका एक मनोवैज्ञानिक आधार है कि पाठक का क्रियाशील मानस- व्यापार इन खण्डों में भी पूर्णता देख जा सका है।[३५] " वर्णनात्मक उपन्यासों की भांति विश्लेषणात्मक उपन्यासों में भी कथाकार किसी भी घटना, पात्र अथवा दृश्य के विशद वर्णन के माध्यम से कथा को गतिशीलता प्रदान करता है और कथा कुछ समय के लिए पूरवर्ती हो जाती है। " सुनीता " से दो उदाहरण दिए जाते हैं --" जीवन के दो ढंग हैं, एक तो यह कि बहुत सोचते - विचारते हुए चला जाये। दूसरे यह कि अपने सहज भाव से चला जाये, सोच-विचार की पोट से कम से कम वास्ता रखे और अपने पास रखी जाये। अंग्रेजी का एक शब्द है, सैल्फ कांशस। अपने सम्बन्ध में जब हमारी चेतना हमारे भीतर रमी हुई, समाई हुई नहीं रहती, एक पृथक पिण्ड की भांति आंवले का गांठ सी बनी भीतर अकसमाई - सी तलकती - उछलती है, तब आदमी को चैन नहीं पड़ता। मनुष्य नामक प्राणी के सोच-विचार का सिलसिला यों तो कब टूटता है, वह तो चलता ही रहता है। किन्तु इस सोच-विचार में मनुष्य का अहं बहुत मिला रहे तो गड़बड़ होती है। इसी को कहते हैं, सैल्फ कांशस। इस स्थिति में मनुष्य के व्यवहार का सरल भाव नष्ट हो जाता है[३६]। आगे चलकर आले ही पृष्ठ पर उपन्यासकार लिखता है --" हम कहते हैं पति और पत्नी, प्रेम और प्रेयसी, माता और पुत्र, बहिन और भाई। यह ठीक है। ये तो स्त्री-पुरुष के मध्य परस्पर योगायोग के मार्ग से बने नाना सम्बन्धों के लिए हमारे निर्योजित नाम करण हैं। किन्तु सबमें कुछ बात तो सम-भाव से व्यापी है। सब जगह स्त्री-पुरुष इन दोनों में परस्पर दीखता है आंशिक

समर्पण, आंशिक स्पर्धा ---- ? लेकिन हम कहानी कहें '[30] - इस पंक्ति के साथ -साथ पुन: कथा कही जाती है।

जब श्रीकान्त मुख्य कैन्वास से परे हट कर एक केस की ओर में लाहौर चला जाता है तभी उपन्यासकार ने आस्तिकता के प्रचार हेतु हरिप्रसन्न सुनीता के संवाद की योजना की है। हरिप्रसन्न बंध कर रहना नहीं चाहता। सुनीता अपने पति श्रीकान्त की इच्छा पूर्ण करने के लिए उसे बांध कर रखने का साधन एकत्रित करती है। सुनीता कहती है ---' देखो, तुम भागते हो तो भागो। लेकिन अपने से कहां भागो ? ---- भागना तो नरक से भी ठीक नहीं। क्यों कि नरक का भय फिर तुम पर सवार ही रहेगा। इससे आओ हरिप्रसन्न हम दोनों परमात्मा का विश्वास पायें और उसकी प्रार्थना में ले बह जायें'। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास की संवाद योजना भी कथ्य के सफल निर्वाह हेतु विश्लेषणात्मक शिल्पविधि के अनुकूल हुई है। इसमें विवरण देकर लम्बे सम्भाषणों की योजना नहीं जुटाई गई, अपितु संकेत दे कर दार्शनिक विचारों तथा सिद्धान्तों का विश्लेषण किया गया है।

'सुनीता' शैली-विश्लेषणाधारित कथ्य के आधन्त निर्वाह-हेतु उपन्यासकार ने सूक्ष्म कथानक की सर्जना की है और जीवन के विशिष्ट सूत्रों को आधार बना कर कथा को विकसित किया है। उपन्यास में एक ही आधि-कारिक कथानक है जिससे उपन्यासकार को कथ्य के निर्वाह में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इसमें प्रासंगिक कथाओं का अभाव है यही कारण है कि कथाकार अपने कथ्य के प्रति सजग रह सका है। व्यक्ति की दमित वासनाओं और कुंठाओं का चित्रण ही उपन्यासकार का अभीष्ट रहा है, परिणाम-स्वरूप अन्त या तो दु:खपूर्ण हुआ है या अवसादपूर्ण किन्तु सुनीता की कथा का उपसंहार प्रशान्त है। उपन्यास के अन्त तक पता नहीं चलता कि हरिप्रसन्न की मनोग्रंथि दूर हुई कि नहीं। श्रीकान्त भी इस अनिश्चयात्मक स्थिति में सुनीता से प्रश्न करता है --' सुनीता, अब भी क्या हरिप्रसन्न में ग्रंथि अवशिष्ट है ? उसे क्या

फिर भुलाने का साधन नहीं हो सकेगा ?" सुनीता से कोई निषेधात्मक उत्तर नहीं मिलता है। अन्त पहेली बन कर रह गई है। वह उत्तर में कहती है," मैं तुमसे सच कहती हूं, मैंने अपने को नहीं बनाया। जाने वह कहां गयी हैं। मुझे लगता है -----"। कथानक में आद्यन्त उत्सुकता बनी हुई है जो 'सुनीता' की विशेष उपलब्धि है। जैनेन्द्र का यह विचार कि आत्म-पीड़न के द्वारा ही किसी की मनोग्रंथि या कुण्ठा अथवा अहं को दूर किया जा सकता है इस उपन्यास में साकार रूप में दृष्टिगत होती है। सुनीता आत्म-पीड़न सहन करती हुई भी, अन्त: संघर्षों में जूझती हुई भी हरिप्रसन्न की अतृप्त काम-जनित अहं की ग्रंथि को तोड़ने का प्रयास करती है। यहां तक कि वह निरावरण हो कर भी हरि की ग्रंथि को दूर करना चाहती है। सुनीता निरावरण के जिस मार्ग का आश्रय लेती है उसमें भी उसके पति श्रीकान्त की ही इच्छा-पूर्ति की बात थी जो श्रीकान्त की मानवीय - दुर्बलता का परिचायक है वह जिस मार्ग पर सुनीता को अग्रसर होने का आदेश देता है, उसी उसी मार्ग पर बढ़ते देख रात को मकान पर ताला देखते ही दो मिनट को स्तब्ध रह जाता है, किन्तु प्रात: ही जीवनगत स्वाभाविकता उसमें लौट आती है, दाम्पत्य-प्रेम का स्रोत प्रवाहित हो उठता है। हरि के समक्ष निरावरण होने पर और हरि के पलायन कर जाने पर सुनीता का आत्मबोध उसे झकझोर देता है और वह बिना अपने को कलंकित किये पति के पास वापस आ गई और यहीं उसका मानसिक संघर्ष, विवेक-बुद्धि तथा सेक्स का परस्पर द्वन्द्व समाप्त हो जाता है। 'सुनीता' में जैनेन्द्र जी को इस प्रकार अपने कथ्य के आद्यन्त-निर्वाह में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। छोटे से कथ्य को ले कर कथानक के माध्यम से जितना अधिक विस्तार किया गया है वह लेखक के भाव -विकास की उत्कृष्ट कला का परिचायक है। अत्यन्त सीमित कथ्य को आधार बना कर कथानक का निर्माण होने के कारण उसमें पात्राधिक्य एवं कथा की जटिलता नहीं आ पाई। यही कारण है कि उपन्यासकार को पात्रों के अन्तर्लोक के रहस्यों का आविष्कार करने का पर्याप्त अवसर मिला है तथा वह उपन्यास में विश्वसनीयता स्थापित कर सका है।

इसी प्रकार 'नर - नारी ' के सम्बन्धों या वैवाहिक जीवन
की समस्या को कथ्य बना कर रचे गये जैनेन्द्र जी के अन्य उपन्यासों में 'सुनीता'
के अतिरिक्त 'परख' 'त्याग-पत्र' 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त'
तथा 'जयवर्धन' आदि उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों की नायिकायें
मन ही मन वैवाहिक जीवन के प्रति अव्यक्त रूप से असन्तुष्ट हैं तथा एक ऐसी
व्यवस्था चाहती हैं, जिसमें नारी-पुरुष साथ तो रहें, किन्तु पति-पत्नी की
तरह नहीं, अपितु मित्र की तरह, सहयोगी सदृश। जैनेन्द्र जी का यही दर्शन
उनके प्रथम उपन्यास 'परख' से ले कर 'जयवर्धन' तक सभी उपन्यासों के
कथ्य के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। जो वर्तमान विवाह व्यवस्था के प्रति उनके
विद्रोह की अभिव्यंजना देता है। उनके उपन्यासों के सभी पात्र काम-भावना
(लिबिडो) की अपूर्णता के कारण खण्डित व्यक्तित्व वाले तथा अभुक्त
काम-वासना की ग्रंथि से ग्रस्त हैं जिनकी कुण्ठित इच्छाओं एवं प्रबल कामुकता
तथा तज्जन्य फ्रस्ट्रेशन को कथ्य के रूप में ग्रहण कर उन्हें दार्शनिक आवरण से
आवृत कर प्रस्तुत किया गया है। 'त्याग-पत्र' को छोड़ कर उनके शेष
सभी औपन्यासिक कृतियों के कथानकों का रूप प्रायः त्रिकोणात्मक है। नायक
नायिका तथा उन्हीं दोनों के समान एक महत्वपूर्ण एक अन्य पात्र को ले कर
कथानक की समायोजना हुई है, जिससे कथानकों में प्रायः एक प्रकार का खिंचाव
दृष्टिगत होता है। कथानक में घटनाधिक्य एवं पात्र-बाहुल्य न होने के
कारण उपन्यासकार प्रायः अपने सभी उपन्यासों में कथानक और कथ्य के उचित
सम्बन्ध का सफलता पूर्वक निर्वाह कर सका है।

<u>त्याग - पत्र</u> :- 'त्याग - पत्र' जैनेन्द्र जी का आत्म-कथात्मक
शैली में रचित उपन्यास है जिसमें सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि पर नारी की
स्थिति का व्यापक रूप से चित्रण किया गया है। 'त्याग-पत्र' का कथानक
भी जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों के कथानक की भाँति ही सूक्ष्म है। मृणाल
अत्यन्त सुन्दर है एवं शैशव-काल से ही मातृ-हीन है। अपने भाई एवं भाभी के

साथ रहती हुई मृणाल का प्रेम अपनी सहेली के भाई से हो जाता है, जो असफल ही रहता है। अपने भतीजे से वह बहुत प्रेम करती है। उसका विवाह हो जाता है किन्तु वैवाहिक जीवन का सुख-लाभ नहीं पाती। पति द्वारा परित्यक्ता हो कर वह एक कोयला - विक्रेता के यहां शरण लेती है, और गर्भ धारण करती है। कोयले वाला भी भाग जाता है तब वह एक डाक्टर के यहां ट्यूशन करने लगती है। वहां एक बच्चे को जन्म देती है, जो मृत हो जाती है। संयोग -वश प्रमोद का विवाह उसी डाक्टर की पुत्री से निश्चित होता है और प्रमोद वहां लड़की देखने जाता है। डाक्टर के घर पर ही मृणाल और प्रमोद का मिलन होता है। अपनी बुआ मृणाल के मना करने पर भी प्रमोद डाक्टर से सारी यथार्थ स्थिति बता देता है। मृणाल का ट्यूशन छूट जाता है एवं प्रमोद का रिश्ता भी टूट जाता है। अन्त में मृणाल की मृत्यु हो जाती है और इस दुःख को सहन न कर सकने के कारण प्रमोद भी जजी से त्याग-पत्र दे देता है। इस उपन्यास का केवल इतना ही कथानक है जो अत्यन्त सूक्ष्म है। इसमें कुछ घटनायें हैं जो पात्रों की मनः स्थितियों को स्पष्ट करने के लिए उपन्यासकार द्वारा अत्यन्त कुशलता पूर्वक संयोजित की गई है।

'त्याग-पत्र एक-मात्र मृणाल की व्यक्तिगत कहानी है'। मृणाल का व्यक्तित्व ही कथा का आधार है। मृणाल के चारों ओर ही कथा-चक्र घूमता है। जीवन की पंकिलता में मृणाल का कारुण्य ही इस उपन्यास का कथ्य है। उसके जीवन में प्रारंभ से ही अतृप्ति रही है। वह कभी किसी का स्नेह नहीं प्राप्त कर सकी, इस लिये उसके व्यक्तित्व में अभाव की प्रमुखता हो जाती है, जिससे वह विभिन्न दिशाओं में जाती है। वह आत्म-पीड़न को अपना लक्ष्य बना कर एक के पश्चात् एक विपदा को सहन करती जाती है। प्रेम की गरिमा के रक्षार्थ वह चुपचाप पति के घर से चली जाती है। वह पति से भिक्षा नहीं मांगती, शरण एवं आलम्बन की आकांक्षा नहीं करती। अपने स्वत्व को पति के दासी बने रहने से गिरा देना उसे स्वीकार नहीं था। दर-दर की ठोकरें खाती, अपमान एवं घोर मनस्ताप सहन करती हुई वह विद्रोह नहीं करना चाहती।

मृणाल का आकण्ठ प्रेम एवं आत्म-पीड़न के द्वारा एक लम्बी मंजिल को पार करती हुई उसके मानसिक घातों- प्रति घातों की मार्मिक कहानी ही 'त्याग-पत्र' का कथ्य है। जिसमें वेदना का दर्शन भी है एवं द्रवित कर देने वाली वेदना भी।

'त्याग-पत्र' का प्रमुख कथ्य है - 'जो शास्त्र से नहीं मिलता, वह ज्ञान आत्म-व्यथा से मिल जाता है[४१]।' इसी कथ्य को आधार बना कर जैनेन्द्र जी ने मृणाल के जीवन के विकास का चित्रण किया है। जैसे - ही जैसे मृणाल जीवन-मार्ग पर चलती जाती है, बूंद - बूंद दर्द इकट्ठा उसके भीतर भरता जाता है जो उपन्यासकार की दृष्टि में - 'वही सार है। वही जमा हुआ दर्द मानव की मानस -मणी है। उसके प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्ज्वल होगा। नहीं तो चारों ओर गहन वन है, किसी ओर मार्ग सूझता नहीं और मानव अपनी क्षुधा-तृष्णा, रागद्वेष, मान-मोह में भटकता है[४२]'। लेखक की इसी विचारधारा के अनुकूल मृणाल व्यक्तिगत तथा सामाजिक वैषम्य से उत्पन्न वेदना को सहन करती हुई आत्म-परिष्कार करती गई है। आत्म-पीड़न के द्वारा अपने आदर्श नारीत्व अथवा पत्नीत्व की रक्षा करती हुई अपने अहमत्व को गलाती एवं घुलाती है। एवं अन्ततोगत्वा सब के अन्तस् में ईश्वर की प्रतीति करती हुई समष्टिगत् ऐक्य के धरातल पर अपना शीलोत्कर्ष करती है[४३]। उपन्यास का दूसरा पात्र मृणाल का भतीजा पी० दयाल भी उसकी मृत्यु से अत्यन्त क्षोभ तथा जीते जी उसके काम न आ सकने की वेदना का अनुभव करता हुआ हृदय-हीनता से अर्जित अपनी जजी से त्याग-पत्र दे देता है।

इस प्रकार वेदना-पूर्ण मृणाल का व्यक्तित्व एवं अन्तर्द्वन्द्व ही उपन्यास का कथ्य है जिसे प्रायः सभी आलोचकों ने प्रत्यक्ष्प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया है। एक आलोचक के अनुसार - 'मृणाल का व्यक्तित्व उपन्यास की शक्ति है, आत्मा है। जैनेन्द्र का समस्त औपन्यासिक कौशल उसका निर्माण करने में लग गया है[४४]।' मृणाल के चरित्र में उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता

से वेदना की अभिव्यक्ति की है जो पाठकीय संवेदना को बड़ी सहजता से प्राप्त कर लेती है एवं अपनी एक अविस्मरणीय छाप छोड़ जाती है। उसके चरित्र के प्रमुख पर प्रकाश डालते हुए एक आलोचक ने लिखा है — "पूरे उपन्यास में मृणाल का चरित्र, अपने असाधारण संकटों के कारण, पाठक की दृष्टि को आकर्षित करता है। मृणाल के चरित्र में उस प्रकार का हल्कापन कहीं नहीं है, जिस प्रकार का हल्कापन जैनेन्द्र के अन्य कतिपय नारी-पात्रों में मिलता है। ---- जैनेन्द्र के अन्य नारी-पात्रों में पति की उपेक्षा करके पर पुरुष के प्रति जो एक प्रच्छन्न आकर्षण मिलता है, वह भी इस उपन्यास की नायिका मृणाल में व्यक्त नहीं है। जैनेन्द्र ने बड़े कौशल के साथ उसे एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे से सम्बन्धित किया है। यहाँ वेदना के आधिक्य के कारण पाठक की संवेदना मृणालको ही मिलती है। इसे हम जैनेन्द्र का रचनात्मक कौशल कह सकते हैं।"[४५]

वेदना-पूर्ण मृणाल के जीवन की कथा को उपन्यासकार ने बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। उसके जीवन के एक-एक तथ्य, एक-एक संकेत तथा एक-एक घटना या घटनाभाग से वेदना धीरे-धीरे बढ़ती गई है और अन्त में सीमा का अतिक्रमण कर गई है। पी० दयाल का व्यक्तित्व भी इसी अनुपात में प्रच्छन्न रूप से प्रभावित हुआ है जो अन्त में अपनी चरम-परिणति के रूप में उसके अपनी जजी से त्याग-पत्र का कारण बन गया है। मृणाल के जीवन में व्यथा के घनीभूत चित्रण के लिए उपन्यासकार ने क्रमश: माता-पिता के स्नेह से वंचित उसके शैशव, उसकी स्वच्छंद प्रकृति तथा उसमें बाधक उसकी भाभी के कड़े अनुशासन, भाभज के द्वारा बेंतों से कठिन प्रहार, मृणाल का शीला के भाई से असफल प्रेम, अनमेल विवाह, पति द्वारा ताड़ना दिये जाने पर तंग आ कर घर वापस आ जाना, भाई द्वारा मैके में रहने का विरोध होने पर ससुराल लौटना, भविष्य के लिए घर के दरवाजे को बन्द पाना, रुग्णावस्था के कारण मृत-पुत्री का जन्म, पति द्वारा परित्यक्ता होकर कष्ट झेलना, दूसरी बच्ची का कुछ भूख एवं कुछ रोग से मर जाना, नौकरी के द्वारा आत्म-निर्भर बनने के प्रयास में समाज की

बाधा और अन्त में मृणाल का घुट-घुट कर मरना आदि घटनाओं को कथानक में स्थान दिया है ।

मृणाल के अन्तर्द्वन्द्व एवं वेदना के चित्रण के साथ ही साथ प्रमोद की मानसिक प्रतिक्रिया का आभास भी कथानक के विकास के साथ-साथ प्राप्त होता है । प्रमोद का चरित्र भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । उसके माध्यम से उपन्यासकार ने अपने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति किया है । उसने अनेक स्थलों पर सामाजिक वैषम्य, वैयक्तिक कुण्ठा और नैतिक प्रश्नों का विश्लेषण किया है । इस दृष्टि से वह कथा-वाहक पात्र है । 'त्याग-पत्र' की कथा अत्यन्त ही संवेदनशील है । यह पाठकों से प्रत्यक्ष सम्बद्ध तथा अपनी प्रकृति में अधिक भावमय है । यही कारण है कि इस उपन्यास में प्रयुक्त आत्मकथात्मक शैली के माध्यम से उपन्यासकार के कथ्य का सफलता पूर्वक निर्वाह हो जाता है । नायक प्रमोद स्वयं उपन्यास-मंच पर उपस्थित हो कर कथा-सूत्र को अपने हाथों में पकड़े हुए अपने अन्तर्मन की द्वन्द्वपूर्ण स्थिति और आत्म-विगर्हणा का भावमय, आत्मीय तथा नाटकीय ढंग से विश्लेषण करता है ---' नहीं भाई, पाप-पुण्य की समीक्षा मुझसे न होगी । जज हूं, कानून की तराजू की मर्यादा जानता हूं । पर उस तराजू की मर्यादा भी जानता हूं । इस लिये कहता हूं कि जिनके ऊपर रत्ती-रत्ती नाप-जोख कर पापी को पापी कह कर व्यवस्था देने का दायित्व है, वे अपनी जानें । मेरी बुआ पापिष्ठा नहीं थीं, यह भी कहने वाला मैं कौन हूं । पर आज मेरा जी अकेले में उन्हीं के लिए चार आंसू बहाता है । ---- उन बुआ की याद कैसे मेरे सब कुछ को खट्टा बना देती है । क्या वह याद अब मुझे चैन लेने देगी ---- याद किया होगा, यह अनुमान करते रोंगटे खड़े हो जाते हैं [४६] । प्रमोद के इस कथन-कौशल से पाठक पूर्णतया प्रभावित हो उठता है और अग्रिम पंक्तियों से किसी असाधारण नारी (बुआ मृणाल) के व्यक्तित्व की ओर ध्यानावस्थित हो कर उसकी सम्पूर्ण दुःखभरी कथा को श्रवण करने के लिए व्यग्र हो जाता है । उपन्यास के कष्टमय अन्त की अनुभूति पाठक को प्रारम्भ में हो हो जाती है तथा आद्यन्त की प्रभाव शृंखला भी इससे पूर्ण हो उठती है ।

उपन्यास के आरम्भ में पाप और पुण्य की इस द्वन्द्व पूर्ण चर्चा से यह अनुमान लग जाता है कि इस पात्र (या उपन्यासकार) के विचार और जन-साधारण की दृष्टि में कोई अन्तर है - इससे भी पाठक की जिज्ञासा बढ़ जाती है । यह भी कथ्य की सामाजिक-दार्शनिक प्रकृति के अनुकूल है । इसके अतिरिक्त उपन्यासकार ने कथ्य के सफलतापूर्वक निर्वाह हेतु अन्य कला - कौशलों का भी उपयोग किया है उदाहरणार्थ कथाकार ने मृणाल के तात्कालिक जीवन-गति का विस्तृत विवरण न देकर केवल एक बवाल के द्वारा संकेत दिखाया है । मृणाल तथा शीला के भाई के प्रेम का भी विशद् वर्णन उपन्यासकारने नहीं किया है केवल उसके प्रतीकवत् आचरण का संकेत भर किया है -- उदाहरणार्थ शीला के घर आवागमन होने के पश्चात् मृणाल के आचरण में जो परिवर्तन होता है वह किसी से प्रेम हो जाने के कारण है । इससे प्रमोद के प्रति व्यवहार-व्यवहार में अतृप्त काम की द्योतक शारीरिकता आ जाती है[५७] 'अब उन्हें (मृणाल को) एकांत उतना बुरा नहीं लगता .... (वह) पतंगों के पेंच देखती है और कटी हुई पतंग पर जब तक औझल न हो जाय, आंख गाढ़े रहती है'[५८] । कटी हुई पतंग प्रेम में असफल नारी का प्रतीक है । आसमां में सो रहा से ऊंचे उड़ने वाली चिड़िया होने की अभिव्यक्ति[५९] घर के कड़े अनुशासन से उसके स्वच्छन्द होने की कामना का प्रतीक है - इस प्रकार सम्पूर्ण प्रेम - कथा को लेखक ने प्रतीकात्मकता का आश्रय लेते हुए संकेत शैली में कहा है । संकेत-शैली के अतिरिक्त उपन्यासकार ने कथा-निर्माण में संयोग तत्व[५०], मनोमंथन[५१], और पत्र-शैली का उपयोग किया है । पत्र के माध्यम से मृणाल को खुल कर आत्माभिव्यक्ति करने का अवसर प्राप्त हुआ है जो उपन्यासकार के कथा- कौशल का परिचायक है । कथा-विकास में इस पत्र का महत्वपूर्ण स्थान है ।

'त्याग - पत्र' का मृणाल - केन्द्रित कथानक आरम्भ से अन्त तक मानसिक घात- प्रतिघातों की मर्मस्पर्शी कहानी है । इसकी रोचकता को वर्णन- विवरण की बोझिलता से बचाने के लिए कथाकार ने नाटकीय और अप्रत्याशित प्रसंगों की अवतारणा की है । इस प्रकार उपन्यासकार ने अपने कथ्य के अनुरूप ही कथात्मक नाटकीय - कौशल का आश्रय लिया है । कुछ

मिला कर हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि " त्याग - पत्र " के कथ्य और कथानक में एक अद्भुत सम्बन्ध है। कथा-शरीर के निर्माण उपन्यासकार का ध्यान सदैव अपने कथ्य की ओर रहा है परिणाम स्वरूप कथानक में निरर्थक घटनाओं का समावेश है और अन्त तक कथ्य का कथानक द्वारा सफलता पूर्वक निर्वाह हो सका है।

भगवती चरण वर्मा : चित्र लेखा :

भगवती चरण वर्मा व्यक्ति परक उपन्यासकार हैं। उनकी धारणा है " हर व्यक्ति अपने में अकेला है और शायद यह अकेलापन ही उसकी वैयक्तिक उपलब्धि है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मैं इस वैयक्तिक अकेलेपन को लिए हुए भी समाज से जब तक जुड़ा हूं तब तक मैं स्थित हूं[५२]। इस प्रकार वर्मा जी व्यक्ति के अकेलेपन एवं वैयक्तिक उपलब्धि का महत्व स्वीकार करते हैं किन्तु वह समाज सापेक्ष रूप में न कि समाज निरपेक्ष रूप में। एक आलोचक ने भगवती चरण वर्मा को प्रेमचन्द - परम्परा का " सामाजिक उपन्यासकार " माना है जो उनकी भ्रान्त धारणा का परिचायक है[५३]। उनके उपन्यास सामाजिक नहीं हैं, किन्तु सामाजिकता की पृष्ठभूमि मात्र हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति की बौद्धिक चेतना, एवं व्यक्ति -मूल्यों की स्थापना का प्रयत्न किया है। वर्मा जी ने अपने उपन्यासों में उच्चवर्गीय पात्रों के माध्यम से जीवन और समाज की विविध समस्याओं एवं विषमताओं पर अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने मानव जीवन की दो सीमाओं पाप और पुण्य का विवेचन किया है एवं उस पर अपने विचार व्यक्त किया है।

" चित्रलेखा " भगवती चरण वर्मा का एक प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें पाप और पुण्य की समस्या का दार्शनिक विवेचन किया गया है। पाप क्या है और पुण्य क्या है - यह प्रश्न बड़ा ही विवाद ग्रस्त रहा है और इस पर अनादि काल से विचार होता रहा है। वर्मा जी ने भी दार्शनिक

' आधार ' पर इस प्रश्न पर अपनी विचारधारा का प्रतिपादन किया है। लेखक के अनुसार मानव अपने जाने न तो पाप करता है और न पुण्य। वह जो कुछ भी करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और वह चाहे - न - चाहे, परिस्थितियाँ उसे विवश कर सभी कुछ करा लेती है। इस प्रकार पाप और पुण्य की समस्या की व्याख्या कर उसका समाधान ढूंढना ही ' चित्रलेखा ' का कथ्य है। लेखक के अनुसार ' चित्रलेखा ' में एक समस्या है, मानवीय जीवन के तथा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों को देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है और मेरी आत्मा का अपना संगीत भी है[५४]। इस प्रकार यह उपन्यास एक समस्या को लेकर उपस्थित हुआ है। ' पाप क्या है और उसका निवास कहां है ? यही इस उपन्यास की वास्तविक समस्या है। जिसका लेखक ने पात्रों के चारित्रिक विकास के माध्यम से समाधान प्रस्तुत किया है।

' चित्रलेखा ' उपन्यास के कथानक का मूलकेन्द्र चित्रलेखा नामक नर्तकी का आकर्षक व्यक्तित्व है। चित्रलेखा ने अपने जीवन में अनेकों बार प्रेम को व्याख्यायित किया था जिसमें प्रत्येक बार उसे अपना पिछला निर्णय त्रुटिपूर्ण प्रतीत हुआ था। उसने प्रथम प्रेम पति से किया था जिसमें पावनता थी। उसमें पति के प्रति प्रगाढ़ भक्ति होने के कारण उसका यह प्रथम प्रेम ईश्वरीय था। इस प्रेम में वह आत्म बलिदान की पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। किन्तु दुर्भाग्यवश उसका पति शीघ्र ही कालकवलित हो गया। पति की मृत्यु के उपरान्त निराशा के क्षणों में वह प्रायः आत्म-हत्या की बात सोचती, किन्तु उसे कायरता और पाप समझ कर शान्त हो जाती है। तन्मयता के विचलित होने पर वह कृष्णादित्य से प्रेम करने लगी। कृष्णादित्य से चित्रलेखा के इस प्रेम का स्वरूप आत्म बलिदान का न हो कर आत्मविस्मरण का था। इसमें प्रथम बार प्रेम में पिपासा की अनुभूति होने से चित्रलेखा भयभीत हो उठी। उसका यह प्रेम भी स्थायी न रह सका क्योंकि कृष्णादित्य चला गया। चित्रलेखा ने अनुभव किया कि प्रेम अमर नहीं होता, एक पवित्र स्मृति प्रतिदिन धुंधली होते हुए मिट भी सकती है। इसके अनन्तर उसका प्रेम बीजगुप्त से होता है जिसमें उसे पिपासा और कभी-कभी आत्मविस्मरण की अनुभूति हुई। इस बार चित्रलेखा ने प्रेम के साथ ऐश्वर्य एवं भोग विलास

के मनोहर रूप को देखा। अब की बार उसने अनुभव किया कि प्रेम ही जीवन का एक मात्र आधार है। उसने अनुभव किया कि प्रेम कुछ ही दिनों तक सुख का आधार हो सकता है। उसके सुख को आत्मविस्मरण द्वारा ही स्थाई बनाया जा सकता है। यह आत्मविस्मरण प्रकृत्या असंभव है। इस लिए आत्मविस्मरण की अवस्था को उत्पन्न करने के लिए मदिरा की आवश्यकता होती है। इसके अनन्तर चित्रलेखा कुमार गिरि की ओर आकर्षित होती है। योगी कुमार गिरि उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित करता है। चित्रलेखा कुमार गिरि की कुटी में योग-साधना करने जाया करती थी। जब चित्रलेखा कुटी में पहुंचती थी तो क्षण भर के लिए साधना में लीन कुमार गिरि की दृष्टि उसकी ओर खुल जाती थी फिर दूसरे ही क्षण आंखों को बन्द कर वह पुन: आत्मावस्थित होने का प्रयास करता था। इस प्रकार योगी कुमार गिरि एवं चित्रलेखा परस्पर आकर्षित हो कर पतित हुये। इसके बाद चित्रलेखा शीघ्र ही लौट कर अपने ऐश्वर्य सदन में साधना का जीवन व्यतीत करने लगती है। बीजगुप्त के प्रति चित्रलेखा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम था जिसका अनुभव उसे वियोग के पश्चात् हुआ। वह बीजगुप्त से इतना अधिक प्रेम करती थी कि उसे धोखा न देना चाहती थी। अन्ततोगत्वा चित्रलेखा अपना सम्पूर्ण वैभव त्याग कर बीजगुप्त के साथ साधारण जीवन बिताने के लिए निकल पड़ती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि " चित्रलेखा " का कथानक अत्यन्त सुसंगठित है जो अत्यन्त तीव्र गति से अग्रसरित होता है। इसमें नियोजित सभी घटनायें बड़ी ही कुशलता पूर्वक विन्यस्त की गई हैं यही कारण है कि इन घटनाओं का औपन्यासिक पात्रों के व्यक्तित्व से अद्भुत सामंजस्य दृष्टिगत होता है। उपन्यास की मूल संवेदना यानी प्रश्न का कथानक द्वारा अत्यन्त सफलतापूर्वक निर्वाह दृष्टिगत होता है। लेखक ने पाप और पुण्य की जो व्याख्या प्रस्तुत की है वह ऊपर से आरोपित नहीं है, वरन् घनिष्ट रूप से उपन्यास में ही सन्निहित है जो पात्रों के चारित्रिक विकास द्वारा अभिव्यक्त हुई है।

इसमें वस्तु - विन्यास का गठन कथोपकथन एवं संवादों के लघु विस्तारी रूप पर आधारित है तथा कथा और पात्रों के कार्यव्यापार में अद्भुत समन्वय स्थापित हुआ है। डा० सुषमा धवन की यह मान्यता पूर्णतया भ्रामक है कि " पाप और पुण्य की समस्या को नाटकीय शैली में उपस्थित किया गया है ---------- उपन्यास में पात्रों के वाद-विवाद कथानक को रसहीन बनाते हैं [५५]। पात्रों के कथोपकथन कहीं भी वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और नीरस नहीं हुए हैं। ये संक्षिप्त, नाटकीय प्रभावयुक्त एवं परिस्थिति को स्पष्ट करने वाले परमाकर्षक एवं रुचिकर हैं। पात्रों के वार्तालाप अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें पात्रों का व्यक्तित्व भी प्रतिफलित हुआ है। इसीलिए ये कथोपकथन पात्रानुरूप भी बन सके हैं [५६]। यही कलात्मक कथोपकथन "चित्रलेखा" उपन्यास के प्राणतत्व हैं। पात्रों के वार्तालाप में नाटकीयता है। उदाहरणार्थ उपन्यास के प्रथम परिच्छेद में चित्रलेखा के मुख से मदिरा-पात्र को लगाते हुए बीज गुप्त और चित्र लेखा का वार्तालाप द्रष्टव्य है -

बीज गुप्त कहता है - " चित्रलेखा, जानती हो जीवन का सुख क्या है ? "

चित्रलेखा के अधरों ने उसके अधरों से मौन भाषा कर धीरे से कहलाया - " मस्ती " [५७]।

आगे चलकर इन दोनों के वार्तालाप पाठकीय आकर्षण को द्विगुणित कर देते हैं - " तुम मेरी मादकता हो " -- " और तुम मेरे उन्माद " [५८]। ऐसे ही मधुर वार्तालापों से उपन्यास भरा पड़ा है जो कथानक में रसवत्ता की सृष्टि करते हैं। इन सरस कथोपकथनों से कथानक में गतिशीलता और प्राण दोनों का संचार हुआ है।

'चित्रलेखा' के कथोपकथन पात्रों के विचार - विनिमय में एवं उपन्यासकार के दृष्टिकोण को अत्यन्त नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। श्वेतांक और चित्रलेखा के परस्पर वार्तालाप के द्वारा लेखक ने संयम और जीवन के लक्ष्य का जो विवेचना प्रस्तुत की है वह अत्यन्त ही कलात्मक है --

' श्वेतांक ने धीरे से उत्तर दिया - ' देवि ! संयम जीवन का एक आवश्यक अंग है, और मदिरा और संयम में विरोध है ।'

' और संयम का क्या लक्ष्य है ?'

' सुख और शान्ति '

चित्रलेखा ने मदिरा के पात्र को अपने अधरों से लगाते हुए पूछा-- 'और जीवन का लक्ष्य ' ।

चित्रलेखा की आँखें मादकता से कुछ-कुछ लाल होने लगी थीं। श्वेतांक ने चित्रलेखा के स्वर में एक प्रकार के संगीत का अनुभव किया, उसके वार्तालाप में कविता का। उसने उत्तर दिया --- ' जीवन का लक्ष्य । सुख और शान्ति ।'

'.......... यहीं पर तुम भूलते हुए नवयुवक ।'

चित्रलेखा संभल कर बैठ गई। ' सुख तृप्ति है और शान्ति अकर्मण्यता। पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं ' स्थान नहीं ' इतना कह कर उसने मदिरा का पात्र श्वेतांक के होठों से लगा दिया[५९]।

इन कथोपकथनों के द्वारा वक्ता का चरित्र स्वतः प्रकाशित होता रहा है[६०]। कथोपकथनों में लेखक ने व्यंग्यों की भी सृष्टि की है जिसमें कलात्मकता और पैनापन है[६१]। यद्यपि ये कथोपकथन लघु हैं फिर भी पाठकों के मर्म का भेदन करने वाले हैं। एक स्थल पर योगी कुमार गिरि कहता है कि स्त्री माया, मोह तथा अंधकार है। 'चित्रलेखा' का उत्तर -' प्रकाश पर लुब्ध-पतंग की अन्धकार का प्रणाम है[६२]। - उसकी प्रखर बुद्धि एवं

व्यंग्यात्मक प्रतिभा का परिचायक है ।

कथोपकथनों की भाँति ही 'चित्रलेखा' के पात्रों के चरित्रांकन में भी नाटकीयता है । लेखक ने पात्रों का चरित्रोद्घाटन तुलनात्मक विधि द्वारा किया है - 'कुमार गिरि और चित्रलेखा दोनों अलंमान से भी महत्वाकांक्षा के दास हैं, और दोनों ही ममत्व की तुष्टि पर विश्वास करते हैं । पर दोनों के साधन विपरीत हैं । एक साधना की शरण लेता है, दूसरे ने आत्म विश्वास की'[63] । इसी प्रकार यशोधरा और चित्रलेखा का भी तुलनात्मक विधि द्वारा चरित्र-चित्रण हुआ है । चित्रलेखा द्वारा बीज गुप्त के परित्याग में चित्रलेखा के त्याग तथा आन्तरिक मस्तिष्क की दशा पर प्रकाश डाल कर लेखक ने मनोवैज्ञानिकता एवं अव्यक्त प्रेरणा की सृष्टि की है । प्रत्यक्ष रूप में तो चित्रलेखा बीज गुप्त के कल्याणार्थ उसका परित्याग करती है, किन्तु इस क्रिया के मूल में है योगी कुमार गिरि के प्रति आकर्षण[64] । बीज गुप्त उपन्यास का नायक है जो सुरा-सुन्दरी में निमग्न होते हुए भी आदर्श रूप में चित्रित किया गया है । चित्रलेखा के प्रति उसका प्रेम तथा नैतिक साहस प्रशंसनीय है । वह भरी सभा में निःसंकोच भाव से अपने तथा चित्रलेखा के बीच पति-पत्नी के सम्बन्धों की घोषणा कर देता है[65] । उपन्यासकार ने बीज गुप्त की महानता का उद्घाटन बहुत ही युक्ति से किया है । चित्रलेखा की अनुपस्थिति में बीजगुप्त यशोधरा से विवाह करने का निश्चय करता है किन्तु जब उसका गुरु भाई एवं सेवक श्वेतांक उससे यशोधरा ही से विवाह करने की इच्छा व्यक्त करता है तो बीज गुप्त क्षण भर के लिए उद्विग्न तथा विचलित हो जाता है[66] । लेखक ने उसके हृदय में उद्भूत अन्तर्द्वन्द्व का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । वह यशोधरा व श्वेतांक का विवाह सम्पन्न हो जाय इस लिए अपनी समग्र सम्पदा का श्वेतांक के लिए परित्याग कर देता है[67] । बीज गुप्त का यह त्याग बहुत ही स्वाभाविक है क्योंकि इस विरक्ति के

मूल में चित्रलेखा के प्रति उसका एक-निष्ठ सच्चा प्रेम है। यशोधरा के प्रति श्वेतांक के आकर्षण से अवगत हो कर ही वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि संभवत: उसका यशोधरा से विवाह न हो सके। फलत: यशोधरा तथा बीज गुप्त दोनों का ही जीवन दु:खमय हो सकता है[६९]। चित्रलेखा के प्रति घनिष्ठ प्रेम होने के कारण ही वह ऐसा महान त्याग करता है। बीज गुप्त की चारित्रिक महानता नैसर्गिक एवं अकृत्रिम प्रतीत होती है जो उपन्यास-कार शिल्प-कौशल का परिचायक है। इतना ही नहीं, कुमार गिरि योगी की वासना का शिकार चित्रलेखा को भी वह क्षमा कर देता है[७०]। इस प्रकार लेखक ने अन्त में बीज गुप्त और चित्रलेखा का मिलन करा दिया है। जो आकस्मिक घटना नहीं प्रतीत होती है। बीज गुप्त और चित्रलेखा उत्सर्ग की जिस भावभूमि पर पहुंचते हैं वह व्यक्तिवादी है। बीज गुप्त के विवाह सम्बन्धी मान्यता में भी व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन ही सन्निहित है[७१]।

इस प्रकार 'चित्रलेखा' उपन्यास का कथानक आद्योपान्त नाटकीय शैली में रचा गया है जिसमें प्रत्येक घटनाओं को अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से नियोजित किया गया है। उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता एवं असंबद्ध शुष्कता नहीं आने पाई है। लेखक ने प्रेम और विवाह, दु:ख और सुख, नारी और पुरुष, परिस्थिति और व्यक्ति, पाप और पुण्य आदि गुरु गंभीर समस्याओं का विवेचन भी नवीन नाटकीय शिल्पविधि द्वारा किया है। उपन्यास के कथानक एवं विचार पर दृश्य विधान छाया रहता है। कथोपकथनों एवं संवादों द्वारा नाटकीयता में सौन्दर्य वृद्धि हुई है।

'चित्रलेखा' का कथानक आद्योपान्त पात्रों के कथोपकथनों एवं संवादों के द्वारा कथ्य को वहन करने में पूर्णतया सफल रहा है। जैसा कि हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि इस उपन्यास का कथ्य पाप और पुण्य से सम्बन्धित एक समस्या का विवेचन एवं उसके समाधान की खोज है। लेखक को यह समाधान परिस्थितियों के प्रवाह में ही प्राप्त होता है। कोई भी कार्य न तो पापमय होता है और न ही पुण्यमय। परिस्थितिवश ही मनुष्य प्रत्येक कार्य करता है क्योंकि वह अपना स्वामी नहीं है। पाप और पुण्य संसार में

कुछ भी नहीं है केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। इस कथ्य की सफल अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने विरोधी प्रकृति वाले दो सबल पात्रों की अवतारणा की है। बीज गुप्त अनुराग की प्रतिमूर्ति है एवं कुमार गिरि विराग की। एक भोग है दूसरा त्याग। "संयम कुमार गिरि का साधन है और स्वर्ग उसका लक्ष्य है। किन्तु आमोद-प्रमोद ही बीज गुप्त के जीवन का साधन है तथा लक्ष्य भी है।" इन्हीं दोनों पात्रों के जीवन में लेखक ने अपनी समस्या का समाधान खोजा है। परिस्थितियों के आवर्त में ही कुमार गिरि का संयम - स्खलित होता है, उसका गर्व खर्व होता है। परिस्थितियां ही बीज गुप्त को एक महान त्यागी बनाती हैं। इस प्रकार कुमार गिरि और बीज गुप्त दोनों जीवन के दो कोण हैं जिनकी परिस्थितियां भिन्न भिन्न हैं। बीज गुप्त को उपन्यासकार की सहानुभूति मिली है। इस सम्बन्ध में एक आलोचक का कथन है - " वर्मा जी जीवन को कर्म क्षेत्र मानते मानते हैं और इससे विमुखता अकर्मण्यता। आप की योगी कुमार गिरि के प्रति सहानुभूति नहीं और उसका पतन आपने कुछ द्वेष भाव से दिखाया है। 'चित्र लेखा' का निष्कर्ष यह निकलता है " सुख तृप्ति है और शान्ति अकर्मण्यता। पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझने वाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है, और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं।[१०२] उपन्यास की सम्पूर्ण कथा का पर्यवेक्षण महा प्रभु रत्नाम्बर के दो शिष्य श्वेतांक और विशाल देव करते हैं। श्वेतांक ने उपक्रमणिका में बड़े नाटकीय ढंग से समस्या को उठाया है - " और पाप "। उपक्रमणिका में ही श्वेतांक और विशाल देव ने परिस्थिति और पृष्ठभूमि की ओर संकेत कर दिया है। श्वेतांक और विशाल देव भी भिन्न - भिन्न परिस्थितियों में रहे थे, इसलिए पाप के सम्बन्ध में उनकी धारणायें भी भिन्न-भिन्न हो जाती है। लेखक ने उपन्यास के अन्त में अत्यन्त कलात्मकता से महा प्रभु रत्नाम्बर द्वारा पाप-पुण्य की व्याख्या करा कर दोनों की समस्याओं का समाधान कराया है - " संसार में पाप कुछ भी नहीं, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मन: प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है - प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंग मंच पर एक अभिनय करने आता है।

अपनी मन:प्रवृत्ति से प्रेरित हो कर अपने पाठ को वह दुहराता है - यही मनुष्य का जीवन है,। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है । मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है - विवश है । वह कर्ता नहीं, केवल साधन है । फिर पुण्य और पाप कैसा ? ------ सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है, कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार वह काम काज करेगा जिसमें दु:ख मिले -- यही मनुष्य की मन:प्रवृत्ति है । और उसके दृष्टिकोण की विषमता है । संसार में इसी लिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकती है । हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं जो करना पड़ता है[73] । इस प्रकार पात्रों के वार्तालाप द्वारा उपन्यास के अन्त में पाप और पुण्य का विवेचन हो जाता है तथा पाप कहाँ है - इस समस्या का समाधान भी निकल आता है । मनुष्य परिस्थिति, नियति एवं प्रकृति की विषम हो जाने पर निरुपाय एवं असहाय हो जाता है, यह सब उपन्यासकार ने " चित्रलेखा " द्वारा सम्पूर्ण ढंग से चित्रित करने में पूर्ण सफल हुआ है । उपन्यास का आरम्भ जिस प्रकार नाटकीय विधि द्वारा होता है, उसी प्रकार नाटकीय एवं प्रभावोत्पादक अन्त कर के उपन्यासकार ने अपने उत्कृष्ट रचना कौशल का परिचय दिया है । उपन्यासकार जो कुछ भी कहना चाहता है उसे अभिव्यक्ति देने के लिए उसके द्वारा अपनाई गई शिल्प-विधि अत्यन्त सराहनीय है । इस उपन्यास के कथानक और कथ्य में अद्भुत सामंजस्य स्थापित हुआ है ।

:: उपेन्द्र नाथ अश्क : गिरती दीवारें ::

उपेन्द्र नाथ अश्क हिन्दी के श्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। इनके उपन्यासों में जीवन और समाज के साथ व्यक्ति की समस्याओं एवं प्रवृत्तियों का यथार्थ-चित्रण प्राप्त होता है। अश्क शहर - जीवन विशेषकर निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ से विशेष रूप से परिचित है जिसका उन्होंने बड़ी ईमानदारी से कलापूर्ण चित्रण किया है। आज का निम्नमध्यवर्गीय समाज अर्थ और सैक्स की विकृतियों से ग्रस्त है जिससे उसके जीवन की कोई दिशा स्पष्ट नहीं होती। इस वर्ग का युवक आज इन दो पाटों के बीच पिसता हुआ जीवन-यापन कर रहा है जिससे उसमें भटकाव की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। अनिश्चय एवं संशय में वह कभी इस मार्ग पर तो कभी उस मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता है किन्तु सफलता नहीं मिल पाती है। इसके फलस्वरूप वह टूट जाता है और उसकी मनःस्थिति पर निराशा का अन्धकार छा जाता है। उसके चरित्र का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध हो जाता है जिससे वह नाना प्रकार की विकृतियों को प्राप्त होता है।

अश्क के " गिरती दीवारें " उपन्यास में निम्नमध्यवर्गीय समाज एवं उस समाज के अभावग्रस्त कुण्ठित युवक चेतना के भटकाव की कहानी है। उपन्यास में दो मूल समस्याओं को उठाने की कोशिश है - आर्थिक और सैक्स - सम्बन्धी कुण्ठा चेतन को जूझना पड़ता है। इसके साथ तीसरी समस्या को भी जोड़ा गया है जो अहं की है। अगर अहं की समस्या को अस्तित्व और अस्मिता की समस्या से जोड़ दिया जाये तो यह चेतन के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है[७४]। चेतन के रूप में निम्न मध्यवर्ग के अभावग्रस्त युवक के जीवन-व्यापी संघर्ष का चित्रण ही " गिरती दीवारें " का लक्ष्य है। लेखक ने सम्पूर्ण निम्नमध्यवर्गीय समाज को यथातथ्य रूप में उपन्यास में साकार कर दिया है।

नायक चेतन अत्यन्त भावप्रवण एवं अनावग्रस्त है । वह अपनी समस्याओं का समाधान करने में अक्षम है । वह इन अभावों को सामाजिक विधानों में खोजता है और उसको तोड़ने या परिवर्तित कर देने की बात सोचने लगता है । वास्तव में अश्क की जीवन-दृष्टि व्यक्तिपरक है जिसके परिणाम-स्वरूप विवेच्य उपन्यास में समाज के परिपार्श्व एवं पृष्ठभूमि पर व्यक्ति-चिंतन और व्यक्ति-मूल्यों की स्थापना का प्रयास दृष्टिगत होता है । " गिरती दीवारें " उपन्यास के सम्बन्ध में एक आलोचक का कथन है कि " इसकी राह प्रेमचन्द और अज्ञेय के उपन्यास के बीच की राह है, न तो सामाजिकता के पथ से कटी हुई और न ही वैयक्तिकता की पगडण्डी में सीमित [७५] "। स्पष्ट है कि अश्क न तो प्रेमचन्द की परम्परा के सामाजिक उपन्यासकार हैं और न अज्ञेय की भांति व्यक्तिवादी ही, वरन् वह इन दोनों के बीच व्यक्तिपरक उपन्यासकार हैं । अश्क जी का कथन है " मैं जिन्दगी से हमेशा जुड़ा रहा हूँ - वैयक्तिक तौर पर भी और साहित्यिक तौर पर भी । वास्तव में मेरे जैसे लेखक की यह नियति है कि वह जिन्दगी से कट कर न लिख सकता है न जी सकता है । लेकिन अच्छा लेखक चौबीसों घण्टे जिन्दगी से जुड़ा रहे, यह संभव नहीं । वह जब उन अनुभूतियों को, जिनका वह उपभोक्ता होता है, कलम की नोक पर उतारता है तो उनसे नितान्त असम्पृक्त हो जाता है । -------- अपने सृजन के क्षणों में मैं असम्पृक्त होता हूँ, बाकी वक्त जिन्दगी से जुड़ा हुआ । ----- लेकिन सागर किनारे की हल्की लहर, जैसे सागर बीच की तरंग से जुड़ी होती है, वैसे ही मैं एक ओर बैठा भी जिन्दगी को अपने से जुड़ा पाता हूँ [७६] । इस प्रकार लेखक जीवन और समाज से सम्पृक्त हो कर भी अपने को जीवन से पृथक् महसूस करता है जो उसकी व्यक्तिपरक जीवनदृष्टि का परिचायक है । डा० सुषमा धवन की भ्रान्त धारणा है कि अपनी रचनाओं में पात्रों के जीवन की समस्याओं को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से निरूपित किया है [७७] । इस उपन्यास में लेखक की जीवनदृष्टि व्यक्तिवादी नहीं है । डा० इन्द्रनाथ मदान का कथन है कि " अश्क की जीवनदृष्टि इन दो प्रगतिवादी विचारधाराओं के बीच उस पथ को प्रशस्त करती है जो व्यक्ति चिंतन से अधिक निकट है, परन्तु समष्टि चिंतन से भी दूर नहीं हैं । उनकी उपन्यास कला का उद्देश्य व्यक्तिमूलक

है और वह व्यक्तिसत्य की जीवन दृष्टि से अनुप्राणित है[७८] । अत: अश्क की जीवनदृष्टि व्यक्तिमूलक या व्यक्तिपरक है, व्यक्तिवादी नहीं । 'गिरती दीवारें' में ई.३५-४० के पंजाब के निम्नमध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत करना एवं उस वर्ग के अन्धकारपूर्ण वातावरण में अपनी प्रतिभा का विकास-पथ खोजने वाले अति भावप्रवण युवक की तड़प और उसके मानसिक भाव-विकास का यथा-तथ्य चित्रण को लेखक ने कथ्य चुना है । इस कथ्य की अभिव्यक्ति हेतु उसने जिस कथा-शरीर का निर्माण किया है वह अनेक त्रुटियों के बावजूद भी प्रतिपाद्य को समर्थ अभिव्यक्ति करने में सक्षम है । 'गिरती दीवारें' का नायक चेतन पंडित शादीराम का मंझला पुत्र है जो शराबी एवं उग्रस्वभाव का व्यक्ति था । चेतन बी०ए० पास कर किसी स्कूल में अध्यापन कार्य करता है । वय:संधि के प्रथम उल्लास में वह कुन्ती के प्रति आकृष्ट हो गया जिससे वह विवाह की कामना रखने लगता है । उसके पिता ने चेतन की इच्छा को बिना समझे हुए ही उसकी शादी पंडित दीन बन्धु की पुत्री चन्दा से तय कर दिया जिसे चेतन पसन्द भी नहीं करता । वह जालंधर के कलोंवाली मुहल्ले से भाग कर लाहौर पहुंच गया और अनेक कष्टों का सामना करते हुए एक पत्र के उपसंपादक की नौकरी कर ली । वह कहानीकार - उपन्यासकार बनने की इच्छा भी मन में संजोये था । कांड़ मुहल्ले (जहां चेतन निवास करता था) के उस गन्दे वातावरण में प्रकाशो और केसर नाम की दो लड़कियों ने उसके जीवन को उद्वेलित कर दिया और उसने विवाह कर लेना ही उचित समझा । जब उसका विवाह चन्दा से हो गया तो चेतन उसकी चचेरी बहन नीला के सान्निध्य में आया । नीला को चेतन ने तब देखा था जब वह चन्दा को देखने गया था । चेतन के जीवन में नीला हर्ष-विषाद की नीली रेखा की भांति विद्यमान है । नीला के प्रति आकर्षित हो कर चेतन ससुराल गया, और नीला भी अपने जीजा के अधिकाधिक सम्पर्क में आई । किन्तु एक छोटी सी भूल- अत्यंत मानव सुलभ भूल के कारण नीला और चेतन के बीच एक दीवार खड़ी हो गई । चेतन लाहौर लौट गया तथा नई उमंग

से अपने उपन्यास की रूप रेखा तैयार किया। इसी बीच वह कविराज राम दास के सम्पर्क में आया और उसके भुलावे में पड़कर चेतन ने नौकरी छोड़ दी तथा कविराज के साथ शिमला चला गया। कविराज ने ५०-६० रुपया के मासिक वेतन पर " बाल चिकित्सा " की पुस्तक लिखने के लिए चेतन को नियुक्त किया। उपन्यास का लगभग अर्धभाग कविराज की परिस्फुत शोषण वृत्ति, उदारता के आवरण से आच्छादित कमीनेपन, उनके चंगुल में पड़े चेतन की घुटन, लाचारी विषमताओं तथा संगीतज्ञ और अभिनेता बनने के असफल प्रयासों आदि के विस्तृत वर्णन से बोझिल दृष्टिगत होता है। घर से पत्र पाने पर चेतन नीला के विवाह में सम्मिलित हुआ। यह वही नीला थी जिसकी वह आरंभ से ही आराधना करता था, जिसे वह डेढ़ वर्ष के वैवाहिक जीवन के उपरान्त भी चाहता है। " उसकी उदास मुस्कान, उसकी उन्मनदृष्टि, उसके पीले मुख, उसके शरीर के एक-एक अंग को उसी शिद्दत से चाहता है जिस शिद्दत से उसे उसने उस दिन चाहा था जब वह अपनी भावी पत्नी को देखने आया था और उसने नीला की चंचल मूर्ति देखी थी। उसकी चाहना और उसकी शिद्दत में जरा भी तो कमी नहीं आई थी। बुद्धि, धर्म, नैतिकता, समाज, विवाह यह सब दीवारें, जो यथार्थ में उसकी चाहत को घेरे थीं कल्पनायें गिर गई थीं। और उसके प्रेम की लौ, जिसे फानूस की बिल्लौरी दीवाल ने धुंधला कर रखा था, उसके टूट जाने पर स्पष्ट ही चमक उठी थी।[१] नीला का विवाह रंगून में काम करने वाले एक अधेड़, कुरूप मिलिटरी एकाउन्टेन्ट से हुआ। चेतन के प्रयास करने पर भी नीला इस बार उससे अधिक बोली नहीं और अन्त में अपने इस जीजा से क्षमा मांग कर विदा हुई। उपन्यास का अन्त एक हल्की सी टीस, कुछ हल्के से खेद से ओत प्रोत हो कर करुणापूर्ण हो गया है।

" गिरती दीवारें " उपन्यास का नायक चेतन अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण मध्यवर्गीय युवक की कुण्ठाओं के जीवन्त प्रतीक के रूप में उपस्थित होता है। आर्थिक विषमता एवं यौनगत कुण्ठा से ग्रस्त

चेतन के स्वभाव संस्कार, शारीरिक-मानसिक संगठन, उसकी आशा-आकांक्षा, नैराश्य एवं उदासीनता, चिन्ता और घुटन, दु:ख एवं दर्द का लेखक ने बड़ी कुशलता से चित्रण किया है। वह पुराने और नये की दुविधा में जकड़ा हुआ युवक है जो शैशव से ही अपनी आर्थिक एवं पारिवारिक स्थिति की विवशता से रात-दिन अपमान, असफलता, अभाव एवं हीनता की अनुभूति से घुटता रहता है। वह बहुत ही भावुक प्रकृति का युवक है जो स्वयं टूट सकता है, किन्तु तोड़ नहीं सकता। अपनी इसी भावुकता और परिस्थिति वैषम्य के कारण वह जीवन में कदम-कदम पर असफल होता हुआ दिखाई पड़ता है। बाल्यावस्था में उसके मन में एक अच्छा कवि, लेखक, चित्रकार, संगीतज्ञ, अभिनेता, वक्ता, सम्पादक और न जाने क्या - क्या बनने की प्रबल इच्छा थी किन्तु वह कुछ भी न बन सका। उसकी मन: स्थिति इतनी कमजोर थी कि अनीति, अत्याचार एवं छल-कपट का प्रबल विरोधी होते हुए भी अपने शराबी पिता, अपने क्रूर मित्र देसराज, अपने सम्पादक महोदय एवं धूर्त कविराज राम जी दास आदि व्यक्तियों के प्रति विरोध व्यक्त नहीं कर पाता और वह निरुपाय सा बना रह जाता है। " चेतन की जीवन की ट्रैजेडी उसकी यही भाव:प्रवणता और उससे जनित दैन्य था। यदि अनजाने में उससे स्वयं छल बन जाता तो दूसरे ही क्षण अपने छल को जान कर आत्म-ग्लानि से उसका हृदय भर जाता। निम्न मध्यवर्ग में जो " मोटी खाल " पैदा होती है - जो मान - अपमान को सह जाती है। और बिना महसूस किये झूठ बोलती है खुशामद करती है, रिश्वत लेती है, देती है, और धोखा-फरेब करती है, वह चेतन के पास नहीं थी[८०]।

चेतन का संस्कार शील मन उसे समाज विरोधी कार्यों में प्रवृत्त नहीं होने देता। वह कुन्ती, चन्दा, प्रकाशो, केसर, नीला आदि अनेकानेक नारियों के सम्पर्क में आता है, एवं प्रच्छन्न रूप से उनसे अंग-स्पर्श

होने पर रोमांच एवं सुख का अनुभव करता है जो उसकी काम-जनित भूख को उजागर करता है, किन्तु सामाजिक औचित्य का ध्यान आते ही वह क्षुब्ध हो उठता है। सभ्य, सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित मानव के लिए इस प्रकार का घृणित कार्य करते हुए पकड़ जाने पर दण्डित होना बहुत ही अपमान की बात है। अपनी इसी मन:स्थिति के कारण वह उन अनेक नारियों की ओर आकर्षित होते हुए भी अनुचित कदम नहीं उठाता और अपनी " मोटी मुटल्ली ढीली-ढाली " होने के कारण अनिच्छित पत्नी चन्दा के घर आ ही जाने पर उसके साथ पतिवत् निर्वाह का प्रयत्न करता है। चेतन का अहं उसे अनेक नारी-संसर्गों में रहने पर भी वासना-पूर्ति से रोकता है। अपने संस्कारों के कारण ही चेतन ने नीला के पिता को उसके विवाह की ओर संकेत किया था जिसके परिणाम स्वरूप वह बेचारी एक अधेड़ व्यक्ति से ब्याह दी गई। इस प्रकार चेतन के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव एवं अनेक स्थितियों का प्रभाव पड़ता है। वह अनेक स्वार्थी, एहसान फरामोश, नीच एवं कुत्सित प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के संस्पर्श से अनुभव ग्रहण करता हुआ आगे बढ़ता है। अपनी जीवन-यात्रा में चेतन सामाजिक विधान पर गहरी चोटें करता है और व्यंग्य-बाण भी छोड़ता है। वह उन दीवारों के बारे में सोचता है जो अन्तहीन हैं। वह व्यक्ति के विकास के लिए इन दीवारों का गिरना आवश्यक तो समझता है किन्तु इन सब का गिरना, कैसे होगा, कब होगा, इसका उत्तर देने में वह सक्षम नहीं है। प्रतिभावान होते हुए भी वह अपने जीवन का निर्माण करने में सफल नहीं हो पाता। उसका भटकाव, अनिश्चय एवं संशय आधुनिक सामाजिक यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार चेतन को एक परिवेश में रख कर अश्क जी ने जिस विराट कैन्वेस का यथार्थ चित्रण किया है, वह अत्यन्त स्वाभाविक एवं उत्कृष्ट बन पड़ा है।

'गिरती दीवारें' में चेतन के अतिरिक्त उपन्यासकार ने उसके परिवार के सभी सदस्यों के चरित्र पर सम्पूर्ण प्रकाश डाला है [८१]। चेतन के पिता शादी राम के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए लेखक का कथन है -- 'पंडित शादी राम स्वभाव से क्रूर थे, कठोर थे और अत्याचारी भी उन्हें कहा जा सकता है। पर इसके साथ ही उनके मन में कहीं - न - कहीं उदारता और कोमलता की यथेष्ठ मात्रायें दबी पड़ी थी। इसी कोमलता के कारण वे अपने शत्रु को माफ कर देते थे और इसी कोमलता के कारण जब किसी दिन अथवा निकट सम्बन्धी की बेवफाई उनके मर्मस्थल पर चोट पहुंचाती थी तो वे बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो पड़ते थे [८२]। चेतन के पारिवारिक सदस्यों के अतिरिक्त उसके सम्पर्क में आने वाली अन्य नारियां-कैसर, प्रकाशो, मन्नी एवं नीला, नये साहित्यकारों की प्रतिभा को चूस कर मोटे बनने वाले धूर्त परोपकारी कविराज, दूसरों की कविताओं को अपने नाम से सुना कर झूठी प्रतिष्ठा से प्रसन्न होने वाले शायर हुनर साहब तथा अन्य दर्जनों पात्रों का अत्यन्त सफलता पूर्वक चरित्रोद्घाटन हुआ है जिसमें उपन्यासकार ने छोटे-छोटे प्रसंगों तथा ब्यौरों का उपयोग किया है।

वातावरण एवं परिवेश के यथार्थांकन में भी अश्क जी की यथार्थवादी चित्रण-कला को निखार प्राप्त हुआ है। जालंधर बाजार, वहां का निम्नमध्यवर्गीय जीवन, विद्यालय के अध्यापक और विद्यालय से घर लौटते हुए बस्ता लिये विद्यार्थी उपन्यास का अध्ययन करते समय पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं। कांडू मुहल्ले के वर्णन में म्युनिस्पल कमेटी के भंगियों, चमारों, अस्तबलों, गन्दी गाड़ियों के अहातों आदि के चित्रण को स्थान मिला है जिससे गूजरों, कांडूओं, भंगी तथा चमारों के आवास से गन्दगी युक्त मुहल्ला प्रत्यक्ष हो उठता है। शिमला नगर के वर्णन में कथाकार ने विभिन्न स्थानों, होटलों, सड़कों, क्लबों आदि के अनेक चित्रों को प्रस्तुत किया है जिनमें छोटी-छोटी तफसीलों के द्वारा संश्लिष्ट चित्र देने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है।

'गिरती दीवारें' उपन्यास में छोटी-छोटी तफसीलों के माध्यम से लेखक ने यथार्थ जीवन के असंख्य चित्रों का बहुत ही सफल अंकन किया है किन्तु कथानक-कथ्य में सानुपात नहीं है। लेखक जब उपन्यास में आए हुए पात्रों का चरित्रोद्घाटन करता है तो वह विस्तृत एवं अनावश्यक विवरणों से काम लेता है। वर्णन की इस प्रक्रिया में अनेक स्थलों पर लेखक का ध्यान अपने कथ्य की ओर से हट गया है एवं कथानक अनावश्यक विवरणों से बोझिल हो गया है। इसके परिणाम स्वरूप कथानक भी अबाध गति से प्रवाहित न होकर बिखरा-बिखरा सा दृष्टिगत होता है। उपन्यास के लगभग आधे भाग में धूर्त कविराज का चारित्रिक वर्णन तथा चेतन के संगीतज्ञ एवं अभिनेता बनने की अदाम्यता का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। कविराज की धूर्तता एवं काली करतूतों के वर्णन में उपन्यासकार दस-बारह पृष्ठों को रंग देता है। जिसका औपन्यासिक कथ्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि सामान्य सामाजिक वातावरण का चित्रण उपन्यास का कथ्य होता तो वैद्यों की काली करतूतों की आलोचना कुछ सार्थक होती। लेखक के मन का तीव्र विकार यहाँ मुख्य कथ्य के बीच में दरार बन कर प्रविष्ट हो जाता है और लेखक का ध्यान कथ्य के निर्वाह से परे हट जाता है। आरम्भ में लेखक जहाँ चेतन के बल और बलहीनताओं यथार्थांकन द्वारा जीवन के अनुभूतिगम्य रूप को अभिव्यक्त देता है, वहाँ इन दस-बारह अध्यायों में एक पक्षीय हो कर जीवन के काले अंश-मात्र का आलोचक बन बैठता है। चेतन के चरित्रांकन में भी उपन्यासकार कोई नाटकीय मोड़ नहीं उपस्थित कर सका है। यदि उपन्यासकार इन्हीं बातों को विवरणात्मक और व्याख्यात्मक रूप न दे कर मूर्त रूप में प्रस्तुत करता तो औपन्यासिक कथ्य अपनी सहज एवं स्वाभाविक गति से कथानक द्वारा विकसित हो कर अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकता।

'गिरती दीवारें' उपन्यास की शिल्पगत दुर्बलताओं को उल्लेख करते हुए डा० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है - 'यह उपन्यास साधारण

जीवन की साधारण घटनाओं से बुना गया है। इसमें न तो खादी के धागों की पावनता है और न ही रेशमी तन्तुओं की सुकुमारता और कोमलता है। कहीं-कहीं अनावश्यक धागों को भी ठूंसा गया है जो इसकी बुनती से बाहर निकल कर लटकने लगते हैं। यह कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तारों में उलझ जाने का परिणाम है। अश्क अपनी आवाज़ सुनने के मोह का संवरण नहीं कर पाये हैं। यह शायद इस लिए कि उपन्यासकार के मन में पाठक की समझ पर पूरा विश्वास नहीं है। अनेक स्थलों पर वह उपन्यास से निकल कर पाठक के सामने खड़े हो जाते हैं[८३]।

डा० मदान के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास का कथानक सौष्ठव की दृष्टि से ढीला है। उसमें बहुत सी आवश्यक घटनाओं का समावेश हुआ है। कुन्ती, केसर, शामो, वैद्य गिरजा शंकर, जगदीश सिंह, कविराज राम जी दास और जन्नो आदि से सम्बद्ध घटनायें ऐसी ही हैं जिनका उपन्यास के कथ्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। उपन्यासकार द्वारा गृहीत व्याख्यात्मकता का कारण उसके अपने विचारों का प्रतिपादन ही प्रतीत होता है जो कथ्य के संगठन पर आघात पहुंचाता है। जब चेतन अपने एक मित्र को पत्र लिख कर बम्बई से अपनी सगाई हो जाने की बात संकेत रूप में बताता है। उपन्यासकार सन्तुष्ट नहीं होता। वह लिखता है - " वहां जो कुछ हुआ उसका विवरण यद्यपि चेतन ने उस पत्र में नहीं किया पर वह कुछ यों हैं --------[८४]। लाहौर के प्रसंग में चेतन के महत्वकांक्षी जीवन का भी वर्णन बहुत ही विस्तृत है। शिमला का वर्णन तो अत्यन्त विस्तार-पूर्वक हुआ ही है। जहां तक उपन्यास से निकल कर पाठकों के सामने उपन्यासकार के खड़े होने की बात है वह उपन्यास में अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है। यौन के विषय को लेकर लेखक लिखता है --------" हमारी इस निम्न मध्यवर्गीय संस्कृति में जब यौन सम्बन्धी किसी बात का ज्ञान हुआ लड़की-लड़के के कानों के पास तक ले जाना पाप समझा जाता है तो अपने सहज-ज्ञान द्वारा कैशिरत पशु-पक्षियों को देख, अपने ही तरह के अपने से अज्ञानी मित्रों या झूठे बाजारी वैद्य-हकीमों से सुन-सुन कर, या फिर छिपे-छिपे कोकशास्त्र की तरह के ग्रन्थ पढ़-पढ़ कर इन युवकों की वासना समय से पहले जाग जाती हो पर सेक्स का उचित ज्ञान उन्हें प्राप्त नहीं होता[८५]।

इसी प्रकार विज्ञापनों के महत्व पर कथाकार ने खुल कर प्रकाश डाला है। सिमला के एक ब्यूटा ड्रामा क्लब और लाहौर से आये नाटक क्लब की चर्चा के प्रसंग में कला की तत्कालीन दशा पर व्यंग्य करने के लिए उपन्यासकार ने कई पृष्ठों को रंगा है। इससे भी कथ्य के निर्वाह में बाधा पहुंची है। इस स्थल पर भी चेतन के जीवन की अपेक्षा लेखक का विचार ही अधिक प्रकट होता है।

कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि " गिरती दीवारें " उपन्यास के कथ्य और कथानक में सन्तुलन का अभाव है। लेखक जो कुछ कहना चाहता है वह आद्यन्त कथानक द्वारा अभिव्यक्त नहीं हो पाता। अपने विचारों की सबल अभिव्यक्ति के मोह एवं व्याख्यात्मकता के कारण उपन्यासकार कई स्थलों पर अपने प्रमुख कथ्य से विचलित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। विवरणात्मकता की समाविष्टि के कारण कथानक भी बोझिल हो गया है और उपन्यास कभी-कभी भीतर से टूटा हुआ और बाहर बिखरा हुआ प्रतीत होता है। फिर भी सामाजिक - यथार्थ की अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस उपन्यास का बहुत महत्व है। इसमें लेखक ने निम्न मध्यवर्गीय समाज की विविध समस्याओं को कटु आलोचनात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है जिसके प्रभाव से चेतन जैसे पता नहीं कितने व्यक्ति कुंठित हो रहे हैं और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पा रहे हैं। यही आज के सामाजिक जीवन का यथार्थ है। इसी लिए उपन्यास में कोई समाधान नहीं प्राप्त होता। यथार्थांकन में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। निम्न मध्यवर्गीय जीवन अपनी सम्पूर्ण प्रकृति विकृति को लिए हुए अपने यथार्थ परिवेश में पाठकों के समक्ष मूर्त रूप धारण कर उपस्थित हो जाता है।

अज्ञेय कृत " शेखर: एक जीवनी

प्राय: सभी आलोचकों ने अज्ञेय को व्यक्तिवादी उपन्यासकार स्वीकार किया है। इनके औपन्यासिक पात्रों के स्वरूप, विचार एवं कार्य-प्रक्रियों के माध्यम से अज्ञेय जी का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण प्रतिफलित हुआ है। वे सभी

अहं के पुंजीभूत मन का सामान्य के प्रति भी विशिष्ट विद्रोह करते हुए दृष्टिगत् होते हैं वह उनके व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन का परिचायक है। उन पर अस्तित्ववाद का भी पूर्ण प्रभाव पड़ा है। अज्ञेय सर्वाधिक फ्रायड से प्रभावित हैं। फ्रायड द्वारा उद्घाटित तीन मूल प्रवृत्तियाँ काम, भय तथा अहम् से ही उनके विचार दर्शन का निर्माण हुआ है। उन पर यौरोपीय ह्रासशील संस्कृति का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। वह नियतिवादी भी हैं। वह क्रांतिकारी रह चुके हैं जो अन्ततोगत्वा नियतिवादी होता है। क्रांतिकारी के नियतिवाद का जो स्वरूप अज्ञेय जी में दृष्टिगत् होता है वह फ्रायड के मनोवैज्ञानिक नियतिवाद (Psychic Determinism) से अधिक साम्य रखता है। उनके सभी उपन्यासों में नियतिवाद का यथेष्ट चित्रण उपलब्ध होता है।

'शेखर: एक जीवनी' दो भागों में लिखा हुआ अज्ञेय का प्रथम उपन्यास है जिसमें उपन्यासकार के अनुसार शेखर के रूप में व्यक्ति के स्वातंत्र्य की खोज है[८६]। यह स्वातंत्र्य की खोज क्या है? इसका स्पष्टीकरण करते हुए अज्ञेय का कथन है----'शेखर के स्वातंत्र्य की खोज, टूटती हुई नैतिक रूढ़ियों के बीच नीति के मूल स्रोत की खोज है[८७]। इसे यदि निषेधीय भाषा में कहें तो इनसेक्ट है जिसे मूल स्रोत कहा गया है -- शेखर की सरस्वती और शशि से रति। व्यक्तित्व की खोज को स्वातंत्र्य की खोज बताया गया है[८८]। शेखर जिस स्वातंत्र्य की मांग करता है वह सैक्स सम्बन्धी स्वातंत्र्य है जिसमें विद्रोहीपन अधिक है। वह बाल्यावस्था से ही यौनाधिक्य से आक्रांत है उसमें भय भी है और अहं भी। विद्रोह उसके व्यक्तित्व के अन्य पक्ष को उजागर करता है। वह समाज, संस्कृति तथा ईश्वर की सत्ता के प्रति विद्रोह करता है। किन्तु उसका विद्रोह रचनात्मक न हो कर केवल बौद्धिक है तथा विध्वंस की आकांक्षा रखता है।

'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास का आधार व्यक्ति-चरित्र है। उपन्यासकार ने उसके चरित्रोद्घाटन के लिए मनुष्य की तीन मूल प्रवृत्तियाँ काम, भय तथा अहम को पकड़ा है जो उसकी अन्तश्चेतना में जीवन के आरम्भ से ही

उदित हो जाती है तथा निरन्तर विकसित होती रहती हैं। लेखक का निष्कर्ष है कि प्रेम ने मनुष्य को बनाया, भय ने उसे समाज का रूप दिया तथा अहंकार ने उसे राष्ट्र में संगठित कर दिया[८६]। इन्हीं तीनों अन्तर्वृत्तियों के क्रमिक विकास के माध्यम से लेखक ने शेखर के रूप में एक व्यक्ति के चरित्र का विकास दिखलाया है तथा उसके चरित्रांकन के द्वारा अपने व्यक्तित्व की कमीं को अभिव्यक्ति प्रदान की है, यही ' शेखर: एक जीवनी ' उपन्यास का मूल है।

शेखर एक उच्च मध्यवर्गीय चरित्र है जो अपना स्वस्थ विकास न पा कर हीनता-ग्रन्थि से ग्रस्त हो जाता है और अपने व्यक्तित्व का अस्वाभाविक विकास करता है। फलत: उसका चरित्र असाधारण चरित्र बन बैठता है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा एक जीवनी के रूप में लिखी गयी है जिसे बड़े होने पर स्वयं शेखर ने मृत्यु की छाया में बैठकर लिखा है। इसके प्रथम खण्ड में उसके स्मृति-पटल पर आने वाले संस्मरण हैं परन्तु द्वितीय खण्ड में वर्णित शशि और शेखर की कथा उपन्यास का रूप धारण कर लेती है। सम्पूर्ण उपन्यास में शेखर का चरित्र ही उभरता है।

शेखर के चरित्र को विकसित करने वाली अन्तर्वृत्तियों में प्रेम की प्रवृत्ति का विशेष महत्व है। क्योंकि उसके चरित्र में आरम्भ से अन्त तक इसका विकास दृष्टिगोचर होता है। वासना प्रेम की प्रधान वृत्ति है जिसके कारण सृष्टि संभव हो सकी है। शेखर के चरित्राध्ययन के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य के लिए कामवृत्ति की उपेक्षा करना असंभव है क्योंकि उसकी जन्म जात मूल प्रवृत्ति है। यौन-वृत्ति के चित्रण में अज्ञेय फ्रायड की विचार धारा से प्रभावित है। फ्रायड के मतानुसार शैशव कालीन यौनवृत्ति बालक की माँ के प्रति (इडिपस ग्रंथि और बालिका की पिता के प्रति (इलेक्ट्रा ग्रंथि) आकर्षण शक्ति के रूप में प्रकट होती है। किन्तु इस दृष्टि से शेखर का व्यक्तित्व असाधारण है। उसका आकर्षण माता

के प्रति न हो कर पिता के प्रति है[६०]। पितृपद की महानता एवं परिवार में उसकी प्रतिष्ठा को देख कर शेखर का उसकी ओर झुकाव है, जिसे मनोविज्ञान में 'दमन ग्रंथि' या 'पुंसत्व-हरन ग्रंथि (Castrtion complex) कहा गया है[६१]। लैंगिक आकर्षण या यौनासक्ति की दृष्टि से वह माता के प्रति आकर्षित न हो कर बहन सरस्वती के प्रति आसक्त है जिसे वह 'सरस' नाम दे कर प्यार से अपने मन में पुकारने लगता है[६२]। उपन्यासकार ने शेखर की यौनाधिक्य को अभिव्यंजित करने के लिए उसे अनेक नारियों के सम्पर्क में चित्रित किया है किन्तु उसमें अहं इतना प्रबल है कि वह अपने मन को दबाता है। बाल्यावस्था में शेखर के मन में उदित काम-भावना समय पा कर उत्तरोत्तर किस प्रकार विकसित होती रही उसकी अभिव्यक्तिकरण में लेखक की उपन्यास-कला बहुत ही उत्कृष्ट बन पड़ी है। एक समय एकान्त में निर्जन घास पर शारदा के पास बैठा वह कामोन्मत्त हो उठता है तथा औंधा हो कर पृथ्वी से लिपट जाना चाहता है। शारदा भी उसके स्पर्श से कांपने लगती है। बाल्यकालीन शेखर के मन में उठने वाली यह काम-भावना को वय: संधि की अवस्था में जिस प्रकार उपन्यासकार ने अभिव्यक्त किया है पर अत्यन्त स्वाभाविक है। प्राय: प्रेमी अपनी प्रेमिकाओं को प्रभावित करने के लिए अनेक प्रकार के साहसपूर्ण कार्य दिखाया करते हैं। शेखर भी शारदा को आकर्षित करने के लिए एक पेड़ पर चढ़ जाता है और नीचे गिर कर घायल हो जाता है। उसके गिरने पर जब शारदा हंसने लगती है तो वह उसके पास पुन: कभी न आने की प्रतिज्ञा कर के जाता है। इसके बाद वर्णित शेखर का सम्पूर्ण जीवन नारी-प्रभावों से आहत रहा है जिनका उस पर प्रभाव पड़ा है। वह अपने सम्पर्क में आने वाली सभी स्त्रियों से अपनी कामेच्छा की तृप्ति चाहता है। शारदा के अतिरिक्त उसके जीवन में उसकी माँ, मौसी विद्यावती, उसकी बड़ी बहन सरस्वती, नौकरानी अन्ती, फूला, सावित्री, मिस प्रतिभालाल, मणिका, शान्ति, शीला, शारदा और शशि आदि अनेकों नारियों का प्रवेश होता है। इनमें से माँ को छोड़ कर अन्य सभी स्त्री-पात्रों का कुछ न कुछ उस पर प्रभाव पड़ता है। शारदा और शशि ने उसे सर्वाधिक

प्रभावित किया है। बाल्यावस्था में शेखर ने एक बार छोटे से जिस शशि का सिर फोड़ा था वही बड़ा होने पर उससे मिलने में संकोच का अनुभव करता है। शशि के प्रति शेखर के इस आकर्षण का लेखक ने अवस्थानुसार बहुत ही सजीव एवं स्वाभाविक विकास दिखलाया है। शशि के प्रेम से प्रेरित हो कर ही वह लेखक क्या, सब कुछ बनता है। रामेश्वर के द्वारा तिरस्कृता शशि जब लौट कर शेखर के पास वापस आ जाती है तो वह अनेकोंबार 'शशि' का सिर पकड़ कर उसके होंठों का चुम्बन करता है जिसमें उसके समस्त स्वप्नों का विलय हो जाता है। शैशव काल से ही यौनाधिक्य से पीड़ित शेखर का अस्त-व्यस्त मन शशि को प्राप्त कर लेने पर ही यत्किंचित् सन्तुष्टि का अनुभव करता है। वह अपने विगत जीवन का प्रत्यवलोकन करते हुए कहता है —'सब से पहले तुम शशि !------इस लिए कि मेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है[६३]। शेखर के चरित्राध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि सेक्स मानव जीवन की अनिवार्यता है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए उसकी स्वलिंगी रति द्रष्टव्य है। जब शेखर अनेक नारी-सम्पर्कों से तृप्ति का अनुभव नहीं कर पाता तो अपने सहपाठी कुमार के प्रति आकर्षित होता है। इस प्रकार का आकर्षण तृतीय जाति का काम (थर्ड सेक्स)[६४] माना जाता है अर्थात् स्वलिंगी प्रेम (होमो सेक्स)। वह कुमार से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर उसकी बड़ी सहायता करता है। शेखर उस पर अपना अधिकार रखना चाहता है। समुद्र के किनारे कुमार का चुम्बन लेने के बाद शेखर कहता है —'कुमार, यदि मेरे अतिरिक्त तुम और किसी के हुये तो मैं तुम्हारा गला घोंट दूंगा[६५]। इसी प्रकार के अनेकों प्रसंगों की सृष्टि करके अज्ञेय जी ने शेखर के माध्यम से मनुष्य की यौन सम्बन्धी गतिविधियों एवं उसकी अतृप्त प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण किया है जिसमें पुरातन रूढ़ियों एवं परम्पराओं के प्रति विद्रोही स्वर को ऊंचा उठाया गया है। काम-भाव के विकास का चित्रण उपन्यास के कथ्य का एक महत्वपूर्ण

पहलू है और इससे सम्बन्धित अपने विचार को बड़ी ही कलात्मकता, सौष्ठव एवं प्रभावोत्पादकता के साथ अभिव्यक्ति देने में लेखक समर्थ रहा है।

शेखर का अहं विवेच्य उपन्यास के कथ्य का दूसरा पहलू है। अपने अहं में वह अकेला है, किसी की अनुकृति नहीं है[९६]। यही कारण है कि वह समाज, संस्कृति तथा ईश्वर की सत्ता के प्रति विद्रोह करता है "मुझे मूर्ति उतनी नहीं चाहिये, मुझे मूर्ति पूजक चाहिए। ------ अपने लिए ईश्वर - रचना मैं कर मैं हूँ, लेकिन मेरी ईश्वरता का पुजारी।" शेखर के यही शब्द उसकी अहं भावना के मूल एवं स्पष्ट उद्घोषक हैं। वह बाल्यावस्था से ही अहं निष्ठ है जिस पर उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व आधारित है। अहं से ही वह विद्रोही बन जाता है। बाल्यावस्था में जब शेखर को कोई भी काम करने को दिया जाता है तो वह गर्व का अनुभव करता है। अपने अस्वस्थ भाई के इलाज हेतु डाक्टर को बुलाने का कार्य वह बड़ी प्रसन्नता से करता है[९७]। सोचने से मना किये जाने पर वह बड़ा होने की इच्छा रखता है[९८]। शेखर जब कान्वेन्ट में शरारत करता है, तो पिता के पास शिकायत भेजी जाने पर उसके अहम् को आघात पहुंचता है तथा वह इसे सहन न कर पाने के कारण कान्वेन्ट छोड़ देना चाहता है[९९]। उसने किसी के आधिपत्य में रहना नहीं सीखा है, प्रत्युत् उसके ऊपर दबाव का उल्टा प्रभाव पड़ता है। विवश हो कर वह किसी कार्य को करना अच्छा नहीं समझता। भाई के पढ़ते समय शेखर कविता कण्ठस्थ कर लेता है और सुनाता है। किन्तु पढ़ने को जब कहा जाता है तब वह विद्रोह करता है और पढ़ता नहीं[१००]। कान्वेन्ट छोड़ने के पश्चात् जब वह दूसरे स्कूल में प्रविष्ट होता है तो मानीटर बना दिया जाता है। किन्तु एक दिन वहां लड़कों से काश्मीरी बाजारू गीत गवाते हुये पकड़ा जाता है। उसकी मानिटरी छिन जाती है तथा वह क्लास के समक्ष मुर्गा बना दिया जाता है। मानिटरी का छिनना तो किसी सीमा तक वह सहन भी कर सकता था किन्तु मुर्गा बनने से उसके अहं को आघात पहुंचा

और वह उसका प्रतिशोध तक ले लेने को प्रस्तुत हो उठता है।[101] इस प्रकार शेखर के व्यक्तित्व में अहं अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच गया है। इसी अहं के कारण ही वह पथ-भ्रष्ट होता है। उसका अहं उसे निरन्तर विजयी बनाता है। कालान्तर में शेखर की अहं वृत्ति का उदात्तीकरण भी दृष्टिगत होता है, किन्तु वह पूर्णतया परिष्कृत नहीं हो पाता। उसके अहं के उदात्तीकरण में बाबा मदन सिंह, मोहसिन, तथा रामजी का हाथ है। डा० इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में --' वह बाबा के पांव छूने में तो अपना अपमान समझता है, लेकिन उसके कह करने से समाचार को पा कर रोता है। सरस्वती, शारदा, शान्ति, शशि से सम्बन्धों में शेखर के अहंकार की गंध अधिक है, काम-वासना की कम।[102] साधारण पुरुषों के समान स्त्रियों के प्रति उसमें आकर्षण है किन्तु उनका सान्निध्य प्राप्त करने पर भी वह केवल उनके स्पर्श-मात्र से ही सन्तुष्ट हो जाता है। उसका अहं इतना प्रबल एवं विकसित है कि वह इससे आगे बढ़ ही नहीं पाता। इस प्रकार मनो-विश्लेषण के द्वारा शेखर को माध्यम बना कर उपन्यासकार ने मानव-मन की महत्वपूर्ण अन्तर्वृत्ति अहं का अनेक परिस्थितियों के मध्य जो क्रमिक विकास प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त ही कलापूर्ण एवं बाल-स्वभाव के अनुरूप है। मनुष्य के जीवन के आरंभ में ही उत्पन्न उसकी अन्तर्वृत्ति किस प्रकार विकसित एवं परिवर्धित होती रही, इसका निदर्शन ही अज्ञेय का लक्ष्य है, जिसको अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त करने में उन्होंने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

मानव-जीवन को नियंत्रित करने वाली तीसरी प्रमुख मूल-प्रवृत्ति भय है जिसे अज्ञेय ने शेखर के व्यक्तित्व-विकास द्वारा बहुत ही कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। शेखर अजायब घर में भीम-काय बाघ को देख कर डर जाता है और यहीं से उसमें भय का विकास है ----' उस दिन

के बाद उसे भयंकर स्वप्न आने लगे, रात को वह चौंक-चौंक उठता, और कभी जाग कर यदि पाता कि कमरे में अन्धेरा है, तब तो वह अन्धकार एक नहीं, असंख्य बाघों से सजीव हो उठता, एक से एक खूंखार -------[103]। इस प्रकार लेखक ने शेखर के मन में उत्पन्न भय को स्वप्न के माध्यम से चित्रित किया है। कालान्तर में शेखर इस भय पर विजय पाने का प्रयत्न करता है और सफलता भी प्राप्त करता है। घर में बाघ को देख कर वह भयभीत तो अवश्य होता है किन्तु बाद में बाघ से लाड़ करके वह समस्त भयानक वस्तुओं से निःशंक तथा निर्भिक हो जाता है।[104] शिशुओं में भय के साथ ही जिज्ञासा-वृत्ति का उत्पन्न होना भी स्वाभाविक है। मृत्यु भय की चरम सीमा है। शेखर में भी मरण को जानने की प्रबल जिज्ञासा है जिसमें भय विलुप्त सा हो जाता है। एक बार नदी में कूद कर वह मरते - मरते बचता है, इसके बाद भी वह डूबने से घबड़ाता नहीं। इतना ही नहीं मृत्यु को जानने की अपनी प्रबल इच्छा के कारण वह बहुत धैर्यपूर्वक घोषणा करता है ----' और अभी हुआ क्या है, अभी तो मैं फिर किसी दिन यह करूंगा। डूब कर देखूंगा कि मरना क्या होता है। मैं जरूर किसी दिन ऐसे ही करूंगा[105]। इसके पश्चात् जब भी वह मरण के सम्बन्ध में सुनता है तो उसके मन में यह जिज्ञासा होती है कि मरण क्या है और मरणोपरान्त क्या होता है। बालक की इस प्रकार की मनोवृत्ति का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक बन पड़ा है।

भय, काम, अहं पर विजय पाने के लिए शेखर स्वभाव और सहज भाव से विद्रोही बन गया है। डॉ० बेचन के शब्दों में -------' जीवनी में शेखर का पूरा व्यक्तित्व एक विद्रोही व्यक्तित्व है - विद्रोह उसका जीवन - दर्शन है। वह प्रतीक वस्तु, स्थिति, व्यवस्था, संस्था सभी के विरुद्ध विद्रोह करता है[106]। शेखर विद्रोह - भावना से पूर्णतः आवेष्टित ही नहीं उसी से निर्मित है। विद्रोह-वृत्ति उसकी आत्मा में ही निहित है। उसका कथन है कि ----' विद्रोही बनते नहीं, उत्पन्न होते हैं[107]। समस्त

सामाजिक रूप-विधान तथा प्रचलित मान्यताओं का घोर विद्रोह करते हुये शेखर अपना व्यक्तिवादी तथा नियतिवादी जीवन-दर्शन स्थापित करना चाहता है। उसे यहां सब कुछ निरर्थक, त्रुटि-पूर्ण एवं कुव्यवस्थित समझ में आता है। उपन्यास में एक स्थल पर उसके विचार हैं कि ---" शक्ति मेरे पास रही है, पर मैंने उसे जाना नहीं, आजीवन मैं विद्रोही रहा हूं ---- एक दिन तुम्हारे (शशि के) ही मुख ने मुझे यह दिखाया - बताया कि लड़ना स्वयं साध्य नहीं है, लड़ने को लड़ना निष्परिणाम है, कि विद्रोह किसी के विरुद्ध होना चाहिए, ईश्वर, समाज, रोग, मृत्यु, माता-पिता अपना आप, प्यार कुछ भी हो जिसके विरुद्ध विद्रोह किया जा सके ---- मेरे विद्रोह को प्यार मिला -- वह विरुद्ध हुआ ----- मैं प्रति द्वन्द्वी हुआ ---- किन्तु वह आधा ज्ञान था, इस लिए मेरा विद्रोह भी आधा था ----- मैंने देखा सर्वत्र कलुष है, पतन है ------ कि केवल समाज ही नहीं, जीवन अमूल दूषित है -- ईश्वर, मानव, सब कुछ ------ अमूल दूषित --- दूषित और सड़ा हुआ[108]। शेखर का यह विद्रोह बौद्धिकता से संचालित है। बौद्धिकता एवं संवेदन-शीलता ही शेखर के मूल मानसिक तत्व हैं जिनके पारस्परिक संघर्ष से उसमें विद्रोह-भावना का विकास होता है। शेखर का अन्तर्द्वन्द्व बौद्धिकता से संचालित है - " यदि किसी का कोई है तो उसकी अपनी बुद्धि, मनुष्य को उसी के सहारे चलना है, उसी के सहारे जीना है[109]।" शेखर में भी बुद्धि की कमी नहीं है किन्तु " उस बुद्धि की -- प्रवाह -गति का निर्देश करने वाली शक्ति संसार में नहीं थी। वह बुद्धि उसकी थी, उसके प्रयोग के लिए थी, वह उसका मन चाहा उपयोग करता था और वह जानता था। जहां उसने अपनी सहज बुद्धि की प्रेरणा मानी वहां उसने उचित किया और जहां उसकी बुद्धि को दूसरों ने प्रेरित किया वह लड़खड़ा गया[110]। इस प्रकार उसका यह विद्रोह बौद्धिकता के प्रतिअबौद्धिकता का विद्रोह है जो पाश्चात्य मनोविश्लेषण सिद्धान्तों से उद्भूत है। शेखर का चरित्र एक क्रांतिकारी का चरित्र है। पूर्ण-भाव उसके हृदय की संवेदन शीलता ही है -----" क्रान्तिकारी के लिये क्रान्ति की अन्त:शक्ति के साथ

सब से महत्त्वपूर्ण वस्तु है क्रान्तिकारिता के, विद्रोह-भावना के प्रति, एक पूजा भाव ।[११९] अज्ञेय जी ने शेखर की रचना पाश्चात्य मनोविज्ञानिकों के अचेतन, उपचेतन, और चेतन मन से सम्बद्ध विचारों से प्रेरित हो कर की है । उसमें विद्यमान विद्रोह की भावना इसी चिन्तन से उद्भूत है । उसमें जन्म से ही विद्रोहवृत्ति वर्तमान है । उदाहरणार्थ शेखर को माँ जब उसे दबा कर अपने इच्छानुकूल आचरण करने के योग्य बनाना चाहती थी, जिससे शेखर में विद्रोह- भावना उद्दीप्त हो हुई तथा वह विपरीत आचरण की ओर ही उन्मुख होता गया । यदि उसके जीवन में सुधार आये तो उसके वैयक्तिक अनुभवों के द्वारा ही । जीवन में चर्की आने पर उसकी चेतना विकसित हुई और वह सुधार-कार्यों में लग गया । लिखने-पढ़ने की रुचि भी उसमें जगी लेकिन अपनी इच्छा से ही । किन्तु जैसा कि प्रायः सभी आलोचकों ने इसे स्वीकार किया है कि शेखर का विद्रोह अधूरा है वह अज्ञेय की फ्रायडीय दृष्टि का परिणाम है । जिन लेखकों ने फ्रायड से प्रेरणा ग्रहण की है उनमें यौनसम्बन्धी दुर्बलता पाई जाती है । शेखर भी यौनाधिक्य से आक्रान्त है । नारी एक उसकी ऐसी कमजोरी है जिसके समक्ष उसकी विद्रोह-वृत्ति निष्क्रिय हो जाती है । वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विद्रोह करता है किन्तु नारी- शरीर के प्रति उसका विद्रोह असफल हो जाता है ।

सम्पूर्ण विवेचन के उपरान्त हम यह कह सकते है कि 'शेखर' एक जीवनी ' अज्ञेय का ही नहीं प्रत्युत् हिन्दी का प्रथम उपन्यास है जिसमें लेखक ने एक बालक के मन में विकसित होने वाली मनोवृत्तियों, शिशु-मानस के स्वप्नों, जीवन की आनन्द प्रद कांक्षियों, उसके कौतूहल और जिज्ञासाओं तथा उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर समाज तथा माता-पिता के व्यवहार से उत्पन्न दमन, मानसिक ग्रंथियों एवं उसके जीवन - व्यापी प्रभाव की कथा के रूप में अभिव्यक्त किया है जिसमें उसकी वास्तविक मौलिक प्रतिभा का चमत्कार दिखलाई पड़ता है । कथ्य की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने उपन्यास में अनेक कथा-कड़ियों का आश्रय लिया है जो उसकी कलात्मकता को प्रकट करते हैं । यद्यपि

उपन्यास के प्रथम खण्ड में अज्ञेय का मनोविश्लेषणात्मक चिंतन यत्र-तत्र अधिक गंभीर हो जाने के कारण बहुत से अवांछित चित्र आ गये हैं फिर भी शिल्प-विधि की उन्मुक्तता से रचना में कहीं भी अव्यवस्था नहीं आ पाई है। उपन्यासकार ने किसी एक ही शिल्प-विधि का आश्रय न ले कर आत्म-विश्लेषण, पूर्व-दीप्ति, चेतना-प्रवाह तथा कोलाज अप, स्लोगन जैसी अनेक नूतन शिल्प-विधियों का प्रयोग किया है। 'शेखर: एक जीवनी' उपन्यास का प्रारंभ पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) पद्धति से हुआ है क्यों कि शेखर अपने विगत जीवन का पुनर्वीक्षण प्रस्तुत करता है जिसके लिए यह सर्वोपयोगी पद्धति है। जहां शेखर की उसके विगत जीवन से एकात्मकता स्थापित हो जाती है वहीं उपन्यासकार प्रथम-पुरुष वर्तमान काल में कथा कहने लगता है। शेखर अपनी बात कभी अपने मुंह से कहता है तो कभी दूसरे के मुंह से। इस तरह आत्म-परकता और वस्तु-परकता में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास उपन्यास के शिल्प-विधान को विशिष्ट रूप देता है और उसके प्रयोगात्मक पहलू को उजागर करता है[११२]। जब शेखर मृत्यु की छाया में जीवन का प्रत्यवलोकन करता है तो स्मृति-तरंग का सफल प्रयोग किया गया है[११३]। कहीं-कहीं पर चेतना-प्रवाह-पद्धति भी प्रयुक्त हुई है। शेखर भय-भावना से किस प्रकार मुक्त हुआ इसके स्पष्टीकरण हेतु अज्ञेय जी ने विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है —' वह डर अपने आप को मिटा। एक बार वैसे ही बाघ उसके घर ला कर रखा गया। और बहुत मुश्किल से अपने भाइयों की देखा-देखी वह उसके पास भी गया। उसकी पीठ पर भी बैठा और उसे निर्जीव पा कर साहस करके उसके मुंह में हाथ डाल कर भी देखा। तब डर एकाएक उड़ गया, तब उसने चाकू ले कर उस खाल को फाड़ डाला। उसके भीतर के घास-फूस को बिखेर कर हंसने लगा ------

इसका एक और गहरा असर भी हुआ। शिशु ने जाना डर डरने से होता है। संसार की सब भयानक वस्तुएं हैं केवल एक घास-फूस से भरा एक निर्जीव बाघ जिससे डरना भूलता है[११४]। दृश्यों के सजीव चित्रांकन के लिए अज्ञेय ने चित्रात्मक तथा नाटकीय शैली का प्रयोग किया है। शशि के पारिवारिक असन्तोष की अभिव्यक्ति देने में इसी शैली का प्रयोग हुआ है —' ...

गई । एक मुस्कराहट भी नहीं -- चेहरे पर किसी तरह का कोई भाव नहीं झलका । पर क्या उन बड़ - बड़ी खुली आँखों का स्निग्ध विस्मय और प्रश्न की सहज आत्मीयता झूठी थी ? पर - किन्तु शेखर को निराश होने का समय नहीं मिला ।

रामेश्वर ने कहा -- मैंने तो शशि से कहा भी था कि - मन से मन -------- पर शशि की शून्य दृष्टि में कोई उत्तर नहीं था[११५] ।

" शेखर: एक जीवनी " उपन्यास में अज्ञेय ने जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए यत्र-तत्र सूक्तियों का भी प्रयोग किया है --

" बाबा वहीं पर लौट गये । फीके स्वर में बोले -- " शेखर तुम जाओ, मेरा मन ठीक नहीं है । मैंने चाहा था, तुम मुझे हंसता ही देखो ---- संसार मुझे हंसता ही देखे, पर ऐसे भी दर्द होते हैं जो अभिमान से भी बड़े हों । यही आज मैं लिख रहा हूं, अच्छा हुआ कि इतना तीखा दर्द मुझे मिला जाओ[११६] ।"

विवेच्य उपन्यास की भाषा भी पात्र के मानसिक स्तर के अनुरूप एवं स्वाभाविक है जिससे कथ्य के पूर्ण निर्वाह में सहायता मिली है । पात्रा-नुरूप भाषा के संगठन की दृष्टि से अज्ञेय जी ने न केवल अंग्रेजी शब्दों का अपितु, वाक्यों का भी प्रयोग किया है[११७] । पात्रों की आंतरिक इच्छाओं, भावनाओं तथा मनोभावों को व्यक्त करने के लिए उपन्यासकार ने यत्र-तत्र उद्धरणों का प्रयोग किया है । शशि शेखर के प्रेम की अभिव्यक्ति देने में कविताओं एवं गीतों को माध्यम बनाया गया है[११८] । मृत्यु की दशा में शेखर के प्रति अपने प्रेम को ज्ञापित करने के लिए शशि उससे आग्रह कर कविता श्रवण करती है[११९] । शशि, शेखर की सगी मौसेरी बहन है जिसका पारस्परिक प्रेम सामाजिक दृष्टि से अनुचित है । अत: अज्ञेय ने उसे स्पष्ट रूप में व्यक्त न कर प्रेमी के समक्ष मृत्यु की कामना के रूप में व्यक्त किया है ।

" शेखर : एक जीवनी " में कथोपकथन की योजना में भी अज्ञेय की कलात्मक क्षमता निखरी है। इन कथोपकथनों के द्वारा वक्ता का चरित्र स्वत: पूर्णतया प्रकाशित होने लगता है। शेखर पढ़ना-लिखना भूल कर शशि के दु:ख में लीन हो गया है। शशि और शेखर द्वारा जो वार्तालाप उपन्यासकार ने कराया है, वह शशि की महानता तथा शेखर के प्रति उसकी कल्याण-भावना को स्पष्ट करता है ---

" क्यों ? "

" दु:ख की छाया एक तरह की तपस्या ही है -- उससे आत्मा शुद्ध होती है। "

" क्या आप को निश्चय है । "

कुछ विस्मित-सा हो कर शेखर ने कहा, " क्यों ? "

" दु:ख उसी की आत्मा को शुद्ध करता है, जो उसे दूर करने की कोशिश करता है और किसी का नहीं । "

" तो --------- मैं समझा नहीं ।"

" आप हमारे दु:ख में आ कर मिल गए, हमें उसमें सान्त्वना भी मिली, पर आपका कर्तव्य क्या वहीं तक था ? दु:ख सब जगह है। आप उसे एक ही जगह समझ कर उसकी छाया में रहना चाहते हैं, और आप का जो काम है उसमें अनिच्छा दिखा रहे हैं। आप कालेज जाकर ---- "।[१२०]

इसी प्रकार विभिन्न उपयुक्त शिल्प-विधियों का अत्यन्त सफल प्रयोग अज्ञेय ने " शेखर: एक जीवनी " उपन्यास के कथानक में किया है। इसमें लेखक ने काल्पनिक और व्यावहारिक भावभूमियों को आश्चर्य जनक ढंग से

समाविष्ट किया है। किन्तु अज्ञेय ने कथानक में कहीं-कहीं जो नाटकीय तत्व समाविष्ट किये हैं उनसे कथानक-विकास की स्वाभाविकता बाधित हुई है। उदाहरणार्थ शेखर के जीवन में सरस्वती, शारदा तथा शशि का आवागमन, सेना नायक का लाहौर तथा मद्रास की आकस्मिक रूप से आवागमन आदि के प्रसंग नाटकीय हैं। "अछूत - बालक - उद्धारक संघ" तथा "एंटीगॉड" क्लब आदि के प्रसंग भी कथानक से प्रत्यक्ष सम्बद्ध नहीं हैं। इन प्रसंगों की योजना से उपन्यास में विस्तार व बिखराव आया है। शेखर की बाल्यावस्था से सम्बद्ध अनेकों प्रसंगों ने भी किसी सीमा तक कथा - प्रवाह में बाधा पहुंचायी है, यद्यपि कि ये प्रसंग चरित्र - विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं उदाहरणार्थ स्मृति - रूप में आया हुआ अजायब घर का प्रसंग। अज्ञेय का मनोविश्लेषणात्मक चिंतन भी कहीं - कहीं अधिक गंभीर हो गया है जिससे कथानक के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुंची है। शेखर की शिशु-प्रवृत्तियों का वर्णन करते समय लेखक ने जहां उसकी अवस्था और मानसिक सीमा का ध्यान छोड़ कर उससे दार्शनिक जैसी बातें करनी चाही हैं, वे चित्र भी अस्वाभाविक हो लगते हैं। किन्तु ये न्यूनतायें उपन्यास की कलात्मकता, रचना-सौष्ठव, शिल्प, कथ्य के समर्थ अभिव्यक्तिकरण, प्रभावोत्पादकता आदि विशिष्टताओं के समक्ष नगण्य हैं। अज्ञेय कथाकार और कवि दोनों ही हैं। उनके इन दोनों रूपों ने मिल कर बाहर से बिखरे हुये कथानक को भीतर से जोड़ने की कोशिश की है [१२१]। उनका काव्यात्मक गद्य मन की सूक्ष्म परतों को उघाड़ कर उपन्यास के कथ्य को उजागर करने में सफल है।

सम्पूर्ण विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि "शेखर : एक जीवनी" का कथ्य अपने पूर्ववर्ती हिन्दी उपन्यासों के कथ्य से भिन्न एवं नवीन है। इस नवीन कथ्य के प्रतिपादन के हेतु उपन्यासकार के लिये नवीन शिल्प-विधियों का प्रयोग अनिवार्य था - जिसे अज्ञेय ने अत्यन्त सफलता पूर्वक किया।

कथ्य और कथानक का यह सफल निर्वाह लेखक की सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि को उजागर करता है। डा० प्रताप नारायण टंडन के शब्दों में -----
" शेखर : एक जीवनी " की शिल्प की दृष्टि से एक विशेषता यह भी है कि इसमें कथा शैली का विकास एक कथात्मक पद्धति पर नहीं हुआ है। इसमें विविध स्थालों पर शैली विवरणात्मक, गीतात्मक तथा लघु कथा-रूप ग्रहण करके आगे बढ़ती है। ये सभी शैलियां लेखक की सूक्ष्म विश्लेषणात्मक शक्ति का आधार लेकर विकसित हुई है[१२२]। शेखर के जीवन में लेखक ने जो एक बालक की विकसित होने वाली मनोवृत्तियों का चित्रण किया है, उसमें ही उसकी वास्तविक मौलिक प्रतिभा का चमत्कार दृष्टिगत होता है। यद्यपि इस कृति में वैयक्तिक रंग इतना गहरा है कि यह समाज के लिए अपनी कोई उपयोगिता सिद्ध नहीं कर पाती फिर भी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से यह एक नूतन किन्तु अत्यन्त ही सफल कृति है। इस सम्बन्ध में डा० इन्द्र नाथ मदान का यह कथन पूर्णतया उचित है कि - " यदि उसकी उपलब्धि को अधिक और सीमा को कम कहा जाये तो उसकी पहचान परख संतुलित और संगत होगी[१२३]। "

वृन्दावन लाल वर्मा : मृगनयनी :

"मृगनयनी" वृन्दावन लाल वर्मा का एक महत्वपूर्ण व्यक्ति परक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसका आधार मृगनयनी और मान सिंह तोमर का ऐतिहासिक रूमानी कथानक है। लेखक ने लिखा है :- " मान सिंह तोमर १४८४ से १५१६ ई० तक ग्वालियर का राजा रहा। फरिश्ता के इतिहास लेखक ने मान सिंह के राज्य काल को तोमर-शासन का स्वर्ण युग कहा है[१२५]। " मान सिंह की कथा का ऐतिहासिक आधार होते हुए भी लेखक का मुख्य ध्येय मृगनयनी के चरित्र की अभिव्यक्त करना है। उपन्यास के आरंभ से ले कर अन्त तक कथाकार ने मृगनयनी के चरित्र का रहस्योद्घाटन किया है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मृगनयनी का चरित्र ही उपन्यास का मूलाधार है। मान सिंह उपन्यास का नायक होते हुए भी मृगनयनी की चारित्रिक विशेषताओं से अभिभूत हो जाता है। अस्तु यह नायिका प्रधान उपन्यास भी कहा जा सकता है। उपन्यास की नायिका मृगनयनी शौर्य और कला के लिए विख्यात थी। वर्मा जी ने लिखा है -- " मान मन्दिर और गूजरी महल के सृजन की कल्पना को मृगनयनी से प्रेरणा मिली होगी। बैजू बावरा मान सिंह मृगनयनी के गायक थे। गूजरी-टोड़ी, मंगल, गूजरी इत्यादि राग इसी मृगनयनी के नाम पर बने हैं। जिन सम्मानित पाठिका ने मृगनयनी के कथानक पर उपन्यास लिखने का अनुरोध किया था उन्होंने ठीक ही लिखा था कि मृगनयनी शौर्य और कला, दोनों के लिए विख्यात थी[१२६]। मृगनयनी के चरित्रांकन द्वारा लेखक ने काम और कार्य, कर्तव्य और कला में समन्वय स्थापित किया है। यही मानव जीवन की सार्थकता है और इसी में वास्तविक सुख है। उपन्यास का यही कथ्य है जिसे वर्मा जी ने महाराजा मान सिंह के शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है ---" सच मुच वह कला क्या जो कर्तव्य की अवहेलना कर दे, और वह कर्तव्य क्या जो कला को अंग हो जाने दे[१२७]।"

उपन्यास का कथानक संघर्ष पर आधारित हो कर विकसित हुआ है -- "पन्द्रहवीं शताब्दी का अन्त और सोलहवीं का आरंभ राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का अत्यन्त कठोर और कड़ा युग कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। उत्तर में सिकन्दर लोदी तथा उसके सहयोगियों के परस्पर युद्ध तथा दोनों द्वारा घोर जन पीड़न, राजस्थान में राणा कुंभा का अपने बेटे के ही हाथ से विष द्वारा वध और उसके उपरान्त वहाँ की अराजकता, गुजरात में महमूद बघेरा के आणित विजन और रक्तपात, मालवा में गयासुद्दीन खिलजी और उसके उत्तराधिकारी नासिरुद्दीन की अत्याचार प्रियता और ऐयूयाशी, दक्षिण में बहमनी सल्तनत का पांच सल्तनतों में बिखर जाना, जौनपुर बिहार और बंगाल में पठान सरदारों की निरन्तर नोच - खसोट और इन सब के लगभग बीच में ग्वालियर।[१०] इस विषम परिस्थिति में भी ग्वालियर की स्थिति सुदृढ़ थी। सिकन्दर लोदी ने पांच बार ग्वालियर को विजय करने के लिए आक्रमण किया था, किन्तु वह प्रत्येक बार पराजित हुआ था। यहाँ मान सिंह तोमर शासन कर रहा था। अन्त में उसे पराजित करने के लिए लोदी ने ग्वालियर को चारों और से घेर कर नरवर पर भीषण आक्रमण किया था, जिसमें स्त्रियों को आत्म बलिदान करने के लिए विवश होना पड़ा था। ऐसे ही विकट वातावरण में मृगनयनी के चरित्र को विकसित किया गया है।

ग्वालियर के पश्चिम दक्षिण में राई नामक गांव में निन्नी नाम की कुंआरी लड़की अपने भाई अटल के साथ रह रही थी। लाखी निन्नी की सहेली थी। निन्नी गूजर जाति की कन्या थी और लाखी अहिर जाति की युवती थी। ये दोनों अपनी शौर्य, वीरता एवं सौन्दर्य के लिए सुदूर प्रदेशों में प्रसिद्धि प्राप्त कर रही थीं। दिल्ली के शासक गयासुद्दीन और माण्डू के शासक बघेरा ने निन्नी और लाखी को प्राप्त करने की योजनायें बनाई। राई ग्राम के पुजारी के माध्यम से ग्वालियर

का राजा मान सिंह तोमर भी उनके सौन्दर्य और लक्ष्य-भेद की प्रशंसा से अवगत हो चुका था ।

अपनी माँ के मरणोपरान्त लाखी, निन्नी और अटल के साथ ही रहने लगी । ग्यासुद्दीन खिलजी ने, नटों के सरदार को निन्नी और लाखी को लाने के लिए, योजना बनाई । नटों और नटनियों ने निन्नी और लाखी को बहकाना आरंभ किया । एक दिन राजा मान सिंह आखेट करने राई ग्राम में पहुंचे । वहां वह निन्नी के अपूर्व सौन्दर्य और लक्ष्य वेध से आश्चर्य चकित हो गए । उन्होंने उससे विवाह का प्रतिवेदन किया, और निन्नी रानी मृगनयनी बन कर मान सिंह के महल में पहुंच गई ।

अटल गूजर था और लाखी अहिर । जाति-भेद के कारण उन दोनों के विवाह का गांव वालों ने विरोध किया । पुजारी ने उसका विवाह नहीं कराया । वे नटों के दल के साथ नरवर के किले की ओर आ गए । लाखी नटों के षड्यंत्र से अवगत हो गई, इस लिए उसने वीरता पूर्वक उनके षड्यंत्र को विफल कर उन्हें समाप्त कर दिया । महाराजा मान सिंह अटल और लाखी को ले गए । ग्वालियर में उनका विवाह हो गया ।

निन्नी के मृगनयनी के रूप में रानी बन कर मान सिंह के महल में पहुंचने के पूर्व ही आठ रानियां पहले से ही थी, जिनमें सुमन मोहनी सब से बड़ी थी । सुमन मोहनी, मृगनयनी के सौन्दर्य एवं प्रभाव से आहत हो कर उससे सौतिया डाह रखती थी । मृगनयनी इस सौतिया डाह को झेलतेहुए राजा को अपने वश में कर कर्तव्य पथ की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती रही । मृगनयनी ने चित्र कला और संगीत कला का अध्ययन प्रारंभ किया, एवं मान सिंह ने भी चित्र कला, संगीत कला, मूर्तिकला और भवन - निर्माण कला के विकास में हाथ बटाया । सिकन्दर लोदी ने नरवर किले पर आक्रमण किया । मृगनयनी ने राजा को कला के साथ कर्तव्य की प्रेरणा दी । उसने शीघ्र ही अन्य रानियों का भी हृदय

जीत लिया और उनके मन की ईर्ष्या को अपने स्नेह एवं उदारता से धो दिया। मृगनयनी त्याग की अनुपम मूर्ति थी उसी के कहने से सुमन मोहनी का पुत्र विक्रम सिंह राज्य सिंहासन पर बैठा।

सम्पूर्ण उपन्यास में मृगनयनी की कथा आद्योपान्त वर्णित हुई है। यह उपन्यास की मुख्य कथा है जिसे महाराजा मान सिंह, लाखी, अटल, कला और सुमन मोहनी की कथाओं ने विकसित किया है। पूर्वार्द्ध में अटल और लाखी के साहचर्य से निन्नी-मृगनयनी की कथा विकास को प्राप्त हुई। राई गांव के पुजारी का भी मृगनयनी की कथा के विकास में योगदान है। वह उसकी कथा को मान सिंह की कथा से सम्पृक्त कर देता है। पोटा और नटों के दल की कथा मुख्य कथा को विकसित न कर अटल और लाखी की प्रासंगिक कथा को अग्रसरित करती हैं। कला की कथा ने मृगनयनी के व्यक्तित्व के कलात्मक पहलू को उजागिर किया है तथा सुमन मोहनी की कथा ने उसके धैर्य का परीक्षण करते हुए उसकी कथा को विकसित किया है। इसी प्रकार अन्य प्रासंगिक कथायें जैसे गयासुद्दीन - नासिरुद्दीन की कथा, तथा विजय जंगम की कथायें तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक परिस्थिति के परिवेश में मृगनयनी कथा को विकसित करती हैं। मान सिंह की कथा मृगनयनी की कथा से सीधे सम्बद्ध नहीं है किन्तु उनमें सेतु सम्बन्ध जोड़ने का कार्य कला ने किया है। इस प्रकार लेखक ने अनेक प्रासंगिक कथाओं की योजना कर के बड़ी कुशलता से उनका निर्वाह किया है। वर्मा जी ने घटनाओं के विकास के पहले पृष्ठभूमि तैयार की है। मान सिंह और निन्नी के विवाह के पूर्व उन्होंने निन्नी के सौंदर्य और लक्ष्य वेध का विस्तृत वर्णन किया है। अटल और लाखी की कथा अवश्य ही मान सिंह और मृगनयनी की कथा के समानान्तर प्रवाहित हुई है फिर भी वह निस्सन्देह मृगनयनी की कथा को विकास की ओर उन्मुख करती है। कथानक के आरंभ, विकास

एवं अन्त पूर्व निश्चित एवं सुनियोजित हैं और कथाकार पाठक की जिज्ञासा को जागृत करते हुए मन्द गति से कथा को विकसित करता है। उपन्यास के कथ्य को व्यंजक मुख्य कथा मृगनयनी की कथा है जिसके चरित्रोद्घाटन के लिए वर्मा जी ने दो प्रकार की घटनाओं का समायोजन किया है -- एक ओर तो वे घटनाएँ आयोजित हैं जो मृगनयनी के कलात्मक व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करती हैं और दूसरी ओर वे घटनाएँ हैं जिन से उसके व्यक्तित्व का कर्तव्यशील पक्ष उजागर होता है।

'मृगनयनी' उपन्यास में लेखक ने पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तथा सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ के भारत की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी चित्रण किया है। उपन्यास में ग्वालियर के कर्तव्यपरायण राजा मानसिंह, मालवा के विलासी शासक महमूद खिलजी, गुजरात के पेटू सुल्तान बघर्रा आदि की कथाओं के विकास के लिए नियोजित उपकथानकों के द्वारा राई ग्राम तथा विभिन्न राज्य के शासक तथा उनकी शासन-व्यवस्था, राज्य की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों का उद्घाटन हुआ है[१२८]। इसके अतिरिक्त देश-काल बोधक वार्तालाप भी उपन्यासों में मिलते हैं[१२९]। स्थान-चित्रण की दृष्टि से गूजरी महल का चित्रण प्रशंसनीय है[१३०]। लेखक ने प्रकृति का भी चित्र यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किया है[१३१]। इस प्रकार तत्कालीन वातावरण में सजीव चित्र प्राप्त हो जाता है।

यद्यपि इस उपन्यास में युग-चित्रण पूर्णतया अभिव्यक्त हुआ है फिर भी वह कथानक का आधार नहीं है। कथानक का आधार तो जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं मृगनयनी का चरित्रांकन है जिसके माध्यम से लेखक कर्तव्य और कला में समन्वय चित्रित कर अपने कथ्य की अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करता है। मृगनयनी के चरित्र-विकास में योगदान देने वाले अन्य बहुत से चरित्र उपन्यास में अंकित हुये हैं जिनमें अटल, लाखी, सुमन मोहनी, राज सिंह, कला, गयासुद्दीन, नसीरुद्दीन, महमूद बघर्रा सिकन्दर लोदी और पोटा आदि के चरित्र प्रमुख हैं। उपन्यासकार संस्कार

एवं परिस्थितियों के संघर्षों से चरित्र-शिल्प को अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक रूप से विकसित करने में सफल रहा है[132]। पात्रों की गति - विधि घटनाओं पर यथेष्ट प्रभाव डालती हुई चारित्रिक - विकास की ओर बढ़ती हैं। इस प्रकार 'मृगनयनी' के कथावस्तु और चरित्र - चित्रण में समन्वय लाने में उपन्यासकार को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है।

लाखी और अटल का चरित्र प्रेम और वीरता का चरित्र है। लाखी अहिर जाति की कन्या है जो गूजर जातियक युवक अटल से प्रेम करती है और उस पर तन मन निछावर कर देती है। अन्त में जाति समस्या के अंधविश्वास को समाप्त कर ग्वालियर में मान सिंह उन दोनों का विवाह करता है जिसमें लेखक के प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। जातीय अंधविश्वास एवं रूढ़न पर वर्मा ने इन शब्दों में अपना आक्रोश प्रकट किया है: 'जनक, महावीर गौतम बुद्ध कौन थे---? ---- शास्त्री जी सोचो, इस प्रकार का कट्टर वर्णाश्रम हिन्दुओं की कितनी रक्षा कर सका है। रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोनों अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। जात - पांत ढाल का काम तो कर सकी है और कर रही है, परन्तु तलवार का काम न तो हाल के युग में उसने कर पाया है और न कर पावेगी[133]। वर्मा जी का प्रगतिशील दृष्टिकोण नारियों के सम्बन्ध में भी प्रकट होता है: 'स्त्री का गौरव, सौन्दर्य महत्व स्थिरता में है, जैसे कुछ नदी का जो बरसात के मटमैले तेज प्रवाह के बाद शरद में नीले जल वाली, मन्थर-गति-गामिनी हो जाती है - दूर से बिल्कुल स्थिर और शान्त, बहुत निकट से प्रगति वाली[134]। लाखी शौर्य की प्रतिमूर्ति है। दो मुसलमान घुड़सवारों के आ पहुंचने पर वह निश्छल, तीव्र एवं पैने स्वर में उन्हें ललकार कर कहती है - 'कहां चले तुम्हारी साथ[135]।' पिल्ली की चिकनी चुपड़ी बातों में न आ कर उसने बड़ी सफाई से उसका काम तमाम कर दिया। नरवर के विजय का श्रेय उसी को प्राप्त है। स्वाभिमान तो उसमें कूट-कूट कर भरा हुआ है। अपनी सहेली निन्नी के

के विवाहोपरान्त उसकी आश्रिता बन कर वह नहीं रहना चाहती। वह अटल से दृढ़ शब्दों में कहती है -- ' कोई मुझको यदि किसी का चेरा कहे, चाहे वह मेरी निज की ननद ही क्यों न हो, तो मैं नहीं सह सकूँगी और न यह सब सह सकूँगी कि तुमको राजा का दास या रोटियारा कहे । हम लोगों को भगवान ने भुजाओं में बल दिया है और काम करने की लगन । कुछ कर के ही ग्वालियर जावेंगे [136]। ' ऐसा ही होता भी है - नरवर को विजित कर ही वह ग्वालियर जाती है ।

मान सिंह उपन्यासकार का आदर्श है । लेखक ने उसे कर्म और सतत कर्म के प्रतीक रूप में चित्रित किया है - ' ये बैठे ठाले के वाक्युद्ध व्यर्थ हैं । कर्म मुख्य है। वे ही दायें बांये की पगडंडियां ढूंढते हैं ---- कुछ काम करिये और आगे की तैयारी में लग जाइये । आगे चल कर एक अन्य स्थल पर वह कहता है जीवन में काम- काम ही सब कुछ है । एक काम से मन उचटे तो दूसरा करने लगे [137]। इस प्रकार कर्म और सतत कर्म ही उसका जीवन दर्शन है । वह जातिवाद की संकीर्णता एवं रूढ़िवादिता का विरोध है । जाति-भेद का विरोध कर वह अटल और लाखी का विवाह करा देता है । वह एक आदर्श राजा है । जनता के प्रति उसके हृदय में अपार प्रेम है । वह वेष बदल कर रात को उनकी स्थिति जानने के लिए भ्रमण करता है । उसके विश्वासानुसार - ' राज्य के किसानों की खेती-बाती अपनी खेती-बाती के ही समान तो है [138]। ' इस प्रकार वह कर्मयोगी एक आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया गया है ।

इसी प्रकार अन्य पात्रों में सुमन मोहनी नारी के लौलित्यलाल का , बोधन पंडित रूढ़िवादी पुजारी का, राज सिंह षड्यंत्र का, नीरा हीन काम वासनाओं का बघेरा देवा का प्रतीक बन कर उपन्यास में विकसित हुए हैं ।

मृगनयनी का चरित्र तो कथानक का आधार ही है जिसे परिस्थितियों के सहारे विकसित एवं अंकित किया गया है। उपन्यास के आरंभ में वह एक अविवाहित गूजर कन्या निन्नी है। वह लाखी के साथ शिकार करती है। वह अचूक लक्ष्य बेधी एवं साहसी है --- " जब तक लाखी दूसरा तीर चलावे, निन्नी अरने के मस्तक के बीचों बीच का निशाना लेकर तीर छोड़ दिया। तीर अपने निशाने पर तो लगा परन्तु इतनी जल्दी में चलाया गया था कि पूरी शक्ति को ले कर न छूट सका, माथे की ऊपरी खुली की एक तह को ही फाड़ सका, ठिठक कर रह गया। अरने ने जोर की किलकार लगाई और उनकी ओर पूंछ उठाये हुए आया। लाखी ने दूसरा तीर छोड़ा, तीर उसके नथने को ही फाड़ पाया, अरना थोड़ा सा ही ठिठका, परन्तु अन्तर इतना कम रह गया था कि तरकस में से तीर निकाल कर प्रत्यंचा पर नहीं चढ़ाया जा सकता था, अरने की बड़ी-बड़ी लाल आंखों से अंगारे छूट रहे थे और फुंफकार में से फन उठ रहा था[१४९]।" निन्नी ने शिकार किया और पुरस्कार पाया। घटना ने परिस्थिति को जन्म दिया। राजा मानसिंह उसके लक्ष्य-बेध एवं सौन्दर्य की ख्याति सुन कर राई गांव में शिकार खेलने आया तो निन्नी के सौंदर्य को देख कर आश्चर्य चकित हो गया।--" राई गांव आने पर महाराजा मान सिंह को अनुभव हुआ कि राख के ढेर में चिनगारी कहां से आई? इस सड़ियल गांव में ऐसा सौन्दर्य[१५०]!" राजा मान सिंह ने उससे प्रणय निवेदन किया और वह ग्राम बाला निन्नी से मृगनयनी बन कर ग्वालियर की राजरानी हुई। राज महल में आबद्ध विवाहिता मृगनयनी और अविवाहिता निन्नी के चरित्र में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। उसकी स्वच्छंदता, संयम और सहनशीलता, कला-प्रेम और कर्तव्य-निष्ठा में बदल जाती है। मृगनयनी मान सिंह की प्रेरणा है, " मैं चाहती हूं आपका शरीर, उत्साह, यश और सूरमापन दिन दूना बढ़ और चमत्कार से भरा हुआ बना रहे[१५१]।" कला साधना में लीन रहते हुए भी वह कर्तव्य की अवहेलना नहीं करती है। युद्ध के समय वह मान सिंह को कर्तव्य और कला में सन्तुलन

बनाये रखने की प्रेरणा देते हुए कहती है : ' वीणा को बजाते - बजाते, काम पड़ने पर यदि तुरन्त तलवार न उठ पाई, कोमल सेज पर सोते- सोते संकट आने पर यदि तुरन्त ही उछल कर कमर न कसी, ध्रुव पद को गाते - गाते शत्रु के सामने खड़े होने पर यदि तुरन्त गरज कर चुनौती न दे पाई, जिन कानों में मीठे स्वरों की रसधार बह - बह कर जा रही थी, उन्हीं कानों में यदि रणवाद्यों और बन्दूकों की धुन न समा पाई तो ऐसी वीणा, सेज और ध्रुवपद की तानों का काम ही क्या[१४२] ।' मृगनयनी संयम और धैर्य की प्रतीक है। उसकी संयम शीलता का प्रमाण मान सिंह का यह कथन है कि :' तुम संयम से प्रेम को अचल बनाती हो और मैं अपने विकार से उसको चंचल कर देता हूं। संयम के आधार वाला प्रेम ही आगे भी टिक रहने की समर्थता रखता है[१४३] ।' सुमन मोहनी के सौतियाडाह से भी उसका धैर्य विघटित नहीं होता। उसके द्वारा विष दिये जाने पर भी मृगनयनी उदासीन ही बनी रहती है, प्रतिक्रियात्मक कार्य नहीं करती। उसकी सम्मति से ही सुमन मोहनी का पुत्र विक्रम सिंह ग्वालियर का राजा बनता है जो उसकी उदारता का परिचायक है। मृगनयनी कला और कर्तव्य की साकार प्रतिमूर्ति है जो ' कला और कर्तव्य के बीच तौल ' बनाये रखना चाहती है। वह मानती है कि ' इन कलाओं को अधिक समय देंगे तो वे (सैनिक) अवसर पाते ही अपनी वासनाओं पर उतर आयेंगे[१४४] ।' प्रचण्ड भूकंप के समय भी पति को धैर्य बंधाते हुए वह कहती है : ' भगवान की मुस्कान का ध्यान करिये। शिव के ताण्डव नृत्य का। धैर्य और शान्ति के साथ, मेरे प्राणनाथ, अन्त के अन्धत के सामने डट जाइये[१४५] ।' इस प्रकार मृगनयनी के आदर्श चरित्र का चित्रण करते हुए अन्त में कथाकार ने उसी के शब्दों में अपने कथ्य की अभिव्यक्ति करता है। कला और कर्तव्य के साथ संकल्प और भावना का समन्वय चाहती हुई वह कहती है - ' संकल्प और भावना जीवन तकड़ी के दो पलड़े हैं। जिसको अधिक भार दे दीजिए, वह

पीछे कला जायेगा। संकल्प कर्तव्य है और भावना कला। दोनों में समान समन्वय की आवश्यकता है। न तो अभी कला का अंश पूरा हुआ है और न कर्तव्य का।[१५६]" अस्तु मृगनयनी उपन्यास में कला और कर्तव्य, भावना और संकल्प के समन्वय की प्रतिमूर्ति है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मृगनयनी के व्यक्ति चरित्र की अभिव्यक्ति द्वारा लेखक व्यक्तियों को केन्द्र मान कर जीवन मूल्यों की स्थापना करता है। इस उपन्यास में तद्युगीन समाज के स्थान पर व्यक्ति को महत्व दिया गया है। अस्तु व्यक्ति-चरित्र और चेतना के स्वर की प्रधानता होने के कारण यह एक व्यक्ति परक ऐतिहासिक उपन्यास सिद्ध होता है।

इस प्रकार " मृगनयनी " उपन्यास में वर्मा जी ने परिस्थिति, घटना और चरित्र को एक दूसरे के संघात से उद्घाटित किया है। उपन्यास के कथ्य, कथानक, कार्य-व्यापार, चरित्र एवं परिस्थिति में अद्भुत समन्वय है। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि इस उपन्यास में कथ्य के निर्वाह हेतु लेखक ने जिस कथानक का निर्माण किया है वह पूर्णतया उपन्यास के कथ्य की अभिव्यक्ति देने में सफल है।

-२८-

: डा० देवराज : पथ की खोज :

डा० देवराज का आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में महत्वपूर्ण स्थान है। वह नारी - पुरुष के सम्बन्धों का फ्रायडियन मनोविज्ञान के आधार पर चित्रण करते हैं। 'पथ की खोज' लेखक की प्रथम औपन्यासिक रचना है जिसका लक्ष्य व्यक्ति की दुर्बलताओं एवं कमजोरियों से उठा कर नये पथ की खोज करना है। इसमें उपन्यासकार ने मनोविश्लेषणात्मक आधार पर व्यक्ति की अतृप्त काम वासनाओं को नये पथ की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया है। 'पथ की खोज' उपन्यास के सम्बन्ध में एक आलोचक की भ्रान्त धारणा है कि - 'डा० देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' में मध्यवर्गीय के अंतर्मुख आदर्शों का संयत, मनोवैज्ञानिक तथा कलापूर्ण चित्र उरेहा गया है[१८६]। किन्तु इस उपन्यास के अध्ययन एवं विश्लेषण के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें मध्यवर्गीय समाज की कुण्ठा और निराशा का चित्रण करना लेखक को अभीष्ट नहीं है। इसमें केवल व्यक्ति की कुण्ठा, निराशा, जड़ता और यौन-प्रवृत्तियों का चित्रण कर मनोविश्लेषणात्मक आधार पर व्यक्ति मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है।

'पथ की खोज' उपन्यास का कथानक दो भागों में विभक्त है जिसका आधार कुछ मध्यवर्गीय पात्रों की जीवन कथा है। इसका नायक चन्द्रनाथ। प्रथम श्रेणी में एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् चन्द्रनाथ का विवाह एक रूपवती कन्या सुशीला से हो गया। सुशीला उसकी प्रतिनिष्ठावान थी। चन्द्रनाथ एक आदर्शवादी युवक था, किन्तु सुशीला को उसके आदर्शों में रुचि नहीं थी। साधना उसकी पत्नी की सहेली थी जिसके प्रति चन्द्रनाथ का आकर्षण था। किन्तु सुशीला से चन्द्रनाथ का विवाह हो जाने के कारण चन्द्रनाथ और साधना के प्रेम में बाधा उत्पन्न हो गई।

साधना का विवाह भी अरुण कुमार के साथ हो गया, किन्तु उसका वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रहा। सुशीला का आकस्मिक निधन हो गया। चन्द्रनाथ की बनारस के एक कालेज में नियुक्ति हो गई।

चन्द्रनाथ के बनारस आ जाने से उपन्यास के द्वितीय भाग की कथा का प्रारंभ हुआ है। वह बनारस आ कर अपने ही कालेज के जीव-विज्ञान के व्याख्याता नरेन्द्र के यहां रहने लगा। नरेन्द्र अपनी पत्नी और बच्चों के प्रति उदासीन रहता था। उसकी पत्नी चन्द्रनाथ की बहुत आव-भगत करती थी तथा उसके बच्चे भी चन्द्रनाथ से हिल मिल गये थे। चन्द्रनाथ बाह्य रूप से तो आदर्शवादी था किन्तु उसका आन्तरिक व्यक्तित्व सैक्स की दमित - भावना से बिल्कुल खंडित एवं अस्वस्थ है। नरेन्द्र की पत्नी के स्पर्श-मात्र से ही उसकी दमित काम-भावना उद्दीप्त हो उठती है, किन्तु उसका अहं उस पर सदैव विजय प्राप्त करता। नरेन्द्र के यहां वह आशा के रूप - लावण्य पर मुग्ध हो जाता है। साधना भी पति-परित्यक्ता बन कर विद्याध्ययन करने के लिए बनारस आती है, और कुछ समय चन्द्रनाथ के यहां रहने के उपरान्त लड़कियों के होस्टल में चली जाती है। चन्द्रनाथ और आशा का विवाह हो जाता है जिसमें नरेन्द्र की पत्नी का सहयोग प्राप्त होता है। विवाहोपरान्त आशा मायके चली जाती है और उसकी अनुपस्थिति में साधना का आगमन होता है। चन्द्र नाथ और साधना अलग - अलग कमरे में सोते हैं, किन्तु चन्द्रनाथ बार - बार उसके कमरे में जाता है। साधना में काम भावना का प्राबल्य है। वह चन्द्र नाथ के समक्ष आत्मसमर्पण कर देती है। किन्तु आशा से बचनबद्ध होने और साधना के कारण चन्द्र नाथ भी संकट में पड़ जाता है। उसके "अहं" और "भोगी" में भयानक द्वन्द्व चलता है और वह उसको सन्तुष्ट करना चाहता है, किन्तु साधना उसे वैसा करने से रोक देती है। अन्त में आशा भी लौट आती है और साधना

अपनी काम वासना का उदात्तीकरण कर क्रांतिकारी योगेन्द्र नाथ के दल में सम्मिलित हो जाती है। चन्द्र नाथ की अतृप्त काम - वासना का भी उदात्तीकरण हो जाता है।

इस उपन्यास का नायक चन्द्र नाथ है जिसकी कथा उपन्यास में आद्योपान्त चलती रहती है। लेखक ने चन्द्र नाथ की कथा (मुख्य कथा) के अतिरिक्त अन्य अनेक पात्रों से सम्बन्धित प्रासंगिक कथाओं को भी उपन्यास में स्थान दिया है, जिन में साधना, सुशीला, नरेन्द्र, आशा और योगेन्द्र आदि पात्रों से सम्बद्ध कथायें मुख्य हैं। चन्द्र नाथ का सुशीला से विवाह एवं सुशीला की आकस्मिक मृत्यु, साधना और अरुण कुमार का विवाह, चन्द्र नाथ की काशी के नये कालेज में नियुक्ति, पति द्वारा परित्यक्ता हो कर साधना का काशी आगमन, चन्द्र नाथ का आशा से विवाह चन्द्र नाथ के समक्ष साधना का आत्म-समर्पण और पुनः उसका क्रांतिकारी योगेन्द्र नाथ के दल में सम्मिलित हो कर चले जाना आदि इस उपन्यास की प्रमुख घटनायें हैं। इस प्रकार उपन्यास में घटनाओं का विशाल अंबार है जो कथा-संगठन को क्षति ग्रस्त बनाता है। इसमें अनेक घटनायें ऐसी हैं जिनका मुख्य कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है उदाहरणार्थ नरेन्द्र और मदन आदि पात्रों से सम्बद्ध कथायें चन्द्र नाथ और साधना की मुख्य कथा के विकास में योग नहीं देती हैं। साधना अवश्य ही चन्द्र नाथ की कथा को विकसित करने का कार्य करती है। चन्द्र नाथ की पत्नी सुशीला की कथा उसकी मृत्यु के उपरान्त प्रथम खण्ड में ही समाप्त हो जाती है। आशा की कथा दूसरे खण्ड में प्रारंभ हो कर अन्त तक चलती है। योगेन्द्र नाथ की कथा भी चन्द्र नाथ की कथा के विकास में सहायता नहीं पहुंचाती। वह साधना की कथा को अवश्य विकसित करती है। चन्द्र नाथ और साधना के प्रेम का उदात्तीकरण कर के उन्हें नये पथ की खोज करने के लिए अग्रसित करना ही

उपन्यास का कथ्य है, इस दृष्टि से उपन्यास की पृष्ठभूमि बहुत विशाल है । नरेन्द्र, उनके परिवार एवं मदन आदि की कथा का कथ्य से कोई सम्बन्ध नहीं है । दो खण्डों में विभक्त इस विशालकाय उपन्यास में लेखक ने साधना को आत्मसमर्पण करने का अवसर प्रदान करने के लिए अनेक घटनाओं को अस्वाभाविक रूप से घटित कराया है जिसमें तर्कसंगत योजना नहीं है । सुशीला की मृत्यु, साधना का परित्याग, और चन्द्रनाथ का आशा से विवाह आदि घटनायें जीवन में घटित न होकर उपन्यास में घटित होती प्रतीत ही होती हैं । अनेकानेक घटनाओं एवं पात्रों का समावेश करके लेखक ने कथानक को शिथिल किया है । कथानक के बिखराव का दूसरा कारण उपन्यासकार द्वारा दार्शनिक विश्लेषण, व्याख्या एवं विवरणों का लम्बा प्रस्तुतीकरण है । नायक चन्द्रनाथ के मन में उठे हुए कतिपय मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक प्रश्नों के समाधान की खोज में रत कथाकार विश्लेषण हो विश्लेषण देता चला गया है । इसका कारण सम्भवतः डा० देवराज की यह मान्यता है कि हिन्दी साहित्य में " बौद्धिक प्रौढ़ता " की कमी या अभाव है[२४८] । ऐसा प्रतीत होता है कि इस कमी को पूरा करने के लिए लेखक ने व्याख्या एवं विश्लेषण के विवरणों द्वारा कृति को फुला दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप उसमें शिथिल स्थल फैल गये हैं तथा कथानक की सुसम्बद्धता को ठेस पहुंची है ।

" पथ की खोज " में डा० देवराज पात्रों का चारित्रिक विकास करने में भी सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं । उपन्यास का नायक चन्द्रनाथ का चरित्र और व्यक्तित्व उसके अन्तर्द्वन्द्व एवं आदर्शवाद से कुंठित हो चुका है । वह निष्क्रिय एवं साहसहीन है । वह व्यक्तिवादी एवं वैज्ञानिक मान्यताओं में विश्वास रखता है । चन्द्रनाथ के चरित्र के बारे में यह मानना सर्वथा भ्रामक है कि उसका चरित्र मध्यवर्गीय समाज के थोथे मन को स्पष्ट करता हुआ

को पथ पर चलने का आग्रह करता है । वह उन मान्यताओं की छान-बीन करता है जो जीवन को संकुचित बनाये हुए हैं । चन्द्र नाथ के जीवन का चित्र मध्यवर्गीय समाज के खोखले पन की अभिव्यक्ति देता नहीं है । वह मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकार के हाथों का पुतला है जो संस्कारों और आदर्शों के मध्य लटका रहता है और जिनके आदर्श उसे यौन प्रवृत्तियों का गुलाम नहीं बना देते हैं ।

सुशीला चन्द्र नाथ की विवाहिता पत्नी है । वह परम्परा-वादी, सती, साध्वी, आदर्श भारतीय नारी का प्रतीक है । लेखक ने उपन्यास के प्रथम भाग में ही सुशीला के आकस्मिक - निधन की घटना को घटित करा दिया है जिससे उसके व्यक्तित्व - विकास की संभावनायें अवरुद्ध हो गई हैं । इसी प्रकार चन्द्र नाथ की दूसरी पत्नी आशा का भी व्यक्तित्व चित्रण करने में लेखक सफल नहीं हो सका है । उसका उपन्यास में कोई अस्तित्व नहीं प्रतीत होता है । यतीन्द्र नाथ को लेखक ने क्रांतिकारी कहा है लेकिन वह नाम का ही क्रान्तिकारी है । लेखक उसकी क्रांतिकारिता का विकास चित्रित नहीं कर सका है । इसी प्रकार मदन जीवन की रूमानी प्रवृत्तियों का प्रतीक बन कर उपन्यास में उपस्थित हुआ है । ये सभी सपाट चरित्र वाले पात्र हैं जिनके जीवन में स्पन्दन और चेतना का अभाव खटकता रहता है । साधना के व्यक्तित्व का विकास अंकित करने में लेखक को विशेष सफलता मिली है । वह इच्छाओं की प्रतीक है, जो जीवन को सारहीन, निरर्थक मानती है किन्तु अन्त में नये पथ की खोज करने में प्रवृत्त होती है । इसे पाठक की विशेष सहानुभूति मिलती है । इस प्रकार चन्द्र नाथ और साधना ही केवल " पथ की खोज " के विकास शील पात्र हैं शेष सुशीला, आशा, नरेन्द्र, और यतीन्द्र नाथ आदि सभी अविकासशील पात्र हैं, जिनमें विकास की संभावनाओं का अभाव है ।

इन तमाम त्रुटियों के बावजूद कथाकार मनोविश्लेषणात्मक यथार्थ का सम्यक् चित्र प्रस्तुत करने में सफल हो सका है। विवाहित होते हुए भी चन्द्रनाथ अपनी पत्नी की सहेली साधना के प्रति आकर्षित होता है। साधना भी उसका प्रतिदान करती है। बाह्य रूप में वे भाई - बहन का सम्बन्ध मान कर चलते हैं, किन्तु दोनों के अन्तर्मन में काम-भावना का तार झंकृत रहता है। चन्द्रनाथ बीच - बीच में सोचता है : "यह प्रतिध्वनि क्या है ? यह अनुभूति क्या है ? प्रेम किसे कहते हैं और जीवन में, ब्रह्माण्ड में, उसकी क्या सार्थकता, क्या उपयोगिता है[१५०]। उसने कई बार साधना के अपने से सम्बन्धित भावों को जानने के लिए उससे पूछना चाहा किन्तु उसे साहस न हुआ। इन दोनों का जीवन अकेला है। साधना अपने जीवन के द्वारा व्यक्ति के अकेलेपन को बताती हुई कहती है : "लगता है जैसे पूर्णतया अपना नहीं है, यानी ऐसा कि जिसे मैं सम्पूर्ण अर्थ में अपना समझ सकूं, और न कोई मुझे अपना समझने वाला है और लगता है जैसे जीवन में भारी शून्यता है, और एक बड़ा अकेला पन[१५१]। यह अकेला पन मध्यवर्गीय समाज का न हो कर व्यक्ति का है। चन्द्रनाथ के जीवन में भी अकेला पन है। वह केवल अपनी पत्नी के भय से साधना के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करता। वह सोचता है : कौन कहता है व्यक्ति स्वतंत्र है, मनुष्य स्वाधीन है ? न जाने वह किन अज्ञात शक्तियों के हाथ की कठपुतली है - न जाने कहां से उसकी इच्छायें, वासनायें, उसके जीवन की सब से प्रेरणायें निर्धारित होती हैं। ---------- और यदि वासनाओं का दबाना ही अभीष्ट है तो वह हमारे अन्दर आई ही क्यों ? क्या उष्णता का दमन या उससे मुक्ति भी आग का लक्ष्य हो सकती है[१५२]। इस प्रकार व्यक्ति की इच्छाओं एवं आदर्शों का संघर्ष इस उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है। चन्द्रनाथ समाज के विधि निषेधों से भय नहीं खाता, वह

मिथ्या धारणाओं का बन्दी नहीं है[२५३]। वह साधना से स्पष्ट कहता है : " मैं तुम्हारे व्यक्तित्व को समाज की रूढ़ियों द्वारा कुंठित और विवश नहीं होने दूंगा, उस व्यक्तित्व का मुझे मोह है, उसकी इतनी बड़ी क्षति मुझे सह्य नहीं[२५४]। " साधना की ले कर चन्द्र नाथ बराबर मनन और विश्लेषण करता है। उसका पहला पत्र पाते ही वह उत्फुल्ल हो उठता है। जब चन्द्र नाथ को साधना और अरुण के विवाह के निश्चित होने की बात का पता चलता है तो उसकी अन्तश्चेतना में फुत्कार उठने लगती है। उसे ज्वर हो आता है। साधना उसके बीमारी का समाचार प्राप्त कर उसे देखने आती है तो वह उसके समक्ष अपने मन के सभी विकार विश्लेषित कर रख देता है। उसे बहन कह कर उसके अधरों पर चुम्बन जड़ देता है। इस प्रकार लेखक भाई-बहन के पवित्र सम्बन्ध को भी प्रणय का रूप दे दिया है जिससे समाज के नैतिक पतन होने का भय है। इस सम्बन्ध में डाक्टर प्रेम भटनागर का यह कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि : " व्यक्तिवादी चिंतक के लिए यह व्यवहार सहज और अनिवार्य है, जब कि रूढ़िवादी सामाजिक दार्शनिकों के लिए जीवन की व्यर्थता और घोर पाप का सूचक है। डा० देवराज इस चुम्बन को वात्सल्य की संज्ञा दे कर अपनी दार्शनिकता और भारतीय संस्कृति में आस्था की धाक जमाना चाहते हैं। इस उपन्यास में समाज के स्थान पर व्यक्ति का स्वर प्रमुख है। चन्द्र नाथ और साधना के जीवन के आधार पर लेखक ने उनकी मनोविश्लेषणात्मक शल्य-क्रिया किया है। चन्द्र नाथ "अह" और "इगो" के सन्तुलन को रखने में असमर्थ है। यही स्थिति साधना की भी है। उसमें काम भावना का प्राबल्य है जिससे अभिभूत हो कर वह चन्द्र नाथ के प्रति आकर्षित होती है। चन्द्र नाथ के समक्ष उसका आत्मसमर्पण, उसकी यौन - भावना का अतिरेक है। वह चन्द्र नाथ के हाथ को अपने वक्षस्थल पर दबा कर कहती है --" देखो यहां कितनी आग है, कितनी पीड़ा[२५५]। किन्तु साधना जब प्रेम की अंतिम सीमा पर आ कर आत्मसमर्पण की स्थिति में पहुंचती है तो उपन्यासकार ने उसके सेक्स (सेक्स) को सामाजिकता में उदात्तीकरण (सब्लीमेशन) करा दिया। उसे चन्द्रनाथ

को मिटा कहना ही अच्छा लगता है । इस प्रकार व्यक्ति को उसकी दुर्बलताओं एवं कमियों की परिधि से बाहर निकाल कर नये पथ की खोज की ओर अग्रसरित करना ही इस उपन्यास का कथ्य है जिसे लेखक चन्द्र नाथ और साधना के माध्यम से उपन्यास के अन्त में अभिव्यक्ति देता है । साधना चन्द्र नाथ को लिखे गए अपने पत्र में लिखती है - " मैने यह सोचा कि शायद कर्म और संघर्ष का वातावरण मुझे अहं की संकीर्ण परिधि से मुक्ति दे सकेगा"[१५८] । अस्तु लेखक मनोविश्लेषण के माध्यम से व्यक्ति की अमुक्त काम-वासनाओं को, नये पथ की ओर अग्रसरित करने में सफल रहा है । मनो-विश्लेषण के साथ ही साथ लेखक ने " पथ की खोज " उपन्यास में व्यक्ति-मूल्यों की स्थापना भी की है । चन्द्र नाथ आशा को पत्र में लिखता है - " विश्व की सारी संस्कृतियों और मान्यताओं से अधिक ममत्व है - मानव-व्यक्तित्व का । मैं मानता हूं कि धर्म और दर्शन के सब सिद्धान्त, नीति के समस्त विधि-निषेध इस व्यक्तित्व के प्रसार और सुख के लिए है, उसके उत्पीड़न और विनाश के लिए नहीं"[१५९] ।

अस्तु हम कह सकते हैं कि " पथ की खोज " में लेखक का ध्यान अपने कथ्य की ओर अधिक रहा है जिसे वह उपन्यास के प्रमुख दो पात्र चन्द्र नाथ और साधना के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । लेखक का ध्यान कथ्य पर अधिक केन्द्रित होने के कारण कथानक में विखराव एवं क्रम हीनता है । कथाकार के दार्शनिक विश्लेषण एवं मनोवैज्ञानिक ऊहा पोह के कारण कथानक का स्वरूप विकृत हो गया है । लेखक का कथ्य दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक है लेकिन कथानक, घटनाओं के जम घट और वर्णन-वार्तालापों से भरा पड़ा, पूर्णतया परम्परागत और इतिवृत्तात्मक है । यही कारण है कि "पथ की खोज " उपन्यास में लेखक को कथ्य और कथानक के बीच सन्तुलन बनाये रखने में असफलता ही मिली है । वह कथ्य और कथानक के समानुपातिक व सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध निर्वाह में असफल रहा है ।

:: धर्मवीर भारती :: " सूरज का सातवां घोड़ा "

नई पीढ़ी के प्रतिभाशाली उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का विशिष्ट स्थान है। उनकी चेतना सामाजिक है किन्तु भारती जी ने व्यक्ति की अनुभूतियों, व्यक्ति- स्वातंत्र्य एवं व्यक्ति की मुक्ति के प्रश्न को भी अक्षुण्ण रखा है। उनकी औपन्यासिक कृतियों में व्यक्ति कभी - कभी इतना ऊपर आ जाता है कि सामाजिक चेतना दब दबी सी प्रतीत होने लगती है। किन्तु इससे भारती की गणना व्यक्तिवादी - जीवनदृष्टि वाले औपन्यासिकों में नहीं की जा सकती। उनकी जीवनदृष्टि में कुछ अंशों तक व्यक्तिपरकता स्वीकार्य है। भारती सदैव अपने को परिवेश से सम्बद्ध रखने वाले कथाकार हैं जो उन्हें व्यक्तिवादिता के घेरे से बाहर का उपन्यासकार सिद्ध करता है। भारती की विचारधारा जिसमें उन्होंने अपनी परिवेश-बद्धता स्वीकार की है उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है -----" मुझे लगता है कि मैं अपने जीवन का रस, सार्थकता, संकल्प और तलाश इस लिये है कि मेरी जिन्दगी दूसरी अनेकानेक जिन्दगियों की भावना के बहुविध (त्याग, घृणा, विरोध, संगति) रिश्तों से जुड़ी हुई है। जिन्दगियों के इस पारस्परिक उलझाव में सुख भी है, त्रास भी, कष्ट भी है, यंत्रणा भी और आश्वासन भी। ---- रचनाकार होने के नाते भी मैं अपने परिवेश से सब से पहले सम्बद्ध हूं[१५८]।" सूरज का सातवां घोड़ा " भारती की सामाजिक जीवन-दृष्टि का परिचायक है जिसमें वह मानवतावाद की स्थापना करते हैं। उन्होंने अपनी रचना धर्मिता को परिभाषित करते हुये कहा है -----" जो कुछ लिखता हूं उसमें सामाजिक उद्देश्य अवश्य है। पर वह स्वान्तः सुखाय भी है। यह अवश्य है कि मेरे " स्व " में आप सभी सम्मिलित हैं, आप सबों का सुख - दुख, वेदना - उल्लास मेरा अपना है, वास्तव में वह कोई बहुत बड़ी कहानी है जो हम सबों के माध्यम से व्यक्त हो रही है[१५९]।"

लेखक का यह स्वर वर्तमान भावना के प्रति उसकी आत्मीयता का द्योतक है इसी लिए अज्ञेय का कथन है कि भारती को देख कर " हम कह सकते हैं कि हिन्दी अँधियारे अंतराल को पार कर चुकी है जो इतने दिनों से मानो अंतहीन दीख पड़ता था [२६०] ।

' सूरज का सातवां घोड़ा ' धर्मवीर भारती का लघु उपन्यास है जिसका कथ्य मध्यवर्गीय जीवन की भयंकर - विडम्बना, आर्थिक खोखलापन, चतुर्दिक व्याप्त अनैतिकता, विवाह, परिवार, प्रेम की निस्सारता, अर्थात् सम्पूर्ण जीवन - व्यवस्था की जीर्णता का चित्रण कर जीवन की आशा का सन्देश देना है । उपन्यास का प्रमुख पात्र माणिक मुल्ला का कथन है --' ये कहानियां वास्तव में प्रेम नहीं परन्तु उस जिन्दगी का चित्रण करती है जिसे आज का निम्न-मध्यवर्ग जी रहा है । इसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विशृंखलता, इस लिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अन्धेरा मध्यवर्ग पर छा गया है [२६१] । इस प्रकार इस उपन्यास में कितने ही घातों- प्रतिघातों, अंतर्विरोधों, सामाजिक रूढ़ियों, कुरीतियों तथा थोथी सभ्यताओं से विषाक्त दयनीय स्थिति में चल रहे मध्यवर्गीय जीवन को प्रेम-कहानियों के माध्यम से व्यक्त किया गया है । इस प्रकार आन्तरिक से भरी हुई कीच - कर्दम - युक्त मध्यवर्गीय जीवन में आस्था के सूत्र भी अन्तर्निहित हैं जो भविष्य के लिए आशा का आभास देता है । माणिक मुल्ला को विश्वास है ---' पर कोई न कोई ऐसी चीज है, जिसने हमें हमेशा अन्धेरा चीर कर आगे बढ़ने, समाज - व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुन: स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है [२६२] । इस प्रकार लेखक ने इस बात की ओर संकेत किया है कि मनुष्य में कोई न कोई अन्तर्निहित शक्ति ऐसी है जो अन्धकार को विदीर्ण कर, सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने तथा मानवता के सहज मूल्यों की पुनर्स्थापना करने की प्रेरणा उसी प्रकार देती है जिस प्रकार सूर्य को सात घोड़े आगे ले जाते हैं । निम्न-मध्यवर्ग सूर्य के रथ का प्रतीक है जो टूटा हुआ है और घोड़े भी विगलित हो

चुके हैं किन्तु अब सिर्फ एक घोड़ा बचा है । यह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा, तन्ना, जमुना और बत्ती के नन्हें, निष्पाप बच्चों का घोड़ा, जिनकी जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन चैन की होगी, ज्यादा पवित्रता की होगी, उसमें ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत होगा । वही सातवां घोड़ा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिन पर हो कर भविष्य का घोड़ा आयेगा [१६३] । इस प्रकार मध्यवर्गीय जीवन की विकृतियों का यथार्थ - चित्रण कर लेखक ने उपन्यास के अन्त में भविष्य के लिए आशा का सन्देश दिया है जो इस उपन्यास का मूल है ।

अपने कथा की सफलता पूर्वक अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने जिस कथानक की सृष्टि की है उसका शिल्प- कौशल अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें नयापन है । यह नयापन इस बात में है कि कहानी कहने का ढंग अत्यन्त प्राचीन है -- ' अलिफ लैला वाला ढंग, पंचतंत्र वाला ढंग, बोकेशियो वाला ढंग, जिसमें रोज किस्सागोई की मजलिस जुटती है, फिर कहानी में से कहानी निकलती है [१६४] । यह अलग - अलग कहानियों की एक कहानी है । इस बाह्य रूप से प्राचीन दिखाई पड़ने वाले ढंग को भारती ने पूर्ण रूप से अपना बना कर सर्वथा नये ढंग से प्रस्तुत किया है जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई है । लेखक ने यह प्रयोग कौतुक के लिये नहीं, प्रत्युत इस लिए किया है कि उसका जो कथ्य है, उसकी अभिव्यक्ति का यह सर्वोत्तम ढंग है । यह केवल ' फुरसत का वक्त काटने या दिल बहलाने वाला नहीं है, हृदय को कचोटने, बुद्धि को झकझोड़ कर रख देने वाली है [१६५] । सात दिनों में अनेक वर्षों तथा अनेक जीवन- प्रसंगों को इसने कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है कि प्रत्येक प्रसंग का स्वतंत्र रूप से आनन्द लिया जा सकता है किन्तु सामूहिक रूप से सब परस्पर सम्बद्ध हो कर कथा को एकान्विति प्रदान करते हैं । उपन्यास का कथानक सात दिन की कहानी होने के कारण सात शीर्षकों में विभक्त है जो अजीब एवं आकर्षक हैं तथा मूल कथा को लेखक ने बड़ी कुशलता से इन शीर्षकों के

अन्तरसमाविष्ट किया है जिससे कथानक की सूत्रबद्धता बनी रहती है ।

" सूरज का सातवां घोड़ा " के कथानक का वक्ता उपन्यास का प्रमुख पात्र माणिक मुल्ला है । वह घटनाओं का द्रष्टा है । माणिक मुल्ला शहर के प्रसिद्ध व्यक्ति थे जो अपने घर में अकेले रहते थे । जहाँ दोपहर को मुहल्ले के सभी लड़के अड्डा जमाते थे जिनके लिए माणिक मुल्ला जाड़ों में मूंगफलियां और गर्मियों में तरबूज मौजूद रखते थे । माणिक मुल्ला ने सात दोपहर तक उन लड़कों को कहानियां सुनाईं । " पहली दोपहर की बैठक में माणिक द्वारा सुनाई गई कहानी का शीर्षक " नमक की अदायगी " अर्थात् जमुना का नमक माणिक ने कैसे अदा किया " है जिसमें बीस वर्षीय जमुना के द्वारा पन्द्रह वर्षीय बालक माणिक को नमकीन पुए खिला कर अपने पास बुलाने तथा वार्तालाप करने की कथा कही गई है । " दूसरी दोपहर " को सुनाई गई कहानी का शीर्षक है " घोड़े की नाल ," अर्थात् किस प्रकार घोड़े की नाल सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई । इसके अन्तर्गत जमुना के एक वृद्ध किन्तु सम्पन्न व्यक्ति से अनमेल विवाह, उनकी दिखावटी पतिभक्ति तथा पूजा - पाठ, अपनी यौन-तृप्ति के लिए जमुना का उसके नौकर रामधन से गुप्त सम्बन्ध एवं पुत्र की प्राप्ति, पति की मृत्यु, जमुना के मगरमच्छी अश्रुपात एवं अन्त में विधवा- वेश- धारण, रामधन का कोठी में ही निवास करने लगना तथा उसके ठाट - बाट का चित्रण है । " तीसरी दोपहर " को जो कहानी कही गई उपन्यास में उसका कोई शीर्षक नहीं दिया गया है जिससे भारती की कथा - प्रस्तुतीकरण के प्रति पूर्णतटस्थता प्रमाणित होती है । इस कहानी का शीर्षक माणिक मुल्ला ने स्वयं नहीं बताया था । इसमें जमुना के प्रिय मित्र तन्ना जिससे वह प्रेम करती थी तथा विवाह करने की आकांक्षिणी थी, के दुखपूर्ण जीवन की कथा वर्णित है । तन्ना के पिता महेसर दलाल द्वारा पत्नी के मरणोपरान्त रखैल रखने और उसके प्रभाव से

लड़के - लड़कियों पर कठोर शासन करने, आर्थिक विषमता एवं पीड़ा से युक्त तन्ना और यमुना के विवाह की बात चीत के टूट जाने, कम पढ़ी लिखी रूपवती लड़की लीला से तन्ना के विवाह हो जाने, महेसर दलाल द्वारा पुलिस से आत्म - रक्षा - हेतु गृह - परित्याग कर देने के बाद गृहस्थी के सम्पूर्ण बोझ के आर० एम०एस० के साधारण अल्प - वेतन भोगी क्लर्क तन्ना पर आ पड़ने, तन्ना का सूख कर कांटा हो जाने, बीमार पड़ने, नौकरी से बहिष्कृत तन्ना की स्त्री को उसकी सास के आ कर लिवा जाने, अन्त में यूनियन वालों के प्रयत्न से तन्ना को पुन: नौकरी मिल जाने, कृशगात्र तन्ना, के बाल्टी से टकरा कर ट्रेन से गिर जाने, अस्पताल में उसकी मृत्यु हो जाने की कथा का वर्णन किया गया है। " चौथी दोपहर " को माणिक ने " मालवा की युवरानी देव सेना की कहानी " नामक शीर्षक से कथा कही जिसमें माणिक और लीला के इन्द्रधनुषी रूमानी प्रेम तथा तन्ना के साथ लीला का विवाह हो जाने के कारण उसके दुखद अन्त का चित्रण है। " पांचवीं दोपहर " को माणिक ने " काले बेंट का चाकू " नामक कहानी कही जिसमें फौजी पेंशन-याफ्ता चमन ठाकुर की कन्या सती के साथ माणिक की प्रगाढ़ घनिष्ठता का चित्रण है। सती तन्ना से अत्यधिक प्रेम करने लगी थी। एक रात सती चमन ठाकुर और महेसर दलाल की काम लोलुपता से बचने के लिए माणिक के घर चली आई किन्तु माणिक मर्यादाभीरु होने के कारण उसके आने का समाचार भाई को दे दिया जिससे सती को चमन ठाकुर को सौंप दिया। एक रात पता लगा कि चमन ठाकुर और महेसर दलाल ने सती के विरोध के कारण सती का गला घोंट दिया। " छठवीं दोपहर " को यही कथा आगे चलती है। सत्ती के मृत्यु की व्यथा से माणिक का स्वास्थ्य गिर गया तथा उसका स्वभाव समाज - विरोधी, उच्छृंखल तथा आत्म-घाती हो गया था। एक दिन चमन ठाकुर और सती की गोद में भिनकता बच्चा लिए कुछ भिखारियों

के रूप में जीवित देख कर माणिक के हृदय का बोझ हल्का हो गया और
उसने तन्ना की खाली जगह पर आर० एम० एस० में नौकरी कर ली । " सातवीं
दोपहर " को माणिक मुल्ला द्वारा " सूरज का सातवां घोड़ा " शीर्षक
कहानी सुनाई गई । यह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा । अपनी अंतिम बैठक
में माणिक ने सूरज के सात घोड़ों का तात्पर्य स्पष्ट किया है ।

इस प्रकार माणिक मुल्ला की कहानी सम्पूर्ण उपन्यास
में आदि से अन्त तक वर्तमान है जिसके इर्द - गिर्द अन्य कहानियाँ घूमती हैं ।
इन कहानियों में मुख्य जमुना, तन्ना, लिली और सती की कहानियां हैं ।
इस प्रकार माणिक मुल्ला ने छ: दोपहर में छ: कहानियां कही हैं और अध्याय
" सूरज का सातवां घोड़ा " में समन्वय - सूत्र जोड़ा है । इन में से प्रत्येक
कहानी में माणिक मुल्ला मौजूद हैं । इस तरह अनेक कहानियों में एक कहानी
है जो समाज के खोखले पन की आलोचना है । समाज में व्याप्त आर्थिक वैषम्य,
अतृप्त काम-वासना तथा प्रेम - विघातक विभिन्न समस्यायें इन कहानियों के
माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं । जमुना, तन्ना, सती, महेसर दलाल तथा
माणिक मुल्ला आदि पात्रों के माध्यम से कथाकार ने मध्यवर्ग के जीवन का
यथार्थ बड़ी सफाई और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ है ।
कथाओं के बीच - बीच में " अनध्याय " या विराम है जिनमें वस्तुतः लेखक ने
नाटकीय ढंग से जो व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं उनमें भाववादी जड़ता पर तीक्ष्ण
प्रहार है एवं वे अपनी नवीनता में प्रभावशाली हैं । यहीं पर लेखक की
वास्तविक समस्या के स्पष्टीकरण का अवसर मिलता है ।

" सूरज का सातवां घोड़ा " में प्रेम कहानियों के द्वारा
सामाजिक जीवन के गलित यथार्थ को उभार कर साधारण जन की हीन दशा
और रूढ़िवादिता का करुणापूर्ण चित्रांकन ही लेखक को अभीष्ट है जिसके मूल
में आर्थिक विषमता क्रियाशील है । आधुनिक आर्थिक ढांचे की विषमता

से युक्त मानव - जीवन मनोनुकूल वांछित ढंग से संचालित नहीं हो पा रहा है उनमें व्यक्ति पीड़ा एवं दर्द समाहित है। उनको सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से जमुना का विवाह उसी अपेक्षित प्रेम तन्ना से न हो कर एक बुड्ढे से हो जाता है जिससे वह अपनी वासना-तृप्ति न कर पाने के कारण नौकर राम धन से अवैध सम्बन्ध स्थापित करती है तथा पति, समाज एवं स्वयं को भी धोखा देती है। समाज की आर्थिक नींव खोखली होने के कारण विवाह, परिवार, प्रेम सभी की नींवें हिल गई हैं। सबमें अनैतिकता व्याप्त है। जमुना जैसी नब्बे प्रतिशत लड़कियाँ समाज में ऐसी मिलती हैं जिनके माता- पिता दहेज न जुटा पाने के कारण उन्हें बेमेल एवं अनिश्चित पुरुषों से ब्याह देते हैं और उनका जीवन विषाक्त हो जाता है तथा उन्हें अनैतिकता की ओर उन्मुख होना पड़ता है। नारी - पुरुष अभाव से युक्त निम्न- मध्यवर्ग की भयानक समस्या है। उपन्यास की दूसरी स्त्री-पात्र लीला पढ़ी लिखी एवं सम्पन्न परिवार की लड़की है जो माणिक से प्रेम करती है किन्तु सामाजिक बंधनों के कारण माणिक से उसका ब्याह नहीं हो सकता इस लिए वह ब्याह दी जाती है तन्ना से। तन्ना और सती का जीवन भी आर्थिक - विषमता - जन्य संघर्षों एवं सामाजिक विकृतियों के बीच नष्ट हो जाता है। इस प्रकार उपन्यास के सभी पात्र सामाजिक विकृतियों के प्रतीक बनाये हैं। समाज की [illegible]-विकृति में ढोंग झूठी मर्यादा शीलता से चिपके हुये, कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाते हुये, जीवन को किस प्रकार विषाक्त, दयनीय एवं भयावह बना लेते हैं यह तथ्य इन औपन्यासिक पात्रों के चरित्रांकन से पूर्णतया प्रत्यक्ष हो जाता है। लेखक द्वारा किया गया निम्न मध्यवर्ग की इस विवशताजन्य [illegible] स्थिति का यह अनावरण[166] स्वाभाविकता की तुला पर पूरा खरा उतरता है। जमुना[167], तन्ना[168] तथा सती[169] का चरित्र लेखक ने यथातथ्य रूप में प्रस्तुत किया है। माणिक मुल्ला का चरित्र व्यंग्य - चरित्र के रूप में शनैः शनैः कलात्मकता से प्रस्फुटित हुआ है। वस्तुतः वह जीवन - धारा से कटा हुआ उदासीन व्यक्ति है। वह तटस्थ हो कर सब पर मीठी चुटकियाँ लेने की स्थिति में है और व्यंग्य उसके लिये असफलता से जूझने और उसे भुलाने का सशक्त माध्यम बन जाता है[170]।

वस्तुत: इसमें भारती की व्यंग्य - शक्ति का भरपूर सफल प्रयोग हुआ है। उपन्यास के अन्त में अनेक बुराइयों से व्याप्त हमारे जीवन के प्रति अडिग आस्था व्यक्त हुई है जो सूरज का सातवां घोड़ा है " जो हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम रास्ता बना सकें जिन पर हो कर भविष्य का घोड़ा आयेगा, इतिहास के वे पन्ने लिख सकें जिन पर भविष्य में अश्वमेध का दिग्विजयी घोड़ा दौड़ेगा " आदि। माणिक मुल्ला का यह वक्तव्य उपन्यास के अभिन्न अंश के रूप में प्रकट हुआ है। यह आकलन नहीं है। यही इस उपन्यास के शिल्प की नवीनता है।

" सूरज का सातवां घोड़ा " धर्मवीर भारती की एक उल्लेखनीय औपन्यासिक रचना होने के साथ ही शिल्प की दृष्टि से सम्पूर्ण हिन्दी उपन्यासों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उपन्यास में निम्न-मध्यवर्ग की जटिलतायें उठाई गई हैं। भारती की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि ने इनके प्रत्येक सदसद् पक्षों का उद्घाटन यथार्थ के धरातल पर किया है और लेखक ने प्रगतिशील मूल्यों की सफलता पूर्वक स्थापना की है। यथार्थ - चित्रण एवं मूल्य - स्थापना में लेखक को अपनी तरफ से अतिरिक्त उपदेश या आदर्श-वादिता का समावेश नहीं करना पड़ा है। माणिक मुल्ला के माध्यम से सभी कहानियों का लेखक ने इतनी कुशलता पूर्वक संगुंफन किया है कि कहीं भी एकान्विति बिखरने नहीं पाती। प्रत्येक कहानी के साथ - साथ उपन्यास का कथ्य स्वाभाविक गति से विकसित होता गया है। कहीं - कहीं पर माणिक मुल्ला बीच - बीच में कथा - प्रसंग से परे हट कर कहानी की टैकनीक पर अपने विचार व्यक्त करने लगता है। कथ्य की दृष्टि से यह प्रवचन अप्रा-संगिक और अस्वाभाविक है। माणिक मुल्ला के घर की महफिली चहल-पहल, उनके कथा - कथन के नितान्त अनौपचारिक ढंग, अन्त के मनोरंजक निष्कर्ष, समाज एवं व्यक्ति - व्यंग, विद्रूप तथा हास्यास्पद चित्र, और सबके अन्तर में व्याप्त मानवदु:ख एवं दयनीयता के प्रति सहृदय को कचोटने वाली वेदना आदि ने सामूहिक रूप से इस उपन्यास की शैली में एक विशेष

आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। लेखक ने इस भ्रम की सृष्टि अपनी [illegible] है कि वास्तव में मानिक मुल्ला ही कहानियों का प्रस्तुत कर्ता है [७१] जो उसकी कौशल को अभिव्यक्त करती है।

कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि उपन्यास के अन्त को नाटकीयता देने के लिए भारती ने जो कथानक निर्माण किया उसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। निम्न - मध्यवर्ग की कटुता से भरी जिन्दगी का कथानक द्वारा समूर्तीकरण किया गया है जिसमें मानव - मूल्यों और व्यक्तित्व की रक्षा का प्रयास अपने समग्र रूप में दृष्टिगोचर होता है।

डा० लक्ष्मी नारायण लाल : 'बया का घोंसला और साँप'

'बया का घोंसला और साँप' डा० लक्ष्मी नारायण लाल का एक समस्या मूलक लघु उपन्यास है। सामन्त युग में भारतीय ग्रामीण विकृतियों के कारण पुरुषों द्वारा परवश नारी के अबलात्व पर किये जाने वाले अत्याचारों का चित्रण करते हुए परिस्थिति - प्रताड़ित, दुर्भाग्य-ग्रस्त, निरीह नारी के प्रति पाठकों की संवेदना एवं सहानुभूति को उद्बुद्ध करना ही इस उपन्यास का लक्ष्य है, जिसे लेखक ने प्रतीकात्मक शिल्प-विधि के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इसमें ताड़- वृक्षों पर झूलते हुए बया के सूने घोंसले एक विशिष्ट संकेत के परिचायक हैं। पक्षियों से शून्य ये घोंसले समाज रूपी अजगर से भयभीत हो कर खाली पड़े हैं। वास्तव में यह प्रतीक सुभागी, उसके उजड़े घर एवं उसके सतीत्व पर आघात करने वाले तहसीलदार कामता प्रसाद के लिए प्रयुक्त है। सुभागी परिस्थितियों के आवर्त में फंसी हुई विपत्तिग्रस्त नारी है जिसकी सहायता करने का ढोंग रचकर कामुक तहसीलदार उसके सतीत्व

को नष्ट करना चाहा किन्तु वैसा न होने पर सुभागी के पति को जहर दिलवा कर मरवा डाला और उसके घर को उजाड़ बना दिया। इस प्रकार तहसीलदार कामता प्रसाद अजगर का प्रतीक है, तथा सुभागी का भोली निरीह पक्षी का एवं सुभागी का सूना उजड़ा हुआ घर अजगर के भय से खाली पड़े हुए बया के घोंसले का प्रतीक है। इस प्रकार 'बया का घोंसला और सांप' उपन्यास का शीर्षक भी प्रतीकात्मक और कथ्य का सूचक है।

'बया का घोंसला और सांप' की कथा विस्तृत नहीं है।[७२] उसमें दुर्भाग्य की शिकार 'सुभागी के जीवन की 'विपत्ति,' में परिणति की कथा कही गई है। कथानक का सम्पूर्ण ढांचा सुभागी के जीवन की करुणा को बढ़ाने और किसी न किसी प्रकार से संवेदनात्मक चरम सीमा पर पहुंचाने में सहायक घटनाओं से निर्मित हुआ है। सुभागी विधवा ब्राह्मणी जमुना की इकलौती बेटी है पिता की मृत्यु के अनन्तर पैदा हुई। जमुना का घर पुरैना गांव में था जहां ब्राह्मणों का बोल बाला था। गांव की धर्म परायणता के ठेकेदार ब्राह्मणों के अत्याचारों एवं कामुक व्यक्तियों की कुदृष्टियों से आत्म - रक्षा के लिए जमुना पुरैना गांव को छोड़ कर भाग निकलती है। उसे तहसीलदार कामता प्रसाद की पत्नी सत्यवती के यहां शरण मिलती है। सत्यवती के इकलौते पुत्र आनंद के साथ सुभागी भी बहुत लाड़ प्यार में पलने लगती है। सत्यवती जिसे जमुना एवं सुभागी "बन्नी बीबी" कहती हैं सौजन्य की प्रतिमा है और सुभागी पुत्रीवत् स्नेह देती है। किन्तु तहसीलदार का तबादला हो जाता है, बन्नी बीबी का अकस्मात् देहावसान हो जाता है और जमुना को पुन: असहाय हो जाना पड़ता है। सुभागी के बड़ी हो जाने पर जब जमुना ने उसका विवाह करना चाहा तो गांव के ब्राह्मणों ने उसकी सहायता न कर अनेक प्रकार के कुचक्र फैलाये जिससे जमुना अत्यन्त करुण स्थिति में पड़ जाती

है। किन्तु वह इन गांव के कुचक्रों एवं अपनी असहाय परिस्थिति का धैर्यपूर्वक सामना करती हुई सुभागी का विवाह रामानन्द से करके निश्चिन्त हो जाती है। विवाह के एक वर्ष बाद रामानन्द बीमार पड़ता है और धीरे - धीरे पाण्डु रोग एवं कुष्ट का शिकार हो जाता है। बेचारी सुभागी बड़े प्रेम तथा निष्ठा से उसकी सेवा करती है। किन्तु जैसे जमुना पुरैना गांव में सताई गयी थी उसी प्रकार पति की बीमारी अवस्था में सुभागी सिकन्दर पुर गांव में सताई जाने लगती है। गांव के अनेक नौजवान किरपाल सिंह, मधु सिंह तथा सुमेर उस पर लोलुप दृष्टि रखते हैं और अपने उद्देश्य में सफल न हो पाने के कारण सुभागी को भांति- भांति से उत्पीड़ित करते हैं -- खलिहान में आग लगा देते हैं, चोरी का इल्जाम लगा कर पंचायत से दण्ड दिलवाते हैं, मुकदमा चलाते हैं। जैसे उसकी मां जमुना को पुरैना छोड़ कर बांसी कस्बे में जाना पड़ा था, उसी प्रकार गांव वालों के अत्याचार से सुभागी को सिकन्दर पुर छोड़ कर राम नगर में शरण लेनी पड़ी। मुकदमें के सिलसिले में सुभागी पुन: तहसीलदार के सम्पर्क में आती है और उनके यहां खाना बनाने के लिए नियुक्त होती है। किन्तु तहसीलदार की काम-लोलुप दृष्टि उस पर पड़ती है और वह उसे अपनी काम वासना का शिकार बनाना चाहता है। जब वह ऐसा करने में सफल न हो सका तो डाक्टर के द्वारा उसके कोढ़ी पति को विष दिलवा कर मार डालता है। इस प्रकार इस राम नगर कस्बे ने सुभागी के सौभाग्य को भी समाप्त कर दिया और उसका आरोप भी सुभागी पर ही लगाया। अपने गांव में पति को खा कर देने वाली प्रसिद्ध हो कर सुभागी सब प्रकार से अस्पृश्य हो गई। किन्तु सुभागी का बचपन का दोस्त आनन्द हर प्रकार से उसकी रक्षा का प्रयास करता है तथा अपने पिता से भी संघर्ष मोल ले लेता है। अन्त में आनन्द सिकन्दर पुर में असहाय पड़ी सुभागी के पास पहुंचता है और आशावाद में उपन्यास का अन्त होता है। पाठक अनुभव करने लगता है कि अब सुभागी और आनन्द नया जीवन प्रारंभ करेंगे तथा परिस्थितियों को अनुकूल बना सकेंगे

' बया का घोंसला और साँप ' के वस्तु - विन्यास के रचना पर प्रकाश डालते हुए डा० लाल ने लिखा है कि अपनी निर्माण अवस्था में होते हुए भी इसमें संवेदन और सहानुभूति की स्पष्टता निरवशेष है। इसमें शंकायें कम हैं, इस लिए रचना - शैलियों में सरलता भी है। इसमें ऊहापोह कम है, इस लिए इसमें संवेदना का स्थायित्व है।' लेखक के इस कथन के अनुरूप ही इस विवेच्य उपन्यास का कथानक सरल, एक सूत्री, पूर्व योजित तथा सुगठित है। इसमें कोई शिल्पगत नवीनता नहीं है, यद्यपि कथा के प्रकरण विभाजन से उसमें कलात्मकता की सृष्टि करने का प्रयास दिखाई पड़ता है। उपन्यास का प्रारम्भ कथा के अन्तिम भाग से हुआ है। आनन्द, सुभागी, रामानन्द, कामता प्रसाद, जमुना और पारो आदि पात्रों को आधार बना कर विविध सूत्रों का जाल बुन कर कथानक का ढांचा तैयार किया गया है। कथा नाटकीय रूप से प्रारम्भ हो कर शीघ्र ही गतिशील हो कर आगे बढ़ने लगती है। कहीं-कहीं यह गतिशीलता कलात्मक दृष्टि से दोषपूर्ण प्रतीत होती है। उपन्यास में नियोजित सभी घटनायें मार्मिक एवं करुण को अभिव्यक्त करने वाली हैं। इन अनेक घटनाओं की योजना करके सुभागी के करुणातम जीवन को अभिव्यक्त करने में उपन्यासकार को अद्भुत सफलता मिली है। वेदना को घनीभूत तथा कथा को अधिक संवेदनात्मक बनाने में डा० लाल ने बड़ी कुशलता पूर्वक अनेक अभिव्यक्ति-शिल्पों का प्रयोग किया है। करुण की सफल अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं काव्यमयी शैलियों का प्रयोग किया है तथा विषयीकृत करुण परिस्थितियों के प्रचुर विनियोग तथा ग्रामीण वातावरण के यथार्थ का प्रतिरूपण किया है जो अत्यन्त ही कलात्मक बन पड़ा है।

सम्पूर्ण उपन्यास में लेखक की दृष्टि पाठकों की संवेदना को गति देने पर अधिक रही है जिसमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई है।

सुभागी जन्म से ही पीड़ित है क्योंकि उसके पैदा होने के पूर्व ही उसके पिता का देहान्त हो गया था। उसके जन्म के उपरान्त गांव वालों के अत्याचारों से पीड़ित हो कर उसकी माँ जमुना को घर छोड़ देना पड़ा। बड़ी होने पर सुभागी का विवाह रामानन्द से हुआ किन्तु दुर्भाग्यवश वह कुछ ही समय उपरान्त बीमार हो गया। पति की बीमारी काल में सुभागी को समाज के समक्ष अबला बन कर अनेक अत्याचार सहना पड़ा। सुभागी की वेदना घनीभूत बनाने के लिए लेखक ने उसे असहाय बना कर अत्याचारों को मूक - झेलने का अवसर दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास में अनेक स्थलों पर लेखक ने घनीभूत वेदना का चित्रण किया है। कोढ़ी पति के साथ सुभागी के जीवन की दारुण विषमता का चित्रण करते हुए कथाकार ने तुलनात्मक शैली का आश्रय लिया है: " और यह सुभागी! ---- न जाने कैसे जी रही है उसके साथ !!! वह विकृत पुरुष और वह स्वस्थ - सरूपा। वह कोढ़ी पति, वह सुहागिन। वह राख, वह आग। वह मृत्यु का भयावह पथ, वह जीवन की स्मित रेखा। एक सन्नाटा, एक गीत[१७३]।" बीमार पति के अशक्त हो जाने पर रूपवती सुभागी की अतृप्त काम-जनित वेदना का मार्मिक सांकेतिक चित्रण भी उपन्यास में उपलब्ध होता है[१७४]। रोगी पति से संतानोत्पत्ति न हो सकने के कारण सुभागी वात्सल्याभाव - जनित वेदना से उदास हो उठती है। रामानन्द उसकी उदासी को दूर करने के लिए उसे गाने के लिए कहता है। इस स्थल पर दोनों की करुण एवं मर्मान्तक मुद्राओं का चित्रण हुआ है[१७५]। सुभागी के सुखद बाल जीवन एवं विवाह के अनन्तर के उसके दुःखद जीवन की पारस्परिक तुलना में भी लेखक ने करुण-स्थलों की उद्भावना की है[१७६]। सुभागी परिस्थिति निर्दोष पति-परायणा, भाग्य - भगवान में विश्वास करने वाली, सत्य - धर्म - प्रेम से युक्त सामान्य भारतीय ग्रामीण नारी का प्रतिनिधित्व करती है। एक कोढ़ी एवं अशक्त पति के साथ रहते हुए निरन्तर विपत्तियों को सहन करती है

किन्तु अपने पति के प्रति उसका मन कभी मैला नहीं हुआ। उसमें आत्मा-चारियों का सामना करने एवं अपने नारीत्व की रक्षा करने में अद्भुत सामर्थ्य है। सुभागी के संघर्षशील व्यक्तित्व का चरित्र-सार रामानन्द के इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है --" वह जानकी है, लेकिन मैं तो कोढ़ी हूं फिर वह इस तरह क्यों अपनी अग्नि परीक्षा दे रही है? उसने किया क्या है? वह जन्म से आज तक पवित्र है, महान है। अपनी मां के संघर्षों में वह तपायी गई और अब वह मेरी राख में तप रही है। वह मिट्टी थी, तपती - तपती स्वर्ण हो गयी, उत्तम स्वर्ण हो गई और अगर वह अब भी सतत् अग्नि में तपती गई, फिर तो सोने का क्या होगा? सुना जाता है कि तब वह पिघल जाता है और धीरे-धीरे राख हो जाता है।[१७६] तअल्लुकेदार द्वारा विष्ा दिला कर रामानन्द की हत्या कर दिये जाने के बाद सुभागी के राख होने की स्थिति आ गई किन्तु एक तो रामानन्द ही सुभागी को जीवित रहने की प्रेरणा दे गया था - " तू न मरना सुभागी नहीं तो हम लोगों का सत्य मर जायेगा[१७८]।" दूसरे आनन्द ने अपने क्रान्तिकारी कदम से उसकी आस्था को प्रदीप्त कर दिया - उसे एक नया जीवन दे दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सुभागी अपने स्वभाव में अपराजित एवं दृढ़ है। उसकी असहायावस्था से अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा, प्रेरणा और सिकन्दर पुर के निवासी तथा राम नगर के तअल्लुकेदार सभी करते हैं किन्तु उसकी यही स्वाभाविक दृढ़ता एवं पति-परायणता उसे पथ-भ्रष्ट होने से बचा देती है। अपना सर्वस्व खो कर भी वह सर्वाधिक मूल्यवान पदार्थ नारीत्व की रक्षा करने में पूर्णतया सफल होती है।

डा० लाल के उपन्यासों का प्रमुख सौन्दर्य एक ऐसे चरित्र के निर्माण में निर्भर करता है जो अपने स्वभाव में अपराजित है। यह पात्र बहुत स्वाभाविक होता है। जीवन में सब से अधिक कष्ट का भागी भी यही होता है। लेकिन मूलरूप में अडिग रहने के कारण यह पात्र अत्यधिक

सशक्त और प्रभावशाली होता है। इसकी तुलना ऐसी दीप - शिखा से की जा सकती है जो आंधी में विकम्पित तो हो उठती है, लेकिन बुझती नहीं। पाठक को सब से अधिक इसी के जीवन की मार्मिकता छूती रहती है। अभी तक इनके उपन्यासों में तीन पात्र ऐसी नारी हो रही हैं। " कथा का घनिष्ठा और गाँव " की सुभागी को लीजिए। और दूसरी है " चाँद फूल का पतिया " की मीना। तीसरी है " रूपा जीवन " की मधु बुआ[१७०]

चरित्रांकन की दृष्टि से सुभागी के अतिरिक्त आनन्द, रामानन्द तथा तहसीलदार कामता प्रसाद प्रमुख पात्र हैं। उपन्यास में आये हुए गौण पात्रों की योजना इन प्रमुख पात्रों के सहयोग - प्रतिरोध के प्रयोजन से हुई है। जमुना, मिसरी गोसाईं, सरजू, मारी बुआ, रनी, प्रभा, पंती भाभी, पदारथ काका जगपति पंडित आदि कथानायिका एवं नायक के सहयोगी पात्र हैं तथा अम्बू, सुमेर, किरपाल आदि प्रतिरोधी हैं। ये सभी पात्र वर्गीय हैं क्योंकि ये उनके प्रतिनिधि पात्र समस्या-निरूपण की सामाजिकता में सहायक हो सके हैं।

जमुना स्थिर पात्र है। उसमें संघर्ष - दृढ़ता, प्रति-निष्ठा, सात्विकता के अतिरिक्त एक भारतीय नारी - विशेषतया ग्रामीण नारी की पति को परमेश्वर मान कर निष्ठा स्थिर रखने के संस्कार स्पष्ट हैं। जमुना की जाति, वंश एवं परम्परागत संस्कारों मिश्रित रूप उसके इस कथन में देखा जा सकता है -" मैं बेटी के गांव कैसे जा सकती हूं। मुझे तो उसका सिवान नहीं लांघना चाहिए, उसके यहां जाने की बात तो दूर रही। मैं ब्राह्मणी हूं और सुभागी के बाबू जी उस क्षेत्र के बहुत बड़े पंडित थे, मुझे उनकी मर्यादा का पालन करना चाहिए न[१८०]। जमुना के इन्हीं आदर्शों एवं संस्कारों की छाप उसकी पुत्री सुभागी पर भी गहरी दृष्टिगत होती है। रामलाल में नारी के प्रति अत्याचार की भावना का निरूपण हुआ है। वह अत्यन्त क्रूर एवं निर्दयी है। कुल-मर्यादा के

नाम पर वह भगवंती को निर्दयता पूर्वक पीटता है जिसके परिणाम- स्वरूप भगवंती आत्म हत्या कर लेती है । कथाकार ने उसकी पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया है -- " राम लाल भगवन्ती को कमरे में बन्द कर के जूतों से मार रहा था , उसके दोनों हाथ की चूड़ियां फूट गई थीं । उसकी कलाइयों से खून बह रहा था । राम लाल की निर्मम मार से वह अपने घर में बन्द इस तरह तड़प कर रो रही थी, जैसे कसाई के कटघरे में गौ चिंग्घार रही हो[८१] ।

तहसीलदार कामता प्रसाद कामुक व्यक्ति है । वह अपनी पत्नी प्रभा को बेंत से इस लिए मारता है क्यों कि वह उसकी वासना-लोलुपता में बाधा डालती है[८२] । अपनी वासना-पूर्ति के लिए वह सुभागी को फांसना चाहता है । असहायावस्था में उसकी सहायता करने का ढोंग रच कर वह सुभागी के सतीत्व को भंग करना चाहता है किन्तु सुभागी ऐसा नहीं होने देती । क्रुद्ध हो कर तहसीलदार डाक्टर के द्वारा उसके बीमार पति को जहर दिलवा कर मरवा देता है । इतने पर भी अपनी इच्छापूर्ति न होते देख कर वह सुभागी को राम नगर छोड़ देने के लिए बाध्य करता है । वास्तव में तहसीलदार कामता प्रसाद समाज का वह विषैला सांप है जो प्रभा (सुभागी) जैसी निरीह नारियों के घर को उजाड़ देता है । वह विलासी पुरुष - समाज का प्रतीक है ।

लेखक ने पात्रों के अन्तरंग के उद्घाटन में दो-तीन स्थलों पर प्रतीकात्मक स्वप्न दिये हैं[८३] । वास्तव में स्वप्न प्रतीकात्मक होते ही हैं । ये हमारी दिनचर्या या जीवन की किसी मार्मिक घटना से सम्बद्ध होते हैं । यह स्वप्न - विश्लेषण पद्धति इस उपन्यास की प्रतीकात्मकता के अनुकूल एवं सार्थक है । रामानन्द तथा सुभागी की तात्कालिक मनोदशा को अभिव्यंजित करने के लिए कहीं-कहीं उद्धरण-पद्धति प्रयुक्त हुई है[८४] ।

"बया का घोंसला और साँप" उपन्यास की प्रकृति वर्णनात्मक है यही कारण है लेखक ने इसमें स्थान - स्थान पर उदात्त तथा मनमोहक प्राकृतिक वातावरण को प्रस्तुत किया है[१८५]। कहीं - कहीं वातावरण से प्रतीकात्मक अर्थ-संकेत मिल जाता है जो प्रसंग के पूर्णतया अनुकूल है[१८६]। ग्रामीण - जीवन के चित्रण में लेखक ने अंचल के उत्सव - त्योहारों, प्रथाओं धार्मिक रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों तथा देवी देवताओं को चित्रित किया है। इस दृष्टि से उपन्यासकार द्वारा किये गये सागरा मेले का वर्णन द्रष्टव्य है[१८७]। फाग एवं होली के त्योहारों पर गांवों में गाये जाने वाले सरस लोक गीतों को भी उपन्यास में स्थान दिया गया है[१८८]।

विवेच्य उपन्यास के कथोपकथन प्रसंग एवं पात्रों के अनुकूल हैं। इन कथोपकथनों से पात्रों के शील प्रकाशित हुआ है तथा कथा में गतिशीलता का संचार हुआ है। तालुकेदार के व्यवहारों की कटुता एवं आनन्द की कटुता-मधुरता उनके पारस्परिक संवादों के माध्यम से पूर्णतया अभिव्यंजित होती है[१८९]। ये संवाद देखने में तो छोटे हैं किन्तु इनमें पूर्ण प्रवहमानता है। इन संवादों की शैली उपन्यास के कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए सर्वथा उचित है।

ग्राम्य जीवन की झांकी, कस्बे की आत्मा का चित्रण तथा नागरिक जीवन का दृश्य प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने रूपक बांधा है जो आनन्द की मनःस्थिति के अनुकूल इन शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है -- "उसकी दृष्टि में गांव की आत्मा, उसकी संस्कृति एक ऐसी शकुन्तला है, जो कुलकन्या है, फिर भी शापित है, किसी की दुल्हन और प्रेमिका है, लेकिन उपेक्षित है। फिर भी उसका पथ जीवन है। मरी नहीं,

इसमें विश्वास, तपस्या और श्रद्धा है, मृत्यु की पराजय और जड़ता नहीं । ठीक इसके विरुद्ध दूसरी सीमा पर शहर की आत्मा और संस्कृति है - एक ऐसी स्वतंत्र कुमारी की भांति, जो अपने व्यक्तित्व में अपने को सम्पूर्ण समझती है । वह सब की है, सब उसके हैं, लेकिन कोई किसी का नहीं है । इस लिए उसमें विकास है, कहीं गतिरोध नहीं, सुख है, उपभोग है, लेकिन शान्ति नहीं । इन दोनों के बीच में है कस्बे की आत्मा, उसकी संस्कृति, यह चौके की रांड़ की तरह है - एक ऐसी जवान विधवा की तरह, जो बिना गौने गये हुए ही एकाएक रांड हो गई हो और उसके आगे - पीछे तमाम अंगुलियां उठ रही हों, फुस फुसाहट हो रही हो । उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है, क्योंकि उसका मुंह शहर की तरफ है और पीठ गांव की ओर[६०] ।"

सम्पूर्ण विवेचन के उपरान्त हम देखते हैं कि " बया का घोंसला और सांप " उपन्यास का एक मुखी - एक सूत्री कथा-विधान उसके कथ्य की प्रभावात्मक अभिव्यक्ति में पूर्णतया सफल है । इस उपन्यास का कथानक कथा के अन्तिम भाग में प्रारंभ हुआ है, और इस प्रयोग की सुविधा के लिए कथाकार ने उसे तीन प्रकरणों में विभाजित किया है । कथा के इस प्रकरण-विभाजन के परिणाम स्वरूप कथानक में कलात्मकता तथा पाठक के औत्सुक्य की वृद्धि हुई है । दूसरे " जिस तीव्र संवेदना को लेखक इस छोटे से उपन्यास में उभारना चाहता था, वह इस प्रयोग में और भी सघन और तीखी हो गई है । कथानक को उत्तर भाग में संवेदनात्मक चरम सीमा तक ले जा कर छोड़ दिया गया है[६१], और उसी तीव्र भावात्मक भूमिका पर सम्पूर्ण कहानी प्रतिपादित हो कर फिर उसी चरम बिन्दु पर आ जाती है[६२] । " आनन्द आंगन के अंधकार में एक कराहती-लंगड़ाती छायायें देखता है[६३], कहीं डोलती छायाओं के पीछे भागती - चिल्लाती और उनमें से एक को कुचलती भीड़ के दृश्य देखता है[६४], और कहीं बन्द आंखों के धुंधलके की "सतरंगी रेखाओं के बीच" उसी भागती सुभागी के बिखरे बालों को पीछे से कोई घसीटता दृष्टिगत होता है[६५]

समस्त उपन्यास पढ़ जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह छाया और कोई नहीं आनन्द के मन की वह विचार धारा है जो उपन्यास की समस्त घटनाओं का विश्लेषण कर रही है। आनन्द द्वारा देखी गई छायाएं निरीह निष्कलंक सुभागी और उसके सतीत्व पर आघात करने वाले तहसीलदार कामता प्रसाद की छायायें हैं। आनन्द के चरित्रांकन में लेखक का प्रगतिशील दृष्टिकोण भी उभरा है। वह सुभागी की पीड़ा को सार्थक स्वर सौंपता हुआ उसे सान्त्वना देता हुआ कहता है : " वे हमें न बदल सके, न मार सके, यही हमारा उन सबको जवाब है, प्रतिशोध है। और हमारा यही सात्विक प्रतिशोध उन्हें बदलने पर विवश करेगा। रोओ नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूं, जो बीत चुका, तुम्हें हमेशा उसकी घृणा थी, जो अभी बीता है, उसे भी बीत चुकने दो। इन सब को अपने पथ पर छोड़ कर उठो। हम आगे बढ़ें - एक नये जीवन में, एक नये संकल्प और भविष्य में[११६]। " सामाजिक विरोध के बीच वह सुभागी को अपनाता है। सामाजिक विधि-विधान का निषेध करने के उपरान्त भी आनन्द और सुभागी का सम्बन्ध उस व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का परिचय देता है जो ऐकान्तिक हो कर भी समाज निरपेक्ष नहीं, समाज सापेक्ष है।

विवेच्य उपन्यास में कथाकार ने सुभागी - जमुना की कथा को सामान्य अबला नारी की कथा के रूप में प्रस्तुत कर उसके सामाजिक प्रभाव को अक्षुण्ण बना दिया है। सुभागी जब अपने विगत जीवन के उस पुरैना गांव के कारुणिक अतीत को सोचती तो वह भयभीत बच्चे की भांति रामानंद के पास भाग जाती ब और कहती - " देखो मुझे अकेली छोड़ कर मत जाना "। रामानन्द मज़ाक करता - " सिकन्दर पुर कोई पुरैना गांव थोड़े ही है। " सुभागी तुरन्त उत्तर देती - " सब गांव एक ही तरह के होते हैं। किसी को

मुझे देख कर वहाँ के भी लोग जलते थे, यहाँ भी लोग जलते हैं। वहाँ भी लोग औरतों को कसाई की तरह मारते थे। थोड़ी सी गलती पर उन्हें कुआँ - नार ताकना पड़ता था, ठीक यही हालत यहाँ भी तो है। सुभागी के इन उलाहनों और दुश्चिन्ताओं का रामानन्द के पास कोई उत्तर न था [१९६]।" उपन्यास के अन्त में नायक आनन्द इसी अनुभव के आधार पर केवल एक दो गाँवों के सुधार या एक - दो व्यक्तियों से प्रतिशोध लेने को व्यर्थ बताता है और असहाय नारी की समस्या की व्यापकता एवं सम्पूर्ण समाज - व्यवस्था की विकृति की व्यंजना करते हुए उपन्यास के कथ्य को व्यापक धरातल पर पूर्णता प्रदान करता है : "रोओ नहीं सुभागी ! -------- मैं तुम्हारे एक - एक आँसू का प्रतिशोध ले सकता हूँ ------ लेकिन क्या इससे हमारी आत्मा को शान्ति मिल जायेगी ? हम पर किये गये अत्याचारों के घाव मिट जायेंगे ? पुरैना और सिकन्दर पुर अकेले ही गाँव तो नहीं हैं और इनके क्रूर - कठोर - संकुचित स्वार्थी बाशिन्दे और रामनगर के तहसीलदार तो अकेले विश्वास घाती नहीं, बल्कि यहाँ के सारे गाँव पुरैना और सिकन्दर पुर की तरह हैं - सब की आत्मायें विषाक्त हैं। राम नगर भी असंख्य हैं -------- और तहसीलदार भी ------- रोओ नहीं सुभागी -------- धैर्य रखो ------[१९८]।"

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि "बया का घोंसला और साँप" के कथानक में कहीं - कहीं पूर्व योजना के कारण आई हुई अस्वाभाविकता तथा चरित्रांकन के यत्किंचित दौर्बल्य के बावजूद भी कथानक की सरल एकान्विति, विपर्यस्त अनुक्रम तथा प्रसन्न प्रवाहमानता, ग्रामीण वातावरण का यथार्थ प्रतिरूपण तथा प्रसंगानुकूल संवादों की योजना से उपन्यास का कथ्य पूर्णतया प्रभावशाली रूप में व्यंजित होता है। इस उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक एवं कथ्य का बोधक है। जिसकी सफल अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने अनेक प्रस्तुतीकरण - शिल्प एवं शैलियों का आश्रय

लिया है । इन शिल्प - प्रणालियों से कथ्य को पूर्णता प्रदान करने में अद्भुत सफलता मिली है । प्रतीकात्मक शीर्षक के अनुरूप ही उपन्यास का अन्त भी प्रतीकात्मक स्वप्न में हुआ है । लेखक उपन्यास में जिस संवेदना की सृष्टि करना चाहता था उसमें सफलता प्राप्त हुई है । " सीमाओं के बावजूद पात्रों की रेखायें काफी स्पष्ट हैं । ताड़ के पेड़ पर बया के घोंसले जिनमें पक्षी न थे प्रतीकात्मक ढंग से समाज स्वंभान्य के अजगरों द्वारा बया जैसे निरीह एवं निष्कलंक सुभागी के सुहाग के लुटने का संकेत देते हैं[१९९] ।

फणीश्वर नाथ रेणु और " मैला आंचल "

प्रायः सभी आलोचकों ने फणीश्वर नाथ रेणु को निर्विवाद रूप से प्रेमचन्द परम्परा की सामाजिक चेतना का सशक्त उपन्यासकार स्वीकार किया है । प्रेमचन्द - परवर्ती उपन्यासकारों में रेणु जी ने निश्चय ही सामाजिक मूल्यों की पुष्टि कर प्रेमचन्द की सामाजिक चेतना को विकसित किया है । उनके उपन्यास कथ्य की दृष्टि से सामाजिक- आंचलिक हैं । उन्होंने स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद के ग्राम - जीवन का यथार्थ - चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक रूप से किया है जिसमें लेखक ने नुकीले एवं पैने व्यंग्यों, स्थानीय रंगों, लोक-गीतों और लोक - संस्कृतियों का भर पूर लाभ उठाया है । अंचल - विशेष का समग्र रूप में चित्रण ही रेणु को अभीष्ट है जिसके लिए उन्होंने चित्रात्मक शैली का आश्रय लिया है ।

" मैला आंचल " फणीश्वर नाथ रेणु का प्रथम आंचलिक उपन्यास है । स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद बिहार राज्य के पूर्णिया जिले में स्थित मेरीगंज नामक एक गाँव के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन का सामूहिक अंकन तथा मानवतावाद की स्थापना ही इस उपन्यास का कथ्य है ।

' मैला आंचल ' का कथानक है पूर्णिया । पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, जिसके एक ओर नेपाल है, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिमी बंगाल [२०] । पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव में तीन प्रमुख जातियाँ हैं -- कायस्थ, राजपूत और यादव, जिनमें एकता का अभाव है । गांव के अन्य लोग भी सुविधानुसार इन्हीं दलों में बंटे हुये हैं । कायस्थों के मुखिया विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक, राजपूतों के ठाकुर राम पाल सिंह और यादवों के खेलावन यादव हैं । मेरी गंज में मलेरिया केन्द्र की स्थापना होती है और डा० प्रशान्त कुमार मलेरिया के अनुसंधान के लिए आते हैं । बलदेव सुराजी गांव में राजनैतिक चेतना उद्बुद्ध करता है । लक्ष्मी कोठारिन, सूरदास तथा सेवादास की सेवा करती है । गांव के जमींदार विश्वनाथ प्रसाद बेटी कमला अविवाहित और अस्वस्थ है । डा० प्रशान्त कुमार व्याकुल हैं, मंगला देवी चरखा सेन्टर की संचालिका है, और कामरेड वासुदेव कम्युनिष्ट पार्टी का नेता है ; बलदेव तथा लक्ष्मी में परस्पर आकर्षण है जो अन्त में कहीं पलकर मठ में ही रहने लगता है । मंगला देवी की रुग्णावस्था में कालीचरण उसकी सेवा करता है जो प्रेम में परिवर्तित हो जाता है । सेवादास का शिष्य रामदास लक्ष्मी को पाने में असफल हो कर राम प्यारी नाम की चमारिन को मठ में जगह दे देता है, डाक्टर और कमला भी प्रेम-पाश में बंध जाते हैं । डा० प्रशान्त कुमार को कम्युनिष्ट होने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया जाता है तथा डाक्टर की सहपाठिन ममता उसे जेल से मुक्त कराती है । डाक्टर अपने नवजात शिशु के साथ कमला को अपना लेता है । बिहार में मंत्रि मंडल के एक भूमि-सुधार कानून की अफवाह सुन कर संथालों एवं ग्राम वासियों के मध्य संघर्ष हो जाता है जिसमें नये तहसीलदार हरगौरि सिंह की मृत्यु हो जाती है । इस प्रकार कितनी ही घटनायें उपन्यास में घटित होती हुई दृष्टिगत होती हैं फिर भी उपन्यास में कहानी का अभाव है ।

मेरी गंज से सम्बन्धित लोगों की कहानी स्वतंत्रता प्राप्ति से किञ्चित् पूर्व तथा महात्मा गांधी के दिवंगत होने तक के काल की कहानी है। यही काल - विशेष उपन्यास का नायक है। उपन्यास में कोई प्रमुख कथा नहीं है क्योंकि लेखक का उद्देश्य तो 'मैला आंचल' की ही एक कहानी कहना है।

'मैला आंचल' का कथ्य मेरी गंज गांव के माध्यम से भारतीय जन - जीवन की दुर्बलताओं अभावों, कमियों और भारतीय जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक स्थितियों को अभिव्यक्त कर मानवतावादी दृष्टि की स्थापना करना है। कथ्य को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति देने के लिये लेखक ने जो माध्यम अपनाया है वह शिल्प की नवीनता के फलस्वरूप सुन्दर स्थापत्य का नमूना है। इस उपन्यास की कथा दो भागों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में रोचकता और गठन है, किन्तु शनैः शनैः वह शैथिल्य की ओर उन्मुख हो गया है। कतिपय ग्रामीण उत्सवों, रीति-रिवाजों, धार्मिक आडम्बरों, राजनैतिक उथल - पुथल, सोशलिस्ट आन्दोलन, गाने- बजाने आदि के विस्तृत वर्णनों एवं नीरस अवांछित सन्दर्भों की भरमार से उपन्यास के आकार में वृद्धि हो गई है और कथा-शिल्प का सौष्ठव समाप्त हो गया है। द्वितीय खण्ड में डा० प्रशान्त कुमार और कमला के प्रसंग से कथा में गतिशीलता आ गई है तथा वह प्रथम खण्ड की अपेक्षा अधिक संतुलित तथा संयत हो गई है। डा० तथा कमली के मिलन से उपन्यास का अन्त सुन्दर तथा प्रभावोत्पादक बन गया है। नलिनी विलोचन शर्मा की मान्यता है कि यह सुसम्बद्ध स्थापत्य का उपन्यास है[२१]। यह एक दृश्यात्मक उपन्यास है जिसमें वर्णन न हो कर छोटे - छोटे दृश्य हैं इसी लिए उसमें बिखराव दृष्टिगोचर होता है। क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित वस्तु संगठन की दृष्टि इसमें नहीं है। आंचलिक उपन्यासों का कथ्य परिवेश - प्रधान होता है। परिवेशगत-चित्रण के माध्यम से ही कथ्य की आंचलिकता रचनात्मक-स्तर पर मूर्त होकर पाठकों के समक्ष उपस्थित होती है। यही कारण है 'मैला आंचल' में

अंचल विशेष का उसके परिवेश की प्रकृति - विकृति के साथ यथार्थ चित्रण किया गया है। इस में " आंचलिक परिवेश की अन्तर्विरोध पूर्ण सक्रियता विद्यमान है जिसमें अनेक प्रसंग , अनेक स्थितियाँ, उठती - गिरती जाती हैं, बिना परस्पर सम्बद्ध हुए बिखर जाती हैं या फिर प्रसंग और स्थितियां एक दूसरे पर चढ़ती हुई जुड़ती - कटती और परस्पर टकराती हुई जाती हैं। इस बिखराव को कलात्मक अर्थ में सार्थक बनाने में व्यंग्य की सर्जनात्मक शक्ति का भरपूर लाभ उठाया गया है। वस्तु और रूप का ढीला रखना, किसी भी ढंग से पेश करना इस उपन्यास की रचना - दृष्टि का अपरिहार्य अंग है। उपन्यास के सामान्य शिल्प - विरोधी रूप से संरचनात्मक विकास की दृष्टि से " मैला आंचल " एक विशिष्ट प्रयोग है। आंचलिक होने के बावजूद यह आधुनिक है। इसकी दृष्टि और संरचना में एक सम्बन्ध और सन्तुलन है[202]।

" मैला आंचल " में लेखक ने मेरी गंज के सामाजिक, राजनीतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथातथ्य चित्रण किया है। वह चित्रण इतना यथार्थ बन पड़ा है कि उपन्यासकार को लगता ही नहीं। उपन्यास का जीवन यथार्थ का जीवन है। ग्रामवासियों की दुरवस्था[203] तथा अंधविश्वास[204] का लेखक ने चित्रण किया है। उनके त्योहारों[205], मनोरंजनों[206] एवं अंधविश्वासों[207] को भी लेखक ने यथातथ्य रूपायित किया है। स्वराज्य- प्राप्ति हो जाने पर गांव का क्या रूप हो गया - इसका भी स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया गया है। मूढ़ एवं अशिक्षित ग्रामवासी स्वराज्य का अर्थ ही नहीं समझते। वे स्वराज्य प्राप्ति का विश्वास नहीं कर पाते क्योंकि " जोतसी जी " बताते हैं कि सिमरबानी में भी ऐसा हुआ था। ब्रिटिश शासन-काल में गांव के लोग चौकीदार की लाल पगड़ी देखते ही अपने घरों में घुस जाते थे, तो पुलिस और दरोगा को देख कर उनकी क्या स्थिति होती रही होगी यह नमक कानून - भंग की खबर में दरोगा के आने के प्रसंग में देखी जा सकती है[208]। स्वराज्य मिलने का उत्सव शहरों की भांति गांव में मनाया गया जिसका चित्रण उपन्यासकार ने ग्रामीणों के अनुरूप ही किया है। उनके कीर्तन तथा

गाने इन ग्रामीणों की नवीनता को स्पष्ट करते हैं -

' जाति से बढ़ियाँ आयेउ ।
भारत माता ।
कथि से अदल सुराज ,
कुलाबी दैतन को ।[209]

उपन्यासकार ने विभिन्न राजनैतिक दलों और उनके कार्य-कर्ताओं की दुर्बलताओं तथा वैमनस्य का यथार्थ रूप में चित्रण किया है । गांव में स्वतंत्रता - प्राप्ति से प्रसन्न हो कर जब ग्रामीण उत्सव मना रहे थे उसी समय ' कांग्रेस ' और ' सोशलिस्ट ' पार्टी का वैमनस्य भी चित्रित हुआ है[210] । गांव में गांधीवाद के पुजारी बालदेव के नेतृत्व में कांग्रेस-आन्दोलन तथा कालीचरण के नेतृत्व में सोशलिस्ट - आन्दोलन का चित्रण हुआ है जिसमें नेताओं के अधकचरे विवेक का पता चलता है । इसके चित्रण में लेखक की दृष्टि पूर्णतया तटस्थ है । बालदेव अपनी अज्ञानता वश अहिंसा के नाम पर अत्याचार का समर्थन[211] करता है जिससे यह आन्दोलन हास्यास्पद प्रतीत होने लगता है । सोशलिस्ट आन्दोलन कालीचरण की अज्ञानता से विफल हो जाता है । कालीचरण अपने साथियों के कारण डकैती में गिरफ्तार हो जाता है और सेक्रेटरी साहब को वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने के लिये जेल से भाग कर मिलने जाता है । किन्तु सेक्रेटरी साहब उस व्यक्ति की सर्वथा उपेक्षा[212] करते हैं जिसने सोशलिस्ट आन्दोलन को कांग्रेस अपेक्षा सफलतर बनाया । पार्टी सदैव पैसे वालों की होती है । कालीचरण जैसे निस्वार्थ व्यक्तियों की इनमें सर्वथा उपेक्षा होती है ।

ग्रामीण जीवन में व्याप्त विभिन्न वर्गों के लोगों की पारस्परिक स्पर्धा, डाह - डाट, लड़ाई - झगड़े, गांव में व्याप्त रोग एवं निर्धनता आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है जिनके कारण निम्नवर्ग का

का नैतिक पतन हो गया है। राज का मैनेजर, तहसीलदार आदि के किसानों पर अत्याचार, मठों का बाह्याडम्बर तथा आन्तरिक भोग-विलास, निम्न-वर्गीय स्त्रियों, लड़कियों के साथ उच्च जातिवालों के अनैतिक सम्बन्ध, ऊँचे घर की बहुओं के साथ उनके नौकरों के अवैध सम्बन्ध आदि के चित्रण को कथानक में स्थान दे कर रेणु ने ग्रामीण जीवन को मूर्त रूप प्रदान कर दिया है। उपन्यास के पात्रों की भाषा में लोक भाषा का प्रयोग[२१३] रखके लेखक ने 'मैला आंचल' की आंचलिकता और यथार्थता को और भी पुष्ट कर दिया है।

फणीश्वर नाथ रेणु की मानवतावादी दृष्टि के प्रतिनिधि पात्र के रूप में डाक्टर प्रशान्त कुमार तथा उसकी प्रेमिका ममता को देखा जा सकता है। डाक्टर लेखक का प्रवक्ता है। वह लोक कल्याण की कामना करता है, मानव-जीवन को नष्ट कर देने वाले प्राणघातक तथा भयंकर रोगों के मूलकारणों की जानकारी कर के नई दवा का आविष्कार करना चाहता है। रोग नष्ट हो जायेंगे, इन्सान स्वस्थ हो जायेगा[२१४]। रोगों की जानकारी हेतु उसने समीपस्थ पन्द्रह ग्रामों का परिचय प्राप्त किया है, भयातुर इंसानों को देखा है, बीमार और निराश लोगों की आंखों की भाषा समझने का प्रयत्न किया है[२१५]। डा० प्रशान्त कुमार ने धार्मिक और राजनीतिक कुचक्रों और सामाजिक रूढ़ियों में लिपटी गरीबी और जहालत को देखा है। वह ग्रामवासिनी का फूल भरा मैला आंचल देखना चाहता है तथा गांधी का प्रतीक बावनदास भी मानता है कि भारत माता जार-बेजार रो रही है[२१६]। रेणु इस विवेच्य उपन्यास में मेरीगंज के जन-जीवन के चित्रण के माध्यम से भारतीय - जीवन के हास्य एवं आंसुओं, गरीबी एवं बीमारियों को यथा-रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं किन्तु ममता पत्र के माध्यम से प्रशान्तकुमार को युद्ध-जनित पीड़ित मानवता से जोड़ देती है। वह आधुनिक सभ्यता की विभीषिका पर व्यंग्य व्यक्त करती है कि युद्ध के विभीषिका गैसों ने सारे समाज के मानवों को विकृत कर दिया है[२१७]। उपन्यासकार उपन्यास की मूल समस्या का समाधान करते हुए ममता और डाक्टर के मानवतावादी स्वर मिला कर कहता है--

"लैबोरेटरी । ------ विशाल प्रयोगशाला ऊँची चहार-दीवारियों में बंद प्रयोगशाला । --------- साम्राज्य लोभी शासकों की संगठित के रागों में वैज्ञानिकों के दल खोज कर रहे हैं, प्रयोग कर रहे हैं । ------ मारात्मक, विध्वंसक और सर्वनाश शक्तियों के सम्मिश्रण से एक ऐसे "बम" की रचना हो रही है जो सारी पृथ्वी को भस्मरूप में परिणत कर देगा -------- ऐटम" बम " कर रहा है । ------ मकड़ी के जाल की तरह ------- । चारों ओर एक महा अन्धकार । सब बाष्प । प्रकृति - पुरुष ---- अंड पिंड । मिट्टी और मनुष्य के शुभचिंतकों छोटी-सी टोली अँधेरे में टटोल रही है । अँधेरे में वे आपस में टकराते हैं । -----वेदान्त------भौतिकवाद साम्यवाद----- मानवतावाद । हिंसा से और प्रकृति रो रही है । व्याध के तीर से घायल हिरण-शावक-सी मानवता को पनाह कहां मिले ? यह अँधेरा नहीं रहेगा । मानवता के पुजारियों की सम्मिलित वाणी गूंजती है, पवित्र वाणी । उन्हें प्रकाश मिल गया है । ----- प्रेम और अहिंसा की साधना सफल हो चुकी है । फिर कैसा भय ? विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्तिशाली है ।"[२९८] इसी मानवीयता के निरूपण के लिये लेखक ने उपन्यास के अंत को खुला छोड़ने के बजाय बन्द कर दिया है ।

:: नागार्जुन कृत - बाबा बटेसर नाथ ::

नागार्जुन सशक्त जनवादी चेतना से युक्त प्रगतिशील उपन्यासकार हैं। उनकी औपन्यासिक कृतियों में व्याप्त जीवन - दर्शन समाजवादी चेतना से परिपक्व निबद्ध है। प्राय: उनके सभी उपन्यासों का मूल स्वर शोषण एवं वर्ग वैषम्य की समाप्ति कर समानता की स्थापना कर सब को विकास का समान अवसर प्रदान करना है। उनके उपन्यासों में ग्राम्य जीवन की रूढ़ियों एवं जर्जरित मान्यताओं से मुक्त कर नव समाजवादी ग्राम समाज की रचना करने के लिए क्रांतियों के सूत्रपात का प्रयत्न दृष्टिगत होता है। उनके सभी उपन्यासों के पात्रों का चयन भी जीवन के यथार्थ से किया गया है जो अन्त तक स्वाभाविक एवं यथार्थवादी बने रहते हैं। लेखक उन पर कहीं भी अपना आदर्शवाद या विचारधारा आरोपित नहीं करता।

'बाबा बटेसर नाथ' नागार्जुन का एक बहुचर्चित एवं प्रयोगवादी औपन्यासिक कृति है। इसमें एक वट वृक्ष का मानवीकरण किया गया है जो रूप-शिल्प की दृष्टि से नया प्रयोग है। इस उपन्यास का कथ्य सर्वहारा वर्ग पर होने वाले शोषण की समाप्ति कर नवीन सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने की प्रेरणा देना है, जहां स्वाधीनता, शांति और प्रगति हो।

इस उपन्यास में जैकिसुन के परदादा द्वारा लगाया हुआ वटवृक्ष या बाबा बटेसर नाथ जैकिसुन को सपना देता है, जिसमें वह अपने जीवन के साथ रूपउली ग्राम की चार पीढ़ियों की कथा को सामने रखता है, जो १९४२ तक की विभिन्न राजनैतिक दलों और जन आन्दोलन की कथा है। इस प्राचीन वटवृक्ष को टुनाई पाठक और जैनारायन जमींदार से खरीद कर कटवाना चाहते हैं, किन्तु किसानों को पुराने बरगद के प्रति स्वाभाविक ममता थी, और वे उसका काटा जाना अच्छा नहीं समझते। इसीलिए जैकिसुन और वे किसानों का संगठित मोर्चा बनाकर इस अन्याय का विरोध करते हैं। इसमें उन्हें कांग्रेसी एम० एल० ए० से कोई सहायता नहीं मिलती। जनवादी नौजवान संघ की जिला कमेटी के अध्यक्ष बाबू श्यामसुन्दर वकील उन्हें सहायता देते हैं। इस

संघर्ष में किसान अपनी सम्मिलित शक्ति के परिणाम स्वरूप विजयी होते हैं एवं स्वतंत्रता, शान्ति और प्रगति की पताका फहराते हैं। इस प्रकार बाबा बटेसर नाथ ही इस उपन्यास का मुख्य नायक है। बूढ़ा-बूढ़ा बटवृक्ष जैकिसुन एवं अन्य युवकों का पथ प्रदर्शन करता है तथा उनमें क्रांति की नई ज्वाला को उद्दीप्त करता है।

इस प्रकार इस कहानी के कथानक को फैला कर नागार्जुन ने 'बाबा बटेसर नाथ' को लघु उपन्यास का आकार प्रदान किया है जिसमें लेखक की कुशलता दृष्टव्य है। इस उपन्यास का मूलाधार वातावरण का सजीव चित्रण है। वातावरण के कारण ही कथानक का अनुबंध रह सका है तथा इस वातावरण में उपन्यास के पात्र खो जाते हैं एवं भारत का दो सौ वर्षों का इतिहास ही पात्र बन कर आता है। रूपउली ग्राम की कथा का पूर्वार्द्ध जो उसके विगत से सम्बन्धित है, बटवृक्ष द्वारा वर्णित है, शेष वर्तमान इतिहास जैकिसुन द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। बटवृक्ष अपनी कथा का प्रारंभ तुरन्त नहीं करता। जैकिसुन पावन बरगद के नीचे बैठता है तथा प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो जाता है, वह मानव रूप धारण कर आता है[219] और उसे अतीत की कथा सुनाता है[220]। वर्तमान का द्रष्टा तो वह है ही। इस लिए बटवृक्ष वर्तमान की कहानी सुना कर उपन्यास को नीरस नहीं बनाता। मृत्यु के पूर्व भी वह ग्रामवासियों को आशीर्वाद भी देता है[221]। इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास में बट बाबा के कारण माधुर्य और सरलता की छटा परिव्याप्त है।

लेखक की अभिव्यक्ति का ढंग परम आत्मीय एवं रमणीय है। रूपउली ग्राम अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश में प्रत्यक्ष सा हो उठा। वातावरण के चित्रण में लेखक अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। उसमें ठोस यथार्थ अंचल की संस्कृति, ग्राम, वन, उपवन, पूरब की ओर लहराने वाली फसलें, धान और पाट के लहलहाते पौधों से युक्त हरे-भरे खेत, लिपी-पुती स्वच्छ दीवारों वाले जगमगाते घर, ग्राम के बीच-बीच में बांसों की झुरमुटें

आम, इमली, जामुन, पाकड़ और पीपल के छिटपुट वृक्ष, बिल्कुल एकबांध, भैंस की पीठ पर बैठे गाते हुये चरवाहे, दाढ़ियाँ बेतरतीब लगाए घुटनों तक लम्बा अंगरखा, सिर पर बालों के सफेद गुच्छे, गले में नीले रंग के कांच के छोटे-छोटे दानों की माला की सजावट लटके, बाहों में, घुटनों पर, बाहों और पेट पर गुदना गुदाये हुये चौदह - चौदह, सोलह-सोलह वर्षों की छोकरियाँ, ग्रामीण मामले मुकदमें, जमींदार एवं उनके पिट्ठुओं की जोर-जबर्दस्ती एवं अत्याचार, दुनाई और जयनारायन पाठक जैसे स्वार्थी व्यक्तियों की कूट चातुरी, ग्रामीणों के बैर-विरोध, हास्य, रुदन, द्वन्द्व एवं आस्थायें तथा युवकों का वर्तमान दृष्टिकोण, उनके कल्पना एवं प्रेम आदि को उपन्यासकार ने मधुर वर्णनात्मक चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है जिससे रुपौली ग्राम का वातावरण यथार्थ रूप में सजीव उठा है। " बाबा बटेसर नाथ " में लेखक ने ग्रामीण अंध विश्वासों का प्रकार विशेष यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। गांव बारिश नहीं पड़ रही है। अतएव ग्रामवासियों द्वारा आयोजित अंधविश्वास मूलक पूजा का लेखक ने प्रसंग वश चित्रण किया है जो अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक बन पड़ा है -

ग्वालों, अहीरों और धानुकों ने यहीं चार दिनों तक गुसैंया महाराज का पूजन किया। दस भेड़े बलि चढ़ाई और दो जवान भाव खेलते खेलते लहूलुहान हो कर गिर पड़े थे, फिर भी राजा इन्दर खुश नहीं हुआ - नहीं हुआ। नहीं हुआ।। नहीं हुआ।।।

एक रात मर्द जब सो गये तो गांव भर की औरतें दस-पन्द्रह गुटों में बंट गईं। तालाब से मेढ़क पकड़ लाये गये उन्हें ओखलियों में मूसलों से कुचला गया। गानों में बादल को बुलाती रहीं। वे देर तक बुलाती रहीं, लेकिन मेघ नहीं आया - मेघ नहीं आया - नहीं आया।

बोध का परिणाम है । इस तरह परिस्थितियों से ऊपर उठने का संकल्प आधुनिक उपन्यासों में शायद ही कहीं दृष्टिगत हो । जीवन और समाज के प्रति व्यक्ति में उत्तरदायित्व की भावना जगाना लेखक की अनुपम देन है । अनन्त अकेला ऐसा नायक है जो हार नहीं मानता, छटपटाता नहीं और न ही उपन्यासकार ने कहीं उसके टूटने की ओर संकेत ही किया है। वह ऐसे साहसी युवक के रूप में पाठकों के सामने उभरता है जो कर्तव्य-बोध से प्रेरित होकर समाज, सरकार और ईश्वर सभी की चुनौती को स्वीकार कर, उनसे जूझने को तैयार है । उसे विश्वास है कि उसकी विजय होगी और उसके खंडहर बने घर में सुख-सपनों की चाँदनी फैलेगी ।

'चाँदनी के खंडहर' उपन्यास में लेखक आधुनिक जटिलताओं, विषमताओं एवं अभावों से ग्रस्त निम्न मध्यवर्ग का चित्र प्रस्तुत करना चाहता है जिसे उसने अनन्त कुमार के पारिवारिक चित्रण के माध्यम से अभिव्यक्त की है । उपन्यास की समस्या को व्यापक बनाने के लिए चित्रण के छोटे अनन्त का साक्षात्कार अन्य पात्रों से भी एक ही दिन के सीमित समय में हो जाता है । इन पात्रों से मिल कर उनकी स्थिति से अवगत होने पर अनन्त की वेदना में सघनता आयी है और उसका द्वन्द्व तीव्र हुआ है । अनन्त की वेदना को गहरी बनाने में उसके साथ मित्र जगदीश, मोहन, रघु आदि मध्यवर्गीय पात्रों की विवशता-जनित स्थितियों का चित्रण वातावरण का निर्माण करती है । जगदीश के शब्दों में उपन्यासकार ने पूँजीपतियों की शोषक मनोवृत्ति पर निर्मम प्रहार किया है- '' इन सब

में कथानक का फैलाव उस सीमा को पार कर गया है और यदि वह शिल्प की कसौटी के साथ पालन किया जाय तो यह आंचलिक उपन्यास नहीं ठहरता ।[३९५]

किन्तु भट्ट जी ने कथा-तत्त्व और चरित्रांकन में सजग होकर उपन्यास में संयोजित पात्रों को सागर और उसकी लहरों से दूर नहीं रहने दिया है । वे अपनी ही भाषा में अपने भाव अभिव्यक्त करते हैं । लेखक का बयान उनपर आरोपित नहीं है जिससे किसी सीमा तक उसकी आंचलिकता की रक्षा हुई है ।

सम्पूर्ण विवेचन के उपरान्त हम देखते हैं कि भट्ट जी बरसोवा के मछुओं के सामाजिक जीवन, उसमें व्याप्त विभिन्न संघर्ष, प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष और नास्तिकता एवं निम्नवर्गीय समाज की समस्या का भी यथार्थ चित्र खींचना चाहते थे इस दृष्टि से उपन्यास का प्रथम तीन खंड तो आंचलिक उपन्यास एवं सशक्त बन पड़ा है । उसके सभी पात्र इतने यथार्थवादी, स्वाभाविक एवं सप्राण हैं कि उनके वास्तविक जीवन के होने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है । लेखक की यथार्थवादी प्रवृत्ति के अनुरूप ही यथार्थवादी अभिव्यक्ति-शैली को अपनाने के कारण बरसोवा का जन-जीवन हमारे समक्ष मूर्तरूप में उपस्थित हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि हम बरसोवा के तट पर खड़े हैं, रत्ना, माणिक्य [illegible], [illegible] और [illegible] आदि पात्र हमारे सामने ही हैं, हम उन्हें प्रत्यक्ष देख रहे हैं । अन्तिम खंड में डॉ० पाण्डुरंग जैसे आदर्शवादी पात्र की सृष्टि करके लेखक ने कथानक को अस्वाभाविक मोड़ दे दिया है । डॉ० पाण्डुरंग जैसे व्यक्ति कल्पना-लोक में ही मिल सकते हैं, वस्तु जगत में नहीं । इस प्रकार 'सागर लहरें और मनुष्य' की अस्वाभाविक [illegible] [illegible] से विरोध आते हुए हैं और यथार्थ का क्रम टूट गया है । उपन्यास के समापन और मध्य के मूलभाव में विरोध हो जाने के कारण उसका समष्टि प्रभाव कुण्ठित

हरबंस और नीलिमा के विघटनपूर्ण जीवन-चित्रण के माध्यम से राकेश ने मुक्ति के लिए आधुनिक शिक्षित नारी की छटपटाहट एवं नपुंसक पीढ़ी में पुरुष के पराजितापूर्ण व्यवहारों की अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। नीलिमा स्वाधीनता चाहती है और हरबंस अपना अधिकार। दोनों कहीं समझौता नहीं कर पाते परिणामतः अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त हैं। हरबंस की मान्यता है कि नीलिमा की स्वाधीनता एवं उसका निजीपन वर्जित नहीं है। परिणामस्वरूप स्त्री की महानगर की एक बहुत भीड़ में एवं अपने दूर कस्बा के अपार प्रतिवेशियों के बीच रहकर भी वह वैयक्तिक स्तर पर अकेली पड़ जाती है तथा उसके जीवन में रिक्तता की अनुभूति गहन हो जाती है। यह आधुनिक शिक्षित नारी स्वतंत्रता की खोज में निरन्तर भटकती रहती है। एक ओर उसकी अपनी आकांक्षाएँ एवं सपने हैं, दूसरी ओर मानवीय सम्बन्धों की शून्यता एवं स्नेहशीलता का अभाव है, जिनमें बराबर टकराहट बनी रहती है। किन्तु नारी की कुछ अपनी शारीरिक विवशता होती है एवं आज भी समाज में पुरुष का अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार अक्षुण्ण है जिससे पुरुष के सामने प्रतिद्वन्द्विता में उसे हार माननी पड़ती है। इसीलिए नीलिमा अन्ततोगत्वा हरबंस के सम्मुख विवश होकर आत्मसमर्पण करती है। पति-पत्नी के बीच के अन्तर्द्वन्द्व ने उन्हें अपने-अपने उद्देश्य में सफल नहीं होने दिया। अन्त तक महत्वाकांक्षी पति अपना उपन्यास पूर्ण करने में असफल रहा और पत्नी भी स्वच्छंद होकर अपने गुणों का विकास नहीं कर पायी।

'अँधेरे बन्द कमरे' के कथानक की पृष्ठभूमि दिल्ली है, जो आज बार-बार बसी और उजड़ी। लेखक ने यहाँ के जनजीवन, सांस्कृतिक जीवन एवं वातावरण के आडम्बरों के ऊपरी बाह्य आवरण का पर्दाफाश

करते हुए आधुनिक कृत्रिम परिस्थितियों में व्यक्ति के जिये जाने वाले जीवन का चित्रण किया है, जिसमें वह कोई अपेक्षा नहीं चाहते हुए भी नहीं कर सकता। आज जो सांस्कृतिक आदर्शों के नाम पर सामाजिक पार्टी को प्रश्रय मिल रहा है लेखक ने उसे पूर्णतया बेनकाब कर दिया है। दिल्ली की अट्टालिकाओं में कोट-पतलून पहने अजगर की भाँति बैठे हुए हैं और आधुनिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए लालायित नारी सांस्कृतिक आदर्शों के नाम पर इन अकर्मण्य पुरुषों के पास जाकर अपना सतीत्व नष्ट कर रही है, इसका सफल चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। दिल्ली की शिक्षित नारी प्रतिभाओं का शिकार हो रही है। उनकी यह स्थिति है कि उनमें से किसी दूल्हा भी नहीं पूछते। नारियों को ये कैसे अपने चंगुल में फँसाते हैं, कथाकार ने उसका बहुत यथार्थ अंकन किया है।

इस प्रकार मोहन राकेश ने एक व्यापक कैनवास पर आधुनिक जीवन की जटिलताओं का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास के सभी पात्र जीवन के यथार्थ से ग्रहण किये गये हैं जो आधुनिकता के इस दौर में मानवीय सम्बन्धों की अभिव्यक्ति करते हैं। हरबंस शुक्ला, मधुसूदन शुक्ला, हरबंस-नीलिमा, मधुसूदन-सुषमा के आपसी सम्बन्धों के चित्रण के माध्यम से आधुनिक जीवन की जटिलता पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। ये पात्र आज के नगर-बोध के परिणामस्वरूप जीवन में व्याप्त रीतेपन को उजागर करते हैं।

'अँधेरे बन्द कमरे' उपन्यास के सम्बन्ध में एक आलोचक का यह कथन सत्य है कि 'इस उपन्यास का शीर्षक' अँधेरे बन्द कमरे'

परिवार के टूटने की गाथा ही प्रमुख है । लेकिन जब शेखर भाग कर इन्दौर और फिर बनारस जाता है तो प्रायः पूर्व कथानक में वर्णित कड़ी की कथा से उसका सूत्र विच्छिन्न सा प्रतीत होता है । इस बिखराहट से बचाव हेतु लेखक शेखर को पुनः कंडी की ओर प्रत्यावर्तित करता है साथ ही पूर्व-पथ में बनारस से 'शंखनाद' की प्रति भेज कर असम्बद्ध कथा को जोड़ता है । 'शंखनाद' में प्रति सप्ताह में छपने वाले समाचारों से कड़ी के लोगों में चेतना और हलचल उत्पन्न होने लगती है । फिर सम्पूर्ण कथा-वस्तु शेखर की मुख्य कथा से सम्बन्धित होने के कारण आद्योपान्त सिलसिलेवार प्रतीत होती है । 'पूर्व-पथ' में देवी सिंह आखिर शेखर के लिखे हुए पत्र को खोल कर पढ़ता है । उसे विश्वास नहीं होता कि उसके 'गुरु जी शेखर बाबू ? जो छिना पूछे – तुम्हें एक दिन बनारस चले गये थे लौट आ रहे हैं । ...... और उसके सामने बीस से पच्चीस वर्ष पूर्व के 'गुरु जी' मूर्त हो उठे'[३७४] । अन्त में शेष पथ लेकर बीस से पच्चीस वर्ष की कथा को जोड़कर कथाकार ने उसमें सम्बद्धता और कसाव लाने का प्रयास किया है । शेष पथ में बीच के छूटे हुए कथानक को पूर्व-पथ और उत्तर-पथ से जोड़कर अन्विति परिलक्षित किया है । इस युक्ति के प्रयोग से उपन्यास का कथानक पुराना होने पर भी नया सा दिखायी देता है । नेमिचन्द्र जैन का कथन है —

"किन्तु इसके शिल्प की विशेषता उसकी सरलता में है, किसी खास प्रयोगात्मकता में नहीं । उसके वर्णनों में कथा के सामान्य सूत्रों में प्रवाह है, निरंतरता है और बीच बीच में तीव्र सघनता भी ।[३७५]"

डॉ० रांगेय राघव : 'पतझर'

डॉ० रांगेय राघव का हिन्दी उपन्यासकारों में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अनेक सामाजिक, समाजवादी, ऐतिहासिक एवं जीवन-चरितात्मक उपन्यासों की रचना की है। रांगेय राघव मानव-जीवन के यथार्थ-रूप को प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में मानव के दुःख-दैन्य एवं कुंठाओं के अगणित चित्र विद्यमान है। राजनीति का चित्रण करते हुए उन्होंने अपनी औपन्यासिक कृतियों में शासन की साम्राज्यवादी प्रणाली की निन्दा एवं समाजवादी प्रणाली की प्रशंसा किया है। वह प्रगतिवादी भावना से प्रेरित कथाकार है जो उन्हें मानवतावादी पक्ष की ओर उन्मुख किये हुए है।

ऐतिहासिक एवं सामाजिक उपन्यासों की परम्परा से हटकर लिखा हुआ 'पतझर' रांगेय राघव का एक नई तथा [illegible] मनो-विश्लेषणात्मक उपन्यास है। युगों की तरह आज समाज में भी पतझर की स्थिति आ गयी है। प्राचीन रूढ़ियों एवं अमर्यादित परम्पराओं के पीले पड़े पत्ते समाज रूपी वृक्ष से गिर रहे हैं तथा नये पत्तों के रूप में उसमें नये विचारों को लेकर नयी पीढ़ी उग रही है। यही इस उपन्यास का कथ्य है जिसको कथाकार ने प्रेम और विवाह की समस्या के द्वारा अभिव्यक्त किया है। लेखक ने इस उपन्यास में आधुनिक पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियों के परस्पर प्रेम तथा सामाजिक एवं पारिवारिक मान्यताओं के साथ

है, वह पूर्णतया अविश्वसनीय हो जाता है। अलौकिक एवं अविश्वसनीय घटनाओं से उपन्यास बोझिल हो गया है। असम्भव घटनाएं कथा की प्रतीति एवं यथार्थ की पूर्णतः उपेक्षा कर दिखा देती हैं। चन्द्रलेखा का आकाश-मार्ग से उड़ना, गुरु गोरखनाथ और विद्युत भैरवी का सम्वाद सुनने जैसी घटनाएं अस्वाभाविक हैं। इस प्रकार, इस उपन्यास में कथारस का ह्रास दृष्टिगत होता है जो आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से भिन्न प्रकृति एवं कोटि का है। कथा में आद्यन्त वस्तु-शिथिलता बराबर रही है — कथा की बुनावट कार्य-प्रवाह पर आधारित नहीं है। यह ऊबड़-खाबड़ स्थलों पर प्रवाहित होने वाली उस सरिता के समान दृष्टिगत होती है जिसकी दशा पूर्णतया अनिश्चित एवं संशय-युक्त है। कथा की प्रमाणिकता की चिन्ता कथाकार को पहले ही थी। उन्होंने कथामुख में स्पष्ट कहा है कि आजकल के लोग इन बातों पर विश्वास नहीं करते और उनकी कथा सत्यता की दृष्टि से नहीं देखी जायेगी[३५५]। यही कारण है कि लेखक ने अस्वाभाविक और असम्भाव्य घटनाओं को मनोवैज्ञानिक धरातल पर स्थापित करके, सम्भाव्य और स्वाभाविक बनाने का प्रयास किया है।

चन्द्रलेखा का चरित्रोद्घाटन उपन्यास का केन्द्र-बिन्दु है। इसलिए दूसरे की घटनाएं चन्द्रलेखा से अधिक सम्बद्ध नहीं की गयी हैं। उपन्यास की धारा — कोटियों रस और युद्ध की ओर प्रवाहित हुआ है इसलिए इन दो दिशाओं की ओर बढ़ने वाली घटनाओं को रचना शास्त्रज्ञ ने बलात जोड़ा है। औपन्यासिक घटनाओं, छोटी-छोटी कथाओं एवं वार्ताओं के अतिरिक्त कथाकार ने वस्तु-अन्विति की रक्षा करने की चेष्टा की है फिर भी उसे पूर्णतया सफलता नहीं मिली है।

को देखा जा सकता है ।[३८५] 'बेकार' लघु उपन्यास है जिसे रचाव एवं सर्जनात्मक परिकल्पना की एक तरह के थोरी से आघात पहुंचा है । पात्रों के चरित्रांकन में कोई गहराई नहीं है । स्वप्न के माध्यम से परमजीत की कंठिता पूर्ण लेखिका ने उपन्यास के अन्त में जो मौत के तकलाफ बाट उतार दिया है । नायक के मृत्यु की यह घटना जीवन की पूरी संगति में नहीं उभारी गयी है क्योंकि अविश्वसनीय और आरोपित लगती है । इस उपन्यास की रचना - प्रक्रिया के संबंध में डॉ० इन्द्रनाथ मदान का यह कथन द्रष्टव्य है — इस उपन्यास की संरचना में आधुनिकता की प्रक्रिया धीरे - धीरे उभरती है । परमजीत यकीनन अकेला है, संजीवनी का आकर्षण भी अकेला है; लेकिन उसके छूकर वह अकेला नहीं है। परमजीत के मन में कुंआरेपन की धारणा उसके जीवन - दिशा को बदल देती है। वह संजीवनी से टूट कर या कट कर अपनी नियति को भोगता है । इसलिए शायद पात्र का नाम संजीवनी है । वह औसत पात्र और औसत बाप तो बन जाता है; लेकिन अपनी पहचान को खोता है । इसमें आधुनिकता की प्रक्रिया यहीं तक तो जाती है; लेकिन उपन्यास का अन्त, जिसे परमजीत के स्वप्न में दिखाया गया है, इस प्रक्रिया को ठप कर देता है । यह उपन्यास से निकलता नहीं है, इस पर आरोपित जान पड़ता है।"[३८६] अतः स्पष्ट है कि यह उपन्यास अन्त की दृष्टि से भी कमजोर एवं अस्वाभाविक है । कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि 'बेकार' उपन्यास में ममता कालिया ने नवीन कथ्य की प्रकृति के अनुरूप नवीन शिल्प की अवधारणा में असफल रहीं हैं । कथ्य और उसकी अभिव्यक्ति - शैली में सामंजस्य न होने के कारण असामर्थ्य और पूर्वाग्रह के शिकंजी में पड़ी रूचि चीत्कार करती हुई प्रतीत होती है ।

१- रांगेय राघव - घरौंदे, वृन्दावन लाल वर्मा - अचल मेरा कोई, भगवती प्रसाद वाजपेयी - पिपासा, यशपाल - पार्टी कामरेड, दादा कामरेड, देशद्रोही, भगवतीचरण वर्मा - टेढ़े-मेढ़े रास्ते।

२- अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी, इलाचन्द्र जोशी - प्रेत और छाया, राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई।

३- अज्ञेयकृत 'शेखर : एक जीवनी' के नायक शेखर का उसके सहपाठी कुमार के प्रति आकर्षण, राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई' की नायिका लेस्बियन मनोवृत्ति से ग्रस्त है।

४- रांगेय राघव - घरौंदे - अभिजात वर्ग की स्थिति का चित्रण - सेक्स के माध्यम से। अज्ञेय - सितारों का खेल - लता के माध्यम से मानवीय मूल्यों के प्रति नया दृष्टिकोण। भगवती प्रसाद वाजपेयी - पिपासा - अवैध प्रेमसम्बन्धी लेखक की पक्षधरता। इलाचन्द्र जोशी - संन्यासी - नन्दकिशोर तथा लता की आस्थाएं। यशपाल - दिव्या - दिव्या की विचारधारा व मारिश का जीवन के प्रति दृष्टिकोण। भगवतीचरण वर्मा - तीन वर्ष - रमेश की नारी सम्बन्धी धारणा। अज्ञेय - नदी के द्वीप - रेखा का जीवन-दर्शन।

५- ई० एम० फार्स्टर - ऐस्पेक्ट्स ऑव द नावेल, पृ०३६

६- विनोद शंकर व्यास - उपन्यास कला, पृ०१४९

७- ग्यारह सपनों का देश - मानस का चरित्र विभिन्न लेखकों ने अपने अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है।

८- शेखर : एक जीवनी, टूटती इकाइयाँ व सूरजमुखी अंधेरे के।

९- मानस का हंस, ग्यारह सपनों का देश, एक बैंच मुस्कान, अन्तराल।

१०- अज्ञेय — शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप । लक्ष्मीनारायण लाल - रूपाजीवा कृष्णा सोबती — सूरजमुखी अंधेरे के । राजेन्द्र यादव — सारा आकाश । भगवती चरण वर्मा - सबहि नचावत राम गोसाईं । भीष्म साहनी - अन्तराल आदि

११- रमेश बक्षी — अठारह सूरज के पौधे । प्रभाकर माचवे — परन्तु । भगवती प्रसाद वाजपेयी — चलते - चलते । राजेन्द्र यादव — शह और मात । अज्ञेय — नदी के द्वीप । अमृत लाल नागर — बूंद और समुद्र ।

१२- अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी । फणीश्वरनाथ रेणु — परती : परिकथा । सर्वेश्वरदयाल सक्सेना — सोया हुआ जल । रमेश बक्षी — चलता हुआ लावा । कृष्णा सोबती — सूरजमुखी अंधेरे के ।

१३- नरेश मेहता — यह पथ बन्धु था, धूमकेतु : एक श्रुति, नदी यशस्वी है ।

१४- अमृत लाल नागर — सेठ बांके मल । शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' — बहती गंगा । लक्ष्मीकान्त वर्मा — खाली कुर्सी की आत्मा ।

१५- अमृत लाल नागर — अमृत और विष ।

१६- नरेश मेहता — दो एकान्त, प्रथम फाल्गुन । भीष्म साहनी — अन्तराल । रांगेय राघव - आखिरी आवाज ।

१७- मैला आंचल, सबहि नचावत राम गोसाईं ।

१८- अठारह सूरज के पौधे, मानस का हंस, अन्तराल, शेखर: एक जीवनी, सूरजमुखी अंधेरे के ।

१९- सोया हुआ जल, सेठ बांके मल, उखड़े हुए लोग, चांदनी के खंडहर, सूरज का सातवां घोड़ा, डूबते मस्तूल, चार बेटे, सफेद मेमने, काठ का उल्लू और कबूतर, शहर में घूमता आइना और वे दिन ।

२०- रांगेय राघव — आखिरी आवाज, नरेश मेहता - दो एकान्त ।

२१- भगवतीचरण वर्मा - भूले बिसरे चित्र, सबहि नचावत राम गोसाईं ।

२२- परती : परिकथा , मैला आंचल , कुछ बिखरे चित्र , पद पद बन्धु भी ,
जुगल बन्दी ।

२३- शेखर : एक जीवनी , चलते - चलते , परन्तु ... ।

२४- " A revolution in sensibility demands new technique when traditonal ways of knowing the world collapse and truditional forms of expression are invalidated."
Litz Awalt The art of James Joyce (1961) p. 53.
" If he has something to say that has not been said before, it is very unlikely that he will find, ready for use, exactly the right form and content in step."
John W.: Essays on literature and ideas (1963) p. 3.

२५- आलोचना वर्ष २२ नवांक २६ अक्तूबर - दिसम्बर १९७३ पृ० ३६

२६- " The well made book is ....in which the matter in all used up in the form, in which the form expressed all the matter. "
Percy Lubbock: The Craft of fiction -p.40

२७- डॉ० सुरेश सिन्हा - हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास , पृ०२४४

२८- जैनेन्द्र कुमार - साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० १३३

२९- वही , पृ० १६३

३०- नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक हिन्दी साहित्य , पृ० १९०

३१- सुनीता - प्रस्तावना ।

३२- वही , पृ० १४

३३- वही , पृ० ९

३४- ओम प्रकाश शर्मा (सम्पादक) - आधुनिक उपन्यास , पृ० १४८

३५- डॉ० देवराज उपाध्याय - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० १४०

३६- सुनीता , पृ० १३५

३७- वही , पृ० १३६-३७

३८- जैनेन्द्र कुमार - सुनीता, पृ० १२६
३९- वही, पृ० १८७
४०- डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल - आलोचना संख्या १३ पृ० १५८-५९
४१- त्याग-पत्र, पृ० ६०
४२- वही, पृ० ३८
४३- वही, पृ० ७५
४४- डॉ० प्रेम भटनागर - हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य, पृ० २४२
४५- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १९९
४६- जैनेन्द्र कुमार - त्याग-पत्र, पृ० १ व २
४७- वही, पृ० ९-११
४८- वही, पृ० ९
४९- वही, पृ० १०-११
५०- वही, पृ० ६२
५१- वही, पृ० ७३
५२- नयी धारा - फरवरी-मार्च १९६६ पृ० ११५
५३- आलोचना संख्या २० पृ० ३५-३६
५४- चित्रलेखा - उपन्यासकार की पूर्वकथा : भूमिका से उद्धरित
५५- सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास, पृ० ९७-९८
५६- चित्रलेखा, पृ० ३२, ३३, ३४, ३५, ८६ और ८७
५७- वही, पृ० ९
५८- वही, पृ० ९
५९- वही, पृ० २६
६०- वही, पृ० २६, २७, ६३
६१- वही, पृ० ३२७, ३२९
६२- वही, पृ० ३२
६३- वही, पृ० ५९
६४- वही, पृ० १६९
६५- वही, पृ० ८६
६६- वही, पृ० १८०-८१

६७- चित्रलेखा , पृ०१८७
६८- वही , पृ०१८१
६९- वही , पृ०१८१
७०- वही , पृ०१८२
७१- वही , पृ०८६
७२- प्रकाशचन्द्र गुप्त – नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि , पृ०१६५
७३- चित्रलेखा , पृ०१८२
७४- डॉ० चन्द्रनाथ मदान – हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि , पृ०३५
७५- वही , पृ०३७
७६- नया धारा – फरवरी मार्च १९६६ पृ०११८
७७- डॉ० सुषमा धवन – हिन्दी उपन्यास , पृ०११९
७८- डॉ० चन्द्रनाथ मदान – उपन्यासकार अज्ञेय , पृ०१७-१८
७९- गिरती दीवारें , पृ० ७०८
८०- वही , पृ० ४८८-८९
८१- वही , पृ०४७,८१,७१,११४,१६९,२०२,२१०,२१४,३३१,४६५,६८८,५१८ और ६१०
८२- वही , पृ०२१०
८३- डॉ० चन्द्रनाथ मदान – हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि , पृ०३६
८४- गिरती दीवारें , पृ०१४५,१४८
८५- वही , पृ०३६८-६९
८६- अज्ञेय – आत्मनेपद , पृ०६७
८७- वही , पृ० ६७
८८- डॉ० चन्द्रनाथ मदान – हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि , पृ०२९
८९- शेखर : एक जीवनी , पांचवाँ संस्करण , पृ०५१
९०- '' शेखर साधारण नहीं था वह अपने पिता का उपासक था । ''
(शेखर : एक जीवनी,भाग I पृ० १२७)
९१ - Jastrow: Frued, His dream and Sex Theorties, p. 207

९२ - शेखर : एक जीवनी, भाग 1 पृ०८२

९३ - शेखर : एक जीवनी, भाग १ पृ० २२
९४ - डॉ० देवराज उपाध्याय - आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० २६०
९५ - शेखर : एक जीवनी, भाग १ पृ० २०६
९६ - वही, पृ० ५६ । ९७ - वही, पृ० ५०
९८ - वही, पृ० ५२ । ९९ - वही, पृ० ५४-५५
१०० - वही, पृ० ५५ । १०१ - वही, पृ० ६४-६५
१०२ - डॉ० इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि, पृ० ३१
१०३ - शेखर: एक जीवनी, भाग १ पृ० ५१ । १०४ - वही, पृ० ५१-५२
१०५ - वही, पृ० ८३
१०६ - डॉ० बेचन - आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ० १४३
१०७ - शेखर : एक जीवनी, भाग १ पृ० ३३ । १०८ - वही, पृ० २४१
१०९ - वही, पृ० १०० । ११० - वही, पृ० ५८
१११ - वही, पृ० ३५
११२ - डॉ० इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि, पृ० ३२
११३ - शेखर : एक जीवनी, भाग १ पृ० १५-१६, २३-२४ आदि।
११४ - वही, पृ० ५१-५२ । ११५ - शेखर : एक जीवनी, द्वितीय भाग पृ० १०९
११६ - वही, पृ० ८० । ११७ - शेखर : एक जीवनी, प्र० भाग पृ० ३६, ४१
११८ - वही दूसरा भाग, पृ० १६०, २४१-४२ / ११९ - वही, पृ० २४१, २४२
१२० - वही, पृ० ३४-३५ ।
१२१ - डॉ० इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि, पृ० ३२
१२२ - डॉ० प्र० ना० टंडन - हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास, पृ० ३६८-६९
१२३ - डॉ० इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि, पृ० ३३
१२४ - मृगनयनी, पृ० १ । १२५ - वही, पृ० ३
१२६ - वही, पृ० ३८४ । १२७ - वही, पृ० १
१२८ - वही, पृ० ४६, ७०-२, ७६, १११, २६२-३
१२९ - वही, पृ० १६६-७०, २४६, ३६१-२
१३० - वही, पृ० ४०७ । १३१ - वही, पृ० ८१

१३२- मृगनयनी, पृ० ४३,५९,११०,१६१,२१२,२६४,३६५,३६८,३८०,४०५,४०६

१३३- वही, पृ० ३७९ । १३४ - वही, पृ० ४१७

१३५- वही, पृ० १५३ । १३६ - वही, पृ० २१५

१३७ - वही, पृ० २०९ । १३८ - वही, पृ० २६१

१३९ - वही, पृ० १९२ । १४० - वही, पृ० १६८

१४१ - वही, पृ० २४८ । १४२ - वही, पृ० २४६

१४३ - वही, पृ० २८७ । १४४ - वही, पृ० ४२२

१४५- वही, पृ० ४४० । १४६ - वही, पृ० ४८७

१४७- डॉ० बच्चन सिंह —मध्यवर्गीय वस्तुसत्य का प्रश्न, आलोचना १२ पृ० १३७

१४८- डॉ० देवराज — साहित्य चिंता, पृ० ९०

१४९- सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास, पृ० २५४

१५० - पथ की खोज, पृ० २४८-४९ । १५१- वही, पृ० ३६६

१५२ - वही, पृ० ३६५ । १५३ - वही, पृ० ३६६

१५४ - वही, पृ० ३८०-८१ ।

१५५ - पथ की खोज(स्वप्न और जागरण) पृ० ३६३

१५६ - पथ की खोज, पृ० ४१९ । १५७ - वही, पृ० ३८३

१५८ - नई धारा : [illegible] १९६६ पृ०

१५९- सूरज का सातवाँ घोड़ा - निवेदन पृ० ७-८ । १६० - वही, पृ० ९

१६१- वही, पृ० ११३ । १६२ - वही, पृ० ११३

१६३- वही, पृ० ११४ । १६४- वही, अज्ञेय की भूमिका से

१६५- वही, पृ० ।

१६६- सूरज का सातवाँ घोड़ा, पृ० ३३,६९,७०,१०६,१०९,११७

१६७- वही, पृ० २७,२९,३०,३३,४८

१६८- वही, पृ० ३२,६१,६२,६५,६७,६९,७०

१६९- वही, पृ० १००,१०२,१०३,१०५,१०६,१०७,१०८,११७

१७० - हिन्दी उपन्यास : एक नयी दृष्टि - इन्द्रनाथ मदान, पृ० ४४

१६१- सूरज का सातवाँ घोड़ा, पृ० १९, २०, २१, २२, १२६

१६२- बया का घोंसला और साँप, पृ० १६८ । १६३- वही, पृ० १३६

१६४- वही, पृ० १३४ । १६५- वही, पृ० ११४-१६

१६६- वही, पृ० १६०, १६६-६८ । १६७- वही, पृ० १३१

१६८- वही, पृ० १६४ । [illegible]

१६९- आज, साहित्य विशेषांक १९५६ पृ० १२

१८०- बया का घोंसला और साँप, पृ० ८४ । १८१ - वही, पृ० ६५

१८२- वही, पृ० २४ । १८३ - वही, पृ० १३९, १०६, १६५

१८४- वही, पृ० १२९-३० । १८५ - वही, पृ० ९९

१८६- वही, पृ० १९२ । १८७ - वही, पृ० ८८-९४

१८८- वही, पृ० ७३, ७७, १२६ । १८९ - वही, पृ० १८०-८१

१९० - वही, पृ० ३८-३९

१९१ - वही, पृ० ४४ पर चित्रित आनन्द के तथा अन्त: संघर्ष का प्रसंग द्रष्टव्य है ।

१९२- रघुवीर, आलोचना संख्या ८ पृ० १०८-९

१९३ - बया का घोंसला और साँप पृ० २१, ३९, ४४ । १९४ - वही, पृ० २६

१९५- वही पृ० १७५ । १९६ - वही, पृ० १९३

१९७- वही पृ० ९८ । १९८ - वही पृ० १९३

१९९- श्री नारायण श्रीवास्तव — हिन्दी उपन्यास, पृ० ४१०

२००- मैला आँचल : भूमिका

२०१ - आलोचना १५ : पृ० १०६

२०२ - आधुनिक हिन्दी उपन्यास - सम्पादक नरेन्द्र मोहन, पृ० ५-६

२०३- मैला आँचल , पृ० ११,२१, २६४ ,२६५ आदि

२०४- वही , पृ० ५२, १२२ , १३३

२०५- वही , पृ० १५६-१६०

२०६- वही , पृ० ८६-७, ६६-६ । २०७ - वही , पृ० २४,१२२, १२४

२०८- वही , पृ० ४७ । २०९- वही , पृ० २८२

, । २१० - वही , पृ० २८४

२११ - वही , पृ० १७,२४६,२६१,२६७,२६१ । २१२- वही , पृ० ३५१

२१३- वही , पृ० २२-३,३५-६,३७-८,५८ । २१४ - वही , पृ० १८१

२१५- वही , पृ० १८८ । २१६- वही , पृ० १७५

२१७- वही , पृ० २०० ।

२१८- फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल , पृ० ४०७-४०८

२१९ बाबा बटेसरनाथ , पृ० ५ । २२० - वही , पृ० ६,३०

२२१- वही , पृ० १४६ । २२२ - वही , पृ० ४६-४७

२२३- वही , पृ० ४२-४३ । २२४ - वही , पृ० १४६

२२५- वही , पृ० ८ ।

२२६- चाँदनी के खंडहर , पृ० ११२-१३ । २२७- वही , पृ० ११३-१५

२२८- वही , पृ० १०८-११ । २२९- वही , पृ० १०५-६

२३०- वही , पृ० ११६-१७ । २३१ - वही , पृ० १०६-७

२३२- वही , पृ० ११८-१६

२३३- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि -डॉ० सत्यपाल चुघ , पृ० ८८६

२३४- चाँदनी के खंडहर , पृ० ३२ । २३५- वही , पृ० ३२

२३६- वही , पृ० ३४ । २३७- वही , पृ० ३६

२३८- वही , पृ० ३७ । २३९- वही , पृ० ४३

२४०- वही , पृ० ४२ । २४१- वही , पृ० ३६

२४२- वही , पृ० ६५ । २४३- वही , पृ० ७३

२४४- वही , पृ० ११५ । २४५- वही , पृ० ४२

२४६- वही , पृ० १२१ । २४७- वही , पृ० १२१

२४८- वही , पृ० १२६ ।

२४९- चाँदनी के खण्डहर , पृ० १२६ ।

२५०- वही , पृ० ७४-७५ । २५१- वही , पृ० ६७

२५२- वही , पृ० ८६ । २५३- वही , पृ० ५४

२५४ वही , पृ० १३ । २५५- वही , पृ० १४

२५६- वही , भूमिका पृ० ४-५ । २५७- वही , पृ० १४०

२५८- हिन्दी उपन्यास ,- सम्पादक सुषमा प्रियदर्शिनी , पृ० १८०

२५९- आलोचना २८ पृ० ६१

२६०- विवेचना , पृ० १०२, १२३

२६१- डॉ० सुरेश सिनहा - हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास , पृ० ३६७

२६२- इलाचन्द्र जोशी : साहित्य और समीक्षा - भूमिका- डॉ० चन्द्रनाथ मदान

२६३- विवेचना - पृ० १४५

२६४- जहाज का पंछी - आवरण पृ० से

२६५- प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प- विधि- सत्यपाल चुघ , पृ० ७७४-७५

२६६- सुषमा प्रियदर्शिनी - हिन्दी उपन्यास , पृ० १८१

२६७- प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों की शिल्पविधि - सत्यपाल चुघ, पृ० ३१२

२६८- इलाचन्द्र जोशी - जहाज का पंछी , पृ० ३२

२६९- जहाज का पंछी , पृ० ६० । २७०- वही , पृ० ५१

२७१- वही , पृ० ३०५ । २७२- वही , पृ० २०८-९

२७३- वही , पृ० ४२७ ।

२७४- हिन्दी उपन्यास: एक नयी दृष्टि - डॉ० चन्द्रनाथ मदान, पृ० २४-२५

२७५- आलोचना २८ पृ० ८६

२७६- आलोचना १६ पृ० ६०-६१

२७७- डॉ० सत्यपाल चुघ - प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि - पृ० ५०१

२७८- बूँद और समुद्र - ' पाठकों से '

२७९- माध्यम मई १९६५ पृ० १०८-९

२८०- बूंद और समुद्र, पृ० ६३

२८१- वही, पृ० ६३, ६६, २१२, २४८, २८४, ५०२, ५१८

२८२- आलोचना २० पृ० ६१-६२

२८३- बूंद और समुद्र पृ० ६६ । २८४- वही, पृ० १२

२८५- वही, पृ० २४२-४३ । २८६- वही, पृ० २४२-४३

२८७- वही, पृ० २८१-८२ । २८८- वही, पृ० ३४०

२८९- वही, पृ० ४२६ । २९०- वही, पृ० ४२९

२९१- वही, पृ० ४५२ । २९२- वही, पृ० ४८१

२९३- वही, पृ० ५४५ । २९४- वही, पृ० ५४६

२९५- वही, पृ० ५४६ । २९६- वही, पृ० ५४७

२९७- वही, पृ० ५४७ । २९८- वही, पृ० ५५५

२९९- माध्यम मई १९६५ पृ० १०५

३००- बूंद और समुद्र पृ० ३८८-८९ । ३०१- वही, पृ० ६०३

३०२- अमृत लाल नागर - बूंद और समुद्र, पृ० ६०४-६०६

३०३- हिन्दी उपन्यास : एक नयी दृष्टि, पृ० ५५

३०४- आलोचना २१ पृ० ६४

३०५- उखड़े हुए लोग, पृ० २२४ । ३०६- वही, पृ० २२५, २२६

३०७- वही, पृ० २२९, २३०

३०८- उपन्यासकार भट्ट - आलोचना १५ पृ० ६१

३०९- डा० सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास, पृ० १४६

३१०- सागर लहरें और मनुष्य, पृ० १०६

३११- वही, पृ० ११२

३१२- ~~हिन्दी~~ डा० सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास, पृ० १४८-४९

३१३- सागर लहरें और मनुष्य, पृ० ११२ । ३१४- वही,

३१५- डा० त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ३६२

३१६- आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र- सीमा के पार पृ० ५९ । ३१७ - वही पृ० ३१

३१८- वही पृ० ५६ । ३१९- वही पृ० ६४ । ३२०- वही पृ० २२-२३

३२१- सीमा के पार पृ० २४। ३२२- वही पृ० २५। ३२३- वही पृ० ३५
३२४- वही पृ० ३६-३७। ३२५- वही पृ० ४८। ३२६- वही पृ० ५८। ३२७ वही पृ० ६०। ३२८ वही पृ० ६१-६२
३२९ वही पृ० ६४। ३३० वही पृ० ६४

३३१- मोहन राकेश - नये बादल की भूमिका, पृ० ५

३३२- अँधेरे बन्द कमरे - भूमिका

३३३- ज्ञानोदय वर्ष १७ अंक १ पृ० १६

३३४- त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ५६५

३३५- माध्यम फरवरी १९६५ पृ० ८१

३३६- अँधेरे बन्द कमरे, पृ० ८४ । ३३७ - वही, पृ० ९९

३३८- वही, पृ० १५१ । ३३९ - वही, पृ० ३१२, ५१८

३४०- मोहन राकेश - ज्ञानोदय जुलाई १९६५ पृ० १५

३४१- यह पथ बन्धु था, पृ० ७

३४२- यह पथ बन्धु था, पृ० ५१३ । ३४३- वही, पृ० ५८६

३४४- वही पृ० १९

३४५- वही (माध्यम अगस्त १९६४ पृ० ८८) । ३४६ यह पथ बंधु था पृ० ५६३ । ३४७ - वही, पृ० ५६४

३४८ पतझर, पृ० २६ व ३४ पर मैदान और प्रकाश के प्रसंग में

३४९- वही, पृ० २७ । ३५० - वही, पृ० २६

३५१- वही, पृ० ८५ । ३५२- वही, पृ० ११९

३५३- वही, पृ० १२० ।

३५४- माध्यम, प्रवेशांक, पृ० ७८

३५५- चारु चन्द्रलेख, पृ० सं० १०

३५६- नेमिचन्द्र जैन - अधूरे साक्षात्कार, पृ० १०९

३५७- चारु चन्द्र लेख, पृ० १९२

३५८- चारु चन्द्र लेख, पृ० १६१ । ३५९ - वही, पृ० १५७

३६०- वही, पृ० ३०८ । ३६१- वही, पृ० ७

३६२- वही, पृ० ३४२, ३४८ ।

३६३- माध्यम, मई १९६४

३६४- बेघर, पृ० ९८ । ३६५- वही, पृ० १६७

३६६- वही, पृ० १६१-६२ । ३६७- वही, पृ० १६४

३६८- वही, पृ० १८० । ३६९- वही, पृ० १८९

३७०- वही, पृ० १९९ । ३७१- वही, पृ० १९७

३७२- वही, पृ० २०३ । ३७३- वही, पृ० २०४

३७४- वही, पृ० ११-१२ । ३७५- वही, पृ० ९६

३७६- वही, पृ० ९६-९७ । ३७७- वही, पृ० ९७

३७८- वही, पृ० ९७ । ३७९- वही, पृ० १०६

३८०- वही, पृ० १९७ । ३८१- वही, पृ० १९१

३८२- वही, पृ० १९५ । ३८३- वही, पृ० १९५.

३८४- वही, पृ० २०४ । ३८५- वही, पृ० १५, १६, २६, २७, ३६, ३७, ५५, ६०-६१, ७८, ८३-८४, ८५, ८८-८९, ११६-११७, १३१, १६४-६५, १९०-९१, १९७-९८ आदि

३८६- डॉ० इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास: एक नई दृष्टि, पृ० १००-१०१

३८७- सफेद मेमने - आवरण पृष्ठ

३८८- नरेन्द्र मोहन (सम्पादक) - आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ० १८

३८९- सफेद मेमने - [illegible] - । ३९०- वही, पृ० ३७

३९१- वही पृ० १४६ ।

३९२- डॉ० इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास: एक नयी दृष्टि, पृ० १०२

३९३- सफेद मेमने, पृ० ५०-५१ । ३९४- वही, पृ० ५५

३९५- वही, पृ० ५७ । ३९६- वही, पृ० ८७

३९७- वही, पृ० ७८ । ३९८- वही, पृ० ८०

३९९- सर्पेन्द्र मिमने, पृ० ८० । ४००- वही, पृ० ७६

४०१- वही, पृ० १२१ । ४०२- वही, पृ० १२२-२३

४०३- वही, पृ० ११३ । ४०४- वही, पृ० १४२

४०५- वही, पृ० १२० । ४०६- वही, पृ० १३६

४०७- वही, पृ० १२ । ४०८- वही, पृ० १४२

४०९- वही, पृ० ५५ । ४१०- वही, पृ० २४

४११- सूरजमुखी अंधेरे के, आवरण पृष्ठ

४१२- सूरजमुखी अंधेरे के, पृ० १२७

४१३- सूरजमुखी अंधेरे के, पृ० १७

४१४- वही, आवरण पृष्ठ ३९

४१५- वही, पृ० ३८-४० । ४१६- वही, पृ० ३०, ४३, ४५, ४६

४१७- वही, पृ० ५१ । ४१८- वही, पृ० ६५

४१९- वही, पृ० ६६-६७ । ४२०- वही, पृ० ८१

४२१- वही, पृ० १११, ११२, ११३, ११६, ११८, १२१ । ४२२- वही, पृ० १२७

४२३- वही, पृ० ११६

४२४- वही, पृ० ११९

४२५- वही, पृ० ९५

४२६- वही, पृ० १०३

४२७- वही, पृ० १०, ११, १५, २९, ७५, ९३, ९४, १०७

४२८- वही, पृ० १०, ११, ३०, ३९, ८२, ११६

४२९- वही, पृ० ११२

४३०- वही, पृ० ११०

४३१- वही, पृ० ९३, १८, २२, ९६, ११, ७९, १०७

४३२- वही, पृ० ११

परिशिष्ट

16- कृष्णा सोबती – मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र०सं०1967ई०।
– यारों के यार, तिन पहाड़, ..., प्र०सं०1968ई०
– सूरजमुखी अँधेरे के, ..., प्र०सं० 1972ई०

17- गिरीश अस्थाना - धूप कोई रंग, नेशनल पब्लि० हा० दिल्ली, प्र०सं०1970ई०

18- जगदम्बा प्रसाद दीक्षित - - मुरदा घर, राधाकृष्ण प्र० दिल्ली, प्र०सं०197[illegible]ई०
– कटा हुआ आसमान, अक्षर प्रकाशन दिल्ली, प्र०सं०197

19- जैनेन्द्र कुमार – परख, हि० प्र० का० बम्बई, 1956 ई०।
– सुनीता, ... प्र० सं० 1949ई०।
– त्यागपत्र, ... सं०1937ई०।
– कल्याणी, ... सं० 1940ई०।
– सुखदा, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, सं० 1955ई०।
– विवर्त, ... सं० 1953ई०।
– व्यतीत, ... सं० 1953 ई०।
– जयवर्धन, ... सं० 1956 ई०।

20- जगदीशचन्द्र मिश्र आचार्य - सीमा के पार, त्रिवेणी प्रका० दारागंज, प्रयाग

21- डा० देवराज डी० - पथ की खोज (प्रथम व द्वितीय भाग) बु० प्र० गृह लखनऊ, सं०1951ई०
– बाहर भीतर, राजकमल प्र० दिल्ली, सं० 1954ई०।
– रोड़े और पत्थर, ... सं० 1958ई०
– अजय की डायरी, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, सं०1960ई०

22- देवेन्द्र सत्यार्थी -- कठपुतली, शारदा प्रकाशन नई दिल्ली, सं० 1954ई०।
– ब्रह्मपुत्र, ... सं० 1956ई०।
– [illegible] की उर्वशी, राजकमल प्र० दिल्ली, सं० 1961ई०।

23- धर्मवीर भारती डॉ० - गुनाहों का देवता, साहित्य भवन लि० इला० प्र०सं०1949ई०
- सूरज का सातवाँ घोड़ा, ... प्र०सं०1952ई०

24- नरेश मेहता - डूबते मस्तूल, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली, प्र०सं०1954ई०
- यह पथ बन्धु था, हि० ग्र० र० बम्बई, प्र०सं०1962ई०
- धूमकेतु: एक श्रुति, ने० प० ह० दिल्ली, प्र०सं०1962ई०
- दो एकान्त, लोकभारती प्र० इलाहाबाद, प्र०सं०1964ई०
- नदी यशस्वी है, नै० प० ह० दिल्ली, प्र० सं०1967ई
- प्रथम फाल्गुन, वोरा एण्ड कं० प्रा०लि०, प्र० सं०1968ई०

25- नरेन्द्र कोहली - आतंक, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, प्र० सं०1972ई०।
26- नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, किताब महल इला०, प्र० सं० 1948ई०।
- बलचनमा, ... प्र० सं० 1952ई०
- नई पौध, ... प्र० सं० 1953ई०
- बाबा बटेसरनाथ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र० सं० 1954ई०।
- वरुण के बेटे, किताब महल इला०, प्र० सं० 1957ई०।
- दुखमोचन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र० सं० 1958ई०।
- कुम्भीपाक, स्फु० ए० पब्लि० कलकत्ता, सं० 1960ई०।
- हीरक जयन्ती, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली, सं० 1962ई०।
- उग्रतारा, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, प्र० सं० 1963ई०।
- इमरतिया, ... , प्र०सं० 1968ई०।

27- निर्मल वर्मा - वे दिन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र० सं० 1964ई०।
- लाल टीन की छत, ... प्र०सं० 1974ई०।

28- निर्मला बाजपेई - सूखा तालाब, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, प्र०सं० 1971ई०।

29- प्रतापनारायण श्रीवास्तव — विदा, गंगा पुस्तक माला लखनऊ, सं० 1990 वि०
— विजय (प्रथम व द्वितीय भाग) गंगा पुस्तक माला, लखनऊ सं० 1994 वि०
— विकास, राष्ट्रीय प्र० मं० पटना, सं० 2000 वि०
— बयालीस, ज्ञानमण्डल पुस्तक भण्डार काशी, सं० 2005 वि०
— विसर्जन, आत्माराम एण्ड संस दिल्ली, सं० 1950

30- प्रभाकर माचवे — परन्तु, प्रगति प्रकाशन नई दिल्ली, 19[illegible]1 ई०।
— द्वाभा, साहित्य भवन इलाहाबाद, प्र०सं० 1955 ई०।

31- प्रमोद सिन्हा — उसका शहर, ने० पब्लि० हा० दिल्ली, प्र०सं० 1970 ई०।

32- फणीश्वरनाथ रेणु — मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र०सं० 1954 ई०।
— परती: परिकथा, ... प्र० सं० 1957 ई०।
— दीर्घतपा, बिहार ग्रन्थकुटी, पटना, प्र० सं० 1966 ई०।
— कितने चौराहे, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्र०सं० 1968 ई०

33- बदी उज्जमा — एक चूहे की मौत, शब्दकार दिल्ली, प्र० सं० 1971 ई०।

34- भगवतीचरण वर्मा — पतन, गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊ, प्र०सं० 198[illegible]
— चित्रलेखा, भा० हि० प्र० प्रयाग, सं० 1997 वि०
— तीन वर्ष, दि लिट० सिन्डीकेट इला० 1930 ई०।
— टेढ़े-मेढ़े रास्ते, भा० भ० इला० सं० 2003 वि०।
— आखिरी दाँव, प्रयाग भा०, 2007 वि०।
— अपने खिलौने, ... 2014 वि०।
— भूले-बिसरे चित्र, राजकमल प्र० दिल्ली, 1959 ई०।
— वह फिर नहीं आई, ..., सं० 1960 ई०
— सामर्थ्य और सीमा, ... प्र० सं० 1962 ई०
— थके पाँव, सा० सदन देहरादून, सं० 1963 ई०
— रेखा, राजकमल प्र० दिल्ली, प्र०सं० 1964 ई०
— सीधी-सच्ची बातें, रा०क०प्र० दिल्ली, प्र०सं० 1967 ई०
— सबहिं नचावत राम गोसाईं, ... प्र०सं० 1970 ई०

35- भगवतीप्रसाद वाजपेयी - पतिता की साधना, भा० हि० पु० मा० प्रयाग, 1956 ई०।
- पिपासा, सा० से० का० काशी, सं० 1994 वि०
- दो बहनें, प्र० प्र० कानपुर, प्रथम सं० 1971 ई०।
- निमन्त्रण, कला मंदिर दारागंज, प्रयाग, सं० 1942 ई०।
- गुप्त-धन, संस्करण 1950 ई०।
- चलते - चलते, भ० स० म० दिल्ली, सं० 1964 ई०।
- यथार्थ से आगे, औरि० बुक दिल्ली, सं० 1955 ई०।

36 - भैरव प्रसाद गुप्त - मशाल, भारतप्रकाशन इलाहाबाद, सं० 1951 ई०।
- गंगा मैया, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र०सं० 1953 ई०।
- जंजीरें और आदमी, वै० प्र० प्रयाग, सं० 1956 ई०।
- सत्ती मैया का चौरा, नीलाभ प्र० इला० सं० 1959 ई०।

37 - मन्नू भण्डारी - आपका बंटी, अक्षर प्रकाशन दिल्ली, प्र०सं० 1971 ई०।

38- मनहर चौहान - आखिरी सपना, नै० प० ह० दिल्ली, प्र० सं० 1970 ई०।

39- मणि मधुकर - सफेद मेमने, संस्करण 1971 ई०।

40- ममता कालिया - बेघर, रचना प्रकाशन इला० प्र० सं० 1971 ई०।

41- मोहन राकेश - अँधेरे बन्द कमरे, रा० क० प्र० दिल्ली, प्र०सं० 1966 ई०।
- न आने वाला कल, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, प्र० सं० 1968 ई०।
- अन्तराल, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र० सं० 1972 ई०।

42- यज्ञदत्त शर्मा - दो रास्ता, सा० प्र० दिल्ली, संस्करण 1958 ई०
- व्यवस्था, ... 1958 ई०
- दुनिया की बातें, ... 1975 ई०

43- यशपाल - दादा कामरेड, विप्लव कार्यालय लखनऊ संस्करण 1944 ई०।
- देशद्रोही, ... संस्करण 1943 ई०।
- पार्टी कामरेड, ... 1936 ई०।

- मनुष्य के रूप, विप्लव कार्यालय लखनऊ, सं0 1949 ई0।
- दिव्या, ... सं0 1945 ई0।
- अमिता, ... सं0 1956 ई0।
- झूठा सच, ... सं0 1958 ई0।
- बारह घंटे, ... सं0 1963 ई0।

44- यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' — हजार, विजेता प्रका0 ... देहली, सं0 1959 ई0।

45- रजनी पनिकर - मोम के मोती, शारदा मं0 देहली, सं0 1954 ई0।

46- रघुवंश - तन्तुजाल, किताब महल, इलाहाबाद, प्र0सं0 1958 ई0।

47- रमेश बक्षी - किसे ऊपर किस्सा, चन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, नवीन सं0 1973 ई0
- एक किता हुआ चेहरा, संस्करण 1963 ई0।
- अठारह सूरज के पौधे, भा0 ज्ञा0 पी0 प्रका0 वारा0 प्र0सं0 196
- बैसाखियों वाली इमारत, चं0 प्र0 प्रका0 दिल्ली, प्र0सं0 1973 ई0।
- चलता हुआ लावा, ... सं0 1976 ई0।

48- रजन वर्मा - अलबम, राधाकृष्ण प्रका0 दिल्ली, प्र0 सं0 1970 ई0।

49- रांगेय राघव - विषाद मठ, राजपाल ऐण्ड संस, दिल्ली, प्र0 सं0 1972 ई0।
मुर्दों का टीला, किताब महल, इलाहाबाद, प्र0सं0 1948 ई0।
सीधा-सादा रास्ता, किताब महल, बम्बई, सं0 1951 ई0।
- बोलते खंडहर, राजपाल ऐण्ड संस, दिल्ली, सं0 1963 ई0।
- कब तक पुकारूँ, ... सं0 1963 ई0।
- हुजूर, किताब महल प्रयाग सं0 1959 ई0।
- घरौंदा, राजपाल ऐण्ड संस, दिल्ली, प्र0 सं0 1967 ई0।
- पतझर,
- महायात्रा गाथा, किताब महल प्रयाग सं0 1960 ई0।
- धरती मेरा घर, राजपाल ऐण्ड संस, दिल्ली, प्र0सं0 1961 ई0।

50- राधिका रमण प्रसाद सिंह - राम रहीम , श्री रामेश्वरी सा0म0कु0, इलाहाबाद सं0 1937ई0

- गान्धी टोपी , ... सं0 1938ई0

51- राहुल सांकृत्यायन - जीने के लिए , वाणी मंदिर, छपरा , सं0 1939ई0

- विस्मृत यात्री , किताब महल , प्रयाग, सं0 1956ई0

- जय यौधेय , ... सं0 1946ई0

- सिंह सेनापति , ... सं0 1949ई0

52- रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - चढ़ती धूप , इलाहाबाद सं0 1955 (वर्तमान)

- नई इमारत , वाराणसी सं0 1965

- मरु प्रदीप , साहित्य भवन प्रयाग, सं0 1951

53- राजेन्द्र यादव - प्रेत बोलते हैं , प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, सं0 1949ई0

- कुलटा , श्रमजीवी प्रकाशन, इला0, सं0 1958ई0

- शह और मात , भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, सं0 1959ई0

- अनदेखे अनजान पुल , राजपाल ऐण्ड संस, दिल्ली, प्र0सं0 1963

- उखड़े हुए लोग , राज0 क0 प्रका0 दिल्ली, प्र0 सं0 1956ई0

54- राजेन्द्र अवस्थी - सूरज किरन की छाँव में , राज0 प्रका0 प्र0, दिल्ली, प्र0सं0 1959

- जंगल के फूल , राजपाल ऐण्ड संस, दिल्ली , सं0 1960ई0

- उतरते ज्वार की सीपियाँ , अक्षर प्रका0 प्रा0लि0, प्र0सं0 1968ई

55- रामदरश मिश्र - पानी के प्राचीर , हि0 प्र0 पु0 वाराणसी, सं0 1961ई0

- जल टूटता हुआ , हि0 प्र0 सं0, वाराणसी प्र0सं0 1969ई0

- सूखता हुआ तालाब, ने0 पब्लि0 हा0 दिल्ली , सं0 1972ई0

56- राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई , राज0 क0 प्रका0 दिल्ली, प्र0सं0 1966ई

57- राही मासूम रज़ा - आधा गाँव , अक्षर प्रका0 , दिल्ली , प्र0सं0 1966ई0

- टोपी शुक्ला, राज0 क0 प्रका0, दिल्ली , प्र0 सं0 1969ई0

63- विष्णु प्रभाकर - तट के बन्धन, सस्ता सा० मं०, नई दिल्ली सं० 1955 ई०
- स्वप्नमयी, राजपाल ऐण्ड संस, दिल्ली, प्र०सं० 1969 ई०

64- विवेकी राय - बबूल, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं० 1967 ई०।

65- वाल्मीकि त्रिपाठी - जय विजय, पल्लव प्रका०, कानपुर, सं० 1966 ई०

66- शरद देवड़ा - टूटती इकाइयाँ, अपरा प्रका० कलकत्ता, प्र०सं० 1964 ई०।

67- शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र काशिकेय' - बहती गंगा, राज०प्र०, दिल्ली, प्र०सं० 1952 ई०

68- शिवानी - अपराधिनी, राजपाल ऐण्ड संस, दिल्ली, प्र०सं० 1971
- कृष्णकली, भारती ज्ञा०पी०, वाराणसी, प्र०सं० 1969 ई०।
- चौदह फेरे, वाराणसी विश्व० प्रका०, प्र०सं० 1965 ई०।
- कैंजा, राजपाल ऐण्ड संस दिल्ली, प्र०सं० 1973 ई०।

69- शैलेश मटियानी - होलदार, आ० ए० प० दिल्ली, सं० 1961 ई०।
- चौथी मुट्ठी, ... प्र०सं० 1962 ई०।
- चिट्ठी रसैन, ... सं० 1961 ई०।

70- शिवप्रसाद सिंह - अलग-अलग वैतरणी, लो० प्र० इला०, प्र०सं० 1967 ई०।

71- श्रीलाल शुक्ल - सूनी घाटी का सूरज, कि० म० प्रयाग, सं० 1957 ई०।
- राग दरबारी, राज० क० प्रका० दिल्ली, द्वि०सं० 1970 ई०।

72- श्रीकान्त वर्मा - दूसरी बार, अक्षर प्रका० दिल्ली, प्र० सं० 1968 ई०।

73- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - सोया हुआ जल, भा० ज्ञा०, वाराणसी, प्र०सं० 1959 ई०।

74- सुरेश सिन्हा - एक और अजनबी, ममता प्रका० इला०, प्र० सं० 1963 ई०।
- सुबह अँधेरे पथ पर, स० प्र० इला०, प्र० सं० 1967 ई०।
- नई आवाजों के साथ, ... प्र० सं० 1968 ई०।
- पत्थरों का शहर, लोक भा०प्रका०इला०, प्र०सं० 1971 ई०।

सहायक ग्रन्थानुक्रमणिका (हिन्दी)

1 — अज्ञेय — आत्मनेपद — भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी, प्र० सं० 1960 ई० ।

त्रिशंकु — सूर्यप्रकाशन मन्दिर, बीकानेर 1973 ई० ।

2— आदर्श सक्सेना— हिन्दी के आंचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर प्र० सं० 1971 ई० ।

3— इन्द्रनाथ मदान डॉ०— आज का हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1966 ई० ।

हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1975 ई० ।

हिन्दी उपन्यास पहचान और परख, लिपि प्र०, दिल्ली, प्र० सं० 1973 ई० ।

आलोचना और साहित्य, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद प्र० सं० 1964 ई० ।

उपन्यासकार अज्ञेय, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद 1960 ई० ।

4— वीदिता जोशी — भारतीय उपन्यासों में दर्शन-कथा का तुलनात्मक अध्ययन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्र० सं० 1973 ई० ।

5— इलाचन्द्र जोशी — विवेचना, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्र० सं० 196[illegible] ई० ।

विश्लेषण, भारती प्रकाशन, भागलपुर, सं० 195[illegible] ई० ।

6— उषा सक्सेना — हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास, शोध साहित्य प्र० इलाहाबाद प्र० सं० 1972 ई० ।

7 — ओ0 प्रकाश शर्मा — आधुनिक उपन्यास, जी0 कु0 पी0 एस0 फार साहित्य समारोह, 33 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली प्र0 सं0 1972

8- ओम शुक्ल —— हिन्दी उपन्यासों की शिल्प विधि का विकास, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, प्र0 सं0 1964 ई0 ।

9- कमल कुमारी जौहरी— हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास, ग्रन्थम रामबाग, कानपुर, सं0 1965 ई0 ।

10- कमलेश्वर — नई कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, प्रा0 लि0 2/36 अंसारी रोड, दिल्ली 6 प्र0सं0 1966ई0 ।

11- केदार शर्मा डॉ0 -- अमेय साहित्य : प्रयोग और मूल्यांकन, अनुपम प्रकाशन जयपुर, प्र0 सं0 1969 ई0 ।

12- कृष्णा नाग डॉ0 — हिन्दी उपन्यास की शिल्प-विधि का विकास, नीलम चेतना प्रकाशन, जबलपुर, प्र0 सं0 19[illegible]2 ई0 ।

13- श्री कृष्ण लाल — आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद, विश्वविद्यालय प्रयाग सं0 1999

14- गणेशन डॉ0 — हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र0 सं0 1967 ई0 ।

15- गंगाप्रसाद पाण्डेय — आधुनिक कथा साहित्य, प्रदीप पुस्तक माला, कुं कोठी रोड, इलाहाबाद प्र0 सं0 2001

16- गंगाप्रसाद विमल डॉ0- समकालीन कहानी का रचना-विधान ।

17- घनश्याम मधुप — हिन्दी के लघु उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र0 सं0 1971 ई0 ।

18- चण्डीप्रसाद जोशी — हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर सं0 1962ई0 ।

19- जैनेन्द्र कुमार — साहित्य का श्रेय और प्रेय, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली प्र0 सं0 1964ई0 ।

26- नलिन विलोचन शर्मा — हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ, राज० प्रका०, दिल्ली, सं० 1953 ई०।

27- नन्द दुलारे वाजपेयी— आधुनिक हिन्दी साहित्य, भारती भंडार इलाहाबाद प्र० सं० संवत 2007 वि०।

— हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी - लोकभारती प्र० इलाहाबाद सं० 1963 ई०।

28- नन्द कुमार राय डॉ०— अज्ञेय के उपन्यास कथ्य और शिल्प, हिन्दी साहित्य संसार प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं०1973ई०।

29- नगेन्द्र डॉ० — विचार और अनुभूति, प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद, सं० 1991 वि०।

— अरस्तु का काव्यशास्त्र, भारती भंडार, इलाहाबाद प्र० सं० 2014 वि०।

- नई समीक्षा : नये सन्दर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, दिल्ली, प्र० सं० 1970 ई०।

30- नरेन्द्र मोहन — आधुनिक उपन्यास, दि मैकमिलन कं० ऑफ इण्डिया लि०, प्र० सं० 1975 ई०।

31- नेमिचन्द्र जैन — अधूरे साक्षात्कार, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र०सं०1966

32- प्रताप नारायण टंडन डॉ०— हिन्दी उपन्यास कला, हिन्दी समिति सूचना विभाग उ० प्र० लखनऊ प्र० सं० 1965 ई०।

— हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, अक्षर प्रकाशन, लखनऊ,प्र० सं० 1975ई०।

— हिन्दी उपन्यासों में कथा-शिल्प का विकास, हिन्दी साहित्य भंडार गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ प्र०सं० 19[illegible]

52(ख) रमेश तिवारी डॉ० — हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद प्र० सं० 1972ई० ।

53(क) राजशेखर — काव्य मीमांसा (संस्कृत) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, सम्मेलन भवन, पटना - 3 प्र०सं० 1974 ई० ।

54- रामनारायण सिंह डॉ० — हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास, अनुपम कानपुर, प्र० सं० 1971 ई० ।

55- रामरतन भटनागर — जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा, साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा, दिल्ली, प्र० सं० 1958 ई० ।

56- राधेश्याम कौशिक 'अधीर' — हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1962 ई० ।

57- रामलखन शुक्ल — हिन्दी उपन्यास कला, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1972 ई० ।

58- राजमल बोरा — हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरण, नमिता प्रकाशन, औरंगाबाद, महाराष्ट्र, प्र० सं० 1972ई० ।

59- राजेन्द्र यादव — एक दुनिया - समानान्तर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1966ई० ।

— किनारे से किनारे तक, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र० सं० 1963 ई० ।

— कहानी स्वरूप और संवेदना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० सं० 1968ई० ।

60- रणवीर रांगा डॉ० — हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का विकास, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, प्र० सं० 1961ई०।

69- विनोदशंकर व्यास - उपन्यास कला, शिक्षा सदन काशी, प्र० सं० 1941ई०

70- शशिभूषण सिंहल डॉ० हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, प्र० सं० 1970 ई० ।

71- शशिकुमारी अग्रवाल डॉ० — हिन्दी उपन्यासों में कल्पना के बदलते प्रतिरूप, अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद प्र० सं० 1969ई०।

72- शान्ति स्वरूप गुप्त डॉ०— हिन्दी उपन्यास : महाकाव्य के स्वर - साहित्य प्रकाशन वाराणसी प्र० सं० 1969 ई० ।

73- शिवदान सिंह चौहान — आलोचना के सिद्धान्त(भाग), राजकमल प्र० दिल्ली 1960ई०
— साहित्य अनुशीलन, आत्माराम एण्ड सं० दिल्ली 1955ई०

74- शिवनारायण श्रीवास्तव — हिन्दी उपन्यास, सरस्वती मंदिर, वाराणसी सं० सम्वत 2016

75- श्याम सुन्दर दास — साहित्यालोचन, इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग, पंचम आवृत्ति सम्वत 1995

76- सत्यपाल चुघ डॉ० — अज्ञेय के उपन्यासों का शिल्पविधि, दिल्ली पुस्तक सदन दिल्ली, प्र० सं० 1965 ई० ।
— प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प-विधि, सत्याई प्रकाशन 16 पुरुषोत्तम नगर, [illegible] प्र०सं० 1968ई०

77- सीताराम चतुर्वेदी — समालोचना शास्त्र

78- सुषमा धवन — हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दिल्ली, प्र० सं० 1961 ई० ।

79- सुषमा प्रियदर्शिनी डॉ०- हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, प्र०सं० 1972

80- [illegible] डॉ० - स्वाधीनतोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विवेक पब्लिशिंग हाउस जयपुर, प्र०सं० 1973

अंग्रेजी के सहायक ग्रंथों की अनुक्रमणिका

	Author	Title	Publisher	Year
1.	A. A. Mendilow	Time and Novel	P.Nevill Ltd.London	1952
2.	A. A. Brill	The basic Teachings of sigmond Frued	Random House Inc.	1938
3.	Allot Miriam	Novelist on the novels	Routledge & Kegan Paul, London	1959
4.	Arnold Kettle	An Itroduction to the English Novel	Hutchinson's University Library, London W1	1951
5.	Agnes Mure Mackenzi	The process of Literature	G. Allen, London	1929
6.	Allen Walter	The novel Today	Longman's Green & Company Ltd.London	1955
7.	B each J. W.	The twentieth Century Novel	Appleton century Crafts, Newyork	1956
8.	Basil Hogreth	The Technique of Novel writing	John Lane The Bodley Head Ltd, London	1934
9.	Barret William	The living Character	The writers Hand-Book, Writers Inc.	1952
10.	Carl H. Brabe	The Technique of the Novel	Charles Scribner's & Sons, New York	1928
11.	Comfort Alex	The Novel and Our time	Phoenix House Ltd, London	1958
12.	Christopher Candwell	Illusion & Reality	People's Publication House, Bombay	1947
13.	David Lodge	Language of Fiction	Routledge & Kegan Paul, London.	1966
14.	David Daiches	Literature & Society	Victor Gdla	1938
		The Novel and the Modern World	Syndics of the Cambridge University Press, London	1960
15.	E. M. Forster	Aspects of the Novel	Pengouin Books Pvt. Ltd.	1947
16.	Edwin Muir	The Structure of The Novel	Allied Publishers	

17. Francis Vivian	Creative Technique Infiction	Hutichinson London	1946
18. France Alexander	Psycho-Analysis Today, Editer SLL.	Allen & Unwin London	1948
19. George Luāacs	Studies In European Realism, London	London	1950
20. Henary James	The Future of the Novel	Vintage Books New York	1956
21. Henary Burgshawn	An Introduction to Metaphysics	Translation by T.E. Hulme	1933
22. H.J. Blackham	Six Existentialist Thinkers	Rautledge & Kegon Paul, London	1951
23. H.B.Lathrop	The Art of the Novelást	George H. Harrap & Co. Ltd. Ĝreat Britain	1921
24. John	Essays on Literature and Ideas	Macmillan & Co. Ltd. London	1963
25. Jastrow Joseph	Freud; His dream & Sex Theories	Central Book Depot, Alld.	1947
26. John	Art as experience	Minton, Balck & Co.	1935
27. J.P.Sartre	Existentialism & Humanism	Philip M.M. Co.Ltd.	1949
28. Leon Edel	The psychological Novel	Rupert Hart Davis London	1955
29. Percy Lubbock	The Crafr of Fiction	Jonathan Cape London	1960
30. Pelham Edgar	The Art of the Novel	New York	1934
31. Phyllis Benetley	The English Reginal Novel	Harkell House, New York	19[illegible]

32.	Robert Liddell	At Treatise on the Novel	Jonathan Cape, London reprint	1955
33.		Some principles of Fiction	"	1953
33.	Richard Stang	The Theory of the Novel in England	Routledge & Kegan Paul, London	1959
34.	Richard Church	The Groth of the English Novel	Methuen & Co.Ltd. London	1951
35.	R.A. Scot James	The making of Literature	Martin S.& Warberg Ltd. London W.I.reprinted	1967
36.	Ralph Fox	The Novel and the People	Edited by E.P.Calcutta	1944
37.	Sir Russel Bert-raind	The nature of Experience	Oxford University press	195
38.	S H. Vastsayan	Contemporary Indian Literature	Sahitya Akadamey, New Delhi	
39.	T.S.Eliot	Selected prose	Penguin Books Ltd.	1958
		Selected Essays	Faber & Faber	1952
40.	Tempkin J.M.S.	The Popular Novel in England	Constable & Co.Ltd. London	1932
41.	William Van O' Corner	Forms of Modern Fiction	Indiana University press, Bloomington	1959
42.	William James	Principle of psychology	H.Holt, New York	1890
43.	Wilburk L.Gross	The Development of the English Novel	Macmillan, New York	1953
44.	Watler Allen	Reading a Novel	Edited by Phoenix House, London	1949
45.	Indra Nath Madan	Modern Hindi Literature	Minerva, Lahore	1939

46.

JOURNALS

(1) Times Literary Supplement Oct. 8th 1964

(2) The Illustrated Weekly Feb. 3rd 1967